डॉ० बद्रीनाथ कल्ला की लेख-लहरी

वितस्ता की थिरकती ऊर्मियां

संकलनकर्त्ता व सम्पादिका

सरला कल्ला हण्डू

अपनी प्रेरणादायिनी माँ
सौभाग्यवती राजदुलारी को
सादर समर्पित

डॉ० बद्रीनाथ कल्ला की लेख-लहरी

वितस्ता की थिरकती ऊर्मियां

संकलनकर्त्ता व सम्पादिका

सरला कल्ला हण्डू

डॉ० बद्रीनाथ कल्ला की लेख-लहरी

पुस्तक का नाम : वितस्ता की थिरकती ऊर्मियां
लेखक : डॉ० बद्रीनाथ कल्ला
संकलनकर्त्ता व सम्पादिका : सरला कल्ला हण्डू
कम्प्यूटर डी.टी.पी : आई आई एल एस
डी. टी. पी. सेंटर, मुठ्ठी जम्मू
रिंकू कौल # 94191-36369
प्रथम संस्करण : 2017 ई०
मूल्य :
प्रकाशक : सरला हण्डू
मुद्रक :

पुस्तक मिलने का पता:

1. सरला हण्डू
   57/8, त्रिकूटानगर, जम्मू 180012
   Cell. No.: 094191-21616
2. डॉ० बद्रीनाथ कल्ला
   1362/16, फरीदाबाद, हरियाणा।
   Ph. No.: 0129-2290320

Badrinath Kalla's Lekh Lahri, "Vitasta ki thirakti uurmiya" Edited and compiled by Smt. Sarla Kalla Handoo. Collection of Hindi writings of Dr. B. N. Kalla.



राष्टपति सम्मान से सम्मानित

डॉ० बद्रीनाथ कल्ला का परिचय

डॉ० बद्रीनाथ कल्ला का जन्म कश्मीर में सारस्वत ब्राह्मण कुल में हुआ था। इनके पिता का नाम पं० विदलाल कल्ला था, जो संस्कृत के प्रकांड पण्डित थे। बचपन से ही मां के प्यार से वंचित रहे। कालान्तर 'राजकीय संस्कृत पाठशाला' (Govt. Oriental College बगिदिलावरखां में स्थित) से क्रमश: रत्न, भूषण, प्रभाकर, प्राज्ञविशारद तथा शास्त्री की परीक्षाये तथा कश्मीर विश्वविद्यालय से पंजाब विश्वविद्यालय लाहौर तथा कश्मीर विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण की। पहले उनकी नियुक्ति संस्कृत अध्यापक के रूप में गवर्णमेंट हाई स्कूल त्राल में हुई। उस के बाद गवर्णमेन्ट ओरियन्टल कालेज बाग दिलावर खां' में संस्कृत विभाग के अध्यक्ष पांच वर्षों तक रहे। अध्यापक के रूप में इन्होंने एम०ए० तथा बी०इड़० की परीक्षायें उत्तीर्ण की। इन्होंने अपने सेवाकाल में 'जम्मू व कश्मीर कलचरल अकादमी' के कश्मीरी विभाग में संपादक के रूप में भी काम किया, इन्होंने वहां चालीस हज़ार कश्मीरी शब्दों की व्युत्पति Etymology दी, जिनका स्त्रोत संस्कृत, प्राकृत, अरबी, फारसी तथा तुर्की आदि भाषायें है। यह शब्दकोश सात खण्डों में 'जम्मू व कश्मीर कल्चरल अकादमी' से प्रकाशित हुआ है। इस परियोजना के बाद वे कश्मीर विश्वविद्यालय के 'मध्य एशियाई अध्ययन केन्द्र' में

1981 ईस्वी से संस्कृत प्राध्यापक के रूप में नियुक्त हुए। वहां वे शोधकार्य के अतिरिक्त 'डिप्लोमा कोर्स इन कश्मीरी' में कश्मीरी तथा संस्कृत स्नातकोत्तर विभाग में संस्कृत पढ़ाते थे। इस दौरान इन्होंने 'कश्मीरी भाषा तथा संस्कृत का तुलनात्मक अध्ययन'। इस विषय पर संस्कृत में शोध-प्रबन्ध लिखा। जम्मू कश्मीर में भाषा विज्ञान क्षेत्र में यह आजतब प्रथम शोध-प्रबन्ध है। कश्मीर विश्वविद्यालय से सेवानिवृत होने के बाद इन्होंने 'दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग' के माध्यम से 'विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) की परियोजना के अन्तर्गत 'वितस्ता माहात्मय' का औगोलिक, ऐतिहासिक तथा व्युत्पति विषयक वर्णन सन् 1997 ईस्वी में मुख्य अन्वेषक के रूप में काम किया। इन्होंने संस्कृत प्राध्यापक के रूप में शास्त्र चूडामणि के अन्तर्गत 'श्री रणवीर केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ जम्मू में काम किया। संस्कृत व संस्कृति से प्रेम के कारण आपको मानव संसाधन मंत्री श्री मुरली मनोहर जोशी तथा भारत के राष्ट्रपति के०आर०नारायणन ने 'विद्वत' सम्मान से समलंकृत किया। आपको समय समय पर संस्कृत की विभिन्न संस्थाओं ने पुरस्कृत किया।

हिन्दी संस्कृत, अंग्रेज़ी, उर्दू तथा कश्मीरी में इनकी प्रकाशित रचनायें आदि :-

(1) इस शती के संस्कृत विद्वान (1866-1966 ई०) तक विश्वसंस्कृत - शताब्दी ग्रन्थ: जम्मू व कश्मीर राज्यभाग: प्रकाशक अखिल भारती संस्कृत साहित्य सम्मेलन दिल्ली। यह ग्रन्थ श्री लालबहादुर शास्त्री को समर्पित किया गया।

(2) कोशुर शैवमत (कश्मीरी में) प्रकाशक कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर।

(3) संपादित 'मानस-दर्पण' (रामचरित् मानस चतु:शती के उपलक्ष्य में आधारित शोधात्मक लेख) प्राक्कथन - डॉ० कर्णसिंह (पूर्व स्वास्वथ मंत्री, भारत सरकार)

(4) संशोधित - श्रद्धार्चन (शैवाचार्य स्वामी लक्ष्मण जी महाराज का स्मृति ग्रंथ - हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेज़ी तथा कश्मीरी में)

(5) काशमीर क्रन्दनम् - संस्कृत का एक लघुकाव्य-कश्मीर के आतंकवाद के विषय में।

(6) काश्मीर सौरभम् - (संस्कृत - पद्यों में संस्कृत रचनाकारों की नामावली)

(7) द्विभाषिक (हिन्दी-कश्मीरी) वार्तालाप पुस्तिका (उर्दू तथा कश्मीरी में) प्रकाशक - केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, आर०के पुरम, नई दिल्ली।

(8) सह-संपादक :- त्रिभाषा कोश (हिंदी, अंग्रेज़ी तथा कश्मीरी में) प्रकाशक केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, दिल्ली।

(9) भारतीय भाषा परिचय (कश्मीरी भाषा पर प्रविष्टि) प्रकाशक केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली।

(10) इन्साइक्लोपीडिा आफ इंडियन लिटरेचर (कश्मीर शैवदर्शन आदि पर प्रविष्टियां) प्रकाशक साहित्य अकादमी, नई दिल्ली।

'वार्षिकी' : कश्मीरी साहित्य का सर्वेक्षण (आठ खंडों में, हिन्दी में) प्रकाशक केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली।

जम्मू व कश्मीर संस्कृत साहित्य सम्मेलन, श्रीनगर में 'जनरल जक्रद्री के रूप में काम करते थे। इनकी संस्कृत में प्रकाशित रचनायें भारत के विभन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। इनकी सस्कृत में कविता, पाठ तथा लेख आदि देश के भिन्न-भिन्न आकाशवाणी तथा दूरदर्शन केन्द्रों से प्रसारित हुए हैं और अत्यन्त प्रशंसनीय रहे हैं। विशेकर इनकी कविता मेघ, भारमातृवन्दना तथा काशमीर सौरभम्। इनकी कविताओं का अनुवाद भारत की विभिन्न भाषाओं में हुआ है। तथा इनकी भेंट वार्त्ता संस्कृत विद्वान के रूप में दिल्ली के दूरदर्शन केन्द्र से समय-समय पर प्रसारित होती है।

अपने पूज्य पिताजी के रचनाओं का संपादन करके आज मुझे एक विशेष प्रकार के हर्षोल्लास हो रहा है साथ ही यह अनुभूति हो रही है कि उनका मुझे संस्कृत पढ़ाना सार्थक सिद्ध हुआ है। विस्थापन के कारण अभी भी उनकी बहुत सी रचनायें इधर उधर बिखरी पड़ी हुई हैं। यदि ईश्वर की इच्छा हो तथा

परिस्थितियों ने साथ दिया, उनको भी अति शीघ्र प्रकाशित करूंगी।

शेष में कोई साहित्यकार नहीं, कवि नहीं, लेखिका नहीं अपितु साहित्य प्रेमी हूँ, साहित्य की अनन्य उपासक हूँ। मुझ जैसे अल्पज्ञ से त्रुटि होना स्वाभाविक है। एतदर्थ क्षमायाचना।

संपादिका व संकलनकर्त्ता
सरला कल्ला हण्डू

विषय सूची

पंचम खण्ड

आशीर्वचन

प्रस्तुत आलेख संग्रह 'वितस्ता की थिरकती ऊर्मियां' जाने माने विद्वान एवं शोधकर्ता प्राध्यापक डॉक्टर बद्रीनाथ जी कल्ला की विदुषी तनया श्रीमती सरलाजी कल्ला हण्डू जी की शब्दसाधना की ललक एवं श्रम को परिणाम है। संग्रह के आलेख कश्मीर के अनेक साहित्यक सांस्कृतिक तथा धार्मिक आयामों को रेखांकित करते हैं, जो सहज ही लेखिका की एतदविषयक लगन एवं परिश्रम शीलता की ओर इंगित करते हैं। संकलित आलेखों की भाषा-शैली सहज-सुबोध होने के कारण हिन्दी का एक साधारण पाठकभी अपनी कश्मीरी विषयक जानकारी से अवगत हो सकता है।

अब के इस समय में जब कश्यप ऋषि द्वारा निर्मित इस पावन तपोभूमि को अशान्ति के गहरे गर्त में धकेला जा रहा है। पाठकों को कश्मीरी संस्कृति से अवगत कराना आवश्यक है ताकि कश्मीर की मूल संस्कृति से, जिसे आधुनिक भाषा में कश्मीरियत कहते हैं, अवगत कराया जा सके। असली कश्मीरियत के संवाहक शिवयोगिनी लल्लेश्वरी तथा महान सूफी संत नुन्दऋषि जैसी विभूतियां हैं। इनके 'वाख' तथा 'श्रुक्य' आदि मानव मन पर जमी मैल की मोटी मोटी दर्तों को खुरच खुरच कर साफ करने में समर्थ है। कुलमिला कर पुस्तक पठनीय एवं संग्रहनीय है। पुस्तक विशेष कर कश्मीरी विस्थापितों एवं विस्थापेतर पीढ़ी के लिए एक प्रकाश स्तम्भ है।

मैं हृदय की गहराइयों से लेखिका की शब्दसाधना को दिनोंदिन निखरने, आगे आगे बढ़ते रहने तथा वांछित मंज़िल तक पहुँचने की कामना करता हूँ। मां शारदा लेखिका तथा इनकी लेखनी को लम्बी उम्र दे।

तथास्तु !

पृथ्वीनाथ मधुप

01-09-2016

शान्तासदन' सरस्वती विहार,

आनन्द नगर, जम्मू।

प्रथम खण्ड

प्राचीन साहित्य में कश्मीर का वर्णन

जम्मू व कश्मीर राज्य भारतवर्ष के उत्तर में उसके शीर्ष स्थान पर मुकुट के समान शोभा देता है। इस देश के इतिहास में कश्मीर या कश्मीर बहुत प्रसिद्ध रहा है। कश्मीर शब्द का प्रयोग संस्कृत साहित्य में अनेक रूपों में पाया जाता है। इस शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में विद्वानों के अनेक मत है। कश्मीर शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में वैयकारणों में से महर्षि पणिनि (500 ई० पू०) का यह मत है कि कश्मीर शब्द में 'कशेर्मुट् च' इस औणदिक सूत्र के कश् धातु से प्रत्यय तथा मुट् आगम करने पर कश्मीर शब्द की सिद्धि होती है। कश्मीर: देशविशेष इति त्रिकांडशेष:। कश् धातु प्रकाशन के अर्थ में प्रयुक्त होता है। जैसे - प्रकाशते विविधविद्या सदाचार शासन समृदध्याभिरिति कश्मीर: अर्थात विविध प्रकार की विद्या सदाचार शासन समृद्धि आदि पदाथों को जो प्रकाशित करता है वह कश्मीर कहा जाता है। कश्मीर एवं काश्मीर: अर्थात् कश्मीर ही काश्मीर है। यहाँ स्वार्थे अण् प्रत्यय लगाने से 'कश्मीर' बन जाता है।

पुरणों में से कश्मीर के प्राचीन ऐतिहासिक पुराण नीलमत्पुराण (500 ई०) में कश्मीर शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार दी गई है:-

''क:प्रजापतिरुदिष्ट: कश्यपश्च प्रजापति:।
तेनासो निर्मितो देश: कश्मीराख्यो भविष्यति।।''

अर्थ: क वर्ण से प्रजापति तथा कश्यप प्रजापति का अर्थ ग्रहण किया जाता है। उसी के द्वारा बनाया हुआ यह देश 'कश्मीर' नाम से प्रसिद्ध होगा।

''कं वारि हरिणा यस्माद् देशादस्मादपाकृतम्।
कश्मीराख्य ततो ह्यस्य नाम लोके भविष्यति।। ''

अर्थ:- क वर्ण से पानी का अर्थ ग्रहण किया जाता है जिसने इस देश से पानी दूर किया। इसलिए इसका नाम संसार में कश्मीर होगा। उक्त दोनों श्लोको में

कश्मीर शब्द की निरुक्ति दो प्रकार से पाई जाती है - (1) कश्यप प्रजापति के द्वारा बनाया हुआ यह देश कश्मीर है तथा (2) यह कि किसने इस देश से पानी दूर किया है। कुछ विद्वान कश्मीर शब्द की कल्पना इस प्रकार करते हैं। कश्यप प्रजापति की यह तपोभूमि है। यहाँ ही प्रसिद्ध मिहिर-मंदिर (मार्तंड मंदिर) स्थापित हुआ। इस प्रकार कश्यप और मिहिर इन दोनों संयुक्त नामों का अपभ्रंश रूप 'कश्मीर' शब्द है। साथ ही कुछ विद्वान कश्मलमीरयति इति कश्मीर: अर्थात जो पापरुप मलों-आणव, मायीय तथा कार्म मलों का परिहार करने की साधना करते है वह कश्मीर है। इस प्रकार इसकी व्युत्पत्ति बताकर 'पृषोदरात्साधु:' से इसकी रूप सिद्धि बताते हैं। मेरे मत से कश्मीर शब्द 'कश्यपमीर' का विकृत रूप है। अर्थात कश्यप ऋषि का सर। मीर शब्द के अर्थ संस्कृत में अनेक है: जैसे-सर, पहाड़, समुद्र आदि। प्राचीनकाल में कश्मीर 'सतीसर' के रूप में जल में डूबा हुआ था। अत: भाषा विज्ञान के अनुसार कश्यप मीर से कश्मीर शब्द की सिदधि युक्तियुक्त है।

वस्तुत: कश्मीरशब्द अति प्राचीन शब्द है। शांख्यायन ब्राह्मण (7/9) में लिखा है:- ''पथ्या स्वस्तिरुदीचीं दिश प्राजानात। वाग वै पथ्या स्वस्ति:। तस्मादुदीच्यां दिशि प्रज्ञाततरा वागुदयते, उदंचे हयेव यान्ति वाचं शिक्षितुम्। यो वा तत आगच्छति, तस्य व शश्रूवन्त इति आह। एषा हि वाचो दिक प्रख्याता। पथ्या स्वस्ति को उत्तर दिशा जानिए, पथ्या स्वस्ति ही वाणी है। उत्तर दिशा में वाणी प्रज्ञातमयी संकीर्तित होती है। सब लोग उत्तर-दिशा में सुशिक्षा हेतु जाते हैं। उत्तर दिशा से आनेवाले महामनीषियों की वाणी को सभी जिज्ञासु बड़ी लालसा से सुनते हैं कि वे कैसा सदुपदेश देते है। कारण कि उत्तर दिशा को ठीक उत्तर दिशा जैसी ही ख्याति प्राप्त है।''

आचार्य श्री विनायक भटट ने 'शंखायन भाष्य' में और भी अधिक स्पष्ट लिखा है।...... प्रज्ञातरा वागुदयते-काशमीरे सरस्वती संकीर्त्यते। बदरिकाश्रमे वेदघोष: संश्रयते। वाचं शिक्षितुं सरस्वती प्रसादार्थ तु उदं चे - कश्मीर में सरस्वती संकीर्तित हुआ करती है। सब लोग सरस्वती के प्रसाद

लाभ (वरप्राप्ति) के लिए अर्थात् सुशिक्षा हेतु, उत्तर दिशा में जाते हैं।

उक्त गुणों के कारण ही कश्मीर-सरस्वती का देश अथवा 'शारदापीठ' के नाम से विख्यात है।

कश्मीर की प्राचीन नदी वितस्ता (कश्मीरी में व्यथ-वर्तमान झेलम) का उल्लेख ऋवेद के नदी-सूक्त में इस प्रकार वर्णित है:-

''इयं में गड़्गे यमुने सरस्वति शतुद्रिस्तोंम।
असिकन या मरुददधोवितस्तयार्जाकीये-शृणुहया सुशोमाया।।''

इससे कश्मीर की प्राचीनता सहज रूप से सिद्ध होती है। वैदिक साहित्य के अतिरिक्त प्राचीन महाकाव्यों-रामायण तथा महाभारत में इसका प्रयोग स्पष्ट रूप से पाया जाता है।

वाल्मीकीय रामायण में सीता के अन्वेषण-प्रंसग में 'कश्मीर' शब्द का उल्लेख निम्नप्रकार से हुआ है :-

''काश्मीर मण्डलं सर्व शमीपीलुवनानिच।
पुराणि च सशैलानि विचिन्वन्तु वनौकस:।।''

अर्थ:- हे वनवासियों! समस्त कश्मीर मंडल शमी तथा पीलु वृक्ष के वनों एवं पार्वत्य प्रदेशों तथा नगरों में सीता जी की खोज लगाओ। इसी प्रकार महाभारत के विभिन्न प्रंसगों में 'क़श्मीर' शब्द का प्रयोग हुआ है। उदहारण के रूप में निम्न पदय दृष्टव्य है:-

''कश्मीरा सिन्धुसौवीरा गान्धारा दर्शकास्तथा।''

दूसरा पद्य:-

''काश्मीरेष्वेव नागस्य भवनं तक्षकस्य च।
वितस्तारण्यमितिख्यांत सर्वपापप्रमोचनम्।।
तत्रस्नात्वा नरो नूनं वाजपेयमवाप्नुयात्।
सर्वपापविशुद्धात्मा गच्छेच्च परमांगतिम्।।''

अर्थ:- काश्मीर प्रदेश में तक्षकनाग का भवन है। वहां 'वितस्ता' नाम का सर्वपाप विनाशक विख्यात जल-तीर्थ है। उसमें स्नान करने से वाजपेय यज्ञ

का फल मिलता है। सब पापों से विमुक्त होने पर विशुदधात्मा मनुष्य परमगति को प्राप्त करता है।

कल्हण की 'राजतरङ्गिणी' के अनुसार कश्मीर के सुप्रसिद्ध राजा गोंनद जरासंध के निमंत्रण पर महाभारत की लड़ाई में कौरवों की सहायता के किए मथुरा गये। वहाँ उसकी मृत्यु बलराम के द्वारा हुई। अपने पिता के वध का समाचार सुनकर उसका बदला लेने के लिए राजा गोनंद का पुत्र दामोदर सेनासहित गांधार पहुँचा। वहाँ लड़ाई में उसने श्रीकृष्ण के चक्र से वीरगति प्राप्त की। बाद में उसकी रानी यशोमती का श्रीकृष्ण के द्वारा कश्मीर में राज्याभिषेक करा दिया।

इस ऐतिहासिक प्रमाण से यह स्पष्ट होता है कि कश्मीर का संबंध पाँच हज़ार साल से भारत के साथ रहा है। 'राजतरङ्गिणी' के अनुसार कश्मीर जलप्रलय के समय मत्स्यावतार के अंनतर ही प्रकट हुआ था। जैसे कहा भी गया है:-

''पुरासतीसर:कल्पारम्भात् प्रभृतिरभूत्।
कुक्षौ हिमाद्रेरर्णोभि: पूर्णामन्वन्तराणि षट्।।
अथ वैवस्वतीयेऽस्मिन् प्राप्ते मन्वन्तरे सुरान्।
द्रुहिणोपेन्द्ररुदादीनवतार्थप्रजासृजा।।
कश्यपेन तदन्तस्थं घातयित्वा 'जलोद्भवम्'।
निर्ममे तत्सरो भूय: काश्मीर इति मण्डलम्।।
उद्यदैनस्तनिष्यन्द दण्डकुण्डातपत्रिणा।
यत्सर्वनागाधीशेन नीलेन परिपाल्यते।।''

अर्थ:- पहले कल्पारंभ से लेकर सतीसर का भूभाग हिमालय के नितंब (मध्यभाग) तक छह मन्वंतर पर्यत जलपूर्ण था। तदनंतर वैवस्वत नाम के सप्तम मन्वंतर में महर्षि कश्यप ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवताओं के दवारा उस सरोवर में रहने वाले जलोद्भव नाम के असुर को मरवा कर सरोवर की भूमि पर कश्मीर मंडल की स्थापना की। वितस्ता नदी के बहावरूपी दंड तथा कुंड

रूपी छत्र धारण किए हुए सब नागों के राजा नीलनाग इस मंडल का पालन करते हैं।

कश्मीर मंडल के परिमाण के विषय में भी उल्लेख आया है जिससे संबंधित श्लोक इस प्रकार है:-

''पष्टिग्रामसहस्राणि पष्टिग्रामशतनि च।
षष्टिग्रामास्त्रयोग्रामा हयेतत्कश्मीरमण्डलम्।।''

यद्यपि इस श्लोक के अनुसार 60663 गाँव गवेषणापूर्ण गणना से जल-बिप्लव अथवा अन्य प्राकृतिक विपदाओं के कारण इस समय कश्मीर में नहीं मिलते तथापि पुराने ज़माने में इन सब गाँवों का होना असंभव न था। अन्य पुस्तकों में भी कश्मीर के परिमाण के बारे में इस प्रकार का वर्णन मिलता है, जैसे:-

''शारदामठमारभ्य कुड़्कुमाद्रितरान्तर्गत:
तावत्कश्मीर देश: स्यात पञ्चाशद्योजनात्मक:।।''

अर्थ:- शारदामठ से लेकर कष्टवार के अंत तक 500 योजनों वाला 'कश्मीरदेश' है।

कश्मीर का दूसरा नाम संस्कृत साहित्य में शारदा देश भी है। कश्मीर के प्रसिद्ध कवि बिल्हण ने अपने महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरितम्' के प्रथम सर्ग में अपनी प्रिय तथा सुंदर मातृभूमि को श्रद्धांजलि भेंट करते हुए लिखा था:-

सहोदरा:कुंकुमकेसराणां भवन्ति नूनं कविताविलासा:।
न शारदादेशमपास्य दृष्टस्तेषां यदन्यत्र मया प्ररोह:।।''

अर्थ:- कुंकुम, केसर और काव्यविलास आपस में सगे भाई है। 'शारदादेश' को छोड़कर दूसरी जगह मैने इनको साथ-साथ नही देखा। अर्थात् ज़्हाँ कंकुम केसर है वहाँ काव्य-विलास नहीं है, जहाँ काव्यविलास है वहाँ कुंकमकेसर नही है। इन दोनों का समन्वय कश्मीर के बिना किसी देश में नही पाया जाता है। अत: कश्मीरी ही एक ऐसा प्रदेश है जहाँ प्राकृतिक संपदा के साथ काव्यसंपदा

भी समृद्ध है। कल्हण तथा बिल्हण के बाद अर्थात् बारहवीं शती के बाद परवर्ती संस्कृत साहित्य में भी कश्मीर का समुल्लेख यत्र-यत्र दृष्टिगोचर होता है।

दुर्भाग्य से आज कश्मीर संस्कृत-साहित्य की विभिन्न विधाओं का स्रोत नहीं रहा किंतु उसकी (कश्मीर की) आध्यात्मिक चेतना को स्पंदित करने वाली प्रातकृतिक सुषमा देश-विदेश के लोगों को आज भी आकृष्ट करती रहती है। नि:संदेह, अंत: साक्ष्यों तथा बाह्य साक्ष्यों के पुष्ट प्रमाणों के कारण कश्मीर हज़ारों वर्षो से अर्थात वैदिक-युग से बृहत्तर भारत का अभिन्न अंग रहा है।



संदर्भ

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास-हंसराज अग्रवाल।
2. राजतरंगिणी-व्याख्याकार-रामतेज शास्त्री पांडेय।
3. विक्रमांक देव चरितम-संपादक, जार्ज बुलर।
4. वितस्ता-प्रकाश, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, कश्मीर विश्व-विदयालय। (1969-शरदंक)
5. काश्मीरिकी संस्कृतभाषयोस्तुलनात्मकमध्ययनम् (कश्मीरी भाषा तथा संस्कृत भाषा का तुलनात्मक अध्ययन) - लेखक का शोघ-प्रबंध।
6. विश्व संस्कृत शताब्दी ग्रंथ-जम्मू व कश्मीर राज्य भाग:प्रकाशक-अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन दिल्ली।
7. नीलमतपुराण-संपादिका डॉ० वेदकुमारी घई।
8. A Sanskrit English Dictionary:Sir M.Monier Williams.

विभिन्न टाइप प्रस्तुत करके नारी-हृदय की प्रकृति के ऐसे सूत्रों को पकड़ने का यत्न किया है जो सहज ही हाथ नहीं आते। उनकी सूक्ष्म पर्यवेक्षण-शक्ति, अतलस्पर्शी अभिज्ञता प्रशंसनीय है।

कश्मीर में संस्कृत की गतिविधियाँ

अतीत व वर्तमान
(इतिहास के परिप्रेक्ष्य में)

कश्मीर केवल भौतिक पदार्थो के लिए ही विश्व में विख्यात नही है अपितु आध्यात्मिकता के लिए भी। भौतिकता तथा आध्यात्मिकता के समन्वय ने इस उपत्यका के गौरव को आज तक स्थिर रखा है। यह आध्यात्मिकता इस सस्यश्यामला तथा उर्वरा भूमि की देन है जिसके फलस्वरूप यहां के आचार्यो-वसुगप्त, सोमानन्द, उत्पलदेव तथा अभिनवगुप्ताचार्य (दसवीं शती में) आदि ने समय समय पर ऐसी अध्यात्मविद्या तथा भारतीय चिन्तन को जन्म दिया जो सबके लिए अनुकरणीय ही नहीं बल्कि ग्राह्य भी है। इस आध्यात्मिक विद्या तथा दर्शनिक चिन्तन का क़ेन्द्र 'शारदापीठ' अथवा 'शारदादेश' था जो हजारों वर्षो से जिज्ञासुओं को इस ज्ञान से आप्लावित करता रहता है। इस रूप से यहां के 'विद्यामठ' तथा 'विद्याकेन्द्र' सब के लिए आकर्षण के केन्द्र रह गये। इन केन्द्रों की कीर्ति सारे एशियाद्वीप में फैली हुई थी। यही कारण है कि भारत के अतिरिक्त विदेशों से अर्थात् मध्य एशिया तथा चीन से महान् विभूतियां आकर यहां के धुरंधर आचार्यों से ज्ञानगंगा का अमृत पीकर अमर हो जाते थे, इन विदेशी महान् विभूतियों में कुमारजीव तथा ह्वेनसांग के नाम उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार कश्मीर प्राचीन काल में भारतीय संस्कृति तथा संस्कृत का प्रदान केन्द्र रह चुका है। यहां के विद्यामठों का वर्णन महाकवि 'कल्हण' ने अपनी रचना 'राजतरङ्गिणी' में इस प्रकार किया है:-

''विद्यावेश्मानि तुंगानि कुंकुंम सहिमंपयः।
द्राक्षेति यत्र सामान्यमस्ति त्रिदिवदुर्लभम्।।''

यदि सूक्ष्मरूप से देखा जाये-संस्कृत तथा कश्मीर का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। संस्कृत को कश्मीर से कश्मीर को संस्कृत से अलग-थलग

करना संभव नहीं है। इस भाषा ने यहां के जन-जीवन को प्रभावित ही नहीं कर दिया है। अपितु जन-मानस पर अमिट छाप भी ड़ाल दी है। वस्तुत: संस्कृत के प्राचीन गौरव ने ही कश्मीरी की कीर्ति-पताका को विश्व में फहरा दिया है। कश्मीर में भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के विभिन्न आयामों के उदाहरण हजारों दर्षो के बाद इस समय भी हमें विभिन्न रुपों में यत्र-तत्र दिखाई देते हैं। पर्वतों, नदियों, सरोवरों, गांवों तथा जनपदों की संस्कृत नामावली इस तथ्य को स्वत: सिद्ध करती है। विभिन्न दौरों से गुजरती हुई संस्कृत भाषा किसी प्रकार अपना अस्तित्व खो न बैठी, यह इसकी लोकप्रियता तथा पूर्णता का ज्वलन्त् उदहारण है।

तभी तो महाकवि बिल्हण ने अपने महाकाव्य 'बिक्रमाङ्कदेव चरितम्' में इस प्रकार इसका संकेत किया है :-

''सहोदरा कुंकुम केसराणां भवन्ति नूंन कविता विलास:।
न शारदा देशमपास्या दृष्टक्तोषां यदन्यत्र मया प्ररोह:।।''

अर्थ:- केसर की उपज तथा कविता का विलास मैंने शारदादेरा (कश्मीर) को छोड़कर कहीं नहीं देखा। जहां कविता है वहां केसर नहीं है। जहां केसर है वहां कविता नहीं है। परन्तु इन दोनों का समन्वय मैंने केवल कश्मीर में ही देखा।

ऐतिहासिक स्रोतों के अनुसार चीनी यात्री ह्वेनसांग ने श्रीनगर में स्थित जामा मस्जिद के पास राजा जयेन्द्र द्वारा निर्मापित जयेन्द्र विहार में दो वर्षों तक रहकर संस्कृत तथा बौद्ध ग्रन्थों का अध्ययन किया था। इतिहासविद् तारानाथ के अनुसार कुषाण दौर में कनिष्क के समय अनेक संस्कृत विद्वान तथा बौद्धाचार्य जैसे वसुबन्धु, गुणवर्मन, पुण्यत्राता, धर्मयश, विमलाक्ष आदि महायान बौद्ध धर्मका प्रचार करने के लिए मध्यएशिया के विभिन्न प्रदेशों में चले गये, वहां उन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय देकर स्थानीय विद्वानों को आश्चर्य चकित कर दिया कालान्तर व वहां बस गये। बौद्धों के चौथे विराट् सम्मेलनन का आयोजन भी शून्यवादी नागार्जुन की अध्यक्षता में कनिष्क पुर

में वर्ममान कंनिसपुर में (बारामुल्ला) के समीप हुआ था। यहां के बौद्धाचार्यों में से सर्वास्ति वादी विभाषाशास्त्र के पण्डित आचार्यवसुबन्धु थे। फलत: कश्मीर में बौद्धमत को विकसित होने के अनेक प्रमाण मिलते हैं। यहां एक मुहुला - 'बुद्धगेर' के नाम से प्रसिद्ध है।

इस प्रकार कश्मीर प्राचीन काल में भारतीय संस्कृति तथा संस्कृत का प्रधान केन्द्र रह चुका है। यहां के विद्यामठों का वर्णन महाकवि कल्हण ने अपनी रचना राजतरंगिणी में इस प्रकार किया है:-

''विद्यावेश्मानि तुंगानि कुंकुम सहिमंपय:।
द्राक्षेति यत्र सामान्यमस्ति त्रिदिवदुर्लभम्।।''

यदि सूक्ष्मरूप से देखा जाये-संस्कृत तथा कश्मीर का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। संस्कृत को कश्मीर से कश्मीर को संस्कृत से अलग-थलग करना संभव नहीं हैं। इस भाषा ने यहां के जन-जीवन को प्रभावित ही नहीं कर दिया है अपितु जन-मानस पर अमिट छाप भी ड़ाल दी है। वस्तुत: संस्कृत के प्राचीन गौरव ने ही कश्मीर की कीर्ति-पताका को विश्व में फहरा दिया है। कश्मीर में भारतीत संस्कृति एवं सभ्यता के विभिन्न आयामों के उदहारण हज़ारों वर्षो के बाद इस समय भी हमें विभिन्न रूपों में यत्र-तत्र दिखाई देते हैं। पर्वतों, नदियों, गांवों तथा जनपदों की संस्कृत नामवली इस तथ्य को स्वत:सिद्ध करती है विभिन्न दौरों से गुज़रती हुई संस्कृत भाषा किसी प्रकार अपना अस्तित्व खो न बैठी, यह इसकी लोकप्रियता महत्ता तथा पूर्णता का ज्वलन्त उदहारण हैं। तभी तो महाकवि बिल्हण ने अपने महाकाव्य बिक्रमाङ्क देव चरितम् में इस प्रकार उलेख किया है:-

''सहोदरा कुंकुम केसराणा भवन्ति नूंन कविताविलास:।
न शारदा देशमपास्य दृष्टयस्तेषां यदन्यत्र मया प्ररोह:।।''

अर्थ:- केसर की उपज तथा कविता का विलास मैंने शारदा देश (कश्मीर) को छोड़कर कहीं नहीं देखा। जहां कविता है, वहां केसर नहीं है। जहां केसर है, वहां कविता नहीं है। परन्तु इन दोनों का समन्वय मैंने केवल कश्मीर में ही

देखा।

पाठकों की सुविधा के लिए संस्कृत साहित्य का वर्गीकरण तीन कालों में बांट दिया जा सकता है:-

1. संस्कृत का आदिकाल,
2. संस्कृत का मध्यकाल तथा
3. संस्कृत का आधुनिक काल।

संस्कृत का आदिकाल प्रथम सदी से चौदहवीं सदी तक माना जाता है। फलत:इस युग में कश्मीर में संस्कृत के प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति हुई। प्राय: आठवीं सदी से बारहवीं सदी तक विविध विषयों में निष्णात कश्मीर के मूर्धन्य आचार्यो-आनन्दवर्धन, मम्मटाचार्य तथा महिमभट्ट् आदि आलंकारिकों सोमानन्द, उत्पलदेव तथा अभिनवगुप्त आदि दार्शनिकों, कल्हण तथा बिल्हण जैसे इतिहासकारों, सोमदेव तथा क्षेमेन्द्र आदि कथाकारों ने संस्कृत के विभिन्न विषयों पर अमर रचनाएं लिखीं। यह युग वस्तुत: कश्मीर का स्वर्णयुग माना जाता है, क्योंकि इस युग ने मानव-चिन्तन को एक नई दिशा तथा एक नया दर्शन दिया जो संसार में 'प्रत्यभिज्ञा दर्शन' से प्रसिद्ध है। इस युग में लोगों की अभिव्यक्ति का माध्यम संस्कृत तथा प्राकृत भाषा थी, जिसका उल्लेख कल्हण के समकालीन बिल्हण ने अपने महाकाव्य - 'विकामांकदेवचरितम्' में इस प्रकार किया है:-

''यत्रस्त्रीणां किमप्यपरं जन्मभाषावदेव।
प्रत्यावांस विलसति वच: संस्कृतं प्राकृतंच।''

अर्थ:- जहां स्त्रियां जन्म भाषा की तरह संस्कृत तथा प्रकृत भाषायें बोलती थी।

निसन्देह, यह काल संस्कृत वाङमय के पूर्ण विकास का युग था। संस्कृत का मध्यकाल चौदहवीं सदी से प्रारम्भ होता है। हिन्दुओं का शासनकाल समाप्त होने के बाद प्राय:सुल्ताल युग शाहमीरी शासनकाल अर्थात् 1339 ई० से माना जाता है। उसके बाद चक शासनकाल (1554-1586 ई०) मुगल शासनकाल, अफगान शासनकाल तथा सिक्ख शासनकाल (1819-

1846 ई०), ड़ोगरा शासनकाल (1846-1947 ई०) तक। इन विभिन्न कालों में अर्थात् प्राय: पांच सौ वर्षो में संस्कृत के स्थान पर फारसी भाषा ही राजभाषा के रूप में प्रचलित रही। अब संस्कृत का धीरे-धीरे ह्रास होने लगा। विदेशीय प्रभाव के कारण सौलहवीं सदी तक इस भाषा का प्रयोग मिश्रित भाषा के रूप में हुआ। इसका उदहारण हमें क्षेमेंन्द्र रचित 'लोक-प्रकाश' में स्पष्ट रूप से मिलता है।

संवत्सरेत्र दिने श्री प्रेनापित कदले रैज्ज़ि-अमुकेन रैज्ज़ि अमुक पुत्रेण हस्ते सति बंगलचीरिका दत्ता। यथा अत्र आगरान्ते खुज्या अमुक:खुज्या अमुकं प्रतिलिखति-खुज्या अमुके सलामा बन्दगी ददनीयमिति। यह मिश्रित भाषा राज्यकार्यो तथा न्यायलयों में भी प्रचलित ती। विदेशीय राज्य हजारों वर्षों से हमारे ह्र्दय पर अंकित भारतीय संस्कारों को मिटाने में सक्षम न हुआ। फलत:जनता ने वसीयतनामों, शिलालेखों तथा इष्टामों में संस्कृत का प्रयोग किया। सबसे पहले सन्त हजरत मखदूम साहिब (16वीं सदी) का वसीयतनामा दोनों लिपियों तथा दोनों भाषाओं संस्कृत तथा फारसी मे लिखा हुआ एक शिलालेख के रूप में हमें मिलता है, जो इस समय 'जम्मू व कश्मीर के संग्रहालय' में सुरक्षित है। यहां पर यह कहना असंगत न होगा कि ज़ैनु-उल्लाब्दीन के राज्यकाल का एक शिलालेख संस्कृत में खौनमुह (संस्कृत-खौनमुष) गांव के पास 'भुवनेश्वर' नाम स्थान में उपलब्ध हुआ है। यह शिलालेख तत्कालीन लोगों का संस्कृत के प्रति अनुराग को प्रकट करता है। इसी तरह हारीपर्वत की अधित्यका में 'बाहु-उददीन साहिब' के सामने यवनों की कब्रों पर संस्कृत में अनेक शिलालेख पाये गये हैं। इसका उल्लेख डॉ० स्टीन ने भी 'राजतरङ्गिणी' के अंग्रेजी अनुवाद में किया है। यह शिलालेख संस्कृत में शारदा लिपि में लिखा गया है।

उक्त उदहारणों से स्पष्ट होता है कि संस्कृत भाषा मध्यकाल में भी किसी न किसी रूप में प्रचलित थी।

इस संदर्भ में यह कहना भी युक्तियुक्त है कि यवन शासकों में से

केवल सुल्तान ज़ैनु-उल्लाबदीन (1423-1475 ई०) एक ऐसा उदारचित्त, दूरदर्शी तथा संस्कृत प्रेमी शासक था जिसके संस्कृत साहित्य की उन्नति में महत्वपूर्ण कार्य को भुलाया नहीं जा सकता है। इस सुल्तान के विशाल दृष्टिकोण के कारण संस्कृत का पाठशालाओं में पुनः पठन-पाठन आरम्भ हुआ। जोनराज, श्रीवर, नोत्थसोम, योधभट्ट, अवतारभट्ट, शिर्यभट्ट, आदि अनेक संस्कृत विद्वान् उसकी सभा को समलंकृत करते थे। इसी युग में कल्हण के बाद जोनराज, श्रीवर, प्राज्यभट्ट तथा शुक ने राजतरंगिणी के आधार पर विभिन्न राजतरंगिणियों की रचनाएं की। जोनराज ने द्वितिय 'राजतरङ्गिणी' की रचना की जिस में तेइस राजाओं का उल्लेख हैं। उसने तीन संस्कृत ग्रन्थों महाकवि भारवि के किरातार्जनीय, मंख के श्रीकण्ठचरित तथा जयानक के पृथ्वीराज विजय पर टीकायें लिखी हैं। जोनराज का शिष्य श्रीवर भी संस्कृत का महान् कवि था। अपने गुरु के मरणोपरान्त उसने तीसरी 'राजतरङ्गिणी' लिखी तथा फारसी के मूर्धन्य कवि मुल्लाजामि की कृति - 'युसूफ ज़ुलेखा' के आधार पर संस्कृत-काव्य 'कथा-कौतक' लिखा। इस तरह ज़ैन-उल्लाबदीन अथवा बड़शाह के शासनकाल में संस्कृत के विकास का परिचय मिलता है।

इन युगों में यहां के साहित्कारों ने प्रायः संस्कृत से निःसृत कश्मीरी भाषा को ही अपनी अभिवक्ति का माध्यम बनाकर इसकी विभिन्न विधाओं को संस्कृत के आधार पर जन्म दिया। इनमें लल्लद्यद के वाख (सं.वाक्) नुन्दऋषि के श्रुक्य (सं. श्लोक), शितिकण्ठ के पद, अरणीमाल के 'वचन' बहुत ही लोकप्रिय हैं। कुछ यवन राजाओं के संकीर्ण दृष्टिकोण से चिरकाल से बहती हुई संस्कृत रूपी गंगा का प्रवाह कुछ समय तक रुक गया। लेकिन यहां के संस्कृतभक्तों नें इस ज्ञानगंगा को किसी रूप में शुष्क होने न दिया। इसका स्त्रोत्त हमेशा सबको अपनी ओर आकृष्ट करता रहा। इस युग में अर्थात् मुगलशासन काल में जगद्धरभट्ट ने 'स्तुतिकुसमांजलि' की रचना की और यहां के तीर्थो की पवित्रता को सुरक्षित रखने तथा महत्व देने के लिए कश्मीर

के तीर्थवासी ब्राह्मणों नें माहात्म्य लिखे जिनमें हरमुकटेश्वर माहात्म्य, अमेश्वरमाहात्य तथा वितस्ता माहात्म्य आदि महत्वपूर्ण हैं। डोगरा शासनकाल में भारतीय संस्कृति के प्रतीक महाराजा गुलाब सिंह सुपुत्र महाराजा रणवीर सिंह (1830-1885 ई०) नें संस्कृत भाषा व साहित्य के बहुमुखी विकास के लिए जम्मू में 'रघुनाथ संस्कृत महाविद्यालय' तथा कश्मीर में 'राजकीय संस्कृत पाठसाला' की स्थापना 1870 ई० में की, जहां विद्यार्थियों को प्राज्ञ से शास्त्री परीक्षा तक नि:शिल्क रूप से संस्कृत पढ़ाई जाती थी तथा निर्धन विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति भी दी जाती थी। सात ही 'श्री रणवोरि संस्कृत पुस्तकालय' की भी स्थापना हुई जो कालान्तर 1902 ई० में 'जम्मू व कश्मीर रिसर्च विभाग' में परिवर्तित हो गयी। धीरे-धीरे यह विभाग बढ़ता गया। संस्कृत पाण्डुलिपियों का संग्रह करना भी इस विभाग के प्रमुख कार्यो में था। इस समय इस 'रिसर्च विभाग' के साथ संस्कृत पाण्डुलिपियों का भी एक अनुभाग है जहां संस्कृत के विभिन्न विषयों की प्राय: पांच हजार पाण्डुलिपियां शारदा तथा देवनागरी लिपि में सुरक्षित हैं। इस विभाग की स्थापना से सैकडों की संख्या में शैवदर्शन आदि विषयों पर पुस्तके प्रकाशित हुई है। इन ग्रन्थों के संशोधन तथा सम्पादन में श्री जे.सी. चटर्जी श्री मुकुन्दराम महामहोपाध्याय, श्री मधुसूदन कौल शास्त्री, प्रो० जगद्धर जाडू, श्री हरभट्ट शास्त्री, श्री दीनानथ यक्ष शास्त्री, डा० नलिनाक्ष दत्त तथा शिवनाथ शर्मा आदि के नाम स्मरणीय हैं।

महाराजा प्रताप सिंह के शासनकाल में संस्कृत के पण्डित श्री ईश्वर कौल ने पाणिनीय सूत्रों के आधार पर संस्कृत में 'कश्मीरी शब्दामृतम्' नामक पहला कश्मीरी व्याकरण लिखा जिसका 'सर जार्ज इब्राहिम ग्रियर्सन' ने संपादन करके एशियाटिक सोसायटी कलकत्ता से प्रकाशित किया। इसके अतिरिक्त ईश्वर कौल ने 'कश्मीरी संस्कृत शब्दकोश' भी लिखा था जिसका उल्लेख ग्रियर्सन ने 'कश्मीरी डिक्शनरी' के प्रथम खण्ड की भूमिका में किया है। इसकी तीसरी कृति-कश्मीरी-दशभाषोदय नामक संस्कृत कोश की पाण्डुलिपि है जो दो खंडों में इस समय 'जम्मू कश्मीर रिसर्च विभाग' में सुरक्षित है। यह

कोश संस्कृत पद्यों में लिखा गया है। इसमें कश्मीरी शब्दों के पर्याय दस भाषाओं में दिये गये हैं जैसे - अरबी, फारसी, अंग्रेज़ी, लामी और बलती आदि।

इस संदर्भ में महामहोपाध्याय मुकुन्दराम शास्त्री का योगदान भी सराहनीय है। सर जार्ज ग्रियर्सन द्वारा सम्पादित 'कश्मीरी डिक्शनरी' के चार खण्ड़ों में महामहोपायाय मुकुन्दराम ने प्राय: पचीस हजार कश्मीरी शब्दों तथा मुहावरों का अनुवाद संस्कृत में किया और कृष्ण राजानक (राजदान) के 'शिवपरिणय' के कश्मीरी पद्यों की छाया संस्कृत में लिखी। यह दोनों पुस्तकें 'एशियाटिक सोसायटी बंगाल' से प्रकाशित हुईं।

आधुनिक काल: यह काल 1947 ई० से आज तक माना जाता है। इस काल में यहां की स्वयंसेवी संस्थाओं, सायंकालीन पाठशालाओं, विद्यालयों तथा महाविद्यालयों ने संस्कृत के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

स्वतन्त्रयोत्तर संस्कृत की स्थिति - स्वतंत्रता के बाद संस्कृत के महत्व को सब देशवासियों ने समझ लिया। भावात्मक एकता तथा राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ बनाने के लिए देश के महान् नेताओं तक राष्ट्रभक्तों ने संस्कृत को राष्ट्रभाषा बनाने पर बल दिया। आज़ादी के आन्दोलन से बकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के 'वन्देमातरम्' के विजयनाद और महामना मदनमोहन मालवीय के अनथक प्रयत्नों से देशवासियों को विशेषत:संस्कृत प्रेमियों को प्रेरणा मिली। समूचे देश में संस्कृत के प्रति राष्ट्रीय भावना जाग्रत हुई। भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्व संस्कृत को लोग समझने लगे अर्थात् 'संस्कृति: संस्कृताश्रिता'। इससे भारत की शिक्षा नीति में स्वाभविक रूप से परिवर्तन हुआ। इसका व्यापक प्रभाव सब राज्यों पर पड़ा। इस दिशा में प्रत्येक राज्य में शिक्षा विभाग की ओर से महत्वपूर्ण क़दम उठाए गए। फलत: विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में संस्कृत को समुचित स्थान मिला। इसमें कश्मीर भी पीछे नहीं रहा।

स्वयंसेवी संस्थानों का योगदान - संस्कृत के प्रचार व प्रसार में

विभिन्न संस्थाओं का योगदान उल्लेखीनीय रहा है। इन संस्थाओं में से सर्वप्रथम कश्मीरमण्डल के ब्राह्मणों की एकमात्र प्रतिनिधि सभा 'ब्राह्मण महामण्डल' ने धार्मिक साहित्य का प्रकाशन करके लोगों में सांस्कृतिक चेतना जाग्रत करने का प्रयास किया। इस समय यहां एक संस्कृत पुस्तकालय तथा वाचनालय भी है। वाचनालय में विभिन्न पत्रिकाओं के अतिरिक्त संस्कृतामृतम् भी आती है। मण्डल के मुख्य कार्यलय में संस्कृत पाण्डुलिपियों का एक अनुभाग भी है जहां अर्थाभाव के कारण पाण्डुलिपियां जीर्ण शीर्ण अवस्था में पड़ी हुई हैं। 'ब्राह्मणमण्डल' के महत्वपूर्न प्रकाशनों में से - हररात्रिनिर्णयविधि:, शिवरात्रपूजाविधि:, पूजासंकलन, मलमास निर्णय आदि है। इस संस्था से प्रतिवर्ष हिन्दी में पंचांग प्रकाशित होता था। जिसमें धार्मिक लेख आदि भी होते थे। कालान्तर मण्डल द्विभाषिक (हिन्दी तथा संस्कृत) 'प्रकाश' नामक पत्रिका प्रकाशित करने के लिए कृतसंकल्प था। गत तीन दशकों से मण्डल संस्कृत के प्रचार व प्रसार में संलग्न था। हाय! आतंकवाद के कारण मंडल की साहित्यिक गतिविधियां इस समय ठप्प गई।

शारदापीठ रिसर्च सेंटर - इसकी स्थापना डा. राधाकृष्ण काव ने 1954 ई० में 'कर्णनगर' मेंकी। इस केन्द्र से 'शारदापीठ रिसर्च सिरीज़' नामक त्रैमासिक पत्रिका अंग्रेजी-संस्कृत में निकलती थी। तथा इसके कई अंक भी प्रकाशित हुए। यह हिन्दी में प्रकाशित होती थी। 1983 ई० में इनके अकाल काल कवलित होने से इनकी साहित्यिक गतिविधियां बंद हो गई। इस पत्रिका के संपादक मंडल में डॉ० शिवनाथ शर्मा, प्रो० जगद्धर ज़ाडू तथा डॉ० बदरीनाथ थे।

शैवदर्शन मठिका - शैवदर्शन के आचार्य श्री स्वामी लक्ष्मण जी गुप्त गंगा में प्रति रविवार को शैवदर्शन के गूढ़ विषयों पर प्रवचन देते थे। स्थानीय तथा विदेशीय प्रौढ़ों को शैवदर्शन का ज्ञांन प्रदान करते थे। इनकी शिष्या 'प्रभादेवी' भी इस कार्य में इस समय प्रयत्नशील है।

श्रीराम शैवाश्रम - फतेह कदल में स्थित यह आश्रम अनेक वर्षो से

शैव दर्शन के प्रचार एवं प्रसार में संलग्न है। यहां प्रति रविवार-प्रौढ़ वर्ग को शैव दर्शन की प्ररम्भिक पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं। हाय! गत वर्ष श्रीधर जी की मृत्यु से इस संस्था को महान् क्षति हुई।

स्वामी विद्याधर आश्रम - यह आश्रम कर्णनगर में स्थित है। यहां पर प्रौंढ़ो को शैवदर्शन के विभिन्न विषयों से परिचित किया जाता है। अब इस आश्रम में कई कारणो से शिथिलता आ गइ है। इस समय यह आश्रम फरीदाबाद में स्थित है।

कश्मीर संस्कृत साहित्य सम्मेलन - इसकी स्थापना 1956 ई० में श्रीनगर के 'क्रालुख्वड' नामक मुहल्ले में हुइ। इसका मुख्य उद्देश्य कश्मीर में संस्कृत का प्रचार व प्रसार करना था। अत: इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सर्वप्रथम इसके संस्थापक सदस्यों ने 'भारतीय विद्याभवन' मुम्बई द्वारा स्वीकृत संस्कृत परीक्षाओं का संचालन किया था। नि:शुल्क से संस्कृत पढ़ाने के लिए सायंकालीन पाठशाला खोली गई थी जिस में श्री ओंकार नाथ शास्त्री (लंगू), डॉ० बरीनाथ कल्ला तथा मोतीलाल प्रमोद आदि संस्कृत पढ़ाते थे। 1988 ई० में प्राय: चार सौ विद्यार्थी सम्मेलन से भारतीय विद्याभवन की विभिन्न परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुए। इसमें गैर-हिन्दू छात्रायें भी संस्कृत पढ़ती थी। जिसमें तारिक अब्दुल्ला (एम.पी) की लड़की भी थी। इस लड़की को मैं संस्कृत पढ़ाता था।

साहित्यिक गोष्ठियों, संस्कृत कवि सम्मेलनों तथा कल्हण आदि संगोष्ठियों का आयोजन भी 'सम्मेलन' की गतिविधियों का प्रमुख अंग रहा था। कालान्तर 'अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन' दिल्ली की एक परियोजना के अन्तर्गत संस्कृत सम्मेलन के साक्रिय सदस्यों ने 'विश्व संस्कृत शताब्दी ग्रन्थ जम्मू व कश्मीर राज्यभाग:' नामक पुस्तक में कश्मीर का खंड़ लिखने में महत्वपूर्ण काम किया है। इन संस्कृत लेखकों में से-डॉ. गंगादत्त शास्त्री विनोद, डॉ. राधाकृष्ण काव, श्री दीनानाथ शास्त्री, श्री मोतीलाल पुष्कर श्री त्रिभुवननाथ शास्त्री, श्री बदरीनाथ कल्ला शास्त्री आदि के नाम उल्लेखनीय

हैं।यह शताब्दी ग्रन्थ 1966 ई० में अखिल भारतीय संस्कृत सम्मेलनदिल्ली से प्रकाशित हुआ। तथा भारत के द्वितीय प्रधानमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री को समर्पित किया गया। इस सम्मेलन ने यहाँ के युवावर्ग को संस्कृत में लिखने, बोलने तथा रचना की प्रेरणा दी। मिथिला निवासी श्री जयदेव तथा जर्मनी की प्रसिद्ध विदुषी बेट्टिना बावमर उल्लेखनीय है। वास्तव में आज की पीढ़ी जिस प्रकार संस्कृत-प्रचार तथा साहित्य सृजन के प्रति जागरूक तथा प्रयत्नशील है, उसका आदिस्त्रोत-कश्मीर संस्कृत साहित्य सम्मेलनं है। यह तथ्य निर्विवाद है।

विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में संस्कृत - आर्यसमाज के तत्त्वाधान में सचालित-हजूरीबाग मं स्थित: 'देवकी आर्यपुत्री पाठशाला' में उस समय संस्कृत विद्यार्थियों की संख्या उत्तरोत्तर बड़ रही थी। प्राईवेट विद्यालयों में यह आदर्श विद्यालय माना जाता है। इस विद्यालय में पं० नेत्रपाल शास्त्री संस्कृत पढ़ाते थे।

श्रीरूपादेवी शारदा पीठ - अन्तिम ड़ोगरा शासक महाराजा हरिसिंह के समय के महालेखपाल श्री परमानन्द ने अपनी सुपुत्री श्रीरूपादेवी के नाम पर 'श्रीरूपादेवी शारदापीठ' की स्थापना 1953 ई० में फतेहकदल में स्थित रघुनाथ मन्दिर के परिसर में की। इसमें पहले-पहल, प्राज्ञ, विशारद तथा शास्त्री तक 'जम्मू व कश्मीर विश्वविद्यालय' के पाठयक्रम के अनुसार छात्राओं को शिक्षा दी जाती थी। इस शारदा पीठ में इस लेख का लेखक भी प्राध्यापक के रूप मं काम करता था। इस भवन के निर्माण में श्री परमानन्द जी ने साठ हजार रूपये उस समय प्रदान किये थे। यह उनका जी.पी. फंड़ था।

इसके प्रथम प्रचार्य ऊधमपुर के सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री दयाराम शास्त्री थे। उनके दिशानिदेर्श में इस 'प्राच्य विद्या विभाग' ने काफी उन्नति की। परिणामस्वरूप पांच छात्रायें उस समय शास्त्री परीक्षा में उत्तीर्ण हुई। श्री परमानन्द के स्वर्गवास के बाद यह 'ओरियण्टल विभाग' सुव्यवस्थित रूप से चल न सका। बाद में छ: वर्षो के बाद यह विभाग विद्यालय में परिवर्तित हुआ। इस

विद्यालय की विशेषता यह है कि इसमें गैर हिन्दू विद्यार्थी भी संस्कृत पढ़ रहे है। इस समय विद्यार्थियों की संख्या प्राय: सौ तक है। शारदा पीठ गत कई वर्षो से 'भारतीय विद्याभवन' की संस्कृत परीक्षाओं का भी (मुम्बई) संचालन करता है। कश्मीरी पंडितों के विस्थापित होने के बाद भी वहां पं० परमानन्द जी सुपुत्री डॉ० बिमला दर तथा उसके पतिदेव डॉ० सुरेन्द्र दर इस समय विद्यालय की देखभाल करते हैं।

राजकीय संस्कृत पाठशाला - महाराजा रणवीर सिंह ने 1870 में इस पाठशाला की स्थापना श्रीनगर में की। इस पाठशाला में 'पंजाब विश्वविद्यालय' तथा 'जम्मू व कश्मीर विस्वविद्यालय' के पाठ्यक्रम के अनुसार शास्त्री परीक्षा तक संस्कृत नि:शुल्क रूप से पढ़ाई जाती थी। छः अध्यापक यहाँ संस्कृत पढ़ाते थे।कश्मीर में यही एक आदर्श संस्कृत पाठशाला थी जो परिस्थितिवश 1970 ई० में बन्द हो गई।

आज़ादी के बाद 1949 ई. में जम्मू व कश्मीर के मुख्यमंत्री श्री शैख मुहम्मद अब्दुल्ला ने इस पाठशाला को 'गवर्नमेन्ट ओरियण्टल कॉलेज' में परिवर्तित कर दिया इस कालेज में बदरीनाथ कल्ला शास्त्री पांच वर्षो तक अध्यक्ष पद को समलङ्कृत करते रहे। इस समय इस सायंकालीन कॉलेज में अरबी, फारसी तथा उर्दू में आनर्स परीक्षाओं तक विभिन्न भाषायें पढ़ाई जाती हैं।

दुर्भाग्य से राजकीय विद्यालयों में संस्कृत भाषा का ह्रास - गांव के विद्यालयों में संस्कृत अध्यापकों के अभाव में संस्कृत भाषा का ह्यस हो रहा है।यदि सरकार की ओर से इसकी समुचित व्यवस्था की जाये, संभवत: इस राष्ट्रीय समस्या का समाधान होगा।

उस समय कश्मीर में केवल चार महाविद्यालयों में संस्कृत पढ़ाई जाती थी। विमेन-कॉलेज मौलाना आजाद रोड़, विमेन कालेज, नवाकदल, गर्वमेन्ट कॉलेज अनन्तनाग, गवर्नमेन्ट कालेज सोपोर। हायर-सेकंडरी के कई एक स्कूलों में भी यह पढ़ाई जाती थी।

विश्वविद्यालय में संस्कृत - कश्मीर विश्वविद्यालय में स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग की स्थापना 1983 ई० में हुई। आज तक इस विभाग से प्राय:अनेक विद्यार्थी एम.ए. परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। अनेक छात्राओं को एम.फिल. की उपाधियां तथा एक अध्यापक को पी-एच डी. की उपाधि प्रदान की गई। इस विभाग की अध्यक्षताइस समय मेरी प्रियशिष्या प्रो० सत्यभामा राज़दान सुशोभित कर रही है। गत चार वर्षो से डॉ. बी.एन.कल्ला भी इस विभाग में संस्कृत पढ़ा रहे हैं।

मध्य एशियाई विभाग की स्थापना - जम्मू व कश्मीर राज्य के मुख्यमंत्री त्री शेख मुहम्मद अब्दुल्ला के प्रयत्नों से मध्य एशिया विभाग की स्थाापना 1979 ई० में 'जम्मू व कश्मीर विश्वविद्यालय' में हुई। इस समय इस विभाग में एक निदेशक है। सात अध्यापक मध्यएशिया के विभिन्न विषयों पर-कार्य कर रहे हैं तथा रिसर्च स्कालर भी प्राध्यापकों के दिशा-निर्देश में अनुसांधन के कार्य में लगे हुए हैं। इन अध्यापकों में से संस्कृत के प्राध्यापक – डॉ.बी. के कौल तथा डॉ. बी.एन.कल्ला थे। यहां पर यह कथन अंसगन न होगा कि सबसे पहले इस लेख के लेखक ने काश्मीरि की संस्कृत भाषायोस्तुलनात्मकमध्ययनम् (कश्मीरी भाषा तथा संस्कृत का तुलनात्मक अध्ययन) इस भाषाविज्ञान के विषय पर संस्कृत में शोध-प्रबन्ध लिखा। इस समय इसके प्रकाशन के लिए 'राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान' मानित विश्वावियालय के अधिकारियों से पत्र-व्यवहार चल रहा है। इसके शीघ्र ही प्रकाशित होने की संभावना है। यह हर्ष का विषय है कि 'इन्दिरा गांधी नेशनल सेंटर फार आर्ट्स' दिल्ली ने इस वर्ष 'वितस्तामाहात्म्य' छपाने के लिए बीड़ा उठाया। दिल्ली स्थित 'विश्वविद्यालय अनुमुदान आयोग' ने वितस्ता माहात्मय पर मेरी परियोजना स्वीकृत की।

'परमानन्द रिसर्च इनसटिच्यूट' इस संस्था के निदेशक प्रो० काशीनाथ दर थे। उनके दिशा निर्देश में उस समय संस्थान ने अनुसंधान की दिशा में महत्वपूर्ण काम किया। उनके निधन के बाद संस्थान को काफी धक्का लगा।

इस संस्थान के प्रकाशनों में से हैं। अमरेश्वर माहात्म्य (हिन्दी तथा अंग्रेजी अनुवाद सहित) राज्ञीप्रार्दुभाव: (अंग्रजी तथा हिन्दी में) तथा वटुक पूजा। एक अन्य परियोजना के अन्तर्गत श्रीवर की राजतरंरगिणी का अनुवाद प्रो. काशिनाथ दर ने अंग्रेजी में किया है जो दिल्ली से प्रकाशित हुआ है।

कश्मीर में पहली श्री संस्कृत पत्रिका - हेल्थ आफिसर डॉ. कुलभूषण के संस्कृत के प्रति अनन्य अनुराग के कारण यहाँ 1988 ई० में प्रोफेसर नित्यानन्द शास्त्री के संपादकत्व में त्रैमासिक 'श्रीपत्रिका' संस्कृत में प्रकाशित हुई। यह पत्रिका बारह वर्षों तक निरन्तर रूप से प्रकाशित होती रही। इसमें विशेषत:स्थानीय विद्वानों की शोधात्मक रचनायें प्रकाशित होती थीं। कश्मीर के सुप्रसिद्ध विद्वान प्रो. गोविन्दजी राजदान ने अकबर के बाद 'राजतरङ्गिणी' के अधाार पर कश्मीर का इतिवृत्त लिखना आरम्भ किया था। इसमें उनकी रचनाओं के कतिपय अंश 'श्रीपत्रिका' में प्रकाशित हुए हैं। डॉ. कुलभूषण के देहावसान के बाद इसका प्रकाशन बन्द हुआ। कालान्तर 1986 ई० में 'श्री लाल बहादुर शास्त्री संस्कृत विद्यापीठ' के कुलपति डॉ. मण्डनमिश्र के कर्मठ व्यक्तित्व तथा अदम्य साहस के कारण कश्मीर में 'श्रीरणवीर केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ' जम्मू की उपशाखा श्रीनगर में भी स्थापित हुई। इसका केन्द्र उस समय जवाहर नगर में स्थित था। उस समय परियोजना के निर्देशक डॉ० बलजिन्नाथ के दिशा निर्देश में शैवर्दशन का कोश भी प्रकाशित हुआ। इसमें दो स्थानीय संस्कृत विद्वानों प्रों नीलकण्ठ गुर्टू तथा श्री दीनानाथ शास्त्री (यक्ष) की नियुक्ति हुई थी। संस्कृत साहित्य को विभिन्न रूपो में समृद्ध बनाने में जिन कश्मीरी विद्वानों ने काम किया है उनकी नामावली इस प्रकार हे:-

1. प्रो लक्ष्मीधर कल्ला	2. श्री नाथराम कल्ला शास्त्री
3. प्रो. श्रीकण्ठ कौल	4. डॉ.श्रीनाथ तिक्कू
5. श्री जानकीनाथ कमल (कौल)	6. श्री प्रेमनाथ हण्डू
7. डॉ. बलजिन्नाथ पण्डित	8. श्री गोविन्द भट्ट शास्त्री

9. ज्योतिषी केशव भट्ट शास्त्री
10. श्री दुर्गाप्रसाद काचरू
11. प्रो. जियालाल कौल
12. श्री जगन्नाथ रिवू शास्त्री
13. श्री हर भट्ट शास्त्री
14. स्वामी माधवानद सरस्वती
15. श्री त्रिलोकीनाथ भट्ट शास्त्री
16. श्री लक्ष्मीनरायण सप्रू
17. श्री जगन्नाथ ज़ाडू शास्त्री
18. श्री गोपीनाथ रैणा (ज़रू) शास्त्री
19. श्री पीताम्बर हंडू शास्त्री।

संस्कृत के प्रचार-प्रसार में जिन महानुभावों ने काम किया जो इस समय निष्काम रूप से काम करते है, उनके नाम इस प्रकार है:-

1. ज्योतिषी प्रेमनाथ शास्त्री
2. श्री मुकुन्दराम शास्त्री
3. श्री जगन्नाथ सिबू
4. नित्यानन्द साबन्यू शास्त्री
5. श्री मोतीलाल ब्रह्मचारी
6. श्री नेत्रपाल शास्त्री
7. श्री काशीनाथ रिवू शास्त्री
8. प्रो मखनलाल कोकिलू
9. डॉ० बी० एन० कल्ला

इन उदहारणों से स्पष्ट होता है कि कश्मीर में संस्कृत का भविष्य समुज्ज लरहा है। नि:संदेह, यह भाषा सर्वदा इन्द्रधनुष की तरह पाठकों को अपने स्वाभाविक रंगों से आकृष्ट करती रहेगी। यद्यपि आजकल कश्मीर में प्राचीन काल की तरह संस्कृत बोली नहीं जाती हे तथपि यह तत्सम, तदभव, प्राकृत तथा अपभ्रंश के विभिन्न रूपों में लोगों द्वारा प्रतिदिन प्रयुक्त होती है जैसे:-

संस्कृत वाक्य	कश्मीरी वाक्य	हिन्दी अनुवाद
दूरं मा गच्छ।	दूर मॅ गछ़।	दूर मत जाओं।
चिरं मा कुरु।	च़ेर मॅ कर।	देर मत कर।
तप्तं भक्तं मा खादय।	तोत बतु मॅ ख्य।	गर्म भात मत खाओं।
एतु एतु।	इत-इत।	आजाओ।
		आजाओ।
निर्गछ।	नेर गछ़।	निकल जा। आदि

इन पुष्ट प्रमाणौं के आधार पर हमारा यह कथन तर्कसंगत हे तथा युक्तियुक्त है कि संस्कृत कश्मीर में जीवित है मृतप्राय नहीं है। यह भाषा तत्सम तथा तद्भव रूपों में इस समय भी बोली जाती है।



संदर्भ

1. कल्हण कृत – राजतरंगिणी-डा० स्टीन द्वारा संपादित।
2. कीथ कृत - संस्कृत साहित्य का इतिहास: अनुवादक-डॉ.मंगलदेव शास्त्री
3. विश्वसंस्कृत शताब्दी ग्रन्थ-जम्मू व कश्मीर राज्य भाग: डॉ. मण्डन मिश्र संपादित ग्रन्थ। इस ग्रंथ में बदरीनाथ कल्ला शास्त्री ने अस्य शतकस्य संस्कृत विद्वांस: इस सदि के 1866 से 1966 के संस्कृत विद्वानों का प्रमाणिक जीवन परिचय आदि लिखा है।
4. लोकप्रकाश - प्रो.जगद्धर जाडू द्वारा संपादित
5. Kashmir Then and now - G.L. Kaul
6. A History of Kashmir - P.N. Kaul, Bamzai
7. काश्मीरीकी संस्कृत भाषायोस्तुलनात्मकमध्ययनम् (कश्मीरी भाषा तथा संस्कृत का तुलनात्मक अध्ययन) डॉ बी.एन.कल्ला (लेखक का शोध प्रबंन्ध)
8. काश्मीर क्रन्दनम् नाम लघु काव्य भी कल्ला जी ने लिखा। कश्मीर सौरभम् सबसे पहले संस्कृत में 'श्रद्धार्चन' में प्रकाशित हुआ था।
9. जोनराजकृत-राजतरंगिणी-श्री कण्ठ कौल द्वारा संपादित।
10. कश्मीरे संस्कृत शिला!लेखा:- बदरीनाथ कल्ला शास्त्री। (Published in the proceedings of international Sanskrit conference 1972, Edited by Dr. V Raghvan)
11. श्रद्धार्चन: संशोधक - डॉ. बदरीनाथ कल्ला। यह शैवाचार्य ईश्वर स्वरूप स्वामी लक्ष्मण जी महाराज की पुण्यस्मृति में चार भाषाओं में निकला गया - अभिनन्दन ग्रन्थ है।

शारदा पीठ कश्मीर का संस्कृत परिप्रेक्ष्य पच्चास वर्ष

कश्मीर केवल प्राकृतिक संपदा के लिए ही नहीं अपितु साहित्यिक संपदा के लिए भी विश्वविख्यात है। प्राकृतिक संपदा तथा साहित्यिक संपदा के समन्वय ने इस उपत्यका के गौरव को आजतक अक्षुण्ण रखा है। यह साहित्यिक संपदा इस शस्यश्यामला, उर्वरा भूमि की देन है जिसके फलस्वरूप यहां के आचार्यों - वसुगुप्त, सोमानन्द, उत्पलदेव तथा अभिनवगुप्ताचार्य आदि ने समय समय पर ऐसे आध्यात्म और भारतीय चिन्तन को जन्म दिया जो सब के लिए अनुकरणीय ही नहीं बल्कि ग्राह्य भी है। इस आध्यात्मिकता तथा दार्शनिकता का केन्द्र शारदापीठ, शारदामठ अथवा शारदादेश था। जो हज़ारों वर्षों से जिज्ञासुओं को इस ज्ञान से आप्लावित करता था। इस रूप में यहां के विद्यामठ तथा विद्या केन्द्र सबके लिए आकर्षण के केन्द्र थे। इन केन्द्रों की कीर्ति सारे एशियाद्वीप में फैली हुई थी। यही कारण है कि भारत के अतिरिक्त विदेशों से अर्थात् मध्य एशिया तथा चीन से महान विभूतियां आकर यहां के धुरन्धर आचार्यों से ज्ञानगंगा का अमृत पान करती रहीं। इन विदेशी महान् विभूतियों में कुमारजीय तथा ह्यूनसांग के नाम उललेखनीय हैं। यहीं प्रतिष्ठित पीठ विद्वानों की योग्यता का पारखी था। इस प्रकार कश्मीर प्राचीन काल में भारतीय संस्कृति तथा संस्कृत का प्रधान केन्द्र माना जाता था। यहां के विद्यामठों अथवा विद्या केन्द्रों का वर्णन महाकवि कल्हण ने अपनी रचना 'राजतरंङ्गिणी' में इस प्रकार किया है :-

''विद्यावेश्मानि तुङ्गानि कुंकुमं सहिमं पयः।
द्राक्षेति यत्र सामान्यमस्ति त्रिदिव दुर्लभम्।।''

यदि संस्कृत वाङ्मय का गम्भीर रूप से अध्ययन किया जाये - तो हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि संस्कृत तथा कश्मीर का आपसी में सम्बन्ध

चोली दामन का सा है। इस भाषा ने जन-जीवन को प्रभावित ही नहीं किया है - अपितु जन-मानस पर अमिट छाप भी डाली है। वस्तुत: संस्कृत की प्राचीन गरिमा ने ही कश्मीर की कीर्ति-पताका को विश्व में फहराया है। कश्मीर में वैदिक संस्कृति सभ्यता के विभन्न स्रोतों के उदाहरण हमें हज़ारों वर्षों के बाद अब भी विभिन्न रूपों में यत्र-तत्र दिखाई देते हैं। पर्वतों, नदियों, सरोवरों, गांवों तथा जनपदों की नामावली इस तथ्य को स्वत: सिद्ध करती है। विभिन्न कालों से गुज़रती हुई संस्कृत भाषा कालजयी बनी रही, यह इसकी लोकप्रियता महानता तथा पूर्णता का ज्वलन्त उदाहरण है।

पाठकों की सुविधा के लिए पहले इसका त्रिकालत्मक - वर्गीकरण द्रष्टव्य है :-

(1) आदिकाल (2) मध्यकाल (3) आधुनिक काल। संस्कृत साहित्य का आदिकाल प्रथम शती से चौदहवीं शती तक माना जाता है। इस युग में कश्मीर में संस्कृत के प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति हुई। प्राय: आठवीं शती से बारहवीं शती तक विविध विषयों में निष्णात् कश्मीर के मूर्धन्य आचार्यों - आनन्दवर्धन, मम्मटाचार्य तथा महिमभट्ट आदि आलंकारिकों, सोमानन्द, उत्पलदेव तथा अभिनवगुप्त आदि दार्शनिकों, कल्हण तथा बिल्हण जैसे इतिहासकारों, सोमदेव तथा क्षेमेन्द्र आदि गद्यकारों ने संस्कृत साहित्य की विभिन्न विधाओं पर अमर रचनायें लिखी। यह युग वस्तुत: कश्मीर का स्वर्ण-युग माना जाता है, क्योंकि इस युग ने मानव चिन्तन को एक नई दिशा तथा एक नया दर्शन दिया, जो संसार में 'प्रत्यभिज्ञा दर्शन' के नाम से प्रसिद्ध है। इस युग में लोगों की अभिव्यक्ति का माध्यम संस्कृत था जिसका उल्लेख कल्हण के समकालीन बिल्हण ने अपने महाकाव्य - 'विक्रमांक देवचरितम्' में इस प्रकार किया है :-

''यत्र स्त्रीणां किमप्यपरं जन्मभाषावदेव।
प्रत्यावासं विलसति वच: संस्कृतं प्राकृतञ्च।।''

अर्थात् :- 'जहां स्त्रियां घर घर में - मातृभाषा की तरह संस्कृत तथा प्राकृत

बोलती है'। नि:सन्देह यह काल संस्कृत वाङ्मय के पूर्ण विकास का युग था।

संस्कृत साहित्य का मध्यकाल चौदहवीं शती से प्रारम्भ होता है। हिन्दुओं का शासनकाल समाप्त होने के बाद प्राय: मुसलमानों का युग शाहमीरी शासनकाल - 1339 ई० से माना जाता है। उसके बाद चक शासनकाल (1554-1586 ई०) मुगल शासनकाल, अफगान शासनकाल, सिक्ख शासनकाल (1819-1845 ई०), तथा डोगरा शासनकाल (1846-1947 ई०)। इन विभिन्न कालों में अर्थात् प्राय: पांच सौ वर्षों में संस्कृत के स्थान पर फारसी भाषा ही राजभाषा के रूप में प्रचलित रही। विदेशी प्रभाव के कारण सोलहवीं शती तक इस भाषा का प्रयोग मिश्रित भाषा के रूप में हुआ। इसका उदाहरण हमें क्षेमेन्द्र रचित 'लोकप्रकाश' में स्पष्टरूप से मिलता है :-

'संवत्सरेऽत्र दिने श्री प्रेनापित कदले रैज़्ज़ि अमुकेन रैजि् अमुक पुत्रेण हस्ते सति बंगल चरिका दत्ता। यथा अत्र आगरान्तरे खुज्या अमुकं: खुज्या अमुकं प्रति लिखिति खुज्या अमुके सलामा बन्दगी ददनीयमिति'

यह मिश्रितभाषा - (अरबी तथा फारसी युक्त भाषा) राज्यकार्यों तथा न्यायालयों में भी प्रचलित थी। विदेशी राज्य हज़ारों वर्षों से हमारे हृदय पर अंकित भारतीय संस्कारों को मिटाने में सक्षम न हुआ। फलत: जनता ने वसीयतनामों, शिलालेखों तथा इष्टामों में संस्कृत का प्रयोग किया। सबसे पहले संत हज़रत मखदूम साहिब (16 वीं शती) का वसीयतनामा हमें दोनों लिपियों तथा दोनों भाषाओं - संस्कृत तथा फारसी में लिखा हुआ एक शिलालेख के रूप में मिलता है जो इस समय 'जम्मू व कश्मीर के संग्रहालय' में सुरक्षित है। यहां पर यह कहना असंगत न होगा कि जैन-उलाब्दीन/बडशाह के राज्यकाल का एक शिलालेख 'ख्वनमुह' (संस्कृत-खौनमुष) गांव के पास 'भुवनेश्वर' नामक स्थान में उपलब्ध हुआ है। यह शिलालेख तत्कालीन समाज का संस्कृत के प्रति अनुराग को प्रकट करता है। इसी तरह हारी पर्वत की अधित्यका में बाहुउद्दीन साहिब के अहाते में यवनों के स्मारकों पर संस्कृत में अनेक शिलालेख पाये जाते हैं। इसका उल्लेख डॉ० स्टीन ने भी 'राजतरङ्गिणी' के

अंग्रेज़ी अनुवाद में किया है। उक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि संस्कृत भाषा मध्यकाल में किसी न किसी रूप में प्रचलित थी।

इस संदर्भ में यह कहना भी संगत है कि यवनशासकों में केवल सुरत्राण (सुल्तान) जैनउलाब्दीन (1423-1475 ई०) एक ऐसा उदारचित्त, सहनशील, दूरदर्शी तथा संस्कृता नुरागी शासक था जिसके संस्कृत साहित्य की उन्नति में महत्वपूर्ण कार्य को भुलाया नहीं जा सकता है। इस सुल्तान के धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण के कारण संस्कृत का पाठशालाओं में पुन: पठन-पाठन आरंभ हुआ। जोनराज, श्रीवर, नोत्थसोम, योधभट्ट, अवतार भट्ट शिर्य भट्ट आदि अनेक संस्कृत विद्वान उसकी साहित्यिक परिषद् को समलंकृत करते थे। इसी युग में कल्हण पंडित के बाद जोनराज, श्रीवर, प्राज्यभट्ट तथा शुक ने 'राजतरंगिणी' के आधार पर संस्कृत में विभन्न राजतरंगिणीयों की रचनायें की। जोनराज ने द्वितीय 'राजतरंगिणी' भारवि के 'किराताजर्नीय' मंख के 'श्रीकण्ठचरित्' तथा जयानक के 'पृथ्वीराज विजय' पर उसने तीसरी 'राजतरंगिणी' लिखी तथा फारसी के मूर्धन्य कवि मुल्लाजामि की कृति - 'यूसुफज़ुलेखाँ' के आधार पर संस्कृत काव्य 'कथाकौतुक' लिखा। इस तरह ज़ैन उलाब्दीन बडशाह के शासनकाल में संस्कृति की उन्नति का परिचय मिलता है।

इन युगों में यहां के साहित्यकारों ने प्राय: संस्कृत से नि:सृत कश्मीरी भाषा को ही अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाकर - इसकी विभिन्न विधाओं को संस्कृत के आधार पर जन्म दिया। इसमें लल्लद्यद के 'वाख' (संस्कृत वाक्), नुन्द ऋषि (सं० श्लोक) शितिकंठ के पद। अरणीमाल के 'वचन', बहुत ही लोकप्रिय हैं। कुछ यवन-सुल्तानों के दृष्टिकोण के कारण वैदिक युग से बहती हुई संस्कृत गंगा का प्रवाह कुछ समय तक रुक गया। लेकिन यहां के संस्कृत प्रेमियों ने इस ज्ञान गंगा को किसी प्रकार शुष्क होने न दिया। इसका स्रोत हमेशा सब को अपनी ओर आकृष्ट करता रहा। इस युग में यहां के तीर्थों की पवित्रता को सुरक्षित रखने तथा भारतीय संस्कृति के मूलभूत तत्वों की

जानकारी के लिए कश्मीर के तीर्थवासी पठित ब्राह्मणों ने 'माहात्म्य' लिखे जिनमें 'अमरेश्वर माहात्म्य', 'प्रयागमाहात्म्य', 'शारदा माहात्म्य' तथा 'वितस्ता माहात्म्य' आदि महत्वपूर्ण है। मुगल शासन काल में जगद्धर भट्ट ने 'स्तुति कुसुमांजलि' की रचना की। डोगरा शासन काल में भारतीय संस्कृति के प्रतीक महाराजा गुलाब सिंह के सुपुत्र महाराजा रणवीर सिंह (1830-1885) ने संस्कृत भाषा तथा साहित्य के बहुमुखी विकास के लिए जम्मू में 'रघुनाथ संस्कृत महाविद्यालय' तथा कश्मीर में 'राजकीय संस्कृत पाठशाला' की स्थापना 1870 ई० में की जहां विद्यार्थियों को प्राज्ञ से शास्त्री परीक्षा तक नि:शुल्क संस्कृत पढ़ाई जाती थी तथा निर्धन विद्यार्थियों को छात्रवत्ति भी दी जाती थी। साथ ही 'श्री रणवीर संस्कृत पुस्तकालय' की भी स्थापना हुई जो कालान्तर 1902 ई० में 'जम्मू व कश्मीर रिसर्च विभाग' में परिवर्तित हुआ। धीरे-धीरे वह विभाग विकसित हुआ। संस्कृत पांडुलिपियों का संग्रह करना इस विभाग के प्रमुख कार्यों में था। इस समय इस 'शोध विभाग' के साथ हज़ारों पांडुलिपियां शारदा तथा देवनागरी लिपि में सुरक्षित है। इस विभाग की स्थापना के बाद सैंकड़ों की संख्या में शैवदर्शन आदि विषयों पर पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। इन ग्रंथों के संशोधन तथा सम्पादन में श्री जे०सी० चटर्जी, पं० मुकुन्दराम महामहोपाध्याय, पं० मधुसूदन कौल शास्त्री, प्रो० जमद्धर ज़ाडू, पं० हरभट्ट शास्त्री तथा पं० शिवनाथ शर्मा आदि के नाम स्मरणीय है।

महाराजा प्रताप सिहं के शासनकाल में संस्कृत में संस्कृत के प्रकांड पंड़ित ईश्वर कौल ने पाणिनीय सूत्रों के आधार पर संस्कृत में 'कश्मीरी शब्दामृतम्' नामक पहला कश्मीरी व्याकरण लिखा जिसे सर जार्ज इब्राहिम ग्रियर्सन ने सम्पादित करके 'एशियाटिक सोसाइटी - कलकत्ता' से प्रकाशित किया। इसके अतिरिक्त ईश्वर कौल ने 'कश्मीरी संस्कृत शब्द कोश' लिखा था जिसका उल्लेख ग्रियर्सन ने 'कश्मीरी डिक्शनरी' के प्रथम खंड की भूमिका में किया है। इसकी तीसरी कृति, 'कश्मीरी दश भाषोदय' नामक संस्कृत - क़ोश की पांडुलिपि दो खंडों में विभक्त इस समय रिसर्च विभाग में

सुरक्षित है। यह कोश संस्कृत पद्यों में लिखा गया है। इसमें कश्मीरी शब्दों के पर्याय दस भाषाओं में दिये गये हैं जैसे - अरबी, फारसी, अंग्रेज़ी, लामी, बलती आदि।

इस संदर्भ में महामहोपाध्याय पं० मुकुन्दराम शास्त्री का योगदान भी सराहनीय है। सर जार्ज ग्रियर्सन द्वारा संपादित 'कश्मीरी डिक्शनरी' के चार खंडों में महामहोणाध्याय मुकुन्दराम ने प्राय: पचीस हज़ार कश्मीरी शब्दों तथा मुहावरों का अनुवाद संस्कृत में किया है और पं० कृष्ण राजानक (राज़दन) के 'शिवपरिणय' के कश्मीरी पद्यो की छाया (Gloss) संस्कृतमें लिखी है। ये दोनों पुस्तकें 'एशियाटिक सोसाइटी' से प्रकाशित हुई हैं।

आधुनिक काल - यह काल 1947 ई० से वर्तमान तक माना जाता है। इस काल में यहां की स्वयं सेवी संस्थाओं, सायंकालीन पाठशालाओं, विद्यालयों तथा महाविद्यालयों ने संस्कृत के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

स्वातंत्र्योतर संस्कृत का विकास - स्वतंत्रता के बाद संस्कृत के महत्व को तथा उस की उपादेयता को सब देशवासियों ने समझा। भावात्मक एकता तथा राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ बनाने के लिए देश के महान नेताओं तथा राष्ट्रभक्तों ने संस्कृत की राष्ट्भाषा बनाने पर बल दिया। आज़ादी के अंदोलन से बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के 'वन्दे मातरम्' के विजयनाद और महामना मदनमोहन मालवीय के त्याग व अनथक प्रयत्नोंसे से देश वासियों को विशेषत: संस्कृत प्रेमियों को प्रेरणा मिली। समूचे देश में संस्कृत के प्रति राष्ट्रीय चेतना जाग्रत हुई। भारोपीय परिवार की मूलभाषा संस्कृत को लोग समझने लगे। इससे भारत की शिक्षा नीति में स्वाभाविक रूप से परिवर्तन हुआ। इसका व्यापक प्रभाव सब राज्यों पर पड़ा। इस दिशा में प्रत्येक राज्य में शिक्षा विभाग की ओर से महत्त्पूर्ण क़दम उठाये गये। फलत: विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में संस्कृत को समुचित स्थान मिला। इस दिशा में कश्मीर भी पीछे नहीं रहा।

स्वयंसेवी संस्थाओं का योगदान - संस्कृत के प्रचार व प्रसार में विभिन्न संस्थाओं का योगदान उल्लेखनीय रहा है। इन संस्थाओं में से सर्वप्रथम कश्मीर मण्डल के ब्राह्मणों की एकमात्र प्रतिनिधि सभा 'ब्राह्मण महामंडल' ने धार्मिक साहित्य का प्रकाशन करके लोगों में सांस्कृतिक चेतना जाग्रत करने का प्रयास किया। यहां के संस्कृत पुस्तकालय तथा वाचनालय में विभिन्न पत्रिकाओं के अतिरिक्त दिल्ली की सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'संस्कृतामृतम्' भी आती थी। मंडल के मुख्य कार्यालय में संस्कृत पांडुलिपियों का एक अनुभाग था जिसमें शारदा लिपि में प्राय: दो सौ पांडुलिपियां थीं। मंडल के महत्वपूर्ण प्रकाशनों में से - हररात्रिनिर्णयविधि:, शिवरात्रि पूजाविधि:, पूजा संकलन, मलमास निर्णय आदि हैं। इस संस्था से प्रतिवर्ष हिन्दी में 'पंचाग' प्रकाशित होता है। जिस में धार्मिक लेख आदि भी होते हैं। कश्मीर में विषम परिस्थितियों के कारण इसका कार्यालय गत दस वर्षों से जम्मू में स्थापित हुआ है। गत पांच दशकों से कश्मीर में 'मंडल' संस्कृत के प्रचार व प्रसार में संलग्न था।

शारदा पीठ रिसर्च सेंटर - इसकी स्थापना कश्मीर के सुप्रसिद्ध संस्कृत विद्वान डॉ० राधकृष्ण काव ने 1954 ई० में कर्णनगर में की। इस केन्द्र में समय-समय पर संगोष्ठीयों का आयोजन होता था जिस में स्थानीय विद्वानों के अतिरिक्त विदेशी विद्वान भी सम्मिलित होते थे। इस केन्द्र से 'शारदा पीठ रिसर्च' नाम त्रैमासिक पत्रिका दो भाषाओं - अंग्रेज़ी तथा संस्कृत में प्रकाशित होती थी। संस्कृत के सम्पादक मण्डल में - प्रो० जगद्धर जी ज़ाडू, डॉ० शिवनाथ शर्मा तथा डॉ० बदरीनाथ कल्ला थे। 1983 ई० में इनके अकाल काल कवलित होने से पत्रिका के समेत इसकी साहित्यिक गतिविधियां हमेशा के लिए बन्द हो गई। इनकी अनेक रचनाएं शैवदर्शन पर प्रकाशित हुई हैं। उनमें Doctrine of Recognition बहुत ही प्रसिद्ध है। इनके निजी पुस्तकालय में 'काश्यपीय कृषिसूक्ति:' नामक एक बृहदाकार पांडुलिपि थी।

शैव दर्शन मठिका - शैवदर्शन के आचार्य स्वामी लक्ष्मण जी सुरेश्वरी पर्वत की अधित्यका में - स्थित गुप्त गंगा में प्रति रविवार को शैव दर्शन के गूढ़ विषयो पर प्रवचन देते थे। स्थानीय तथा विदेशी प्रौढ़ों को शैवदर्शन के अनेक ग्रन्थ वहां पढ़ाते थे। भारत के प्रतिष्ठित विद्वान श्री ठाकुर जयदेव सिंह ने 'प्रत्यभिज्ञाहृदयम्' का सम्यक् अवलोकन स्वामी जी के संरक्षण में किया। कई वर्षों में उन्होंने शैवदर्शन के ग्रन्थ पढ़े और उनका अनुवाद अंग्रेज़ी भाषा में किया। उनका पहला गंथ 'प्रत्यभिज्ञा हृदयम्' 1973 ई० में छपकर स्वामी जी को उपहार के रूप में भेंट किया गया। मिथिला निवासी आचार्य श्री रामेश्वर झा स्वामी जी के आध्यात्मिक ज्ञान से बहुत प्रभाविर्त हुए। फलत: झा महोदय ने स्वामी जी को अपना गुरु मानकर स्वामी जी की गुरुस्तुति लिखी। विदेशी बुद्धि जीवियों में से अंग्रेज़ीका के श्री जॉन ने अनेक वर्षों तक इनके आश्रम में रहकर इनसे शैव दर्शन के अनेक ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया। इनकी शिष्या प्रभादेवी भी इस कार्य में प्रयत्नशील है।

स्वामी जी का संपदान तथा अनुवाद कार्य :-

1. आचार्य अभिनवगुप्त की गीता का संपादन (1933)
2. शिवस्तोत्रावली का हिन्दी अनुवाद (1964)
3. क्रमनय प्रदीपिका का हिन्दी अनुवाद
4. शिवस्तोत्रावली का अंग्रेज़ी अनुवाद।
5. साम्बपञ्चाशिका का हिन्दी अनुवाद आदि।

श्रीराम शैवाश्रम - श्रीनगर के फतेहकदल में स्थित यह आश्रम गत तीन दशकों से शैवदर्शन के प्रचार व प्रसार में संलग्न था। यहां प्रति रविवार के दिन प्रोढ़ वर्ग को शैवदर्शन की शिक्षा दी जाती थी। 1990 ई० में श्रीधर जी की मृत्यु से इस आश्रम को काफी क्षति हुई।

स्वामी विद्याधर आश्रम - यह आश्रम श्रीनगर के कर्ण नगर में स्थित था। यहां पर प्रौढ़ों को शैवदर्शन के विभन्न विषयों से परिचित कराया जाता था। इस आश्रम के संचालक डॉ० श्री कण्ठ कौल थे।

कश्मीर संस्कृत साहित्य सम्मेलन - इसकी स्थापन 1956 ई० में श्रीनगर के 'क्रालख्वड़' नामक मोहल्ले में हुई। इस सम्मेलन के मुख्य उद्देश्यों में से संस्कृत प्रचारको द्वारा इस अमर वाणी का प्रसार सारे कश्मीर मंडल में करने के अतिरिक्त खोई हुई प्रतिष्ठा को संस्कृत के माध्यम से पुनर्जीवित करना था। अत: इस परम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सर्वप्रथम इसके संस्थापक सदस्यों ने 'भारतीय विद्याभवन' मुंबई द्वारा स्वीकृत संस्कृत परीक्षाओं का संचालन किया। नि:शुल्क रूप से संस्कृत पढ़ाने के लिए 'सायंकालीन पाठशाला' सम्मेलन के कार्यक्रम में खोली गई। इसमें श्री त्रिभुवननाथ शास्त्री तथा बदरीनाथ शास्त्री आदि संस्कृत पढ़ाते थे। कुछ वर्षों में चार· सौ विद्यार्थी सम्मेलन से 'भारतीय विद्याभवन' की प्रारम्भिक परीक्षाओं में उत्तीणं हुए। यहां यह ध्पातव्य है कि इस पाठशाला में गैर हिन्दू छात्रायें भी संस्कृत पढ़ती थीं। उनके पढ़ने के लिए विशेष रूप से व्यवस्था की गई थी।

साहित्यिक गोष्ठियों, संस्कृत कविसम्मेलनों तथा कल्हण आदि संगोष्ठियों का आयोजन भी सम्मेलन की गतिविधियों का प्रमुख अंग रहा था। कालान्तर में 'अखिल भारतीय संस्कृत सम्मेलन' की परियोजना के अर्तगत संस्कृत सम्मेलन के कर्मठ सदस्यों ने 'विश्व संस्कृत शताब्दी ग्रन्थ: जम्मू व कश्मीर राज्यभाग:' नामक पुस्तक में कश्मीर का भाग लिखने में महत्वपूर्ण योग दान दिया है। डॉ० बदरीनाथ कल्ला ने इस शताब्दी ग्रन्थ में 1886 ई० से 1986 ई० तक के संस्कृत विद्वानों का प्रमाणिक रूप से जीवन परिचय देकर उनकी रचनाओं का भी उललेख किया है। इस कड़ी में 1947 ई० के बाद आने वाले संस्कृत विद्वानों तथा लेखकों के व्यक्तित्व तथा कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है। प्रो० जगद्धर ज़ाडू, प्रो० गोविन्द राज़दान, पं० हरभट्ट शास्त्री, पं० नाथराम कल्ला शास्त्री, पं० बलजिनाथ शास्त्री, पं० गोविन्द भट्ट शास्त्री, पं० केशव भट्ट ज्योतिशी, प्रो० पृथ्वीनाथ 'पुष्प', डॉ० राधाकृष्ण काव, पं० मधुसूदन कौल शास्त्री, प्रो० श्री कण्ठ कौल आदि। यह शताब्दी ग्रन्थ 1966 ई० में प्रकाशित हुआ तथा भारत के द्वितीय प्रधानमंत्री श्री लाल

बहादुर शास्त्री को समर्पित किया गया। नि:सन्देह, इस सम्मेलन ने यहां के युवावर्ग को संस्कृत में लिखने बोलने तथा रचना करने की प्रेरणा दी। वास्तव में आज की पीढ़ी जिस प्रकार संस्कृत-प्रचार तथा साहित्य सृजन के प्रति जागरुक तथा प्रयत्नशील है, उसका आदि स्त्रोत - 'कश्मीर संस्कृत साहित्य' सम्मेलन है।

विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में संस्कृत - आर्य समाज के तत्वाधान में संचालित हज़ूरी बाग में स्थित 'देवकी आर्यपुत्री पाठशाला' प्राइवेट विद्यालयों में एक आदर्श विद्यालय माना जाता था। वहां संस्कृत विद्यार्थियों की संख्या अन्य विद्यालयों में अपेक्षाकृत अधिक थी।

श्री रूपा देवी शारदा पीठ - अन्तिम डोगरा शासक महाराजा हरिसिंह के समय के महालेख पाल (Accountant General) श्री परमानन्द 'दरिंद' ने अपनी सुपुत्री श्री रूपादेवी के नाम पर 'श्री रूपा देवी शारदा पीठ' की स्थापना 1953 ई० में फतेह कदल में स्थित रघुनाथ मन्दिर के प्राङ्गण में की। इस में पहले-पहले प्राज्ञ विशारद तथा शास्त्री तक 'जम्मू व कश्मीर विश्वविद्यालय' के पाठ्यक्रम के अनुसार छात्राओं को शिक्षा दी जाती थी। इसके प्रथम प्राचार्य उधमपुर के मूर्धन्य विद्वान श्री दयाराम शास्त्री थे। इस प्राच्य विद्या विभाग में जिन दो प्राध्यापकों की नियुक्ति की गई थी वे थे श्री जगन्नाथ ब्रारू शास्त्री और बदरीनाथ कल्ला शास्त्री। प्राचार्य महोदय के दिशानिर्देश में इस 'विभाग ने काफी उन्नति की। परिणामस्वरूप पांच छात्रायें उस समय शास्त्री परीक्षा में उत्तीर्ण हुई। श्री परमानन्द के निधन के बाद यह 'ओरियंटल विभाग सुव्यस्थित रूप से चल न सका। बाद में छ: वर्षों के बाद यह विभाग विद्यालय में परिवर्तित हुआ। इस विद्यालय की विशेषता यह थी कि इसमें मुस्लिम विद्यार्थी संस्कृत पढ़ते रहते थे। इस 'शारदापीठ' ने कई वर्षों तक 'भारतीय विद्या भवन' की संस्कृत परीक्षाओं का संचालन भी किया था।

परमानन्द रिसर्च इन्स्टीच्यूट - यह अनुसंधान संस्थान 1974 ई०

से संस्कृत के विभिन्न विषयों पर शोध कार्य कर रहा था। इसके प्रथम निदेशक प्रो० काशीनाथ दर थे। उनके समय संस्थान ने अनुसांधान की दिशा में महत्वपूर्ण काम किया। इस संस्थान के प्रकाशनों में से 'अमरेश्वर माहात्म्य' (हिन्दी तथा अंग्रेज़ी अनुवाद सहित) राज्ञी प्रादुर्भाव (अंग्रेज़ी तथा हिन्दी में) तथा वटुकपूज़ा। भारत सरकार की एक परियोजना के अन्तर्गत श्रीवर की 'राजतरङ्गिणी' का अनुवाद प्रो० काशीनाथ दर ने अंग्रेज़ी में किया। यह प्रकाशित भी हुआ है।

राजकीय संस्कृत पाठशाला - महाराजा रणवीर सिंह ने 1870 ई० में इस पाठशाला की स्थापना श्रीनगर के 'बागि दिलावर खां' के परिसर में की। इस पाठशाला में पहले पंजाब विश्वविद्यालय, बाद में जम्मू व कश्मीर विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम के अनुसार शास्त्री परीक्षा तक नि:शुल्क रूप से संस्कृत पढ़ाई जाती थी। विद्यार्थियों को योग्यतानुसार छात्रवृत्ति भी दी जाती थी। आज़ादी के बाद जम्मू व कश्मीर के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री शेख मोहम्मद उब्दुल्ला ने 1949 ई० में इस पाठशाला को 'गवनमेंट ओरियण्टल कालेज' में परिवर्तित कर दिया। इस समय इस कालेज में अरबी, फारसी तथा उर्दू में 'आनर्स' परीक्षाओं तक ये भाषायें पढ़ाई जाती हैं। राजकीय संस्कृत पाठशाला वर्तमान 'गवर्नमेंट ओरियण्टल कालेज' में प्राध्यापक संस्कृत के भिन्न-भिन्न विषय पढ़ाते थे।

इस ओरियण्टल कालेज' से सैंकड़ों की संख्या में विद्यार्थी शास्त्री में उत्तीर्ण हो गए जिनमें कुछ विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में प्राध्यापक के रूप में काम करते हैं। कश्मीर की प्राचीन परम्परा को यानी अध्ययन तथा अध्यापन को पुनर्जीवित करने में 'ओरियण्टल कालेज' के संस्कृत विभाग का योगदान भुलाया नहीं जा सकता। संस्कृत के कवियों, लेखकों, समीक्षकों तथा शोधकों को इस विभाग ने पैदा किया तथा उनको साहित्यिक क्षेत्र में एक नई दिशा मिली। फिर संस्कृत विभाग को कालान्तर 1970 ई० में बन्द कर दिया गया।

विश्वविद्यालय में संस्कृत - 'कश्मीर विश्वविद्यालय' में पहले पहल 'स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग' की स्थापना आज से प्राय: बीस साल पहले हुई थी। इस विभाग के अध्यक्ष डॉ० राधकृष्ण काव थे। बाद में इस विभाग को जम्मू में स्थानान्तरित किया गया। कालान्तर में पुन: इस विभाग की स्थापना 1983 ई० में हुई जिससे अनेक विद्यार्थियों को लाभ पहुंचा। इस के अतिरिक्त यहां श्रीनगर, अनन्तनाग और सोपोर के कालेजों में भी छात्र संस्कृत पढ़ते थे।

मध्य एशियाई विभाग की स्थापना - जम्मू व कश्मीर राज्य के मुख्यमंत्री श्री शेख मुहम्मद अब्दुल्ला के प्रयत्नों से 'मध्य एशियाई विभाग' की स्थापना 1979 ई० में कश्मीर विश्वविद्यालय में हुई। इस समय इस विभाग में एक निदेशक है तथा अन्य प्राध्यापक मध्य एशिया के विभिन्न विषयों पर कार्य कर रहे हैं। डॉ० बदरीनाथ कल्ला भी इस विभाग में काम करते थे।

कश्मीर शैव दर्शन केन्द्र - 'राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान' के तत्त्वावधान में श्री रणवीर केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ' की उपशाखा - कश्मीर शैव दर्शन केन्द्र' के नाम से श्रीनगर के जवाहर नगर में स्थापित हुई। इस केन्द्र के निदेशक डॉ० बलजिनाथ पण्ड़ित थे। इस केन्द्र के साथ दो स्थानीय संस्कृत विद्वान जुड़े हुए थे। प्रो० नीलकण्ठ गुरुटू तथा श्री दीनानाथ शास्त्री (यक्ष)। बाद में यह केन्द्र जम्मू में स्थानान्तरित हुआ। इस केन्द्र की एक वृहत् परियोजना के तहत 'शैवदर्शन कोश' का निर्माण हुआ। इस समय यह कोश प्रेस में है।

कश्मीर में पहली श्री संस्कृत पत्रिका - डॉ० कुलभूषण के संस्कृत के प्रति अनन्य अनुराग के कारण यहां 1988 विक्रमी संवत् में प्रोफेसर नित्यानन्द शास्त्री के संपादकत्व में त्रैमासिक 'श्री पत्रिका' संस्कृत में प्रकाशित हुई। यह पत्रिका बारह वर्षों तक निरन्तर रूप से प्रकाशित होती रही। इसमें विशेषत: स्थानीय विद्वानों डॉ० श्रीनाथ तिक्कू, डॉ० शिवनाथ शर्मा तथा श्री राम जी वांगनू आदि की शोधात्मक रचनाएं प्रकाशित हुई हैं। कश्मीर के

सुप्रसिद्ध विद्वान प्रो० गोविन्द जी राज़दान ने अकबर के बाद डोगरा शासन तक 'राजतरङ्गिणी' के आधार पर कश्मीर का इतिवृत्त लिखा था। जिसके कुछ अंश 'श्रीपत्रिका में प्रकाशित हुए हैं।

प्रो० श्री कण्ठ कौल - डॉ० स्टीन के बाद इनका शोधात्मक कार्य इस दिशा में 'राजतरङ्गिणी' के संपादन आदि में मील पत्थर की तरह समझा जाता है।

डॉ० बलजिनाथ पण्ड़ित - राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित डॉ० बलजिनाथ का शैवदर्शन के क्षेत्र में प्रमुख स्थान है। आपकी मौलिक रचनायें विभिन्न भाषाओं में - हिन्दी, संस्कृत तथा अंग्रेज़ी में प्रकाशित हुई हैं। आपका 'स्वातंत्र दर्शन' शैवदर्शन का ग्रन्थ उत्कृष्ट माना जाता है।

पं० मोती लाल शास्त्री पुष्कर - इन्होंने इकबाल की प्रसिद्ध कविताओं का संस्कृत पद्यों में अनुवाद किया है। पुस्तक का नाम 'इकबाल काव्य दर्शनम्' है। इस के अतिरिक्त इनकी अनेक कवितायें संस्कृत में प्रकाशित हुई हैं।

पं० जगन्ननाथ रिवू शास्त्री - इन्होंने 'श्रद्धानन्द चरितम्' नामक काव्य संस्कृत में लिखा। इसके अतिरिक्त 'परिजात मंजरी' नामक पुस्तक में कश्मीर के सुप्रसिद्ध संत परमानन्द की कश्मीरी कविताओं का अनुवाद संस्कृत में भी किया है।

हरभट्ट शास्त्री - इन्होंने कश्मीर शैवदर्शन सम्बन्धी अनेक पुस्तकों का संशोधन तथा संपादन किया है। इसके अतिरिक्त डॉ० बदरीनाथ कल्ला ने भी संस्कृत भाषा के उत्थान में विशिष्ट भूमिका निभायी है। राष्ट्रीय एकता के सदंर्भ में उन्होंने संस्कृत भाषा में गीतों का कैसेट भी निकाला है। जिसे डॉ० फारूख अब्दुल्ला ने लोकार्पित किया है। इस 'कैसेट' में कश्मीरी, उर्दू आदि भाषाओं के राष्ट्रीय गान भी सम्मिलित है। जम्मू व कश्मीर राज्य में सबसे पहले डॉ० बी०एन०कल्ला ने 'कश्मीरी भाषा तथा संस्कृत का तुलनात्मक अध्ययन' जैसा विशिष्ट शोध (Thesis) प्रबन्ध संस्कृत में लिखा।

यद्यपि आजकल कश्मीर में प्राचीन काल की तरह संस्कृत बोली नहीं जाती है तथापि यह स्पष्ट है कि इन पचास वर्षों में कश्मीर में संस्कृत भाषा ने विविध आयाम देखे। वर्तमान में तो विषमताओं के कारण इसकी प्रगति को लेकर कुछ सम्भाव्य नहीं जान पड़ता। फिर भी आशा तो की जा सकती है। इस समय भी यह भाषा तत्सम तथा तद्भव शब्दों द्वारा बोली जाती है।



संदर्भ

1. कल्हण कृत राजतरङ्गिणी - डॉ० स्टीन द्वारा संपादित।
2. कीथ कृत संस्कृत साहित्य का इतिहास - अनुवादक डॉ० मंगलदेव शास्त्री।
3. विश्व संस्कृत शताब्दी ग्रन्थः जम्मू व कश्मीर राज्यभाग' (इस सदी के संस्कृत विद्वान - 1886-1986 ई० तक), लेखक : डॉ० बी०एन० कल्ला, प्रकाशक : अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन, नई दिल्ली 1966।
4. क्षेमेन्द्र कृत - लोक प्रकाश, प्रो० जगद्धर ज़ाडू द्वारा संपादित।
5. Kashmir Then & Now - G. L. Koul.
6. A History of Kashmir - P. N. Kaul Bamzai.
7. कश्मीरी भाषा तथा संस्कृत का तुलनात्मक अध्ययनः डॉ० बी० एन० कल्ला, लेखक का शोध प्रबन्ध (संस्कृत में)।
8. जोनराज कृत - राजतरङ्गिणी - प्रो० श्रीकण्ठ कौल द्वारा संपादित।
9. कश्मीरे संस्कृत शिलालेखाः - बदरीनाथ कल्ला शास्त्री। Published in the proceedings of International Sanskrit Conference, 1980.

कश्मीर में संस्कृत

(इतिहास के परिप्रेक्ष्य में)

कश्मीर केवल भौतिक पदार्थों के लिए ही विश्व में विख्यात नहीं है अपितु आध्यात्मिकता के लिए भी। भौतिकता तथा आध्यात्मिका के समन्वय ने इस उपत्यका के गौरव को आज तक स्थिर रखा है। यह आध्यात्मिकता इस सस्यश्यामला तथा उर्वरा भूमि की देन है जिसके फलस्वरूप यहां के आचार्यों - वसुगुप्त, सोमानन्द, उत्पलदेव तथा अभिनवगुप्ताचार्य आदि ने समय-समय पर ऐसी अध्यात्मविद्या तथा भारतीय चिन्तन को जन्म दिया जो सबके लिए अनुकरणीय ही नहीं बल्कि ग्राह्य भी है। इस आध्यात्मकविद्या तथा दर्शनिक चिन्तन का केन्द्र शारदापीठ अथवा शारदादेश था जो हज़ारों वर्षों से जिज्ञासुओं को इस ज्ञान से आप्लावित करता रहता है। इस रूप से यहां के विद्यामठ तथा विद्याकेन्द्र सब के लिए आकर्षण के केन्द्र रह गये। इन केन्द्रों की कीर्ति सारे एशियाद्वीप में फैली हुई थी। यही कारण है कि भारत के अतिरिक्त विदेशों से अर्थात् मध्य एशिया तथा चीन से महान विभूतियां आकर यहां के धुरन्धर आचार्यों में कुमारजीव तथा ह्वेनसांग के नाम उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार कश्मीर प्राचीन काल में भारतीय संस्कृति तथा संस्कृत का प्रधान केन्द्र रह चुका है। यहां के विद्यामठों का वर्णन महाकवि कल्हण ने अपनी रचना राजतरंङ्गिणी में इस प्रकार किया है:-

''विद्यावेश्मानि तुंगानि कुंकुंम सहिमंपयः।
द्राक्षेति यत्र सामान्यमस्ति त्रिदिवदुर्लभम्।।''

यदि सूक्ष्मरूप से देखा जाये - संस्कृत तथा कश्मीर का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है। संस्कृत को कश्मीर से कश्मीर को संस्कृत से अलग-थलग करना संभव नहीं है। इसने यहां जन-जीवन को प्रभावित ही नहीं कर दिया है अपितु जन-मानस पर अमिट छाप भी डाल दी है। वस्तुत-संस्कृत के

प्राचीन गौरव ने ही कश्मीर की कीर्ति-पताका को विश्व में फहरा दिया है। कश्मीर में भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के विभिन्न युगों के उदाहरण हज़ारों वर्षों के बाद इस समय भी हमें विभिन्न रूपों में यत्र-तत्र दिखाई देते हैं। पर्वतों, नदियों, सरोवरों, गांवों तथा जानवरों की संस्कृत नामावली इस तथ्य को स्वत: सिद्ध करती है। विभिन्न दौरों से गुज़रती हुई संस्कृत भाषा किसी प्रकार अपना अस्तित्व खो न बैठी, यह इसकी लोकप्रियता तथा पूर्णता का ज्वलन्त उदाहरण है।

पाठकों की सुविधा के लिए संस्कृत साहित्य का वर्गीकरण तीन कालों में किया जा सकता है :-

(1) संस्कृत का आदिकाल, (2) संस्कृत का मध्यकाल तथा (3) संस्कृत का आधुनिक काल। संस्कृत का आदिकाल प्रथम शती से चौदहवीं शती तक माना जाता है। इस युग में कश्मीर में संस्कृत के प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति हुई। प्राय: आठवीं शती से बारहवीं शती तक विविध विषयों में निष्णात कश्मीर के मूर्धन्य आचार्यों - आनन्दवर्धन, मम्मटाचार्य तथा महिमभट्ट आदि आलंकारिकों, सोमानन्द, उत्पलदेव तथा अभिनवगुप्त आदि दार्शनिकों, कल्हण तथा बिल्हण जैसे इतिहासकारों, सोमदेव तथा क्षेमेन्द्र आदि कथाकारों ने संस्कृत के विभिन्न विषयों पर अमर रचनायें लिखीं। यह युग वस्तुत: कश्मीर का स्वर्णयुग माना जाता है, क्योंकि इस युग ने मानव-चिन्तन को एक नई दिशा तथा एक नया दर्शन दिया जो संसार में 'प्रत्यभिज्ञा दर्शन' से प्रसिद्ध है। इस युग में लोगों की अभिव्यक्ति का माध्यम संस्कृत था जिसका उल्लेख कल्हण के समकालीन बिल्हण ने अपने महाकाव्य - 'विक्रामांकदेवचरितम्' में इस प्रकार किया है :-

''यत्रस्त्रीणां किमप्यपरं जन्मभाषावदेव।
प्रत्यावासं विलसति वच: संस्कृतं प्राकृतञ्च।''

निस्सन्देह यह काल संस्कृत वाङ्मय के पूर्ण विकास का युग था।

संस्कृत का मध्यकाल चौदहवीं शती से प्रारम्भ होता हैं हिन्दुओं का

शासनकाल समाप्त होने के बाद प्राय: मुसलमानों का युग शाहमीरी शासनकाल अर्थात् 1339 ई० से माना जाता है। उसके बाद चक शासनकाल (1554-1586 ई०), मगुल शासनकाल, अफगान शासनकालतथा सिक्ख शासनकाल (1819-1846 ई०), डोगरा शासनकाल (1846-1947 ई०)। इन विभिन्न कालों में अर्थात् प्राय: पांच सौ वर्षों में संस्कृत के स्थान पर फारसी भाषा ही राज्यभाषा के रूप प्रचलित रही। अब संस्कृत का धीरे-धीरे ह्रास होने लगा। विदेशीय प्रभाव के कारण सोलहवीं शती तक इस भाषा का प्रयोग मिश्रित भाषा के रूप में हुआ। इनका उदाहरण हमें क्षेमेन्द्र रचित 'लोक प्रकाश' में स्पष्ट रूप से मिलता है :-

''संवत्सरेऽत्र दिने श्री प्रेनायित कदले रैज्जि-अमुकेन रैज्जि अमुक-पुत्रेन हस्ते सति बंगलचीरिका दत्ता। यथा अत्र आगरान्तरे खुज्या अमुक: खुज्या अमुकं प्रति लिखति-खुज्या अमुके सलामा बन्दगी ददनीयमिति''। यह मिश्रित भाषा राज्यकार्यों तथा न्यायालयों में भी प्रचलित थी। विदेशीय राज्य हज़ारों वर्षों से हमारे हृदय पर अंकित भारतीय संस्कारों को मिटाने में सक्षम न हुआ। फलत: जनता ने वसीयतनामों, शिलालेखों तथा इष्टामों में संस्कृत का प्रयोग किया। सबसे पहले सन्त हज़रत मखदूम साहिब (16वीं शती) का वसीयत नामा दोनों लिपियों तथा दोनों भाषाओं - संस्कृत तथा फारसी में लिखा हुआ एक शिलालेख के रूप में हमें मिलता है जो इस समय 'जम्मू व कश्मीर के संग्रहालय' में सुरिक्षत है। यहां पर यह कहना असंगत न होगा कि ज़ैनुल आब्दीन के राज्यकाल का एक शिलालेख खौनमुह (संस्कृत खौनमुष) गांव के पास भुवनेश्वर नामक स्थान में उपलब्ध हुआ है। यह शिलालेख तत्कालीन लोगों की संस्कृत के प्रति अनुराग को प्रकट करता है। इसी तरह हारीपर्वत की अधित्यका में बाहु उद्दीन साहिब के सामने यवनों की कब्रों पर संस्कृत में अनेक शिलालेख पाये गये हैं। इसका उल्लेख डॉ० स्टीन ने भी राजतरंङ्गिणी के अंग्रेज़ी अनुवाद में किया है।

उक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि संस्कृत भाषा मध्यकाल में भी

किसी न किसी रूप में प्रचलित थी।

इस संदर्भ में यह कहना भी युक्ति युक्त है कि यवन शासकों में केवल सुल्तान ज़ैनउल्लाब्दीन (1423-1475 ई०) एक ऐसा उदारचित, दूरदर्शी तथा संस्कृत प्रेमी शासक था जिसके संस्कृत साहित्य की उन्नति में महत्वपूर्ण कार्य को भुलाया नहीं जा सकता है। इस सुल्तान के विशाल दृष्टिकोण के कारण संस्कृत का पाठशालाओं में पुन: पठन-पाठन आरम्भ हुआ। जोनराज श्रीवर, नोत्थसोम, योधभट्ट, अवतारभट्ट, शिर्यभट्ट आदि अनेक संस्कृत विद्वान उसकी सभा को समलंकृत करते थे। इसी युग में कल्हण के बाद जोनराज, श्रीवर, प्राज्यभट्ट तथा शुक ने राजतरङ्गिणी के आधार पर विभिन्न राजतरंङ्गिणयों की रचनाए की हैं। जोनराज ने द्वितीय राजतरङ्गिणी की रचना की जिसमें तेईस राजाओं का उल्लेख है। उसने तीन संस्कृत ग्रन्थों - महाकवि भारवि के 'किरातार्जुनीय', मंख के 'श्रीकण्ठचरित' तथा ज़यानक के 'पृथ्वीराज विजय' पर टीकायें लिखी हैं। जोनराज का शिष्य श्रीवर भी संस्कृत का कवि था। अपने गुरु के मरणोपरान्त उसने तीसरी 'राजतरङ्गिणी' लिखी तथा फारसी के मूर्धन्य कवि मुल्लाजामि की कृति 'यूसुफ ज़ुलेखा' के आधार पर संस्कृत काव्य 'कथाकौतुक' लिखा है। इस तरह ज़ैन उल्लाब्दीन अथवा बड़शाह के शासनकाल में संस्कृत की उन्नति का परिचय मिलता है।

इन युगों में यहां के साहित्यकारों ने प्राय: संस्कृत से नि:सृत कश्मीरी भाषा को ही अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाकर इसकी विभिन्न विधाओं को संस्कृत के आधार पर जन्म दिया। इनमें लल्लद्यद के 'वाख' (सं० वाक्), नुन्द ऋषि के 'श्रुक्य' (सं० श्लोक), शितिकण्ठ के 'पद', अरणीमाल के 'वच़न' बहुत ही लोकप्रिय हैं। कुछ यवन राजाओं के संकीर्ण दृष्टिकोण से चिरकाल से बहती हुई संस्कृत रूपी गंगा का प्रवाह कुछ समय तक रुक गया। लेकिन यहां के संस्कृत भक्तों ने इस ज्ञानगंगा को किसी रूप में शुष्क होने न दिया। इसका स्त्रोत हमेशा सबको अपनी ओर आकृष्ट करता रहा। इस युग में अर्थात् मुगलशासन काल में जगद्धर भट्ट ने 'स्तुतिकुसमजलि' की रचना

की। और यहां के तीर्थों की पवित्रता को सुरक्षित रखने तथा महत्व देने के लिए कश्मीर के तीर्थवासी ब्राह्मणों ने 'माहत्म्य' लिखे जिनमें 'हरमुकेटेश्वर माहात्म्य', 'अमरेश्वरमाहात्म्य' तथा 'वितस्ता माहात्म्य' आदि महत्वपूर्ण हैं। डोगरा शासनकाल में भारतीय संस्कृति के प्रतीक महाराजा गुलाबसिंह के सुपुत्र महाराजा रणवीर सिंह (1830-1885 ई०) ने संस्कृत भाषा व साहित्य के बहुमुखी विकास के लिए जम्मू में 'रघुनाथ संस्कृत महाविद्यालय' तथा कश्मीर में 'राजकीय संस्कृत पाठशाला' की स्थापना 1870 ई० में की जहां विद्यार्थियों को प्राज्ञ से शास्त्री परीक्षा तक नि:शुल्क रूप संस्कृत पढ़ाई जाती थी तथा निर्धन विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति भी दी जाती थी। साथ ही 'श्रीरणवीर संस्कृत पुस्तकालय' की भी स्थापना हुई जो कालान्तर 1902 ई० में 'जम्मू व कश्मीर रिसर्च विभाग' में परिवर्तित हुआ। धीरे-धीरे यह विभाग बढ़ता गया। संस्कृत पाण्डुलिपियों का संग्रह करना भी इस विभाग के प्रमुख कार्यों में था। इस समय इस 'रिसर्च विभाग' के साथ संस्कृत पाण्डुलिपियों का भी एक अनुभाग है जहां संस्कृत के विभिन्न विषयों की प्राय: पांच हज़ार पाण्डुलिपियां शारदा तथा देवनागरी लिपि में सुरक्षित हैं। इस विभाग की स्थापना से सैकड़ों की संख्या में शैवदर्शन आदि विषयों पर पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। इन ग्रन्थों के संशोधन तथा सम्पादन में श्री जे०सी०चटर्जी, श्री मुकुन्दराम महामहोपाध्याय, श्री मधुसूदन कौल शास्त्री, प्रो० जगद्धार ज़ाडू, श्री हरभट्ट शास्त्री, श्री दीनानाथ शास्त्री, डॉ० नलिनाक्ष दत्त तथा शिवनाथ शर्मा आदि के नाम स्मरणीय हैं।

महाराजा प्रताप सिंह के शासन काल में संस्कृत के प्रकाण्ड पण्ड़ित श्री ईश्वर कौल ने पाणिनीय सूत्रों के आधार पर संस्कृत में 'कश्मीरी शब्दामृतम्' नामक पहला कश्मीरी व्याकरण लिखा। जिसका सर जार्ज इब्राहिम ग्रियर्सन ने संपादन करके 'एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता' से प्रकाशित किया। इसके अतिरिक्त ईश्वर कौल ने 'कश्मीरी संस्कृत शब्द कोश' भी लिखा था जिसका उल्लेख ग्रियर्सन ने कश्मीरी डिक्शनरी के प्रथम खण्ड की भूमिका में किया है। इसकी तीसरी कृति 'कश्मीरी दशभाषोदय' नामक संस्कृत कोश की

पाण्डुलिपि दो खण्डों में इस समय 'रिसर्च विभाग' में सुरक्षित है। वह कोश संस्कृत पद्यों में लिखा गया है। इसमें कश्मीरी शब्दों के पर्याय दस भाषाओं में दिये गये हैं जैसे - अरबी, फारसी, अंग्रेज़ी, लामी और बलती आदि।

इस संदर्भ में महामहोपाध्याय पं० मुकुन्दराम शास्त्री का योगदान भी सराहनीय है। सर जार्ज ग्रियर्सन द्वारा संपादित 'कश्मीरी डिक्शनरी' के चार खंडों में महामहोपाध्याय मुकुन्दराम ने प्रायः पचीस हज़ार कश्मीरी शब्दों तथा मुहावरों का अनुवाद संस्कृत में किया है और पं० कृष्ण राजानक (राज़दन) के 'शिवपरिणय' के कश्मीरी पद्यो की छाया (Gloss) संस्कृतमें लिखी है। ये दोनों पुस्तकें 'एशियाटिक सोसाइटी' से प्रकाशित हुई हैं।

आधुनिक काल - यह काल 1947 ई० से वर्तमान तक माना जाता है। इस काल में यहां की स्वयं सेवी संस्थाओं, सायंकालीन पाठशालाओं, विद्यालयों तथा महाविद्यालयों ने संस्कृत के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

स्वातंत्र्योतर संस्कृत का विकास - स्वतंत्रता के बाद संस्कृत के महत्त्व को तथा उस की उपादेयता को सब देशवासियों ने समझा। भावात्मक एकता तथा राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ बनाने के लिए देश के महान नेताओं तथा राष्ट्रभगतों ने संस्कृत की राष्ट्भाषा बनाने पर बल दिया। आज़ादी के अंदोलन से बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के 'वन्दे मातरम्' के विजयनाद और महामना मदनमोहन मालवीय के त्याग व अनथक प्रयत्नों से देश वासियों को विशेषतः संस्कृत प्रेमियों को प्रेरणा मिली। समूचे देश में संस्कृत के प्रति राष्ट्रीय चेतना जाग्रत हुई। भारोपीय परिवार की मूलभाषा संस्कृत को लोग समझने लगे। इससे भारत की शिक्षा नीति में स्वाभाविक रूप से परिवर्तन हुआ। इसका व्यापक प्रभाव सब राज्यों पर पड़ा। इस दिशा में प्रत्येक राज्य में शिक्षा विभाग की ओर से महत्त्वपूर्ण क़दम उठाये गये। फलतः विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में संस्कृत को समुचित स्थान मिला। इस दिशा में कश्मीर भी पीछे नहीं रहा।

स्वयंसेवी संस्थाओं का योगदान - संस्कृत के प्रचार व प्रसार में विभिन्न संस्थाओं का योगदान उल्लेखनीय रहा है। इन संस्थाओं में से सर्वप्रथम कश्मीर मण्डल के 'ब्राह्मणों की एकमात्र प्रतिनिधि' सभा 'ब्रह्मण महामंडल' ने धार्मिक साहित्य का प्रकाशन करके लोगों में सांस्कृतिक चेतना जाग्रत करने का प्रयास किया। यहां के संस्कृत पुस्तकालय तथा वाचनालय में विभिन्न पत्रिकाओं के अतिंरिक्त दिल्ली की सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'संस्कृतामृतम्' भी आनी थी। मंडल के मुख्य कार्यालय में संस्कृत पांडुलिपियों का एक अनुभाग है या जिसमें शारदा लिपि में प्राय: दो सौ पांडुलिपियां थीं। मंडल के महत्व पूर्ण प्रकाशनों में से - हररात्रिनिर्णयविधि:, शिवरात्रिपूजाविधि:, पूजा संकलन, मलमास निर्णय आदि हैं। इस संस्था से प्रतिवर्ष हिन्दी में 'पंचाग' प्रकाशित होता है। जिस में धार्मिक लेख आदि भी होते हैं। कश्मीर में विषम परिस्थितियों के कारण इसका कार्यालय गत दस वर्षों से जम्मू में स्थापित हुआ है। गत पांच दशकों से कश्मीर में 'मंडल' संस्कृत के प्रचार व प्रसार में संलग्न लगा रहा है।

शारदा पीठ रिसर्च सेंटर - इसकी स्थापना कश्मीर के सुप्रसिद्ध संस्कृत विद्वान डॉ० राधकृष्ण काव ने 1954 ई० में कर्णनगर में की। इस केन्द्र में समय-समय पर संगोष्ठीयों का आयोजन होता था जिस में स्थानीय विद्वानों के अतिरिक्त विदेशी विद्वान भी सम्मिलित होते थे। इस केन्द्र से 'शारदापीठरिसर्च' नाम त्रैमासिक पत्रिका दो भाषाओं - अंग्रेज़ी तथा संस्कृत में प्रकाशित होती थी। संस्कृत के सम्पादक मण्डल में - प्रो० जगद्धर जी ज़ाडू, डॉ० शिवनाथ शर्मा तथा डॉ० बदरीनाथ कल्ला थे। 1983 ई० में इनके अकाल काल कवलित होने से इसकी साहित्यिक गतिविधियां बन्द हो गई।

शैवदर्शन मठिका - शैवदर्शन के आचार्य श्री स्वामी लक्ष्मण जी गुप्त गंगा में प्रति रविवार को शैव दर्शन के गूढ़ विषयो पर प्रवचन देते थे। स्थानीय तथा विदेशी प्रौढ़ों को शैवदर्शन का ज्ञान कराते हैं। इनकी शिष्या प्रभादेवी भी इस कार्य में प्रयत्नशील है।

श्रीराम शैवाश्रम - श्रीनगर के फतेहकदल में स्थित यह आश्रम गत तीन दशकों से शैवदर्शन के प्रचार व प्रसार में संलग्न था। यहां प्रति रविवार के दिने प्रोढ़ वर्ग को शैवदर्शन की शिक्षा दी जाती थी। 1990 ई० में श्रीधर जी की मृत्यु से इस आश्रम को काफी क्षति हुई।

स्वामी विद्याधर आश्रम - यह आश्रम कर्णनगर में स्थित है। यहां पर प्रौढ़ों को शैवदर्शन के विभन्न विषयों से परिचित कराया जाता है। अब इस आश्रम में कई कारणों से शिथिलता आ गई है।

कश्मीर संस्कृत साहित्य सम्मेलन - इसकी स्थापन 1956 ई० में श्रीनगर के 'क्राल ख्वड़' नामक मोहल्ले में हुई। इस का मुख्य उद्देश्य कश्मीर में संस्कृत का प्रचार व प्रसार करना था। अत: इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सर्वप्रथम इसके संस्थापक सदस्यों ने 'भारतीय विद्याभवन' मुंबई द्वारा स्वीकृत संस्कृत परीक्षाओं का संचालन किया। नि:शुल्क रूप से संस्कृत पढ़ाने के लिए सायंकालीन पाठशाला खोली गई, जिसमें श्री ओंकरनाथ शास्त्री (लंगू), डॉ० बदरीनाथ कल्ला तथा मोतीलाल 'प्रमोद' आदि संस्कृत पढ़ाते थे। प्राय: चार सौ विद्यार्थी सम्मेलन से 'भारतीय विद्याभवन' की प्रारम्भिक परीक्षाओं में उत्तीणं हुए। इस में गैर हिन्दू छात्रायें भी संस्कृत पढ़ती थीं।

साहित्यिक गोष्ठियों, संस्कृत कविसम्मेलनों तथा कल्हण आदि संगोष्ठियों का आयोजन भी सम्मेलन की गतिविधियों का प्रमुख अंग रहा है। कालान्तर 'अखिल भारतीय संस्कृत सम्मेलन' की परियोजना के अर्न्तगत 'संस्कृत सम्मेलन' के सक्रिय सदस्यों ने 'विश्व संस्कृत शताब्दी ग्रन्थ: जम्मू व कश्मीर राज्यभाग:' नामक पुस्तक में महत्वपूर्ण योग दान दिया है। इन संस्कृत लेखकों में से - गंगादत्त शास्त्री 'विनोद', डॉ० राधाकृष्ण काव, श्री दीनानाथ शास्त्री, श्री मोतीलाल 'पुष्कर', श्री त्रिभुवननाथ शास्त्री, श्री बदरीनाथ कल्ला शास्त्री आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। यह शताब्दी ग्रन्थ दिल्ली से 1966 ई० में प्रकाशित हुआ है।

इस सम्मेलन ने यहां के युवावर्ग को संस्कृत में लिखने, बोलने तथा

रचना करने की प्रेरणा दी है। वास्तव में आज की पीढ़ी जिस प्रकार संस्कृत-प्रचार तथा साहित्य सृजन के प्रति जागरुक तथा प्रयत्नशील है, उसका आदि स्त्रोत - 'कश्मीर संस्कृत साहित्य' सम्मेलन है।

विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में संस्कृत - आर्यसमाज के तत्वाधान में संचालित -'देवकी आर्यपुत्री पाठशाला' में इस समय संस्कृत विद्यार्थियों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही है। प्राइवेट विद्यालयों में यह एक आदर्श विद्यालय है।

श्री रूपा देवी शारदा पीठ - अन्तिम डोगरा शासक महाराजा हरिसिंह के समय के महालेख पाल (Accountant General) श्री परमानन्द ने अपनी सुपुत्री श्रीरूपादेवी के नाम पर 'श्रीरूपादेवी शारदा पीठ' की स्थापना 1953 ई० में फतेहकदल में स्थित रघुनाथ मन्दिर के प्रांगण में की। इस में पहले-पहल प्राज्ञ विशारद तथा शास्त्री तक जम्मू व कश्मीर विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम के अनुसार छात्राओं को शिक्षा दी जाती थी।

इसके प्रथम प्राचार्य उधमपुर के मूर्धन्य विद्वान श्री दयाराम शास्त्री थे। इस प्राच्यविद्याविभाग में जिन दो प्राध्यापकों की नियुक्ति की गई थी वे थे श्री जगन्नाथ ब्रारू शास्त्री और बदरीनाथ कल्ला शास्त्री। प्राचार्य महोदय के दिशानिर्देश में इस 'विभाग ने काफी उन्नति की। परिणामस्वरूप पांच छात्रायें उस समय शास्त्री परीक्षा में उत्तीर्ण हुई। श्री परमानन्द के निधन के बाद यह 'ओरियंटल विभाग सुव्यवस्थित रूप से चल न सका। बाद में छः वर्षों के बाद यह विभाग विद्यालय में परिवर्तित हुआ। इस विद्यालय की विशेषता यह थी कि इसमें मुस्लिम विद्यार्थी संस्कृत पढ़ रहे थे। इस 'शारदापीठ' ने कई वर्षों तक 'भारतीय विद्या भवन' की संस्कृत परीक्षाओं का संचालन किया है।

राजकीय संस्कृत पाठशाला - महाराजा रणवीर सिंह ने 1870 ई० में इस पाठशाला की स्थापना श्रीनगर के 'बागि दिलावर खां' के परिसर में की। इस पाठशाला में पहले पंजाब विश्वविद्यालय, बाद में 'जम्मू व कश्मीर विश्वविद्यालय' के पाठ्यक्रम के अनुसार शास्त्री परीक्षा तक नि:शुल्क

रूप से संस्कृत पढ़ाई जाती थी। छ: अध्यापक यहां संस्कृत पढ़ाते थे। कश्मीर में यही एक आदर्श संस्कृत पाठशाला थी जो 1970ई० से बन्द हो गई है।

आज़ादी के बाद 1949 ई० जम्मू व कश्मीर के मुख्यमंत्री श्री शेख मुहम्मद अब्दुल्ला ने इस पाठशाला को 'गवर्नमेन्ट ओरियण्टल कालेज' में परिवर्तित कर दिया। इस समय इस कालेज में अरबी, फारसी तथा उर्दू में 'आनर्स' परीक्षाओं तक ये भाषायें पढ़ाई जाती हैं।

इस समय कश्मीर में केवल चार महाविद्यालयों में संस्कृत पढ़ाई जाती है। - विमेन कालेज मौलाना आज़ाद रोड, विमेन कालेज नवाकदल, गवर्नमेन्ट कालेज अनन्तनाग, गवर्नमेन्ट कालेज सोपोर। हायर सेकेंडरी के कुछ एक स्कूलों में भी यह पढ़ाई जाती है।

विश्वविद्यालय में संस्कृत - कश्मीर विश्वविद्यालय में 'स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग' की स्थापना 1983 ई० में हुई। आज तक इस विभाग से प्राय: 23 विद्यार्थी एम०ए० परीक्षा में उत्तीर्ण हुए हैं। तीन छात्राओं को एम०फिल० की उपाधियां तथा एक अध्यापक को पी०एच०डी० की उपाधि प्रदान की गई है। इस समय चार अनुसंधित्सु एम०फिल० कर रेु हैं। विभाग में दो अध्यापिकायें तथा एक अध्यापक हैं।

मध्य एशियाई विभाग की स्थापना - जम्मू व कश्मीर राज्य के मुख्यमंत्री श्री शेख मुहम्मद अब्दुल्ला के प्रयत्नों से 'मध्य एशियाई विभाग' की स्थापना 1979 ई० में कश्मीर विश्वविद्यालय में हुई। इस समय इस विभाग में एक निदेशक है। सात अध्यापक मध्य एशिया के विभिन्न विषयों पर हमेशा कार्य कर रहे हैं तथा रिसर्च स्कालर भी प्राध्यापकों के दिशा-निर्देश में अनुसंधान के कार्य में लगे हुए हैं। इन अध्यापकों में से संस्कृत के दो अध्यापक - डॉ० बी०के०कौल तथा डॉ० बी०एन०कल्ला हैं। सबसे पहले इस लेख के लेखक ने 'काश्मीरिकी संस्कृत भाषयोस्तुलनात्मक मध्ययनम्' (कश्मीरी भाषा तथा संस्कृत का तुलनात्मक अध्ययन) इस भाषा विज्ञान के विषय पर संस्कृत में शोध-प्रबन्ध लिखा है। इस समय इसके प्रकाशन के

लिए 'राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान' के अधिकारियों से पत्र-व्यवहार चल रहा है। इसके शीघ्र ही प्रकाशित होने की संभावना हैं यह हर्ष का विषय है कि मध्य एशियाई विभाग ने इस वर्ष 'वितस्ता माहात्म्यम्' छपाने के लिए प्रेस को भेज दिया है। इसमें तीन संस्कृत के रिसर्च स्कालरों ने एम०फिल की उपाधियों प्राप्त कीं। इनमें दो पी०एच०डी० के शोध प्रबन्ध लिख रहे हैं।

परमानन्द रिसर्च इन्स्टीच्यूट - यह अनुसंधान संस्थान 1974 ई० से संस्कृत के विभिन्न विषयों पर शोध कार्य कर रहा है। इसके प्रथम निदेशक प्रो० काशीनाथ दर थे। उनके समय संस्थान ने अनुसंधान की दिशा में महत्त्वपूर्ण काम किया। उनके निधन के बाद संस्थान को काफी धक्का लगा। इस संस्थान के प्रकाशनों में से 'अमरेश्वर माहात्म्य' (हिन्दी तथा अंग्रेज़ी अनुवाद सहित) राज्ञी प्रादुर्भाव (अंग्रेज़ी तथा हिन्दी में) तथा वटुक पूज़ा। एक परियोजना के अन्तर्गत श्रीवर की 'राजतरंङ्गिणी' का अनुवाद प्रो० काशीनाथ दर ने अंग्रेज़ी नें किया है जो शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

कश्मीर में पहली श्री संस्कृत पत्रिका - डॉ० कुलभूषण के संस्कृत के प्रति अनन्य अनुराग के कारण यहां 1988 विक्रमी संवत् में प्रोफेसर नित्यानन्द शास्त्री के संपादकत्व में त्रैमासिक 'श्रीपत्रिका' संस्कृत में प्रकाशित हुई। यह पत्रिका बारह वर्षों तक निरन्तर रूप से प्रकाशित होती रही। इसमें विशेषत: स्थानीय विद्वानों डॉ० श्रीनाथ तिक्कू, डॉ० शिवनाथ शर्मा तथा श्री राम जी वांगनू आदि की शोधात्मक रचनाएं प्रकाशित हुई हैं। कश्मीर के सुप्रसिद्ध विद्वान प्रो० गोविन्द जी राज़दान ने अकबर के बाद डोगरा शासन तक 'राजतरङ्गिणी' के आधार पर कश्मीर का इतिवृत्त लिखा था। जिसके कुछ अंश 'श्रीपत्रिका' में प्रकाशित हुए हैं। डॉ० कुलभूषण के देहावसान के बाद इसका प्रकाशन बन्द हुआ।

गत वर्ष 1986 ई० में डॉ० मण्डन मिश्र के कर्मठ व्यक्तित्व तथा अदम्य साहस के कारण कश्मीर में 'श्रीरणवीर केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ जम्मू' की उपशाखा श्रीनगर में स्थापित हुई। इसका केन्द्र इस समय जवाहर

नगर में स्थित है। इस समय इस में दो स्थानीय संस्कृत विद्वानों प्रो० नीलकण्ठ गुर्टू तथा श्री दीनानाथ शास्त्री (यक्ष) की नियुक्ति हुई है। आशा है कि इस केन्द्र के खुल जाने से शैवदर्शन की प्राचीन परम्परा सुव्यवस्थित रूप से पुनर्जीवित होगी तथा इस दर्शन के विभिन्न आयामों पर प्रकाश पड़ जायेगा। जिससे भावी पीढ़ी को अवश्य प्रेरणा मिलेगी। इसका बीज कालान्तर में वट वृक्ष का रूप धारण करके सब को आत्मसात् करके ज्ञान-गरिमा से शीतलता प्रदान करेगा।

संस्कृत साहित्य को भिन्न रूपों में समृद्ध बनाने में जिन कश्मीरी विद्वानों ने काम किया है उनकी नामावली इस प्रकार है :-

1. प्रो० लक्ष्मीधर कल्ला
2. श्री नाथराम कल्ला शास्त्री
3. प्रो० नीलकण्ठ कौल
4. डॉ० श्रीनाथतिक्कू
5. श्री जानकीनाथ 'कमल'
6. श्री प्रेमनाथ हण्डू
7. डॉ० बलजिनाथ पंण्ड़ित
8. श्री गोविन्द भट्ट शास्त्री
9. ज्योतिषी केशव भट्ट शास्त्री
10. श्री दुर्गाप्रसाद काचरू
11. प्रो० जियालाल कौल
12. श्री जगन्नाथ रिवू शास्त्री
13. श्री हरभट्ट शास्त्री
14. स्वामी माधवानन्द सरस्वती

सस्कृत के प्रचार-प्रसार में जिन महानुभावों ने काम किया है या जो इस समय निष्काम रूप से काम करते हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं:-

1. ज्योतिषी प्रेमनाथ शास्त्री
2. श्री मुकुन्दराम शास्त्री
3. श्री जगन्नाथ सिबू
4. स्वर्गीय नित्यानन्द साबन्दू शास्त्री
5. श्री पीताम्बर हण्डू शास्त्री (रैणावारी)
6. श्री मोतीलाल ब्रह्मचारी
7. श्री नेत्रपाल शास्त्री (आर्यसमाज)
8. श्री काशीनाथ रिवू शास्त्री

9. श्री गोविन्द भट्ट शास्त्री

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि कश्मीर में संस्कृत का भविष्य समुज्ज्वल है। यह भाषा सर्वदा इन्द्रधनुष की तरह सबको अपने स्वाभाविक रंगों से आकृष्ट करती रहेगी।

यद्यपि आजकल कश्मीर में प्राचीन काल की तरह संस्कृत बोली नहीं जाती है तथापि यह - तत्सम, तद्भव, प्राकृत तथा अपभ्रशं के विभिन्न रूपों में लाखों लोगों द्वारा प्रतिदिन प्रयुक्त होती है, जैसे :-

संस्कृत वाक्य	कश्मीरी वाक्य
दूरं मा गच्छ	दूर मा गछ़
चिरं मा कुरु	च़ेर मा कर
तप्तं मा खादय	तौत मा ख्य
एतु एतु	इत् इत्
निगंछ	नेर गछ़ आदि।



संदर्भ

1. कल्हण कृत राजतरङ्गिणी - डॉ० स्टीन द्वारा संपादित।
2. कीथ कृत संस्कृत साहित्य का इतिहास - अनुवादक डॉ० मंगलदेव शास्त्री।
3. विश्व संस्कृत शताब्दी ग्रन्थ: जम्मू व कश्मीर राज्यभाग' (इस सदी के संस्कृत विद्वान - 1886-1986 ई० तक), लेखक : डॉ० बी०एन० कल्ला, प्रकाशक : अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन, नई दिल्ली 1966।
4. क्षेमेन्द्र कृत - लोक प्रकाश, प्रो० जगद्धर ज़ाडू द्वारा संपादित।
5. Kashmir Then & Now - G. L. Koul.
6. A History of Kashmir - P. N. Kaul Bamzai.
7. कश्मीरी भाषा तथा संस्कृत का तुलनात्मक अध्ययन: डॉ० बी० एन० कल्ला, लेखक का शोध प्रबन्ध (संस्कृत में)।
8. जोनराज कृत - राजतरङ्गिणी - प्रो० श्रीकण्ठ कौल द्वारा संपादित।
9. कश्मीरी संस्कृत शिलालेखा: - बदरीनाथ कल्ला शास्त्री। Published in the proceedings of International Sanskrit Conference, 1980.

कश्मीर में हिन्दी

(इतिहास के परिप्रेक्ष्य में)

कश्मीर प्राचीन काल से संस्कृतिक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से भारत का अभिन्न अंग रहा हैं। यह केवल प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए ही विदेशियों के आकर्षण का केन्द्र न था अपितु विद्या-पीठों तीर्थो के कारण भी विश्व में विख्यात था। यहाँ भारत के अतिरिक्त मध्य एशिया तथा चीन के विभिन्न क्षेत्रों से महान पण्डित आकर यहां के धुरन्धर आचार्यो से ज्ञान-गंगा का अमृत पीकर अमर हो जाते थे। इन विभूतियों में कुमार जीव तथा चीनीयात्री ह्यूनसांग के नाम उल्लेखनीय हैं इसी तरह भारत के विभिन्न राज्यों से साधु,संत, मंडलेश्वर तथा दण्डी स्वामी आदि यात्री आकर मानसिक शान्ति पाने के लिए यहाँ के प्रसिद्ध तीर्थो की यात्रा करते थे। विशेषत: अमर नाथ यात्रा के समय इस प्रकार कश्मीर मण्डल आदि काल से भौतिकता तथा आध्यत्मिकता का संगम स्थल रहा है ।

संस्कृत-साहित्य के अध्ययन से यह मालूम होता है कि तेरहवीं शती तक यहां की मातृ भाषा (जनभाषा) संस्कृत थी जिसका उल्लेख कल्हण के समकालीन बिल्हण के अपने महाकाव्य 'विक्रमाङ्कदेवचरितम्' के अठारहवे सर्ग के छटे श्लोक में किया है।

''यत्रस्त्रीणां किम्प्य परं जन्म भाषा वदेव।
प्रंत्यावासं विलसति वच: संस्कृतं प्राकृतञ्च।।''

हिन्दुओं का शासन काल समाप्त होने के बाद मुसलमानों का दौर अर्थात शाहमीरी शासन काल 1339 ई० से प्रारम्भ होता है। उसके बाद चकशासन काल (1554-1586 ई०) मुगल शासन काल, अफगन शासन काल तथा सिख शासन काल (1819-1846)। इन विभिन्न कालों में फारसी भाषा ही राज्य में प्रचलित रही। डोगरा शासन काल (1846-1947 ई०) में

उर्दू राज्य भाषा रही। इन युगों में यहां के साहित्यकारों ने संस्कृत से निःसृत कश्मीरी भाषा को ही अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाकर इसकी विभिन्न विधाओं को जन्म दिया।

इन साहित्यकारों में सर्वप्रथम तेरहवीं शती के सुप्रसिद्ध कवि शितिकण्ठ का नाम बड़े गर्व से लिया जाता है। इसकी कृति 'महानयप्रकाश' है जो शैवदर्शन से प्रभावित है। चौदहवीं शती में कश्मीर की प्रसिद्ध कवियत्री लल्लद्यद के वाख (सं० वाक्) तथा नुन्दऋषि के 'श्रुक्य' (सं०श्लोक) उपलब्ध होते हैं। बाद में पन्द्रहवीं शती में हमें भट्टावतार रचित 'बाणासुरकथा' नामक प्रबन्ध काव्य मिलता है। मध्यकाल में संत परमानन्द (1792-1885 ई०) श्री कृष्ण राजदान (1850-1927 ई०) आदि कवियों ने लीला साहित्य एंव भक्ति साहित्य के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन्होंने कश्मीरी कविताओं के साथ बहुत-सी हिन्दी कविताओं की भी रचना की। रुपभवानी (1625-1721 ई०) के पद्यों में बहुत सी हिन्दी कवितायें यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होती हैं। आधुनिक काल में कृष्णभक्त कवि स्वर्गीय मधुसूदन।

खुयहामी की 'माधुर्य गिरा' नामक कश्मीरी कविता संग्रह में हिन्दी शब्दावली प्रचुर मात्रा में मिलती है। इस प्रकार मध्यकाल से लेकर आधुनिक काल तक काव्य आदि लिखने की परम्परा अविच्छिन्न रुप से चलती रही है।

उक्त कवियों तथा कवियत्रियों की रचनाओं में संस्कृत की तत्सम तथा तद्भव शब्दावली अनेक रुपों में मिलती है जो हिन्दी भाषा में उसी रूप में उपलब्ध है। भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार यह तथ्य सर्व सम्मत है कि संस्कृत भाषा प्राय: सब भाषाओं की जननी हैं। हिन्दी भाषा का विकास भी उसी से किसी न किसी रुप में हुआ है। संस्कृत तथा हिन्दी इस दृष्टि से भिन्न नहीं है। अनुकूल वातावरण होने के कारण यहाँ के साहित्यकारों ने बाहर से आये हुए साधुओं, सन्तों तथा मण्डलेश्वरों के प्रवचनों से तथा उनके द्वारा गाये गये भक्तिमय पदों तथा भजनों से प्रेरणा पाकर हिन्दी का प्रयोग सीखा। यह मण्डलेश्वर तथा महात्मा आदि अनेक यात्रियों के समेत कश्मीर के प्रसिद्ध

तीर्थो अमरेश्वर (वर्तमान अमरनाथ) तथा हरमुकुटेश्वर गंगा (महराजा हरिसिंह के समय यहाँ अमरेश्वर की तरह यात्रा लगती थी, 'नुनर' नामक गांव से यह यात्रा भादों के महीने में शुरु होती थी) आदि तीर्थ स्थानों को जाते थे। उनकी अभिव्यक्ति का माध्यम प्राय: हिन्दी ही था। अत: हिन्दों के प्रचार व प्रसार में उनका योगदान कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण रहा है। परिणामस्वरुप कश्मीर के साहित्यकार भी हिन्दी के प्रभाव से अछूते न रहे। मध्यकालीनसंत कवियों की परम्परा में विशेषत: परमानन्द तथा श्रीकृष्ण राजदान की लीलाओं में इसका प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

ड़ोगरा शासन काल में विशेषत: भारतीय संस्कृति के रक्षक तथा पोषक महाराजा रणवीर सिंह (1830-1885 ई०) ने हिन्दी भाषा को सरकारी भाषा के रूप में मान्यता दी। इस महराजा ने अपने शासन काल में 'रणवीर रत्नाकर नामक पुस्तक' देवनागरी लिपि में मुद्रित कराई तथा कुछ संस्कृत धार्मिक पुस्तकों को हिन्दी में अनूदित करवाया। इसके समय में 'रणवीर समाचार' नामक पाक्षिक पत्रिका भी निकलती थी। इस प्रकार हिन्दी को जन साधारण तक पहुंचाने में इनका योगदान महत्वपूर्ण रहा है।

स्वतन्त्रता पूर्व हिन्दी की स्थिति - डोगरा वंश के अन्तिम महराजा हरि सिंह (1925-1947 ई० राज्य काल) के शासन काल में भी हिन्दी की उन्नति हुई। उनके प्रधान मंत्री गोपाल स्वामी अयंगर तथा तत्कालीन शिक्षा निदेशक के० जी० सैयदैन ने जम्मू व कश्मीर की शिक्षा नीति में देवनागरी लिपि पर भी बल दिया। फलत: पाठ्यक्रम में हिन्दी को भी स्थान मिला। इसके प्रचार व प्रसार में पं० हरमुकुन्द शास्त्री पं० श्रीधर कौल डुल्लू गोविन्द जी राजदान, श्री जियालाल जलाली,सर्वानन्द चरागी प्रो० अर्जुननाथ रैणा, अफताब कौल निजामी प्रो० श्रीकण्ठतोषखाणी आदि महानुभावों का योगदान स्मरणीय है। यहाँ पर यह कहना असंगत न होगा कि श्रीकण्ठतोषखानी नें 1929 ई० में सबसे पहले कश्मीरी भाषा के लिए देवनागरी लिपी को ही मान्यता दी। उन्होने पहले इस लिपि में कश्मीरी को विशेष ध्वानियों के समेत

कश्मीरी प्राइमर प्रकाशित किया। स्त्रियों की निरक्षरता को दूर के लिए उन्होंने इस लिपि में गरव्यद (गृह-विधि) आदि पुस्तकें लिखीं जो 'वीमेन्स वेलफेयर ट्रस्ट' के स्कूलों में अनेक वर्षों तक पढ़ायी जाती रहीं। बाद में यहां के कवियों की रचनायें विशेषत : कृष्णराज़दान, मास्टर जिन्दकौल तथा प्रकाश-राम कुर्यगामी की कश्मीरी रामायण, इसी लिपि में प्रकाशित हुई। इसके फलस्वरुप लाहौर से 'बहार-ए-कश्मीर' का कश्मीरी भाग भी इसी लिपि में छपता था। इसी वर्ष अर्थात् 1929 ई० में पं० कंठराजदान गुर्टू, सचिव परामर्श दात्री समिति, गवर्नमेन्ट हिन्दू गर्लज स्कूल ने पं० हरगोपालकौल की प्ररेणा से 'भूगोल कश्मीर राज्य' नामक पुस्तक लड़कियों के लिए हिन्दी भाषा में लिखी। इनके प्रयत्नों से ही विद्यालयों तथा महाबिद्यालयों में हिन्दी का अध्ययन तथा अध्यापन चलता रहा।

स्वतन्त्रता पूर्व धार्मिक तथा साहित्यिक संस्थाओं का योगदान- हिन्दी के प्रचार व प्रसार में यहाँकी स्वयं सेविनी संस्थाओं का योगदान उल्लेखनीय रहा है। इन संस्थाओं में से सर्वप्रथम 'ब्राह्मण महामण्डल' ने 1940 ई० में 'चन्द्रोदय' नामक साहित्यिक हिन्दी पत्रिका का प्रकाशन किया। इसके प्रथम संपादक श्री गंगाधर जाडू बी० ए० थे। इस पत्रिका में लेख आदि देने से जिन महानुभावों ने निष्काम रुप से काम करके इसको सफलता प्रदान की उनमें श्री गोविन्द भट्ट शास्त्री, डॉ० शिवनाथ शर्मा तथा प्रो० पी०एन० पुष्प आदि उल्लेखनीय है।

इसके बाद 'महावीर दल' ने भी 'महावीर' नामक साप्ताहिक पत्रिका प्रकाशित की। इस पत्रिका को आगे बढ़ाने में पं० दीननाथ 'दीन' दुर्गा प्रसाद काचरु, वीर विश्वेश्वर, जानकी नाथ कौल आदि ने सक्रिय भाग लिया। इन संस्थाओं के अतिरिवत आर्यसमाज, श्रीराम शैव-त्रिकाआश्रम ईश्वर शैव-त्रिक आश्रम, श्रीअलकेश्वरी सभा ट्रस्ट, सनातन धर्म प्रताप सभा, सनातन धर्म सभा (हरगोपाल कौल द्वारा स्थापित) समाज सुधार समिति आदि संस्थाओं को हिन्दी के प्रचार का श्रेय मिलता है ।

शैक्षणिक संस्थाएं - शैक्षणिक संस्थाओं में से 'वीमेंस वेलफेयर ट्रसट' तथा उसके तत्वावधान में संचलित विद्यालयों में से 'मैत्रेय स्कूल' आदि ने इस दिशामें सराहनीय काम किया। श्री अमरनाथ काक के संरक्षकत्व में 1944 ई० में नई सड़क में 'मातृ-भाषा मन्दिर' नामक विद्यालय की स्थापना हुई। इसमें प्रयाग के हिन्दी पाठ्यक्रम के अनुसार परिचय तथा कोविद आदि की परीक्षाओं में बैठने के लिए विद्यार्थियों को तैयार किया जाता था डा० सम्पूर्णानन्द तथा डा० रघुवीर जैसे उच्चकोटि के विद्वानों नें इस विद्यालय का निरीक्षण करके इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की 1942 ई० में ज़ैनदार मुहल्ला में 'महिला महाविद्यालय' की स्थापना हुई। इनके अतिरिक्त हिन्दी को लोकप्रिय बनाने में डी० ए०वी० हाईस्कूल, डी०ए०वी० कालेज, काठलेश्वर गर्लज़ स्कूल,राजकीय संस्कृत पाठशाला, देवकी आर्यापुत्री पाठशाला, धर्मार्थ ट्रस्ट तथा जम्मू व कश्मीर राज्य द्वारा संचालित सायंकालीन पाठशालाओं के योगदान को भुलाया नही जा सकता है।

स्वतंत्रता से पहले हिन्दी पत्रकिाएं, मैगज़ीन, समाचार पत्र - स्वतन्त्रता से पूर्व निकलनेवाली पत्रिकाओं में 'समाज सुधार समिति' द्वारा प्रकाशित ज्योति, कश्मीरी पण्ड़ितों का दैनिक मार्तण्ड (1932 ई०)। यद्यपि यह समाचार पत्र उर्दू में ही निकलता था तथापि विशेष उत्सवों शिवरात्रि आदि पर हिन्दी का भाग भी इसके साथ छपता था। 1936 ई० में श्री प्रताप कालेज के मैगज़ीन 'प्रताप' में सर्व प्रथमहिन्दी का भाग भी जोड़ गया। बाद में यह सिल-सिला जारी रहा। डी० ए० वी० स्कूल के 'निर्झर' नामक मैगज़ीन में प्राय: आर्य समाज से सम्बन्धित लेख हिन्दी में छपते थे। हिन्दी के प्रसारण में इस संस्था अभूतपूर्व काम किया।

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी की स्थिति - 'एक ह्दय हो भारत जननी' राष्ट्रपिता गांधोजी का नारा भौगोलिक सीमाओं का अतिकमण करके सारे भारत में फैल गया। इस नाद से कशमीर के लोग भी जागृत हुए। यहां के हिन्दी प्रेमियों ने हिन्दी के बहुमुखी विकास तथा प्रभाव को समझ लिया। अत:

वे इसके प्रचार व प्रसार में कटिबद्ध होकर व्यक्तिगत रूप से तथा संस्थाओं के माध्यम से प्रयत्नशील रहे। स्वतन्त्रता के आन्दोलन से भारतीयों को विशेषत: हिन्दी-प्रेमियों की प्रेरणा मिली। सारे देश में राष्ट्र भाषा हिन्दी के प्रति प्रेम भावना बढ़ गई। आज़ादी पाने के बाद 'भारतीय संविधान' में हिन्दी को राष्ट्रभाषा का स्थान मिला। इससे भारत की शिक्षा नीति में स्वाभाविक रुप से परिवर्तन हुआ। इसका व्यापक प्रभाव सब राज्यों पर पड़ा। जम्मू व कश्मीर में शिक्षा शास्त्रियों ने हिन्दी को प्रारम्भिक कक्षाओं से उच्च कक्षाओं तक पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया। इस दिशा में शिक्षा विभाग की और से महत्वपूर्ण कदम उठाये गए। परिणामस्वरूप विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्व- विद्यालयों में इसे समुचित स्थान मिला। कशमीर विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग की और से अनेक शोध-विर्द्यार्थियों ने अपने शोध-प्रबन्ध हिन्दी में लिखे। 1961 ई० में हिन्दी विभाग द्वारा वितस्ता, नामक अनुसन्धात्मक पत्रिका के प्रकाशन से यहाँ के युवावर्ग को एक नई दिशा मिली। इस समय विश्वविद्यालय का पत्राचार संस्थान हिन्दी में 'र्सांटफिकेट कोर्स' चलता है। इस के अतिरिक्त 'कल्चरल अकादमी' की ओर से द्विमासिक हिन्दी शीराज़ा तथा हमारा साहित्य प्रकाशित होता है। अकादेमी हिन्दी के प्रतिष्ठित लेखकों को समय-समय पर पुरस्कृत करती है तथा उनकी स्वीकृत हिन्दी रचनाओं को तथा हिन्दी संस्थाओं को अर्थिक साहित्य भी प्रदान करती है। इसी तरह ब्राह्मण महा मण्डल द्वारा साप्ताहिक प्रकाश (1961-62 ई०)तथा हिन्दी 'साहित्य सम्मेलन' द्वारा मासिक 'कश्यप' की पत्रिकायें काफी समयतक प्रकाशित हुई। राज्य के सूचना विभाग के तत्वावधान में हिन्दी की मासिक पत्रिका-योजना प्रकाशित होती है। महिला महाविद्यालय, राजकीय संस्कृत (वर्तमान गवर्नमेष्ल ओरियन्टल कालेज) श्री रुपादेवी शारदा पीठ, हिन्दू हाई स्कूल का ओरियण्टल कालेज, विश्व भारती, आदि विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में प्रभाकर (हिन्दी आनर्स)तक अध्यापन का काम होता था। इन विद्यालयों में से केवल इस समय महिला महाविद्यालय का 'ओरियष्टल विभाग' ही प्राचार्य प्रो० लक्ष्मी नारायण सप्रू के

दिशा निदेंश में सुव्यवस्थित रुप से चलता है।

जम्मू-कश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति - राष्ट्र भाषा प्रचार समिति, वर्धा के तत्वाधान में 1956 में श्री शम्भुनाथ पारिमू, श्री गोविन्द भट्ट शास्त्री, प्रो० जगद्दर जाडू आदि महानुभावों ने श्रीनगर में 'कश्मीर समिति' की स्थापना की। हिन्दी के बहुमुखी विकास के लिए यह समिति गत तीन दशकों से प्रयत्नशील है। अब तक लगभग 56307 परीक्षार्थियों ने समिति द्वारा सचालित विभिन्न परिक्षाओं में भाग लिया है। इनमें प्राय: 22416 मुस्लिम विद्यार्थो है। इस समय समिति क्षेत्रों में प्राय: 35 केन्द्र चलाती है। इन केन्द्रों में हिन्दी नि:शुल्क पढ़ाई जाती है। श्रीनगर में हिन्दी का टंकण- प्रशिक्षण-केन्द्र चल रहा है। इसके अतिरक्ति श्रीनगर में केन्द्रीय पुस्तकालय है और राज्य के दक्षिणीय तथा क्षेंत्रों के अतिरक्ति लद्दाख में भी हिन्दी पुस्तकालय है ।

प्रो० काशीनाथ दर भूतपूर्व अध्यक्ष, जम्मू-कशमीर रा०भा० प्र० समिति के अकाल काल कविलत होने से राष्टभाषा की महान् क्षति हुई है। उनके योगदान को समिति कभी भूल नहीं सकती है। 'नीलजा' के माध्यम से उन्होंने यहाँ के लेखकों को प्रोत्साहित करके एक मंच पर लाने का भरसक प्रयत्न किया। इमें वे सफल भी हुए। हाय! उनके निधन से हिन्दी जगत् की काफी क्षति हुई।

समिति की ओर से यहाँ के विभिन्न भाषाओं के लेखकों पुरस्कृत किया जाता है। इसके तत्वावधान में प्रति वर्ष हिन्दी निबन्ध प्रतियोगिता काआयोजन होता है। इसमें प्राय: सभी विद्यार्थियों को नकदी पुरस्कारों से प्रोत्साहित किया जाता है। इससे विद्यार्थियों में हिन्दी पढ़ने की रुचि बढ़ जाती है। समिति के प्रकाशनों में 'नीलजा' का महत्त्वपूर्ण योगदान है इसमें प्राय: स्थानीय हिन्दी लेखकों की कश्मीर सम्बन्धी रचनाओं का प्रकाशन समय-समय पर होता है । आज तक इस पुस्तक के ग्यारह भाग प्रकाशित हुए है। 'नीलजा' के माध्यम से जो साहित्यकार प्रकाश में आ गये है वे है–प्रो०के०एन० धर, प्रो० नीलकण्ठ गुरुटू, श्री मोतीलाल पुष्कर, डा० टी०एन० गंजू, प्रो०

लक्ष्मी नारायण सधू, श्री अवतार कृष्ण राजदान, श्री मोतीलाल प्रमोद, श्रीमती जयकिशोरी चौधरी, डा०बी०एन० कल्ला, प्रो० चमनलाल सप्रू, आदि। नि:सन्देह, इसके द्वारा स्थानीय लेखकों तथा कवियों को अपनी प्रतिभा प्रकट करने का सुअवसर मिलता रहता है। यहां पर यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि श्री मोतीलाल प्रमोद, प्रचार मंत्री के अनथक प्रयत्न से जम्मू-कशमीर राज्य में हिन्दी का प्रचार व प्रसार उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। उनका अदम्य साहस प्रत्येक हिन्दी प्रेमी को अवश्य प्रेरणा देता रहेगा।

हिन्दी की वर्तमान स्थिति - इस समय विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ने वालों की संख्या दिन ब दिन बढ़ रही है। कुछ वर्ष पहले मुख्य-मत्रों श्री शेख मोहम्मद अब्दुल्ला ने राज्य के अध्यापकों के लिए उर्दू तथा हिन्दी का ज्ञान अनिवार्य घोषित किया था। मुख्य मंत्री के इस आदेश से उर्दू जानने वाले अध्यापक हिन्दी पढ़ते है। इससे अनेक गैर हिन्दू अध्यापक इसकी जानकारी प्राप्त करके हिन्दी की परीक्षाओं में बैठते है। त्रिभाषा सूत्री शिक्षा प्रणाली में हिन्दी तथा उर्दू का विषय अनिवार्य है। हिन्दी के उज्जवल भविष्य को समझ कर यहां अनेक मुस्लिम छात्राएं 'श्री रुपादेवी शारदापीठ' में हिन्दी पढ़ती है। गत कई वर्षो से कई इस्लामिक स्कूलों तथा कालेजों में हिन्दी पढ़ाई जाती है। कश्मीर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में कुछ गैर-हिन्दू विद्यार्थी हिन्दी में शोध-प्रबन्ध लिख रहे है। इसके अतिरिक्त रंगमंच आदि में हिन्दी नाटकों का मंचन होता है। श्री पञ्चांग तथा विजयेश्वर पञ्चांग प्रतिवर्ष हज़ारों की संख्या में प्रकाशित होता है। दृश्य श्रव्य माध्यमों से अर्थात दूरदर्शन तथा आकाशवाणी केन्द्रों से हिन्दी के कार्यक्रम प्रसारित होते हैं। इससे स्पष्ट है कि कश्मीर में राष्ट्र भाषा हिन्दी का भविष्य समुज्ज्वल है।



कश्मीर शैवमत : एक संक्षित परिचय

कश्मीर प्राचीनकाल से तीन मतों शैवमत, बौद्धमत तथा सूफीमत का प्रधान केन्द्र रह चुका है। सूफीमत यहां चौदहवी शती से प्रारम्भ हुआ है। शैवतम भारत के प्राचीन मतों में से एक है। इसकी कई शाखायें भारत के भिन्न-भिन्न प्रदेशो में फैली है। भारत में इसके चार प्रधान संप्रदाय प्रचलित हैं। राजस्थासन में पाशुपत शैव, तामिलनाडू में सिद्धान्त शैव, दक्षिण करनाटक में वीरशैव और कश्मीर में अद्वैतशैव। इन चारों में कुछ समानता है। परन्तु भेद भी बहुत हैं। यहां कश्मीर के शैवमत पर संक्षिप्तरूप से प्रकाश ड़ालना वांछनीय है। भारत धार्मिक स्थिति में इतना उन्नत है कि यहां धार्मिक सिद्धान्त केवल सिद्धान्त ही नहीं परन्तु मानुष्णिक जीवन का अंग है। यों तो यह सिद्धान्त परम्परा से ही प्रचलित है और इसका अनुसरण करके भक्तजन परमानन्द को प्राप्त करते हैं परन्तु समय बीतने पर इसका क्रियात्मकरूप केवल मौखिक सिद्धान्तमात्र रह गया और इसका दार्शनिक भाग प्राय:लुप्र हो गया।

भारतीय दर्शन निगम और आगम इन दो धाराओं में प्रवाहित हुए हैं। निगम या वेद से आविर्भूत षट्दर्शन हैं। आगम धारा के अन्तर्गत शैव, शाक्त और वैष्णव दर्शनों को माना जाता हैं। यद्यपि हम सभी दार्शनिक प्रस्थानों का अम्युदय ईसा से कई शताब्दी पहले हुआ था लेकिन इनका विकसित रूप बहुत बाद में प्राप्त होता है। शैव और वैष्णव विचार धारा अत्यन्त प्राचीन काल से प्रवाहित हुई इसे तो – अनेक ऐतिहासिकों तथा विद्वानों ने स्वीकार किया है। देश और काल के प्रभाव से शैव धारा आठ शाखाओं में विभाजित हो गयी। इन शाखाओं में उत्तर भारत में काश्मीर की त्रिकधारा जिसे कश्मीरी शैवमत तथा प्रत्यभिज्ञा दर्शन आदि की संज्ञा दी जाती है और दक्षिणभारत में शैव सिध्दान्त तथा वीर शैवधारा सबसे अधिक प्रसिध्द और लोकप्रिय है।

कश्मीर में त्रिकधारा के प्रवर्तक वसुगुप्त को माना गया है। जिन्होंने

महादेव पर्वत पर शिवसूत्रों की एक नवीन दार्शनिक विचारधारा को जन्म दिया, तदनन्तर नंवी शताब्दी में आचार्य सोमानन्द ही पहले पहले इस सिद्धांत को पूर्णतया लिखित रूप में लाए। इसके बाद इस पर और पुस्तकें भी लिखीं गईं। यह क्रम प्राय: चार शताब्दियों तक ठीक चलता रहा और इतना सहित्य लिखा गया कि आजीवन स्वाध्याय के लिए पर्याप्त रहा। अद्वैतशैव साहित्य तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है - आगम शास्त्र, स्पन्दशास्त्र तथा प्रत्यभिज्ञा शास्त्र। आगम-शास्त्र यह ईश्वरीय माने गए हैं और गुरु से शिष्य को मौखिक रूप में दिए गए माने जाते हैं। कुछ प्रसिद्ध शास्त्र इस श्रेणी के यह है : मालिनी विजय तंत्र, स्वच्छन्द तंत्र, मृगेन्द्रतंत्र, विज्ञानभैरव, दूमीड़ामर तंत्र, शिवसूत्र, शिवसूत्रपरवृत्ति, भास्कर और वरदराज लिखित वार्तिक और क्षेमराज लिखित शिवसूत्रों पर व्याख्या। कुछ तंत्रों पर टीका भी उपलब्ध है। स्पन्दशास्त्र : इसमें अद्वैत दर्शन के मुख्य सिद्धान्तों का वर्णन है। इसमें मुख्य पुस्तकें यह हैं - स्पन्दसूत्र अथवा स्पन्दकारिका। इन पर भिन्न भिन्न टीकांए भी उपलब्ध हैं। श्री रामकंठ लिखित विवृत्ति, श्री उत्पलदेववैष्णव लिखित प्रदीपिका, क्षेमराज लिखित स्पन्दसंदोह और स्पन्दनिर्णय। प्रत्यभिज्ञाशास्त्र:। इसमें युक्ति और तर्क वितर्क द्वारा मुख्य शास्त्रीय सिद्धान्त दर्शाये गए हैं। मुख्य पुस्तकें यह हैं : श्री आचार्य सोमानन्द रचित 'शिवदृष्टि'। एक और विशेष पुस्तक आचार्य उत्पल देव रचित ईश्वरप्रत्यभिज्ञा है। श्री उत्पल देव आचार्य सोमानन्द का शिष्य था। ईश्वर प्रत्यभिज्ञा पर आचार्य अभिनवगुप्त की प्रत्यभिज्ञा विवृति विमर्शिनी नामक टीका में मिलती है। प्रत्यभिज्ञा शास्त्र के सारभूत श्री क्षेमराज कृत प्रत्यभिज्ञा हृदयम्। प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, प्रत्यभिज्ञासिद्धान्त का एक छोटा सा ग्रंथ है। इसकी रचना आचार्य अभिनवगुप्त के शिष्य श्री क्षेमराज ने की है। दसवी शती के आचार्य अभिनवगुप्त शैवदर्शन के मर्मज्ञ आचार्यों में से गिने जाते हैं। प्रतिभिज्ञा शब्द का अर्थ है - पहचानना, आत्मज्ञान, जीव संसार में आकर मलों के कारण अर्थात् अज्ञान के कारण अपने स्वरूप को भूल जाता है और मानसिक व दैहिक ढांचे के साथ अपने आप को एकरूप समझ लेता

है। अर्थात् परमशिव से अपने आपको अलग-थलग समझता है। जिसके कारण जीव आवागमन के चक्र में फंस जाता है। प्रत्यभिज्ञा उसको पुनः अपने शिवतत्त्व को पहचानने की युक्ति बतलाता है ताकि आध्यात्मिक स्थिति के ज्ञान को प्राप्त कर जीव शिव रूप हो जाता है। शैवदर्शन के अनुसार अपने आपको जानना मुक्ति है। ये भी कहा गया है। वस्तुतः जीव शिव का ही रूप है। परम शिव में जो शक्तियां है वही शक्तियां जीव में भी हैं जैसे इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति तथा क्रियाशक्ति है। ये शक्तियां जीव को उत्तराधिकार में मिली हुई है। लेकिन जीव में ये शक्तियां सीमित हैं, जबकि परमशिव में ये शक्तियां असीम हैं। शैव दर्शन अद्वैतदर्शन माना जाता है। इसमें शिव और शक्ति भिन्न नहीं है। शिव ही शक्ति है, शक्ति ही शिव है। शिव ज्ञानरूप है तथा क्रिया शक्तिरूप है। ज्ञान तथा क्रिया का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। शिव शक्ति का यह केवल नामरूप भेद है। जिस तरह चांद चांदनी से भिन्न नहीं है उसी प्रकार शिव शक्ति से भिन्न नहीं है। शिव शक्ति एक सिक्के के दो तरफ है। शिव शक्ति के बिना शव है। यह स्थावर जंङ्गमात्मक सृष्टि अथवा चल अचल सृष्टि शक्ति का ही विस्तार है, फहलाव है। जीव परम शिव ही है। वह केवल प्रकाशमय ही नहीं है, विमर्शमय भी है। यह प्रकाश सूरज और चांद की तरह जड़ प्रकाश नहीं है। यह चैतन्यात्मक है। शैव दर्शन में कहा है। शिव प्रकाश रूप है तथा स्पन्द हलचल रहित है। शक्ति के संयोग से ही उसमें स्पन्द की उत्पत्ति होती है। जब प्रकाशात्मक शिव के साथ शक्ति का तादात्म्य होता है वही कश्मीर शैवदर्शन की पारिभाषिक शब्दावली में संवित् कहलाती है। शक्तिहीन प्रकाश को स्वतंत्रता के अभाव से महेश्वर नहीं कहा जा सकता है। शिव और परम शिव में यहीं भेद है कि शिव शक्ति होने के कारण जड़वत् है तथा विश्वोत्तीर्ण है। किन्तु शक्ति के संयोग से वही शिव 'परम शिव' नाम से कहा जाता है। इस स्थिति में वह विश्वोत्तीर्ण होने पर विश्वात्मक भी है। इसी को 'अनुत्तर' भी कहा है।

यह दर्शन जातिभेद तथा लिङ्गभेद आदि को नहीं मानता है। जैसे : ''न में प्रियश्चतुर्वेदो मद्भक्त: श्वपचोऽपिसन तस्मै देयं ततोग्राह्यं स च मे प्रियो ह्यहम्।'' मुझे चार वेदों को जानने वाला ब्राह्मण प्रिय नही है। मेरा भक्त यदि कुत्ते का मांस खानेवाला हो, उसको भी शैवी दीक्षा देनी चाहिए तथा उससे भी शैवी दीक्षा गृहण करनी चाहिए। इसके मुख्य सिद्धान्तों में से मुख्य सिद्धान्त है यथा सर्वसमता हैं। इस संसार में सबों का कल्याण होना चाहिए तथा सब मनुष्य बराबर हैं। न कोई जाति से बड़ा है, न कोई जाति से नीच। मनुष्य अपने भाग्य को स्वयं बना सकता है। दूसरों पर उसे निर्भर नहीं रहना चाहिए। यह अपनी इच्छा शक्ति से असंभव को भी संभव बना सकता है। कश्मीर शैवदर्शन अद्वैतवाद पर आधारित है। अत: इस में द्वैतवाद की कोई गुंजाइश नहीं है। जब मनुष्य अपने आप में सबों को देखता है तथा अपने आपको सबों में देखता है। वह उस समय दुई हुई की दीवार ढ़ह जाती है। सारा विश्व एक ही नज़र आता हे। उस स्थिति में यह और मैं नहीं रहता है। केवल यह सारा संसार मैं ही हूँ। यह आध्यात्मिक चेतना उसमें उभरती है। फिर वह सबों को एक ही दृष्टि से देखता है। उस दशा में न कोई पराया है न किसी के साथ कोई झगड़ा है, न लड़ाई। वस्तुत: शैवदर्शन इस आणविक युग में विश्व शान्ति के प्रचार व. प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। 'वसुधैव कुटम्बकम्' यह संसार एक ही परिवार है। वह इस भावना से सारी दुनिया को शान्तमय तथा खुशहाल बना सकता है।



द्वितीय खण्ड

कश्मीरी साहित्य : 1979

1979 ई० का वर्ष कश्मीर में स्वर्णयुग के नाम से याद किया जाएगा। यह वर्ष 'जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी' ने लल्लद्यद के वर्ष के रूप में बड़े हर्ष तथा उल्लास के साथ मनाया। इसी वर्ष अकादमी के तत्वावधान में कश्मीर के विभिन्न क्षेत्रों में लल्लद्यद के विभिन्न पहलुओं पर सेमिनारों तथा कवि-सम्मेलनों का आयोजन किया गया, जिसमे स्थानीय लेखकों तथा कवियों ने भाग लेकर उसका दिव्य-संदेश जनसाधारण तक पहुँचाने का भरसक प्रयत्न किया। लल्लद्यद (चौदहवी शताब्दी) कश्मीरी साहित्य की प्रथम कवियत्री मानी जाती हैं, जिन्होंने उससमय प्रचलित कश्मीरी भाषा अर्थात् मातृभाषा के माध्यम से जन-साधरण को उस शैवदर्शन का उपदेश दिया, जो उससे पूर्व यहाँ के आचार्यों-सोमानन्द, उत्पलदेव तथा अभिनवगुप्तपाद ने संस्कृत-भाषा में दिया था। इस दिशा में उनका योगदान कश्मीरी साहित्य में चिरस्मणीय है। सैकंडो वर्षो के बाद आज भी उनके 'वाख' (वाक्) लोगों के जिह्वाग्र पर है। इससंबंध में 'जम्मू व कश्मीर कल्चरल अकादमी' ने लल्लद्यद का शीराजा विशेषांक प्रकाशित किया है, जो शोधपूर्णउच्चस्तरीय निबंधों का (328 पृष्ठों का) संग्रह है इस अंक के सम्पादक श्री चमनलाल चमन तथा सहायक संपादक श्री बशीर अख्तर हैं। इसमें प्राय:पच्चीस लेखको के निबंध प्रकाशित हुए है। डा० बलजिनाथ पंडित का - 'लल्लद्यद बहैसियत शिवयोगनी' (लल्लद्यद शिवयोगिनी के रूप में), प्रो० काशीनाथ दर का - 'तांत्रिक शास्तर तु ललद्यद' (तांत्रिकशास्त्र तथा लल्लद्यद), गुलामनबी फिराक़ का 'लल्ल तु इंसान दोस्ती' (लल्ला और इंसानदोस्ती), रसूल पोंपुर का 'लल्लद्यद तु सादातन हुंज़ तहरीक' (लल्लद्यद तथा सादातों की तहरीक), मशलसुल्तानपुरी का - 'लल्लद्यदि हुंद्य तज़किरनिगार' (लल्लद्यदी के रचनाकार), बदरीनाथ कल्ला का - 'ल़ल्लद्यद तु बेयन बेयन फलसफन

सुत्य हिशर' (लल्लद्यद तथा अन्य दर्शनों के साथ साम्य) आदि महत्वपूर्ण निबंध है। उदहारणार्थ डा० बलजिन्नाथ के निबंध से एक उदाहरणांश प्रस्तुत किया जाता है:-

लल्लद्यद बहैसियत शिव योगनी

'कॅशीरि हुंज़ सारिवुय ख्वतु बेशकुस्मत तमदनी दौलत छय शैव शास्त्र। शिव तु शख्ती छि भारतुक्य स्यठाह प्रॉन्य दिवता। आर्यन हुंदि योर यिनु ब्रोंह ऑस्य भारतुक्य लूख यिमन द्वन दिवताहन हुंज़ पूज़ा करान। अमि कथि हुंद्य कॉफी सबूत छि सिंद घाटी हुंद्यन कदीमी शहरन तु बॅस्यतियन हुंद्यन खंडहरन मंज़ मेलान। येमि वख्तु महाभारत लेखनु आव, तमि वक्तुक्य ज़ु बॅड्य दिवता ऑस्य शिव तु विष्णु तु ऑस्य दीवी हुंज़ पूज़ा यिवान करनु। वारु वारु बनेयि शिव तु दीवी सॉरी भारतुक्य खास दिवता। कशीरि मंज़ छि वुन्यक्यनस ति जायि जायि दीवी हुंज़, शिव सुंज़ या भैरवन हुंज़ अस्थापन मूजूद। यिमन प्यठ येतिक्यन लूकन स्यठाह पछ़ छेय। मगर यिति छय दोयिम हक़ीक़त ज़ि शिव-शास्त्रयन खास किताबन हुंज़ रचना (तसनीफ) आदि स्यठाह च़ोर्य ईस्वी सन्-चन हब्तिदॉई सॅदीयन मंज़ुय करनु आमुच़।'

इस उदाहरण का अनुवाद:-

लल्लदयद शिवयोगनी के रूप में

कश्मीरी की सबसे पुरानी तथा अमूल्य सांस्कृतिक निधि-शैवशास्त्र है। शिव तथा शक्ति भारत के प्राचीन देवता माने जाते है। आर्यों के आगमन से पहले यहाँ के लोग इन्ही दो देवताओं की पूजा करते थे। इसके प्रमाण हमें सिधु-घाटी सभ्यता के प्राचीन शहरों तथा बस्तियों के खंडहरों से मिलते हें। जिस समय महाभारत लिख़ा गया, उस समय के महान देवता शिव तथा विष्णु थे। साथ ही देवी की भी पूजा होती थी। धीरे-धीरे ये दोनों (शिव तथा देवी) समस्त भारत के विशेष देवता माने जाने लगे। कश्मीर में इस समय भी हर जगह शिव, देवी तथा भैरवों के देवालय दृष्टिगोचर होते हैं, जिन पर यहाँ के लोगों को काफी विश्वास है। मगर इसमें भी कोई संदेह नही है कि शैवशास्त्र

संबंधी विशेष ग्रंथों की रचना ईस्वी सन् की प्रारंभिक शताब्दियों में ही होने लगी।

इस संबंध में आगे उनका कथन है - कि कश्मीर में महाराजा ललितादित्य का शासनकाल पुराने इतिहास का 'स्र्वणयुग' था। उसी दौर में सोमानंद, उत्पलदेव अभिनवगुप्त तथा रामकंठ आदि आचार्यों के पूर्वजो ने इस देश में निवास किया। सोमानंद के वृद्ध प्रपितामह आचार्य संगमादित्य थे। उसके पूर्वज कैलाशपर्वत के पास रहते है। संगमादित्य उसी समय भ्रमण करते-करते यहाँ आ गए और स्थायी रूप से यहाँ रहने लगे। उन्ही की संतान इस समय कश्मीर में मौज़ूद है। इस तरह डा० बलजिन्नाथ ने अपने अनुसंधानात्मक निबंध में इतिहास के आधार पर यह सिद्ध कर दिया कि शैवशास्त्र के आचार्यों की परंपरा कश्मीर में बहुत ही पुरानी है। आगमशास्त्रों के अनुसार इसका उपदेश प्रत्येक को दिया जा सकता है। इस शास्त्र की विशेषता यह है कि इसमें जातपात का कोई बंधन नही है। चंडाल भी इसका उपदेश ले सकता है और दे सकता है जैसे:-

''न मे प्रियश्चतुर्वेदो मद्भक्त:श्वपचोऽपिसन्।
तस्मैदेयं तमो ग्राह्यं सोरपि पूज्यो यथाहम्।।''

अर्थ:- मुझे केवल चतुर्वेदी ही प्रिय नही है। यदि मेरा भक्त चंडाल (अर्थात् कुत्ता खाने वाला) भी हो, वह भी मुझे प्यारा है। उसको भी उपदेश देना चाहिए और उससे भी उपदेश ग्रहण करना चाहिए। मेरे समान वह भी पूजनीय है। अंत में शास्त्रों के आधार पर लेखक महोदय ने सिद्ध कर दिया है कि लल्लद्यद साक्षात् शिवयोगिनी थी।।

इसके अतिरिक्त इस वर्ष 'ज़म्मू एंड कश्मीर अकादमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेज' की उपलब्धियों में 'कश्मीरी शब्दकोश' के अंतिम खंड का प्रकाशन है। यहाँ पर यह कहना आवश्यक है कि गत कई वर्षों से जम्मू व कश्मीर में यह साहित्यिक संस्था डोगरी, लद्दाखी, पहाडी, गोजरी भाषाओं के समान कश्मीरी भाषा व साहित्य को समृद्ध करने के लिए कश्मीरी साहित्य

का भी प्रकाशन कर रही है। अकादमी ने कश्मीरी भाषा के व्यापक प्रचार करने के लिए एक योजना बनाई थी, जिसके अंतर्गत कश्मीरी में 'कॉशिर डिक्शनरी' बनाने को प्रथमिकता दी गई। इस संदर्भ में इसने 'कश्मीरी शब्दकोश' का निर्माण किया, जो सात खंडों में प्रकाशित हुआ है। इसका अंतिम खंड अर्थात् सातवाँ खंड 1979 ई० में छप गया। इस खंड में व ह और य ये तीन वर्ण उर्दू वर्णमाला के अनुसार आ गए है। यद्यपि 'कश्मीरी शब्दकोश' का काम एक विदेशी विद्वान सर जार्ज ग्रियर्स्न ने 1916 ई० में आरंभ करके 1932 ई० में चार खंडों में तैयार कर दिया था; तथपि उसमें इतना शब्दभंडार नही था, जितना अकादमी द्वारा प्रकाशित कश्मीरी शब्दकोश में है। वर्तमान कश्मीरी शब्दकोश के सात खंडों में प्राय: पचास हज़ार (50000) शब्द, मुहावरे आदि संकलित हैं। इसकी विशेषता यह है कि इन खंडों में प्राय: प्रत्येक शब्द की व्युत्पति दी गई है। 'रायल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल' द्वारा प्रकाशित श्री ग्रियर्सन की 'डिक्शनरी ऑफ दि कश्मीरी लैंग्वेज' में व्युत्पति का पूर्ण रूप से अभाव है। इस दृष्टि से वर्तमान 'कॉशिर डिक्शनरी' का महत्व भाषाविज्ञान की दृष्टि से अधिक है। इस खंड के संपादन अधिकारी इस प्रकार है:- (1) बदरीनाथ शास्त्री (कल्ला), (2) बशीर अख्तर, (3) मोतीलाल साक़ी, (4) अब्दुलगनी नदीम्। संपादन मंडल में काम करने वालों के नाम इस प्रकार है:-

1. प्रो० एस०के० तोशखानी (मुख्य संपादक)
2. प्रो० मुही-उद्दीन हाजिनी।
3. प्रो० पृथ्वीनाथ पुष्प
4. मिर्ज़ा गुलाम हसन आरिफ।

इस शब्दकोष का अंतिम खंड 335 पृष्ठों का है। इसका गेट-अप बहुत ही आकर्षक है। कल्चरल अकादमी के महत्वपूर्ण प्रकाशनों में से-

1. सोन अदब (हमारा अदब)
2. नूराना (प्रकाश-पुंज)

3. दुनियिहचि कथ (दुनिया की कहानियाँ) हैं। 'सोन अदब' के संपादक श्री चमनलाल चमन है। इसमें निबंध, नजमे, अफसानें तथा रुबाइयाँ हैं। यह पुस्तक 452 पृष्ठों की है। इसमें सबसे पहले 'मोहम्मद यूसूफ टेंग' का निबंध - 'सिक्क शुद रोशन ज़ि शाहनूर उल्लदीन' शीषर्क से है। लेखक ने व्यापक अध्ययन, विस्मृत अनुभव तथा गहन चिंतन के आधार पर यह निबंध लिखा है। इसमें लेखक ने कई लेखकों के मतों का खंडन करके प्रमाणों द्वारा अपने मत की पुष्टि की है, तथा अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। दूसरा निबंध 'रहमान राही' का है। इस निबंध का शीर्षक शारूत त तमिक्य तरकीबी अजज़ा (कवित्व तथा उसके कलात्मक अंग) है। इसमें राही ने कवि, कवित्व तथा उसके विभिन्न अंगों का अच्छे ढंग से विवेचन किया है। रचनात्मक तथा अरचनात्मक साहित्य में क्या अंतर है, इसका भी स्पष्टीकरण लेखक ने उदहारणों द्वारा किया है। इसके अतिरिक्त इस बहुरंगी पुस्तक में स्वर्गीय इक़बालनाथ वनपोह का - 'नागन हुंज़ छाँड़' (नागों की खोज), अमीन कामिल का - 'इकबाल तु कॉशिर शायरी' (इक़बाल तथा कश्मीरि शायरी), पी०एन०पुष्प का 'शेखु श्रुक्यन हुंद अनहार' (शेख के श्लोकों का मूल अनहार), रशीद नाजकी का 'जावेद नामा', मोतीलाल साकी का 'लल्लवाख तु केंह न्वस्खु' (लल्लवाक्य तथा कई पांडुलिपियाँ), अवतारकृष्ण रहबर का - 'फ्रायड', गुलामनबी खयाल का 'लल्लद्यद तु नुन्दर्योष' (लल्लद्यद तथा नुन्दऋषि) आदि निबंध संगृहीत हैं। साथ ही दीनानाथ नादिम, रहमानराही, मुजफर आजिम, चमनलाल चमन, गुलाम रसूल संतोष, मुहीद्दीन जौहर, वासुदेव रेह, मोहननिराश, मोतीलाल नाज़, इक़बाल फहीम आदि कवियों की नज़में भी इसमें संकलित है। दीनानाथ नादिम क्रांतिकारी कवियों में से सर्वोत्कष्ट कवि माने जाते है। इन्होंने कश्मीरी कविता में नई विधा को जन्म दिया है। इनकी एक प्रतीकात्मक कविता का नमूना प्रस्तुत किया जाता है:-

''लफज़न कम कम माने थवव
न्यथुनन्य नेशु बोद्य सादु मनुश

थ्वल थ्वल कर वॅन्य फ्वलुवुन्य पोश
नतु द्वट मारान यावुन्य जोश,
लतुम्वंजि गॉमुत्य वति प्यठ पोश
हुसनुक्य आगर मॅस्ती मदहोश
असि निश ब्योन आसि हम आगोश।
लफज़न माने कम कम थवव।।"

पद्यानुवादः-

क्या क्या अर्थ रखे शब्दों के
नग्न बुद्धिहीन सादा मनुष्य,
सुंदर विकसित कैसे फूल
या तो उछलता यौवन-मद
पद-दलित पथ के प्रसून
यौवन के स्त्रोत, मस्ती में मदहोश,
हमसे भिन्न हमसे अभिन्न
क्या क्या अर्थ रखे शब्दों के।।

प्रगतिवादी कवियों में 'रहमान राही' का स्थान सर्वोच्च है। इनकी कविताओं में परंपरागत रूढियों का खंडन तथा रोमांचकारी दृश्यों का अनोखा वर्णन पाया जाता है। इनकी कवितएँ अधिकतर प्रतीकात्मक हुआ करती हैं। इस पुस्तक का एक भाग अफसानों का भाग है, जिसमें अख्तर मुहीउद्दीन की 'मॅत्य कथु' (पागल की कथा), अल्लीमोहम्मद लोन की 'शुन्य' (शून्य), अमीन कामिल की 'क्वकर जंग' (मुर्गों की लड़ाई), बंसी निर्दोष की 'लवमेरेज', हृदयकौल भारती की 'हमज़ाद', हरिकृष्ण कौल की 'शमशानु वॉराग' (शमशान वैराग्य), स्वर्गीय डॉ० शंकर रैना की 'व्वन्य कुहुंज़ छि वॉर्य' (अब किस की बारी है) आदि कहानियाँ संगृहीत है। पद्य की एक विधा गज़ल है। कश्मीरी साहित्य में अब गज़ले बहुत लोकप्रिय हैं। पद्य की एक विधा गज़ल है। अतः इनका समावेश भी 'सोन अदब' में है। गज़ल लिखने की कला में रहमान

राही, अमीन कामिल, दीनानाथ नादिम, मिर्ज़ा आरिफ, मरगूब बानिहाली, शफी शौक़, मखनलाल महव, फारोक नाज़की, मोहम्मद अयूब बेताब, शाहिद बडगामी आदि उल्लेखनीय हैं। रूबाइयों में केवल मीर गुलाम रसूल नाज़की की रूबाई प्रकाशित हुई है।

अकादमी का अन्य प्रकाशन 'दुनियिहचि दलीलु' (दुनिया की कहानियाँ) है। इस में दुनिया की मनोरंजक तथा रूचिकर कहानियों का संग्रह है। इस पुस्तक में 227 पृष्ठ है, तथा कुल 32 कहानियाँ हैं जो विभिन्न भाषाओं से अनूदित की गई हैं। इस कथा-संग्रह की अंतिम कहानी 'ज़ख्मी ब्रग' (ज़ख्मी बक) है। इन कहानियों को पढ़ने से पाठक को विभिन्न संस्कृतियों का ज्ञान होता है। विश्व-बंधुत्व तथा राष्ट्रीय एकता की भावना को सुदृढ़ बनाने में यह पुस्तक निश्चय ही उपयोगी सिद्ध हो सकती है। ऐसा मेरा मत है।

नूरानी (प्रकाश पुंज) नामक पुस्तक के संपादक मोहम्मद अहमद अहसन हैं। इस पुस्तक में एक सौ पैंतालीस पृष्ठ है, और नुन्दऋषि के जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में कवियों द्वारा रचित यह पुस्तक कश्मीरी पद्यों का संकलन है। इस संबंध में इस ऐतिहासिक तथ्य की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना यहाँ पर मै उचित समझता हूँ कि नुंदऋषि के छ:सौवे वर्ष का जन्मोत्सव मनाने का निश्चय 'जम्मू व कश्मीर सरकार' ने 1978 ई० में किया। इसके लिए राजकीय स्तर पर एक कमेटी का गठन किया गया। इस कमेटी ने इस महान कवि का संदेश घर-घर पहुँचाने के लिए रूपरेखा बनाई जिसके अंतर्गत एक वर्ष भर में यह छ: सौवीं शती बड़े धूमधाम से मनाई गई। फलत:इनके व्यक्तित्व तथा कृतित्व दृश्य-श्रव्य साधनों द्वारा लोगों के सामने रखे गए। इस संदर्भ में 'अकादमी के तत्वाधान' में कश्मीर में बड़े पैमाने पर स्कूलों-कालेजों तथा 'कश्मीर विश्वविद्यालय' में सेमिनारों का आयोजन किया गया। हमारे कवियों ने भी इस महान कवि के प्रति प्रेमोद्गार प्रकट किए। नुंदऋषि के कलाम में से कई प्रसिद्ध पद्यों का चयन किया गया जिन पर कश्मीरी में कविताओं की रचना कराई गई। नुंदऋषि के कलाम में से कविता का अंतिम पाद कवियों को

दिया गया जिसके आधार पर उन्होंने विभिन्न छंदों में कविताएँ लिखकर उस महान् कवि के प्रति भावभीनी श्रद्धांजलियाँ अर्पित की।

'नूराना' इन्ही पद्यों का संग्रह है। 'युस करि ग्वांगुल सुंय करि ग्राव'। इस पद्य पर रचना करने वालों के नाम पीतांबर नाथ फानी, फारोक नाज़की, जवाहरलाल सरूर, गुलाम मोहम्मद गमगीन, मक्खनलाल कॅवल, निशात अंनसारी, श्यामलाल परदेसी, गुलाम हसन तस्खीन, नसीम शफाई, एस राजी, अली मोहम्मद शाहबान, अब्दुल रशीद इरशाद, सईद, शरीफ उद्दीन परवाज, अब्दुल रहमान तालिब।

'बार ख्वदाया पाप निवार' इस छंद पर निम्नलिखित कवियों ने रचनाएँ की :– दीनानाथ नादिम, मोतीलाल साकी, मशलसुल्तानपुरी रसूल पोम्पुर, जी०एम० शाद, मक्खन लाल बेकस, मोहनलाल आश, मोतीलाल नाज़, मोहननिराश आदि।

इस पुस्तक का सर्वोत्कृष्ट अंश 'नज़राना' है। इस भाग में दीनानाथ नादिम, रहमान राही आदि कवियों ने विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत उन्हें श्रद्धांजलियाँ अर्पित कीं। इनमें प्रार्थना शीर्षक के अंतर्गत मोहन निराश की प्रतीकात्मक कविता सर्वोत्तम है। जैसे:-

''रुम गॅयिम सिरियि तापस वॅछ़ गट्
अकोल्य समयस वॊथ अन्धकार।
पाँच़व प्राणव क्रख लयि दृक वट्,
बार ख्वदाया पाप निवार।।''

अनुवाद:- सूर्य में दरार पड़ जाने से प्रकाश मन्द हुआ। कुसमय के कारण अंधेरा चारों ओर छा गया। पाँच प्राणों ने एक साथ चीख मारी। रे खुदा! मेरे पापों को दूर कर।

अकादमी द्वारा प्रकाशित 1979 ई० के चतुर्मासिक 'शीराज़ा' के तीन अंकों में से एक युवा लेखन अंक भी पाठकों के सामने आया है, जिससे कश्मीर के नवोदित कवियों तथा लेखकों की रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। इसमें

अफसाने, नज़में, लेख, गज़लें तथा रूबाइयाँ हैं। इसमें गुलशन मज़ीद की कहानी - 'म्योन सफर नामा' तथा श्री सोहनलाल कौल की -'वॉरान ब्' (वैरान में) नामक कहानियां उल्लेखनीय है। नज़मों में बशर बशीर की 'जदीदयत', प्रेमी रूमानी की 'अख नज़म' (एक नज़म) तथा उपेन्द्र रैणा की नज़म भी प्रशंसनीय हैं। राजेन्द्र पटवारी का 'कॉशरि ज़बॉन्य हुंद माखज़' (कश्मीरी भाषा का स्त्रोत) लेख भी उल्लेखनीय है।

गज़लों में बालकृष्ण संन्यासी, रफीक हमराज तथा जावेद बड़गामी के नाम गणनीय है।

'शीराज़ा' का दूसरा अंक 'रसाजावदानी विशेषांक' के नाम से प्रकाशित हुआ है। इसमें रसाजावदानी के व्यक्तित्व तथा कृतित्व पर पूर्ण रूप से प्रकाश डाला गया है। रसाजावदानी भद्रवाह के एक प्रसिद्ध कवि माने जाते हैं। इनका जन्म 1901 ई० में हुआ। यह आंरभ में उर्दू में शायरी करते थे। जो आजकल भी लोगों के जिह्वाग्र पर है। इस अंक में मिर्ज़ा आरिफ, अवतार कृष्ण रहबर तथा प्रो० आर०एन० कौल के नाम उल्लखनीय हैं। रसाजावदानी पर आलोचनात्मक दृष्टि से अवतारकृष्ण रहबर का निबंध ही उपयोगी है। तीसरे अंक में कश्मीरी भाषा के विषय में निबंध, गज़ले आदि भी प्रकाशित हैं।

यहाँ पर इस तथ्य पर प्रकाश डालना भी जरूरी है कि 'अकादमी' ने इसी वर्ष नुंदऋषि नामक पुस्तक राष्ट्रभाषा में प्रकाशित की। इसमें शेख नूरद्दीन ऋषि अथवा नुंदऋषि की कविता का प्रतिनिधि संकलन, परिचय आलोचना तथा हिंदी पद्यनुवाद भी दिया गया है। इस पुस्तक के संपादक श्री रतनलाल शांत है। इस पुस्तक में नुंदऋषि के मूल श्रुक्य (श्लोक) नही दिए गए है, जिनका पद्यानुवाद इन लेखकों ने किया है। इनके अभाव में पाठकों को मालूम नहीं होता है कि यह पद्यानुवाद मूल श्रुक्यों (श्लोकों) के वास्तविक अर्थ को प्रकट करने में समर्थ है या नहीं।

इसी वर्षा 'कुलियाति शेख-उल्ल आलम' के संपादक श्री मोतीलाल

साकी को अपनी रचना 'मनसर' नामक कश्मीरी कविता-संग्रह पर 'साहित्य अकादमी' का पुरस्कार भी मिला। कुलियाति शेख उल्लु आलम (शेख नूरद्दीन के पद्दों का संग्रह) कल्चरल अकादमी ने इसी वर्ष प्रकाशित किया।

अकादमी के अतिरिक्त 'कश्मीर विश्वविद्यालय' का कश्मीरी विभाग गत कई वर्षो से कश्मीरी भाषा व साहित्य की समृद्धि के लिए प्रतिवर्ष कश्मीरी भाषा में विविध विषयों की पुस्तके प्रकांशित कर रहा है। कश्मीरी में अभी गद्य का विकास समुचित रीति से नही हुआ है। अत: इस अभाव को दृष्टि में रखकर गद्य-ग्रंथों की वृद्धि के लिए अधिक उपाय किए जा रहे हैं। इस संदर्भ में 1979 ई० में जो पुस्तकें विभाग की ओर से प्रकाशित हुईं है, वह इस प्रकार है:-

1. तहजीबुक तवोरीख — नाजीमुनवर तथा शफी शौक
2. काशुर शैवमत— बदरीनाथ कल्ला
3. यंशुत तु सोन्य यंश — रशीद नाज़की
4. नफसियात — अब्दुलगनी मदहोश
5. कोशुर लुकु थेटर — महमद सुब्हान भक्त
6. कोशुर हिंदी रीडर — डा० त्रिलोकी नाथ गंजू

इसके अतिरिक्त इस विभाग का महत्वपूर्ण प्रकाशन 'अवहालनामा' है। इसके संकलकर्ता श्री चमनलाल चमन तथा बशीर अख्तर हैं। इस पुस्तक में कश्मीरी कवियों, साहित्यकरों तथा विद्वानों का संक्षिप्त परिचय प्राभाणिक रूप से दिया गया है। इसके अतिरिक्त जिन साहित्यकारों ने कश्मीरी भाषा के अतिरिक्त हिंदी, उर्दू, पंजाबी, अंग्रेजी तथा संस्कृत आदि माध्यम के द्वारा कश्मीरी भाषा व साहित्य की सेवा की, उन साहित्यकारों का परिचय भी इसमें दिया गया है। इस पुस्तक में तेरहवी शती से लेकर आज तक के सभी साहित्यकारों का परिचय दिया गया है।

अनुसंधान करने वालों के किए यह एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इस पुस्तक में 316 पृष्ठ हैं। कागज़ तथा छपाई भी अच्छी है। इस पुस्तक के

संकलनकर्ता ने कई साहित्यकारों का परिचय पाँच अथवा छः वाक्यों में दिया है, तथा कई साहित्यकारों का विस्तृत रूप से अर्थात् पूर्ण रूप से इससे पाठकों को पक्षपातपूर्ण रवैये का आभास होता है।

भारत में प्रायः हिंदी जानने वालों की संख्या सबसे अधिक है। अतः हिंदी माध्यम द्वारा 'कश्मीरी' सीखने के लिए किया जाने वाला प्रयास प्रशंसनीय ही नहीं, समयानुकूल भी है। इस अभाव की पूर्ति के लिए कोशुर-हिंदी-रीडर (कश्मीरी-हिंदी रिडर) कश्मीरी विभाग का एक महत्वपूर्ण प्रकाशन है। इस रीडर की विशेषता यह है कि यह दोनों लिपियों-नस्तालीख तथा देवनागरी लिपि में लिखा गया है।

इस विभाग का अन्य प्रकाशन 'कॉशिरि अदबुक फिकरी पॊत मंज़र' (कश्मीरी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि) है। इसके संपादक रहमान राही तथा सहायक शफी शौक हैं। इसमें 239 पृष्ठ हैं। इसमें शैवमत तसवुफ (भक्ति) आदि विषयों पर निबंध लिखे गए हैं। लेखकों के समेत इन विषयों की सूची दि गई है।

1. 'शैवमत तु अज़कल तमिच लगहॉरी।
   (शैवमत तथा आजकल उसकी उपादेयता) -मोतीलाल पुष्कर
2. शैवमत तु लल्लद्यद (शैवमता तथा लल्लद्यद)
   -मोतीलाल साक़ी
3. शैवमत तु कॉशिर शॉयरी
   (शैवमत तथा कश्मीरी शायरी) –त्रिलोकी नाथ दर आदि।

सोमान्द की 'शिवदृष्टि' पुस्तक के आधार पर पुष्कर ने शैवमत की विशद व्याख्या की है। श्री त्रिलोकीनाथ दर ने सूफी कवियों अर्थात् वहाबखार, शमसफक़ीर, अहमद भट्टवारी, रहमानडार, समदमीर की कविताओं पर प्रकाश ड़ाला। शैवमत की कविताओं में से एक कविता का अंश उदहारण के रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया है:-

'शुन्याह गॅछ़िथुय ओस म्योन ओलय।।'

अर्थात्:- मेरा आलय शून्य से ऊपर था। इसकी व्याख्या करते समय लेखक ने शैवदर्शन के अनुसार शून्य शब्द की व्याख्या नहीं की है। लगता है उन्होंने शैवदर्शन के मूल स्त्रोतों का भी अध्ययन नही किया है। इसके अतिरिक्त इस पुस्तक में 'अख्तर मुहीउद्दीन' आदि के निबंध भी 'जॅदीदयत' पर लिखे गए हैं।

कश्मीर में कश्मीरी भाषा का प्रचार व प्रसार के लिए दो साहित्यिक संस्थाएँ-हलका अदब सोनावारी ('हाजन' में संस्था) तथा अदबी, मरकज़ कमराज़ (सोपोर में संस्था) गत गई वर्षो से प्रयत्नशील हैं। ये संस्थाएँ समय-समय पर सेमिनारों कवि-सम्मेलनों आदि का आयोजन करती रही हैं। हलका अदब सोनावारी की ओर से प्रतिवर्ष वुलरक्यु मलर (वुलर की लहरें) नामक पुस्तक प्रकाशित होती है, 1979 ई० में इस संस्था ने 96 पृष्ठ की पुस्तक प्रकाशित की। इसमें लेख, अफसानें, गज़लें आदि शामिल है। इन लेखों में से प्रो० मुहीउद्दीन हाजिनी का प्रथम लेख 'कशकोल' (भिक्षा-पात्र) है। वस्तुत: प्रो० हाजिनी सैक्यूलर इज़्म के व्यापक अर्थ को समझाने में असमर्थ हैं। इस लेख में उनके संकीर्ण दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। इस पुस्तक का स्तर निम्नकोटि का ही है।

'अदबी मरकज़' की ओर से भी 'मशाहीर कमराज़' नामक पुस्तक 1979 ई० में, प्रकाशित हुई है। इसमें 104 पृष्ठ हैं। इसके संकलनकर्ता मशलसुल्तानपुरी तथा निशात अंसारी हैं। इसमें प्राय: कमराज़ में उत्पन्न हुए लेखकों-कवियों आदि के लेख संग्रहीत हैं।

देवनागरी लिपि के माध्यम से कश्मीरी भाषा व साहित्य का प्रचार करनेवाली पत्रिकाओं में कश्मीरी समिति द्वारा प्रकाशित 'कॉशुर समाचार' अनेक वर्षों से महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। इंस समिति ने इस वर्ष 'संत अंक' प्रकाशित किया था जिसमें अंग्रेजी, हिंदी तथा कश्मीरी में विद्वानों के निबंध आदि छ्पे है। कश्मीरी अनुभाग में सर्वानन्द कौल प्रेमी तथा बदरीनाथ कल्ला के निबंध उल्लेखनीय हैं। बदरीनाथ कल्ला का 'नुन्दऋषि तु कॉशुर

शैव फलसफ' (नुंदऋषि तथा कश्मीर शैवदर्शन) नामक निबंध दार्शनिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसमें लेखक ने नुंदऋषि के श्लोकों (श्रुकों) पर शैवदर्शन का प्रभाव स्पष्ट रूप से दर्शाया है। कश्मीर की संत कवियत्री रुपभवानी पर श्री सर्वानन्द कौल 'प्रेमी' का निबंध अनुसंधान की दृष्टि से बहुत ही उपयोगी है।

भाषा अभिव्यक्ति का साधन है। चाहे वह कश्मीरी हो, बंगाली हो, पंजाबी हो या हिंदी या अन्य कोई भाषा हो। उक्त संस्थाएँ, विभाग आदि कश्मीरी भाषा के द्वारा कश्मीरी व साहित्य के प्रचार में संलग्न हैं। इन संस्थाओं के अतिरिक्त भी यहाँ एक प्रतिनिधि संस्था गत कई वर्षों से राष्ट्रभाषा के द्वारा कश्मीरी साहित्य को बढ़ावा देने में कृतसंकल्प है। वह है-जम्मू व कश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति (श्रीनगर)। यह समिति प्रतिवर्ष हिंदी में 'नीलजा' नामक पुस्तक प्रकाशित करती है। इस वर्ष समिति ने नीलजा का कश्मीर-संस्कृति विशेषांक (पाँचवाँ तरंग) प्रकाशित किया। इसमें चार भाग है। इतिहास, ललितकला, भाषा और साहित्य तथा कश्मीर दर्शन। इतिहास खंड में आचार्य दीनानाथ का निबंध - 'कश्मीर के ऐतिहासिक काव्य' तथा डॉ० भूषण कुमार डेम्बी का - 'कश्मीर के महत्वपूर्ण शिलालेख' नवीन ऐतिहासिक तथ्यों पर प्रकाश डालते हैं। भाषा और साहित्य खंड में प्रो० बदरीनाथ कल्ला का-वैदिक तथा कश्मीरी भाषा नामक निबंध इस तथ्य की ओर पहली बार संकेत करता है कि कश्मीरी भाषा उतनी ही पुरानी है, जितना ऋग्वेद। कश्मीर दर्शन में डा० कौशल्या वल्ली ने शैवदर्शन तथा वेदांत का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। इस प्रकार से नीलजा का (वितस्ता) में हमें नाना प्रकार की तरंगों का अर्थात् वीचि-विलास का दर्शन होता है।

उक्त तथ्यों को दृष्टि में रखकर यदि हम 1979 ई० वर्ष को कश्मीरी साहित्य का स्वर्णयुग कहे, तो कोई अत्युक्ति न होगी।



कश्मीरी साहित्य : 1982

गत पच्चीस वर्षो से 'जम्मू व कश्मीर कल्चरल अकादमी' तथा 'कश्मीर विश्वविद्यालय' कश्मीरी साहित्य के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। प्रतिवर्ष ये दोनों विभाग कश्मीरी साहित्य की विशिष्ट रचनाओं का प्रकाशन करके इसका संवर्धन कर रहे है। 'जम्मू व कश्मीर कल्चरल अकादमी' अब त्रैमासिक 'शीराज़ा' नामक पत्रिका के बजाय द्विमासिक शीराज़ा का प्रकाशन करके उसमें साहित्यकारों की विभिन्न साहित्यिक विधाओं को यथोचित स्थान देकर हर प्रकार से उनके उत्साह–वर्धन में प्रयत्नशील है। 1982 ई० में शीराज़ा के पांच छोटे अंक तथा सोन-अदब (हमारा साहित्य) मामक एक बृहत् विशेषांक प्रकाशित हुआ है।

इस कड़ी के पहले अंक में आठ गज़लों तथा विभिन्न विषयों पर लेख आदि का समावेश हुआ है। इन गज़लों में कश्मीरी साहित्य के मूर्धन्य कवि श्री दीनानाथ नादिम, चित्रकार तथा सुप्रसिद्ध कवि श्री गुलामरसूल संतोष की गज़लें भी सम्मिलित हैं। गुलामरसूल संतोष शैवदर्शन से बहुत प्रभावित हैं। उनकी कविता विभिन्न दर्शनों के प्रभावों से अछूती नहीं रही है। यदि सक्ष्मदृष्टि से देखा जाए तो उनकी इस गज़ल में शैवदर्शन के सिद्धांतों का प्रतिबिम्ब पूर्णरूप से दृष्टिगोचर होता है, जैसे:-

''म्यानि रंगु रख्त रंग रंगदार गव
वननु रॊस्तुय दफहतन हज़हार गव
शब्दु वॉणी अबदु बोद दुनियाह नच़ान
गव अगर तॊलि क्याह संहार गव।।''

शैवदर्शन में जीव को प्रमाता कहा जाता है। प्रमाता ही संसार के नाना रंगों को देखता है। यह संसार परमशिव की स्वातंत्र शक्ति का विलास है। अंतहीन ब्रह्मांड में अनेक विश्व नाचते है। वह स्वयं शब्द ब्रह्म है। अत:

वह आदि तथा अंतहीन है। यदि ऐसी स्थिति है, तो संहार कैसे होता है? शैवदर्शन के अनुसार विश्व का संहार किसी रूप में नही होता है। क्योंकि विश्वोत्तीर्ण अवस्था में परमशिव प्रकाश के रूप में ब्रह्मांड में व्याप्त है, विश्वमय अवस्था में वह विमर्श के रूप में व्याप्त है। इस प्रकार संतोष ने यह ग़ज़ल शैवदर्शन के परिप्रेक्ष्य में लिखी है। ऐसी मेरी धारणा है। इस अंक में जो निबंध समाविष्ट हुए है, उनमे महत्वपूर्ण है - काशिर ज़बान त लिसांनियात (कश्मीरी जबान और भाषा विज्ञान)। इस विषय पर श्री रूपकृष्ण भट्ट का लेख भी पाठकों के सामने आया है। इस लेख में लेखक ने कश्मीरी भाषा के सर्वेक्षण पर प्राच्य तथा पाश्चात्य विद्वानों की रचनाओं का उल्लेख करते हुए उनका संक्षिप्ति परिचय दिया है जैसे-इसी अंक में हामिदी कश्मीरी ने कश्मीरी के विख्यात कवि 'रसूलमीर' की एक ग़ज़ल की व्याख्या की है। जैसे:-

''बुति नो यि दूर्यर चोन ज़रय, बाल मरय यो।
क्याह करु थोवथम ज़रु ज़रय, बाल मरय या।।
दिल खस्त कॅरथसनस, क्याह छय वर्प सुंज़ शमशीर।
कम शेर मॉरिथ खंजरय, बाल मरय यो।।
दिलबर अच़्यतन बर म्यानि द्यवु बर हो बु द्यन।
च़े रोस्त गुल ज़न गॅयस बरय, बाल मरय यो।।''

इस गज़ल में विरह-व्यथा महबूबा अपने प्रियतम को सम्बोधित करते हुए बताती है:-

तेरा विरह कैसे सहूं बाला मैं मर जाऊं रे।
अरमान रखे करूं क्या बाला मैं मर जाऊं रे।।
किया छलनी दिल मेरा तूने बाला मैं मर जाऊं रे।
कितने शेर मारे खंजर से बाला मैं मर जाऊं रे।।
घुसे प्रियतम मेरे द्वार में दिनभर रहूं मैं वहां।
फूल सम तुम बिन मुर्झा गई बाला मैं मर जाऊं रे।।

दूसरे अंक में निबंध, गज़ल आदि विषयों पर भिन्न-भिन्न सामग्री

उपलब्ध है। इसमें सबसे पहले श्री शेख मुहम्मद अब्दुल्ला का लेख कश्मीर की प्रसिद्ध कवियत्री - हब्बाखातून पर प्रकाशित हुआ है। यह लेख श्री चमन लाल चमन ने उर्दू से कश्मीरी में अनूदित किया है। इस लेख का सार इस प्रकार है:-

शेख साहिब ने अपने लेख में हब्बाखातून के बारे में जानकारी देते हुए लिखा कि हब्बाखातून के विषय में इतिहासकार खामोश है। पहले यह विचार किया जाता है कि वह पांद्रेंठन (पुराणधिष्ठानम्) के पास दफनायी गई थी, किंतु बिहार के 'बिस्वक' गांव के बुजर्गों ने मुझे बताया कि हब्बाखातून अपने प्रियतम युसुफशाह चक के पांव के नीचे दफनाई गई थी। इस संबंध में उन्होंने अपने पूर्वजों से सुनी हुई परंपरागत घटनाएं भी बता दीं। जरूरत इस बात की है कि गवेषक इस ऐतिहासिक घटना की भ्रांति दूर करें। इस तरह शेख साहिब का यह लेख यद्यपि ऐतिहासिक दृष्टि से उल्लेखनीय है, तथापि इसके मर्म को जानने की अत्यंत आवश्यकता है। अन्त:साक्ष्य तथा बाह्यसाक्ष्य के आधार पर अभी यह प्रमाणित नहीं हुआ है कि हब्बाखातून बिहार में दफनाई गई थी। कल्हण के बाद मध्ययुगीन उत्तरवर्ती इतिहासकारों में से किसी इतिहासकार ने इस घटना का संकेतमात्र तक नहीं किया है। स्पष्ट है कि यूसुफशाह चक के वहां मरने के बाद सम्भवत: उसके अनुयायियों ने यह बात फैला दी हो, अत:जनश्रुति पर आधारित कोई घटना असत्य भी हो सकती है। इसके अतिरिक्त श्री दीनानाथ शास्त्री (यछ) ने क्षेमेंद्र पर अनुसंधात्मक लेख लिखा। क्षेमेंद्र के जीवन परिचय के साथ उन्होंने उनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय भी इसमे दिया है। इनकी रचनाओं का उल्लेख करते हुए शास्त्री जी लिखते है:- कलाविलास, समय-मातृका तथा दर्पदलन पर तीनों कृतियां व्यंग्यात्मक तथा उपदेशात्मक है। इनमें वेश्याओं, कुहनियों, कपटियों,दुष्टों, विटों आदि पर सर्वप्रथम क्षेमेंद्र ने लेखनी उठाई है। क्षमेंद्र ने चतुर्वर्गों-अर्थात धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष मे, से केवल अर्थ पर अधिक बल दिया है। धर्म, काम तथा मोक्ष की उपासना मनुष्य तब तक ही करता है जब तक उसका पेट

भरा हुआ हो अर्थात् धन के बिना धर्म, काम तथा मुक्ति की चिन्ता कोई नहीं करता है। इस अंक में श्रीसर्वानन्द कौल प्रेमी के वाख, महीउद्दीन गौहर आदि की गज़लें भी है। तीसरे अंक में भी इसी तरह लेख, गज़ल आदि हैं। इस अंक में जिन कवियों की गज़ले हैं, उनके नाम-अमीन कामिल, मुहम्मद अहमद अहसन, अबदुल रहमान आजाद, रफीक राज़ तथा शाहिद आदि है। इसमे श्री दीनानाथ 'नादिम' की प्रतीकात्मक कविता-हार्यसाथ (दुखद-घटनाएं) है। कवि आशावादी है। वह विश्वरूपी फलदार वाटिका को हमेशा फलता-फूलता देखना चाहता है, किंतु उग्रवादी तत्व इस मेवेदार बाग को तहस नहस करना चाहते है, जिससे कवि को भय भी लगता है और दुख भी होता है। अत: वह हर प्रकार से फूलों की रखवाली करके उनकी सुगंध क़ायम रखना चाहता है। यही भाव नादिम की इस कविता में व्यक्त हुआ है:-

''कुल्य लंजि प्यठ यॆलि द्राव बामुन
खति द्राव सुबहोय होवुन पान
माछ तुलरि रॊट ऑननस ज़ामुन
कांप्यव ऑंद पॊख वॅद्य वॅद्य ख्वय
तनु प्यठु अज़ताम म्यवु बागन मंज़
पोश छ़टान रूद्य ख्वश बोय।।''

हिंदी:-

अंकुर फूटा तरु की कांख से
भोर में दिखाया अपना स्वरूप
क्षुब्ध किया मधुमक्खी ने उसको
कांपे सब जन देख कुभाव
तबसे फलदार वाटिकाओं में
स्थिर रखते सुगंध अपने फूल।।

इसके अतिरिक्त श्री टी०एन०खजांची का ऐतिहासिक तथा पुरातत्व विषयक 'बुर्जहोम' नामक लेख इसमें प्रथम बार छपा है। उनके मतानुसार

'बुर्जहोम' की कहानी कश्मीर के उन प्राचीन लोगों की कहानी है, जो 2500 ई० पूर्व या उससे पहले उस ज़माने में वहां पहुंच गए जबकि सतीसर का पानी निकाला गया था और ज़मीन बस्ती के योग्य बनी हुई थी। यह लेख अपने विषय का उत्कृष्ट लेख है। कश्मीरी में पुरातत्व संबंधी लेख बहुत ही कम मिलते हैं। चौथा अंक युवा-अंक है। इस अंक में यहा के उभरते हुए कवियों की कविताएं तथा लेखकों के लेख आदि प्रकाशित हुए हैं। पांचवां अंक भी अनेक विषयों से समलंकृत है। छटा अंक - 'शीराज़ा' का विशेषांक सोन अदब (हमारा साहित्य) के नाम से सन् 1982 में प्रकाश में आया है। यह विशेषांक इंद्रधनुष के समान विविध साहित्यिक विधाओं के रंगों से पाठकों को आत्कृष्ट करता है। यह चार भागों में विभाजित है। पहले भाग में निबंध, दूसरे भाग में नज्में, तीसरे भाग में कहानियाँ, चौथे भाग में गज़लें हैं।

श्री अबदुल सतार रंजूर ने अपने लेख में ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से भारत के प्राचीन तीर्थों, बौद्धधगुफाओं तथा मस्जिदों आदि का संक्षिप्त परिचय दिया है, जैसे - सारनाथ, बौद्धगया, नालन्दा, सांची, एलौरा, अजन्ता एलिफेंटा, बनारस, भुवनेश्वर, पुरी, सोमनाथ, महाबली पुरम्, तिरूपति, अज़मेर, निज़ाम उद्दीन आदि। इस लेख में यह त्रुटी है कि लेखक ने जिन पुस्तकों का अध्ययन करके यह लेख लिखा है, उन पुस्तकों का हवाला नहीं दिया गया है। श्री बदरीनाथ कल्ला का लेख ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इस लेख में लेखक ने कश्मीर के उन बौद्ध प्रचारकों का संक्षिप्त परिचय दिया है, जिन्होने मध्यएशिया में जाकर महायान बौद्धमत का प्रचार किया। उनमें संघभूति, गौतमसंघ, विमलाक्ष, बुद्धयश, बुद्धजीव, गुणवर्मन तथा बुदधवर्मन आदि हैं।

कहानियों में से श्री अख्तर मृहीउद्दीन की इरतिका (उद्भव) बशीर अख्तर की - 'तिम यिम आफताब ख्यनि खच़ोय' (वे जो सूरज को निगलने चले)कहानियां उत्कृष्ट हैं। श्री अख्तर की कहानी प्रतीकात्मक है। इसमें संदेह नहीं है कि सूरज दुनिया को अपने प्रकाश से प्रकाशित करता है, लेकिन कुछ लोग उसके व्यापक तेज अथवा प्रकाश को मानने के लिए तैयार नहीं है। वे

सूरज के प्रकाश को पराया प्रकाश अर्थात चन्द्रमा का प्रकाश समझकर उसके महत्व को स्वीकार नहीं करते हैं। अंत में वे ईर्ष्यावश उस पर थूकते हैं, जो उल्टे उनके मुखों पर ही पड़ता है। इस कहानी में सूरज प्रतीक है महान् विभूतियों का। लोग उनके गुणों को मानते नहीं है। उनके विरुद्ध अंटसंट बोलते है लेकिन उनके इस नीच व्यवहार से उनका प्रभाव घटता नहीं। कहानीकार ने इस तरह कहानी को आधुनिक युग के अनूकूल बनाकर इसके आयामों को विस्तृत कर दिया है।

कश्मीर विभाग की ओर से इस वर्ष (1982 ई० में) दो पुस्तकें प्रकाशित हुई - 'काशरनसरक्य तामीरकार' (कश्मीरी गद्य के निर्माता) तथा 'जदीद कॉशिर शायरी' (आधुनिक कश्मीरी कविता)। प्रथम के लेखक श्री मशल सुल्तानपुरी है तथा दूसरे के लेखक डा० हामिदी कश्मीरी। श्री सुल्तानपुरी ने कश्मीरी साहित्य संबंधी सामग्री जुटाकर उसका अध्ययन करके पुस्तक लिखी है। पुस्तक के पृष्ठों के नीचे उन किताबों का हवाला भी दिया गया हे, जहां से लेखक ने उस विचारधारा को उदधृत किया है। इतना होने पर भी इसमें कुछ त्रुटियां रह गई हैं। प्राकृत काल का वर्णन करते हुए लेखक ने व्यर्थ ही उन विद्वानों के लेखों का हवाला दिया है जिन्हें स्वंय प्राकृत तथा संस्कृत का ज्ञान ही नहीं है और जिन्होंने मूल स्त्रोतों का अध्ययन न करके अपना मत प्रामाणिक रूप से स्पष्ट नहीं किया है। परिणामस्वरूप इससे पाठकों में भ्रांति पैदा होती है। नागसेन की पुस्तक 'मिलिन्द पन्हा' का उल्लेख करते हुए लेखक ने 'पन्हा' शब्द का कपोलकल्पित अर्थ-काश्मीरी में 'पौन' यानी अंग्रेजी में जिसे wedge ('पन्हा' का अर्थ प्रश्न है) कहते है, किया है इसका प्रकाशक-कश्मीर विश्वविद्यालय है।

वैज्ञानिक, राजनैतिक तथा औद्योगिक परिवर्तनों के कारण आजकल साहित्यकारों का दृष्टिकोण बदल गया है। प्राचीकाल में काव्यकला का अथवा साहित्य का जिन मापंदडों से मूल्यांकन किया जाता था वे मापंदड आजकल निष्फल सिद्ध हुए हैं। प्रगतिवाद ने साहित्यकारों को एक नई चेतना दी।

राजनैतिक चेतना से भी साहित्यकारों के मन-पटल अछूते न रहे। इन व्यापक परिस्थितियों ने कश्मीरी साहित्यकारों के मनन व चिंतन पर एक विशेष संस्कार डाल दिया। आजाद तथा महजूर ने जदीद दौर यानी आधुनिक युग का सूत्रपात किया जो 1975 ई० के अन्त तक छपा हुआ है। कालान्तर इसका विकास धीरे धीरे हो रहा है। इस संदर्भ में आधुनिक कश्मीरी कवियों का योगदान क्या रहा है? इसकी समीक्षा करना ही डा० हामिदी कश्मीरी शायरी (आधुनिक कश्मीरी कविता) का अभिप्राय है। यह पुस्तक कश्मीरी साहित्य की एक महान उपलब्धि है। इस पुस्तक के 264 पृष्ठ हैं। इसका प्रकाशक 'कश्मीर विश्वविद्यालय' का कश्मीरी विभाग है। इस विभाग के प्रकाशनों में 'अनहार' नामक शोध पत्रिका का साहित्यिक समीक्षा विषयक दूसरा अंक उल्लेखनीय है। इस वर्ष 18 अगस्त से 21 अगस्त तक कश्मीरी विभाग ने Mysticism and Literature अर्थात् अध्यात्मविद्या तथा साहित्य पर 'सेमिनार' का आयोजन किया। इस तरह यह विभाग इसके विकास में प्रयत्नशील है।

यहां पर यह कहनां असंगत न होगा कि कश्मीरी भाषा व साहित्य को जन-साधारण तक पहुँचाने के लिए दृश्य श्रव्य साधनों अर्थात् दूरदर्शन तथा रेडियो कश्मीर द्वारा प्रशंसनीय कार्य हो रहा है। इस दिशा में श्री प्यारेलाल हंडू के मोनलॉग सामाजिक चेतना को उभारने के सबल माध्यम हैं। इनके 'मोनोलाँग' में प्राचीन परंपरा सुरक्षित है। इनके कुछ 'मोनोलाँग' व्यंग्यात्मक तथा उपदेशात्मक भी है। इनके प्रसिद्ध मोनोलाँग में से 'दयदि हुंद टेलीफोन' (दादीका देलीफोन), 'शाबान टांगुन्य गॉड़्य' (शाबान तांगेवाले की गाड़ी) बहुत प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय हुए है।

नि:संदेह, उपलब्ध सामग्री के आधार पर किया गया सर्वेक्षण कश्मीरी साहित्य के विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों के लिए एक नया आयाम प्रस्तुत करेगा जिससे समय समय पर नए विचार बिंदुओं की प्रेरणा मिलती रहेगी।

कश्मीरी साहित्य : 1985

इस तथ्य से सब सहमत हैं कि कश्मीर में दो प्रसिद्ध विभाग - 'जम्मू व कश्मीर कल्चरल अकादमी' तथा 'कश्मीर विश्वविद्यालय' का स्नातकोत्तर कश्मीरी विभाग कश्मीरी साहित्य के प्रकाशन तथा उसे प्रोत्साहन देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है। इन दोनों संस्थाओं के अभाव में कश्मीरी स़ाहित्य का बहुमुखी विकास असंभव है। इस वर्ष 'कल्चरल अकादमी' के छह अंकों में से केवल तीन ही अंक अभी तक प्रकाशित हुए हैं, शेष अंक प्रेस में ही हैं। अत: केवल इन तीन अंकों पर ही इस सर्वेक्षण लेख में प्रकाश डाला जायेगा।

इस वर्ष 'शीराज़ा' के प्रथम अंक में कश्मीरी साहित्य के विविध विषयों से संबंधित सामग्री प्रकाशित हुई। इसमें शोधपूर्ण लेखों के अतिरिक्त एकांकी गज़ले, कहानियाँ आदि सम्मिलित हैं। श्री चमनलाल 'चमन' के प्राक्कथन के बाद सबसे पहले श्री मोहम्मद यूसुफ टेंग का - 'दीनानाथ नादिम : एक परिचय' नामक शोधपूर्ण लेख इसमें प्रकाशित हुआ है। 20 मार्च, 1985 ई० को रियासती 'कल्चरल अकादमी' की ओर से जम्मू के अभिनव थियेटर में कश्मीरी भाषा के वयोवृद्ध कवि - श्री दीनानाथ नादिम के सत्तरहवें शुभजन्मदिन पर एक विशाल समारोह का आयोजन हुआ। इसकी अध्यक्षता राज्य के शिक्षा मंत्री श्री ख्वाजा अल्ली मोहम्मद नायक ने की। इस समारोह में टेंग ने श्री नादिम को एक प्रशस्तिपत्र दिया जिसका अनुवाद इस प्रकार है:- यह हर्ष का विषय है कि आज हम उस महान् व्यक्ति का अभिनंदन करने के लिए एकत्र हुए हैं जिनके साहित्यिक कार्य तथा वैशिष्ट्य किसी साहित्यिक संस्था से अधिक हैं। यह एक ऐसे महान् व्यक्ति है जिन्होंने उन्हें देखा। उन पर कश्मीर की आनेवाली पीढ़ी गर्व करेगी। इन पर 'फिराक़' की यह कविता सटीक बैठती है:-

''आने वाली नसलें तुम पर नाज़ करेगी हम असरो।

जन उनको मालूम ये होगा कि तुमने फिराक़ को देखा था।।''

बीसवी सदी में जिन महापुरूषों ने कश्मीर को हिला दिया, उनसे राजैनतिक क्षेत्र में शेख मोहम्मद अबदुल्ला तथा साहित्यिक क्षेत्र में नादिम पहले आते है। शेखअबदुल्ला ने कश्मीर को जागीरदाराना शासन से आज़ाद किया और 'नादिम' ने कश्मीरी भाषा को परंपरागत शैली से मुक्त किया। इस तरह उन्होने आज़ादी का स्वर लोगों में जागृत किया। यद्यपि महज़ूर ने कश्मीरी भाषा की बीसवीं सदी का रूप भी दे दिया था, लेकिन वह भी परंपरा में जकड़ गया था। न वह पाश्चात्य विचारधाराओं से परिचित था न उसे किसी पाश्चात्यभाषा का ज्ञान था। ज्यादा से ज्यादा उसका ज्ञान इकबाल तक सीमित था। 1947 ई० केवल हमारी राजनीति अंदोलन का ही एक भाग न था बल्कि हमारे सांस्कृतिक इतिहास का भी वह एक हिस्सा था। भारत की आज़ादी के बाद कश्मीरियों में, मानों एक बौद्धिक तूफान आ गया। पुरानी साहित्यिक शैली अब युगानुरूप न थी। इस तूफानी काल में महजूर की आवाज़ भी खोखली हो गई। नई क्रांति अपने साथ नई विधा तथा नई शैली लाई। इन सबों में दीनानाथ की आवाज़ बुलंद थी। नया नभ गर्जन और नई विद्युन्माला (बुज़मल) एक अजीब प्रकार का भूंचाल (परिवर्तन) था। इस प्रकार नादिम ने अभिव्यक्ति के सारे पुराने ढाँचे तोड़ दिए। अपनी अभिव्यक्ति के लिए नए कालब-फ्री वर्स, बलैक वर्स सानेट और ओपरा आदि बनाए। नादिम की यह आवाज़ इतनी शक्तिशाली तथा प्रभावोत्पादक थी कि महजूर जैसा कवि भी आश्चर्यचकित हुआ। उसने अपने पुत्र - इबनी महजूर से कहा - नादिम की शायरी की गर्मी में महसूस करता है, मगर जो ज़ुबान वह इस्तेमाल करता है वह मुझे पता नहीं है। नादिम ने केवल कश्मीरी कविता शैली में ही नहीं बल्कि इसके भाव में भी परिवर्तन लाए। इसने कश्मीरी कविता को 'वायरन' तथा 'मायकोह्वस्की' की शैली से परिचित कराया। इनकी शब्दावली ताज़ा तथा समृद्ध थी। इसमें से इस धरती की सुगंध निकलती थी।

नादिम ने देखते-देखते ही कश्मीरी कविता की छ; सौ साल की पुरानी परंपरा बदल दी। इसके अतिरिक्त इन्होने कश्मीरी ज़ुवान में पहली कहानी - 'जवाबी कार्ड' लिखी। 38 वर्षों के बाद भी इस कहानी की गणना आधुनिक श्रेष्ठ कहानियों में होती है। इन्होंने पहले सॉनेट लिखा। इसके अतिरिक्त इन्होने सबसे पहले कश्मीरी में 'बोंबुर यम्बरज़ल' नामक ऑपेरा लिखा जो यहां 1955ई० में रूसी नेताओं-निकिता ख्रूश्चेव तथा निकोलाई बुल्गानिन को नीडोज होटल में दिखाया गया। इस तरह इसकी सुगंध मास्को तक पहुंच गई। बाद में इसी भाव के आधार पर ढ़ाई सौ वर्ष पुराने 'बाल्हावे थिएटर' में 'ब्यलु' पेश किया गया। कालांतर इन्होने 'वितस्ता' नामक 'ओपेरा' अकादेमी के लिए लिखा जो सारे देश में दिखाया गया। इनकी उत्कृष्ट रचनाओं में 'नाबद तु ट्ठवन' (मिश्री और माहुर) बहुत ही लोकप्रिय है। बाद में इन्होंनें लल्लद्यद के वाख (सं०वाक्) नए सांचे में ढ़ाल दिए। इनका प्रयोग इन्होने स्वंय किया। कुछ काल के पश्चात् इन्होंने गज़ले भी कश्मीरी में लिखी जिनका अनुवाद करना बहुत ही कठिन है। जैसे:-

''बुथ छु वुशल्योमुत ग्वालबस नार जमजम क्याह वनय।
हबखोतून द्रायि आबस पादशाहस क्याह वनय।।''

नादिम ने इस तरह कश्मीर के साहित्यिक आंदोलन का बीड़ा उठाया तथा साहित्यकारों का पथप्रदर्शन किया। वह कश्मीरी भाषा की पहली साहित्यिक पंत्रिका 'क्वंगु पोश' के मुख्य संपादक थे। उन्होने इस पत्रिका के संपादकीय में 'कल्चरल अकेदमी' की स्थापना से पहले उसकी भावी रूपरेखा लिखी थी और उसमें उन्होने राज्य के समृद्ध कश्मीरी लोक-साहित्य को इकट्ठा करने पर बल दिया था। इन्होंने कश्मीरी भांड पाथर (भाण्ड पात्र) को नई दिशा देने में उल्लेखनीय काम किया। 'अकिनगांव' में स्थित भगत थियेटर के ये पहले अध्यक्ष बने। इन्होंने रूस तथा चीन का भी दौरा किया। योग्यता के कारण इन्हें नेहरू पुरस्कार तथा 'कल्हण पुरस्कार' से सम्मानित किया गया था। यह ट्रेड यूनियन के नेता भी रहे। कश्मीर के अध्यापकों का प्रतिनिधित्व उन्होंने कश्मीर

की 'संविधान सभा' में किया। ये 'लल्लद्यद मेमोरियल स्कूल' के संस्थापक भी हैं। अकादमी की ओर से इन्हे उपाधि भी प्रधान की गई है। सचमुच इनका साहित्यिक कद इतना उंचा है कि इनके सामने प्रत्येक सम्मान (एज़ाज़) बौना ही दिखाई देता है।

आज का दिन हमारे अकादमी के इतिहास में अमर रहेगा क्योंकि नादिम जैसा महान् कवि इस समय हमारे समक्ष है। इसमें संदेह नहीं है कि आगामी सदी में इनकी उत्कृष्ट रचनाएँ लोगों को प्रेरणा देती रहेगी।

'टेंग साहिब' का नादिम के विषय नें यह शोधपूर्ण लेख नादिम के व्यक्तित्व तथा कृतित्व पर ही प्रकाश नहीं डालता है अपितु टेंग की बहुमुख प्रतिभा का भी परिचय देता है। यह लेख नादिम के साहित्य की जिन नई विधाओं को नादिम ने जन्म देकर उन्हे कविता में संचार दिया है वह उनकी नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का साक्षात् परिचय देती है। टेंग ने आदि से लेकर अंत तक उनकी साहित्यिक विधाओं का दिग्दर्शन इस लेख के माध्यम से पाठकों को कराया है। इसमें लेखक ने जिस तरह अपने भावों की अभिव्यक्ति की है, उसका आनंद केवल अनुवाद मात्र से नही हो सकता है। जब तक कि पाठक मूल लेख को न पढ़ सके। सचमुच यह शोधात्मक लेख साहित्यिक दृष्टि से उत्कृष्ट है।

इसके बाद इस अंक में मोहनलाल आश का लेख-कश्मीरी संस्कृति पर नागमत का प्रभाव (कोशरिस सकाफनस प्यठ नागमतुक असर) है। यह लेख लेखक ने बड़े परिश्रम से लिखा है। इसमें लेखक ने कश्मीरियों पर नागमत के प्रभाव का वर्णन इस प्रकार किया है। नाग साप को कहते है। सांप की पूजा करने वाले को नाग कहते हैं। यह एक प्रजाति (कुबीला) है। इसका (नाग का) प्रभाव हिन्दुस्तान तथा कश्मीरी कला व संस्कृति पर पड़ा हुआ नज़र आता हैं। सांप का उल्लेख सबसे पहले अथर्ववेद में मिलता है। इसमें पांच सांपों के नाम आए हैं जो चार दिशाओं तथा वायुमण्डल की रक्षा करते हैं किंतु वैदिक सभ्यता से तीन हज़ार वर्ष पूर्व सांप का अस्तित्व एक देवता

के रूप में स्वीकारा गया था। जिसके आसार सिंधुघाटी, मोहनजुदड़ों तथा हडप्पा के आसारों में मौजूद हैं।

ये नाग समस्त उत्तरी भारत में आबाद थे। इनकी अपनी विशेष संस्कृति थी। यह प्रजाति अन्य प्रजातियों से प्रगतिशील तथां शक्तिशाली थी। आर्यो ने इनके साथ शत्रुता के बजाय मित्रता की। इनका देव यानी सांप पुराणों में तथा वेदों में शामिल किया गया है। बाद में धीरे धीरे इसकी कल्पना लोककथाओं, मूर्तियों, धार्मिक त्योंहारों तथा ललितकलाओं में की गई। हिंदुओं तथा यवनों पर भी नागमत का प्रभाव पड़ा है। नागपूजा का प्रभाव हमारे धार्मिक कृत्यों अर्थात कश्मीरी पंडितों के धार्मिक कृत्यों पर पड़ा गया है जैसे-जिस समय पंडितों के घरों में बच्चों का चूडाकरण अथवा जातकर्म संस्कार किया जाता है तब कमरे की दीवार के एक कोने में पांच सांपों की आकृति बनाई जाती है। बाद में इन सांपों के फणों की पूजा की जाती है। इनकी पूजा इस उद्देश्य से की जाती है ताकि ये सांप बच्चे की रक्षा कर सके। इसी प्रकार जिस समय पंडितों के घरों में किसी की शादी होती है, उस समय मकान के द्वार की दीवार के पास 'क्रूल' बनाया जाता है। दीवार पर पहले बड़ी सफेद रंग की लंबी रेखा खीची जाती है जो सर्पाकार होती है। बाद में इस पर शाखाएँ बनाई जाती है। यह टेढ़ी रेखा वासुकि नाग की मानी जाती है। कहा जाता है ये रेखाएं-वर तथा वधू की रक्षा करेंगी।

यह लेख यद्यपि नाग विषयक कई तथ्यों पर प्रकास डालता हे तथापि इसमें कुछ त्रुटियां हैं। लेखक कें इस कथन से मै सहमत नहीं हूँ चूडाकरण अथवा जातकर्म संस्कार के समय कमरे के कोने में दीवार पर जो रेखाएँ बनाई जाती हैं वे सांपों की प्रतीक है। वस्तुत: दीवार पर ये रेखाएं लताओं की बनाई जाती है जो विकास की प्रतीक हैं। लेखक ने वेदों तथा पुराणों की चर्चा लेख में की है। महाभारत का संकेत नहीं किया है। हमें महाभारत के आदिपर्व में नागों के अनेक उदाहरण मिलते है। अर्जुन ने भी नाग कन्या उलूपी के साथ विवाह किया था। स्पष्ट है कि महाभारत के समय नागों का अस्तित्व था,

जिसका उल्लेख लेखक ने नहीं किया है। वेदों के बाद पुराणों की रचना हुई है:- यह सर्व सम्मत है, लेकिन लेखक ने पुराणों के बाद वेदों को रख दिया है। जैसे सांपों को पुराणों तथा वेदों में शामिल किया गया। यदि इस लेख में संदर्भ-ग्रथों की सूची होती उससे लेखक के मत की पुष्टि हो जाती तथा लेख प्रामाणिक बन जाता।

कश्मीरी साहित्य के मूर्धन्य कवि गुलाम रसूल संतोष, त्रिलोक कौल तथा रत्नसिंह (निदेशक, रेडियों कश्मीर, श्रीनगर) की सम्मतियाँ अकादमी के 'प्रकाश' शीर्षक के अंतर्गत प्रकाशित हुई है। इसमें सबसे पहले श्री संतोष ने 'शीराज़ा का विशेषांक', जो सूफी कवि अहद-ज़रगर के नाम पर 1984 ई० में प्रकाशित हुआ था, उस विषय में अपनी सम्मति प्रकट करते हुए लिखा है कि अहद-जरगर के संबंध में पढ़कर मुझे लगता है कि इसकी कविताओं पर अभी पूर्णरूप से शोध नहीं हुआ है। इसके कृतित्व को पाठकों ने अच्छी तरह नहीं समझा। इसका मुख्य कारण यह है कि इनका क्लाम पढ़ कर इनके अनुभवों का ज्ञान होता है जिनसे हिंदू तथा मुसलमान अपरिचित हैं। अहद-ज़रगर की रचनाओं में कश्मीरी शैवसिद्धांत तथा योगसाधना का समन्वय है। विशेषत: इनकी रचनाओं में शाक्त दृष्टिकोण का प्रभाव स्पष्टरूप से परिलक्षित होता है। संभवत:इसका मुख्य कारण यह है कि यौगिक प्रकियाएँ इनके रक्त में मौजूद हैं। वस्तुत:सूफियों तथा योगियों के अनुभव समान है। केवल अभिव्यक्ति में अंतर है। सूफियों की रचनाओं में हम मंत्रो का प्रयोग देखते हैं। शिव की चर्चा भी वहां पाई जाती है तथा शैव सिद्धांतों के मंत्र भी। यहां प्रश्न पैदा होता है कि क्या उन्होंने मंत्रों को जान लिया है। इस पर अनुसंधान करने की आवश्यकता है। ज़रगरसाहिब बताते है:-

''छु कॆंहनय गथ दिवान शशिकल।
वुदुम कॆंहनय वीदन तल।''

इस लेख में लेखक ने लल्लद्यद के 'वाखों' तथा अहद ज़रगर के 'क़लाम' में प्रयुक्त शैवदर्शन के पारिभाषिक शब्दों जैसे:- शून्य तथा शशिकल आदि

की व्याख्या विशदरूप से की है। श्रीतंत्र पर इनकी व्याख्या भी प्रभावोत्पादक तथा पांडित्यपूर्ण है। पंचमहाभूत, पराशक्ति तथा परम शक्ति आदि शब्दों की व्याख्या लेखक ने दार्शनिक दृष्टि से की है। इससे श्री संतीष की प्रतिभा का परिचय मिलता है। इस अंक में यह लेख केवल शोध की दृष्टि से ही महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि सूफी-कवियों की रचनाओं को जानने में एक सबल माध्यम है। इनके निजी अनुभव तथा गंभीर अध्ययन से यह पारिभाषिक शब्दावली अत्यंत रोचक तथा सरल बन गई है।

इसके अतिरिक्त इसमें जिन लेखकों के लेख हैं उनमे कुछ नाम इस प्रकार है - गुलामनबीगौहर का - रियासती अदीबों का पहला कैंप। शफी शौक़ का - तनज़ व ज़राफत (व्यंग्य तथा हास्य)। व्यंग्य तथा हास्य पर इनका यह लेख आधुनिक दृष्टि से बहुत ही उपयोगी है। सोमनाथ वीर का - 'कश्मीरी शायरी में लीला'। हृदयकौल भारती का - एक पृष्ठात्मक लेख 'सवाल' (प्रश्न)। इसमें लेखक ने एक पंडित जी से प्रश्न किया है जिसका उत्तर उन्हें अभी नही मिला। सजूद सैलानी का एकांकी - 'आदम खाव' है। गुलामनबी फिराक, अर्जुनदेव मजबूर, मोतीलाल नाज़, मुश्ताक आदि कश्मीरी कवियों की गज़ले भी है। अंत में सांस्कृतिक डायरी भी प्रकाशित हुई है।

'शीराज़ा' का दूसरा अंक भी विभिन्न विषयों से सुसज्जित है। इसमें कहानियां, गज़ले कविताएँ तथा लेख आदि हैं। गुलाम रसूल भट - 'कश्यप ऋषि तथा फारसी के इतिहासकार' नामक लेख ऐतिहासिक है। इसमें लेखक ने ऐतिहासिक दृष्टि से कश्यप ऋषि के विषय में विभिन्न इतिहासकारों का मत स्पष्ट किया है। यह एक शोधात्मक लेख है। लेख का सारांश इस प्रकार है - सबसे पहले कल्हण पंडित ने संस्कृत पद्यों में 'राजतरङ्गिणी' की रचना की। यह रचना उन्होंनें राजा जयसिंह के शासनकाल 1149 ई० में लिखी। इस तरंगिणी में इन्होंने पूर्ववर्ती इतिहासकारों के नाम भी लिखे हैं। उनकी कृतियां इस समय उपलबध नहीं है। कल्हण के बाद बड़शाह के दौर तक अर्थात् तीन सौ वर्षों तक कोई इतिहास लिपिबद्ध नहीं हुआ है। बड़शाह के जमाने में

संस्कृत पुस्तकों का अनुवाद फारसी में हुआ। इस तरह फारसी आदि भाषाओं में लिखित पुस्तकों का अनुवाद संस्कृत में हुआ।

कल्हण ने कश्यप ऋषि के विषय में लिखा है कि प्राचीनकाल में प्रथम कल्प से लेकर हिमालय की उपत्यका में ज़मीन छः मन्वंतरों तक पानी में डूबी हुई थी। इसमें एक सतीसर था। बाद में कश्यप ने देवताओं की सहायता प्राप्त की तथा जलोद्भव राक्षस को मार दिया और यह जलमग्न ज़मीन कश्मीर के नाम से आबाद की।

कुछ फारसी इतिहासकारों ने कश्यप ऋषि के महत्व को उभारा। जो इतिहासकार कल्हण पंडित की कश्मीर विषयक विचारधारा से सहमत है, वे क्रमशः इस प्रकार है:-

कृतियाँ	इतिहासकारों के नाम
1. तारीख कश्मीर	हसन बेग खाकी 1608 ई०
2. बहरिस्तान शाही	अज्ञात लेखक 1616ई०
3. तारीख कश्मीर	हैदर मलिक चाड़ोरा 1619 ई०
4. बाक़ाति कश्मीर	ख्वाज़ा मोहम्मद अज़म दीदमरी 1787 ई०
5. गुल्ज़ारि कश्मीर	देवान कृपाराम 1885 ई०

इसके अतिरिक्त अन्य फारसी इतिहासकारों नें कश्यप ऋषि के विषय में अन्य घटनाओं का वर्णन किया है, उनके नाम है:-

1. नवादर अलाखबार	रफी उल्दीन अहमद 1723 ई०
2. गौहर आलम	हाजी मोहम्मद असलम 1785 ई०
3. हश्मति कश्मीर	अबदुल क़ादिरखान 1829 ई०
4. तारीख हसन	गुलाम हसन शाह 1824 ई०
5. वजीज अलतवारीख़	गुलामनबी खानयारी 1893 ई०

गुलामनबी खानयारी के अनुसार एक बार जिस समय हज़रत सुलेमान तख्त पर सवार होकर हवा में उड़ रहे थे वे कश्मीर के उंचे पहाड की चोटी

पर, जिसे तख्त सुलेमान (शंकराचार्य) कहते है, पहुँचे। उस समय कश्मीर की वादी जल में डूबी हुई थी। उस समय केवल पहाड की चोटियाँ नज़र आती थीं। कुछ लोग पहाड़ की चोटियों पर रहते थे। वे एक जगह से दूसरी जगह नाव में जाते थे। हज़रत सुलेमान जिस समय वहाँ पहुँचे, उन्होनें अपने उन दो जिन्नों को जिनके नाम कश्यप तथा मीर तै, आज्ञा दी कि वो बारामुला (बराहमूल) में पहाड़ खोदकर पानी बाहर निकाल दे। उन्होंने उसकी आज्ञा का पालन करके वैसा ही किया, इन्हीं जिन्नों के कारण इस जगह का नाम कश्मीर पड़ा जो बाद में तबदीली के कारण काश्मीर हुआ अर्थात् कश्यप तथा मीर-कश्मीर।

इस तरह लेखक ने फारसी इतिहासकारों के इतिहासों का अध्ययन करके कश्यप ऋषि तथा कश्मीर शब्द के नामकरण की व्याख्या इस लेख में की है। वस्तुत:संस्कृत साहित्य के गंभीर अध्ययन से स्पष्ट होता है कि कश्मीर शब्द बहुत प्राचीन है। इसकी व्युत्पत्ति के विषय में महर्षि पाणिनि (ई०पू० 500) में कशेमुर्द्च इस औणादिक सूत्र से कश्मीर शब्द की व्युत्पत्ति सिद्ध की है। रामायण तथा महाभारत में भी कश्मीर शब्द प्रयुक्त हुआ है जैसे:-

''काश्मीर मण्डलं सर्व शमीपीलुवनानि च।
पुराणि च सशलानि विचित्वन्तु वनौकस:।।'' (रामायण)

महाभारत में भी:-

''काश्मीरी सिन्धुसौवीरा गान्धारा दर्शकास्तथा।''

अत: फारसी इतिहासकारों का यह मत तर्कसंगत तथा युक्तियुक्त नहीं है कि कश्मीर शब्द की व्युत्पत्ति दो जिन्नों के नाम पर पाई है। मध्ययुगीन फारसी इतिहासकारों ने इस शब्द के (कश्मीर के) अनार्यकरण का व्यर्थ ही प्रयास किया है। कश्यप तथा मीर ये दोनों संस्कृत शब्द हैं। कश्यप तथा, मीर के संयोग से ही कश्मीर का नाम कश्मीर पड़ा है।

इसके अतिरिक्त इस अंक में रतनलाल शांत की कहांनी 'साइकिल' तथा अवतारकृष्ण रहबर की कहानी 'मूल' प्रकाशित हुई है।

श्री रहबर ने अपनी कहानी में वहां के अल्पसंख्यकों की एक गंभीर समस्या को उभारा है। जिसमें वे आर्थिक परिस्थितियों के कारण अपनी संपति बेचकर भारत के विभिन्न भागों में जाकर अपना गुज़ारा करते है। वह संवेदनशील तथा चिन्तित हैं कि भावी पीढ़ी किस प्रकार यहां रह सकेगी। इस अंक में प्रकाशित गज़लों में कश्मीर के सुप्रसिद्ध कवि श्री मोतीलाल साक़ी की गज़ल मार्मिक तथा हृदयस्पर्शी है। कवि के शब्दों मे:-

''दॅद्य बोनि शिहिल्य सब्ज़ार व्वन्य कथ जायि समव।
पॅद्य पॅद्य ज़न ज़लुवुन्य कथ ज़ायि समव।।

रूपान्तर:-

हरी चिनार की शीतलता जली अब कहां बैठेंगे।
पग पग है धधकती आग अब कहां बैठेंगे।।

श्री पीतांबर नाथ फानी की कविता चेतावनी (चेनवन्य) का नमूना प्रस्तुत है:-

''छय नु सॅहल कथा दारि प्यठ पनुन पान खारुन।
छय नु सॅहल कथा नारस मंज़ पनुन पान ज़ालुन।।
छय नु सॅहल कथा पज़रस पथ पनुन पान गालुन।
छय नु सॅहल कथा पानय गर्बार पनुन पान ज़ालुन।।

रूपांतर:-

है सहल नहीं फांसी को गले लगाना।
है सहज नहीं अग्नि में जल भर जाना।
है सहज नहीं सच्चाई पर बलि जाना।
है सहज नहीं घर अपना स्वंय जलाना।।

'शीराज़ा' की इस कड़ी में तीसरा अंक भी भिन्न-भिन्न विषयों से पाठकों को आकृष्ट करता है। इससें गुलाम नबी 'आतश' का 'ध्रुवचरित' नामक लेख प्रकाशित हुआ है। 'ध्रुवचरित नामक' मसनवी 'कश्मीरी साहित्य' में एक अनुपम रचना है जिसकी जानकारी अभी तक कश्मीरियों को न थी। लेखक के अनथक प्रयत्न से यह रचना अब प्रकाश में आ गई हैं। यह अमर

रचना मार्तण्ड (मटटन) निवासी स्वर्गीय नारायण जी खार की है।

नारायण जी ख़ार संस्कृत तथा ज्योतिष शास्त्र के विद्वान थे। उन्होंने 'ध्रुवचरित' का भाव भागवत पुराण से लिया है तथा कश्मीरी में कविता का रूप देकर इसे समलंकृत कर दिया है। मार्तण्ड तीर्थ में बैठकर तथा भारत के विभिन्न तीर्थों की यात्रा करके उन्हें धार्मिक लीलाएँ आदि लिखने की प्रेरणा मिली। उनकी 'मसनवी' में भारतदेश की शोभा (भारत दीशिच्य शूब) शीर्षक के अंतर्गत एक लंबी कविता सहृदयों को आकर्षित करती है।

इसके अतिरिक्त नारायण जी ने नारायण नामक एक पुस्तक रघुनाथ प्रसाद पाणडेय के द्वारा कानपुर में देवनागरी लिपि में छपवाई थी। इसमें कश्मीरी लीलाओं के अतिरिक्त श्रीभगवद्गीता का कश्मीरी अनुवाद भी छपाया गया था। कहते हैं इन्होंने समूची गीता का अनुवाद किया था। जो लोगों को मालूम नही है। 'ध्रुवचरित' की पांडुलिपि श्री श्यामलाल परदेसी के अनथक प्रयत्न से प्राप्त हुई है जो इस समय मेरे पास है। दुर्भाग्य से इसके दो तीन पृष्ठ खो गए हैं। इसमें स्वंय कवि ने कठिन शब्दों की टिप्पणी लिखी है जो इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि पुस्तक (ध्रवचरित) स्वंय कवि की कृति है।

राजा उतानपाद को पुत्र न होने का जो मानसिक कष्ट था, उसका हृदयविदारक वर्णन कवि ने इन पद्यों में किया है:-

''बुजर कर तस सतावान यस छु सन्तान,
सपुत्र शुर क्कलस छुय रथि खारान।
सपुत्र शुर छु क्वलुच हान गालान,
वृथा तॅम्य सुन्द ज़न्म यस न सन्तान।।''

रूपांतर:-

न सताता बुढ़ापा संताना युक्त को
चमकाता है कुल को सपुत्र संतान।
कुल का कलंक मिटाता सपुत्र संतान
वृथा है जन्म जिसको न हो संतान।।

लेखक का यह शोधात्मक लेख कवि नारायण जी के व्यक्तित्व तथा कृतित्व पर प्रकाश डालकर कवि की कृति से पाठकों को परिचय कराता है। इस तरह लेखक का यह योगदान साहित्यिक श्रेत्र में उल्लेखनीय समझा जाएगा।

मनोहम्द सुबहान भगत का 'कश्मीरी लोक थिएटर' पर हिन्दुस्तानी थिएटर का प्रभाव नामक लेख अपनी विशेषताओं के कारण उत्तम है। इसमें लेखक ने प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक के 'लोक थिएटर' का प्रभाव दर्शाया है।

प्राचीन संस्कृत पुस्तकों-नीलमत्पुराण, राजतरङ्गिणी तथा कल्हण के समकालीन कवि बिल्हण के 'विकमांकदेवचरित' का हवाला देते हुए लेखक ने अपने मत की पुष्टि इस लेख में विशेष रूप से की है। नीलमत्पुराण इस तथ्य को अनावृत (खोल) करता है कि यहां वर्ष में तीन बार नृत्योत्सव के समारोहों का आयोजन होता था जिसमें विभिन्न भागों से लोग आकर इन समारोहों में सहर्ष भाग लेते थे। बिल्हण के 'विक्रमांकदेवचरित' के अनुसार कश्मीर का नृत्योत्सव सारे संसार में एक उदहारण था। कल्हण की 'राजतरङ्गिणी' इस बात की ओर संकेत करती है कि कश्मीर में रामयुद्ध (श्रीराम की लड़ाई) के नाटक का मंचन अनेक बार हुआ। यह नाटक शिववर्मन ने लिखा था। इस तरह नाटक की परंपरा कश्मीर में प्राचीन काल से चलती आ रही है। इस तरह यह लेख नाट्य-संबंधी अनेक विषयों पर प्रकाश ड़ालता है। इसमें लेखक ने जो स्वयं 'भगत थिएटर' का संस्थापक तथा विख्यात कलाकार है, कई बातों का सही दिगदर्शन नही किया है, जैसे - संस्कृत भाषा में नाटक लिखने की परम्परा कश्मीर से ही शरू हुई है। उनका यह मत ऐतिहासिक प्रमाणों पर आधारित नहीं है। वस्तुत: चौथी-पांचवी शती ई० पूर्व में संस्कृत नाटकों की रचना होने लगी थी, जैसे कि कविभास के उपलब्ध नाटकों से प्रकट है। पंतजलि के महाभाष्य में 'कंसवध' और 'बशलिबध' नामक दो नाटकों का स्पष्ट उल्लेख है। संस्कृत नाटक का संवश्रेष्ठ परिमार्जन

एवं परिष्कार प्रथम शताब्दी ई०पू० के कालिदास के नाटकों में आकर उपलब्ध होता है। अत: संस्कृतभाषा में नाटक लिखने की परंपरा संपूर्ण भारत से ही शुरू हुई कश्मीर से नहीं।

इसके अतिरिक्त इस अंक में श्री प्यारेलाल हताश, श्री शफी शौक तथा गुलाम नबी गौहर आदि कवियों की ग़ज़लें भी हैं। श्री रहमान राही की कोहिकाफ़ नामक कविता से इसका महत्व अधिक बढ़ गया है।

यह हर्ष का विषय है कि 'कश्मीरी विश्वकोश' की परियोज़ना के अंतर्गत कल्चल अकादमी ने इस वर्ष (1985 ई०) 'कश्मीरी विश्वकोश' का प्रथम खंड प्रेस को भेज दिया है। इस विश्वकोश में जम्मू व कश्मीर राज्य पुरातत्व संबंधी अवशेषों तथा वास्तुकला पर आधारित प्राय: दो सौ पचास प्रविष्टियाँ (Entries) चित्रों के समेत प्रकाशित हो रही है। इसके मुख्य संपादक - श्री मोहम्मद यूसुफ टेंग तथा संपादक श्री मोतीलाल साक़ी है। नि:संदेह, यह 'विश्वकोश' कश्मीरी साहित्य में एक महान उपलब्धि है। इस पुस्तक का संपादन श्री साकी ने किया है। इसी तरह अकादमी के प्रकाशनों में से 'कुलयाति शेख-उल-आलम' भी एक है। इसमें नुंद ऋषि अथवा शेख-उल-आलम के श्रुकों (श्लोकों) का संग्रह है।

कश्मीरी विभाग के प्रकाशनों में इस वर्ष वार्षिक 'अनहार' रहस्यवाद तथा साहित्य (सिरियल तु अदब) शीर्षक के अंतर्गत प्रकाशित हुआ है। इसमें विभिन्न दृष्टिकोणों के आधार पर रहस्यवाद को कश्मीरी साहित्य की विभिन्न विधाओं के परिप्रेक्ष्य में समझाया गया है। इस विशेषांक की विशेषता यह है कि इसमें फारसी, हिंदी, उर्दू तथा अंग्रज़ी साहित्य के संदर्भ में भी रहस्यवाद पर प्रकाश डाला गया है। चिरकाल से भारतीय मनीषियों, ऋषियों, संतों तथा कवियों ने रहस्यवाद के मर्म को समझने का प्रयास किया है। यह ब्रह्मांड क्या है? इसका रचियता कौन है? यह संसार चक्र अनादिकाल से किस प्रकार चलता है। इसमें कौनसी प्राकृतिक शक्ति अथवा दैवी शक्ति अंतर्निनिहत है? जीव तथा ब्रह्मा का आपस में क्या संबंध है? शाश्वत सत्य क्या है? परमानंद

किसे कहते हैं ? इन दार्शनिक गूढ़ प्रश्नों का समाधान तत्ववेत्ता तथा रहस्यवादी महर्षियों आदि ने अपने अनुभवों के आधार पर अनेक रूपों में किया है। कुछ आजकल इसको (रहस्य को) 'गूंगे का गुड़' कह कर इसकी व्याख्या करने में असमर्थ हुए हैं। कुछ इसके गूढ़ तत्व को समझ गए। वस्तुत: 'सत्यं शिवं सुंदरम्' इनका समन्वय ही रहस्यवाद है। यही रहस्य सूफी संतो के अनुभवों के आधार पर 'अनहार' के लेखकों ने अपने लेखों में समझाया। इसमे जिन विद्वानों ने लेख लिखे है उनके कुछ नाम इस प्रकार है:-

विषयों के नाम:–

प्रो० काज़ी गुलाम अहमद	रहस्यवाद।
प्रो० पृथ्वीनाथ पुष्प	शितिकंठ का रहस्यवाद।
प्रो०के०एन०दर	रूपभवानी तथा परमानन्द की शायरी में रहस्यवाद।
श्री सोमनाथ पण्डित	हिन्दी कविता में रहस्यवाद।
डा० शम्सउद्दीन	फारसी कविता में रहस्यवाद।
डा०ए०एन०दर	अंग्रेजी कविता में रहस्यवाद।

सचमुच इस पुस्तक ने कश्मीरी साहित्य में एक नया अध्याय जोड़ दिया है। ऐसी मेरी धारणा है।

इन दो विभागों के अतिरिक्त गत कई वर्षो से 'जम्मू व कश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' कश्मीरी साहित्य के विकास में प्रयत्नशील है। इसके तत्वावधान में प्रतिवर्ष 'नीलजा' नामक पुस्तक प्रकाशित होती है। इस पुस्तक में विभिन्न लेखकों के लेख छप जाते हैं जिससे हिंदी जगत् को भी राष्ट्रभाषा के माध्यम से कश्मीरी साहित्य की विभिन्न विधाओं तथा आयामों को समझने का अवसर मिलता है। इस वर्ष कश्मीरी भाषा व साहित्य के मूर्धन्य कवि श्री दीनानाथ नादिम की रचनाओं पर ज० क० रा० भा० प्रचार समिति ने दो पुस्तकें छपाई।

1. दीनानाथ नादिम - व्यक्ति तथा अभिव्यक्ति।
2. दीनानाथ नादिम - अभिनंदन ग्रंथ।

प्रथम पुस्तक का संपादन तथा संयोजन प्रो० काशीनाथ दर तथा श्री मोतीलाल प्रमोद ने किया। दूसरी पुस्तक का संपादक मंडल इस प्रकार है:-

1. प्रो० लक्ष्मीनारायण सप्रू
2. श्री मोतीलाल प्रमोद
3. प्रो० चमनलाल सप्रू

इन पुस्तकों में श्री नादिम के कृतित्व पर तथा पूरा प्रकाश डाला गया है। कवि की कुछ कश्मीरी कविताओं का रूपांतर भी हिंदी के उच्च कोटि के कवियों ने किया है।

अंत में यह कहन युक्तियुक्त होगा कि प्राप्त प्रकाशनों के आधार पर किया गया सर्वेक्षण कश्मीरी साहित्य के विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों के लिए एक नया आयाम प्रस्तुत करेगा और इससे समय-समय पर नए विचार बिंदुओं की प्रेरणा भी मिलती रहेगी। ऐसा मेरा मत है।



कश्मीरी साहित्य : 1987

जम्मू व कश्मीर ललितकला संस्कृति व साहित्य अकादमी की ओर से इस वर्ष 1987 ई० में 'शीराज़ा' के प्रकाशित छह अंकों में से केवल चार ही अंक पाठकों के पास अभी तक आए हैं। वस्तुत:इन अंको में ही 1987 का उल्लेखनीय 'कश्मीरी साहित्य' प्रकाशित हुआ है। अत: कश्मीरी 'शीराज़ा' के चार अंकों के आधार पर सर्वेक्षण प्रस्तुत किया जा रहा है। इन चारों अंको में गद्य तथा पद्य कृतियां मिलती हैं। इनमें विशेषत: यहां के साहित्यकारों ने ही कश्मीरी साहित्य के विभिन्न विषयों पर लेख, गजलें तथा कहानियां आदि लिखीं हैं।

इन अंकों में कश्मीरी साहित्य के वयोवृद्ध लेखक तथा समीक्षक श्री गुलाम रसूल भट्ट का अनुसंधात्मक लेख बहुत ही महत्वपूर्ण है। इनके लेख का शीर्षक-कश्मीर के तवारीख़ी (ऐतिहासिक) मज़ार और उनकी अहमियत। इसमें लेखक ने कश्मीर के सुलतानों के मज़ारों (कब्रिस्तानों) का ऐतिहासिक दृष्टि से सविस्तृत वर्णन किया है। अनुभवी लेखक ने स्वयं मज़ारों में जाकर कब्रों की निशानदेही की तथा उनके शिलालेखों का अध्ययन किया। ये शिलालेख शारदालिपि तथा फारसी में लिखे गए हैं। इन शिलालेखों के आधार पर इन्होंने फारसी इतिहासकारों जैसे - पीर गुलाम हसन गणी का अध्ययन नहीं किया है। फलत: सुल्तानों के बारे में विशेषत: उनकी स्थितियों में उन्हें भ्रांति पैदा हुई है। संस्कृत इतिहासकारों के आधार पर भट्ट साहब ने यह सिद्ध कर दिया है कि ज़ैन-उल्लाब्दीन या बडशाह की तीन पत्नियां थीं। लेकिन फारसी इतिहासकारों ने बाडशाह की एक पत्नी का उल्लेख किया है। जोनराज ने अपनी 'जोन-राजतरंगिणी' में उनकी तीन पत्नियों का वर्णन किया है। इस तरह फारसी इतिहासकारों ने न केवल तिथियों के बारे में गलती की बल्कि घटनाओं का भी उन्होंने सही ढंग से यानी प्रामाणित रूप से वर्णन नहीं किया है। इस विषय में भट्ट के लेख का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता

है:-

''येत्यन छे यि कथ वनुन्य लायक ज़ि फारसी मोरिख छिनु सुल्तान बडशाह सुंदिस कोरि हुंदिस लॅडकस मुतलक कांह ज़िकिर कॅरमुच़। न छख यि कथ लीछमुच़ ज़ि सुल्तान बडशाहस छि कूर ऑसमुच़।''

हिंदी:- यहां पर यह कहना उचित है कि फारसी इतिहासकारों ने सुल्तान बडशाह की लड़की के लड़के (यानी दौहित्र) का उल्लेख नहीं किया है। न उन्होंने यह लिखा है कि सुल्तान बडशाह की लड़की थी।

इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि श्री गुलाम रसूल भट्ट का अध्ययन कितना रुचि कर, गंभीर तथा प्रामाणिक है। निसंदेह, यह लेख भावी पीढ़ी के लिए प्रेरणादायक सिद्ध होगा।

इस अंक में मोहम्मद युसूक टेंग का शोधात्मक लेख 'लल्लदयद' पर है। इस लेख का शीर्षक 'कॉशरि अदबुक नारुच़क्र' – लल्लदयद के वाखों (वाक्) की विस्तृत व्याख्या दार्शनिक ढंग से की है तथा 'वाखों' की व्याख्या करते-करते इक़बाल, मिर्ज़ा-गालिब आदि कवियों के पद्य भी उदाहरण के रूप में दिए हैं जिनसे लेखक के गहन अध्ययन का ज्ञान पाठकों को स्वाभाविक रूप से होता है। जैसे:-

''दीव वटा दीवर वटा
प्यठु ब्वनु छुय इकवाठ
पूज़ कस करख हूट बटा
कर मनस तु प्वनस संगाठ।।''

अर्थ:- देवी भी पत्थर है और देवल (मंदिर) भी पत्थर। ऊपर तथा नीचे हर जगह एकसा पाषाणमय आकार है। रे पंडित (व्यंग्यात्मक संबोधन) तू किसकी पूजा करेगा ? मन और पवन (प्राण) को एक साथ मिला दे (ऐसा प्रयत्न कर जिससे जीवात्मा परमात्मा से मिलेगी) यानी प्राणयाम की विधि से चित्तवृत्तियों का निरोध कर। यह वाख योग साधना का 'वाख' है। इसमें कवियत्री ने योगाभ्यास की ओर संकेत किया है। योग का लक्षण है – 'चित्तवृत्तिनिरोधो

योग:'। इसी तरह लल्लद्यद का अन्य 'वाख' दृष्टांत के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। जैसे:-

''गगन चुय भूतल चुय,
चुय द्यन पवन राथ।
अर्ध चन्दन पोश पोन्य चुय,
छुख सोरुय लॉग्यज़ि क्या।।

पदयानुवाद:– गगन तू है भूतल तू ही
दिन पवन और रात।
अर्घ्य चन्दन, पुष्प जल तू है,
तू ही सर्वस्व चढाऊं क्या ?

इस 'वाख' के अनुसार यह विश्व परमशिव का व्यक्त रूप है। अत: उसका अस्तित्त्व विभिन्न रूपों स्थल तथा सूक्ष्म रूपों - आकाश, पृथ्वी, दिन, रात अर्घ्य, चन्दन, फूल आदि में दृष्टिगोचर होता है। विमर्श के रूप में यह उसी के विभिन्न रूप है। अर्थात् ब्रह्माण्ड़ का सार वही है। अत: ये पदार्थ उन (परमशिव) को समर्पण करना व्यर्थ है। शैवदर्शन के परिप्रेक्ष्य में यदि टेंग साहब इस वाख की व्याख्या करते तो इससे उनका दार्शनिक पक्ष अधिक सुदृढ़ बन जाता। लल्लद्यद के अनुसार मन को वश में रखना अत्यंत कठिन है। जो कोई इसे वश करने में समर्थ है वही योगाभ्यास में सफलता प्राप्त कर सकता है। इसका उदहारण निम्न 'वाख' में हमें मिलता है जैसे:–

''चु तु त्वरग गगन प्रज़वोन,
निमिष अकि छ़ंडि यूज़न लछ।
चुतनि वगि ब्वदि रेटिथ ज़ोन ज़ुवुन,
प्राण अपान सन्दॉरिथ पख चुय।।''

अर्थ:- चित्त रूपी घोड़ा आकाश में फिरता रहता है। एक निमिष में लाखों योजन घूम आता है। जिसने बुद्धि और विवेकरूपी लगाम से इसको नापना सीख लिया, वही प्राण तथा अपान के दो चक्रों को नियंत्रित करने में सफल हो जाता है।

यदि सूक्ष्मदृष्टि से देखा जाए तो हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि लल्ला के वाखों पर श्रीमद्भगवदगीता का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

जेसे:- ''चंचल हि मन:कृष्ण प्रमाथी बलवत् दृढम्।
तस्यांह निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।''

अर्थ:- हे कृष्ण! यह मन बड़ा चंचल और प्रमथन स्वभाव वाला है तथा बड़ा दृढ और बलवान है। अत: उसे वश में करना मैं वायु की तरह अति दुष्कर मानता हूं। इस प्रकार लेखक ने 'लल्लदयद' के वाखों की व्याख्या की है।

कश्मीर के सुप्रसिदध लेखक तथा कवि 'फाज़िल कश्मीरी' ने 'बु तु म्यॉन्य शायरी' (मैं और मेरी कविता) इस शीर्षक के अंतर्गत एक लेख लिखा है जिसमें उन्होंने अपना विस्तृत परिचय देकर पाठकों का ध्यान अपनी कविता लेखन की ओर भी आकृष्ट किया है। उन्होंने 1935 ई० से 1986 ई० तक स्वंय पुस्तकें छपाई है। वे स्वंय किताबत करते हैं और छपाते भी है। इससे इनकी रुचि कश्मीरी साहित्य की ओर स्वाभविक रूप से जानी जाती है। इनकी किताबों की विशेषता यह है कि वह कश्मीरी लिपि के अतिरिक्त देवनागरी लिपि में भी प्रकाशित हुई है। जिससे कवि महोदय को बहुत प्रोत्साहन मिला है। देवनागरी लिपि के माध्यम से इन्होंने हिंदी जगत् की महान सेवा की है। इस तरह इनका यह कार्य वहुत ही प्रंशसनीय है। इनकी पुस्तकों में से - सागरमस्ती, शमहवतन, मीरासा, असन खंगाल आदि हैं। 'प्रेमुच गंगा' और 'निगहबान', इन दोनों पुस्तकों पर भारत सरकार ने इन्हें पुरस्कृत किया है। इस तरह फाज़िल ने काश्मीरी साहित्य की अनथक सेवा की है।

'शीराज़ा', के, एक अंक में बदरीनाथ कल्ला ने सूफी शायर - (संत कवि) मधुसूदन राज़दान पर शोधात्मक लेख लिखा है। इस लेख के मुख्य अंश इस प्रकार है.... इसी तरह आधुनिक कवियों में मधुसूदन राजदान (खुयहामी) का नाम सूफी कवियों में परमानंद तथा कृष्ण राज़दान के बाद बड़े आदर से लिया जाता है। इनका जन्म श्रीनगर के खरयार में 1912 ई० में हुआ। आपके पिता का नाम माधवजीव (जुव) था जो कर्मकांड के प्रकांड

पंडित थे।

आप योगाभ्यासी तथा भगवान कृष्ण के अनन्य भक्त थे। आपने शास्त्रों का गंभीर अध्ययन करके कुरान-शरीफ का भी अध्ययन किया था। आपकी प्रतिभा अद्‌वितीय थी। आपके कविता-संग्रह का नाम 'माधुर्यगिरा' है जिसमें एक सौ से अधिक कविताएं है। आपने अपना नश्वर शरीर 1969 ई० में त्याग दिया। आपके अप्रकाशित काव्य में से कृष्णभक्ति का एक नमूना प्रस्तुत किया जाता है:-

''कृष्णु कृष्णु छुख करान रात्रो द्‌यन तय,
वनतय भगवान कोनुय आम।
त्रैयि तापु ज़ोलनस संतापन तय,
व्युद छुम नु कर्मु फल पॅपिथ कुस आम।
यिनस तु गछ़नस छुनु छ्‌यन बनन तय,
वनतय भगवान कोनुय आम।''

अर्थ:- मैं तो दिनरात भगवान श्री कृष्ण का जप करता हूं। कहों! भगवान क्यों नहीं आ गए। मुझे तीन प्रकार के संतापों-आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक ने जलाया। मुझे मालूम नहीं है कि किस कर्म फल के कारण मेरा जन्म इस संसार में हुआ है। आवागमन का सिदधांत भी अटूट है। आज तक इस अज्ञात कवि के विषय में किसी ने लेखनी नहीं उठाई। सबसे पहले बी०एन०कल्ला ने इस रहस्य वादी कवि को कश्मीरी साहित्य के सूफी कवियों की श्रेणी में जोड़ दिया है।

कहानियों में से बशीर अख्तर तथा श्री हृदयकौल भारती की कहानियां उत्कृष्ट है। अख्तर की कहानी का शीर्षक - 'हवाई हादिसा' (हवाई दुर्घटना) है। इसमें कहानीकार ने इस तथ्य का अनावरण किया है कि संसार में लोग किसी दुर्घटना से विह्वल नहीं होते हैं या किसी के अपमृत्यु से द्रवित नहीं होते हैं। बल्कि रोना तथा छाती पीटना आदि केवल अपने स्वार्थ के लिए करते हैं। चाहे हिंदू हो, मुसलमान हों या अन्य किसी जाति का हो। इसमें कोई अपवाद नहीं है। स्वार्थ सब

विवादों तथा कलहों का मूल कारण है। यह इस कहानी का सार है।

अमरनाथ ड़ासी का पहला पुत्र था तथा स्वर्गवासी सुरेन्द्रनाथ का बड़ा भाई हवाई दुर्घटना के कारण समुद्र में डूबकर मर गया था। इसलिए अंरधती (दामोदर की बड़ी बहू) का कहना था कि उसका पति अमरनाथ ही सुरेद्रनाथ के शव की आर्ध्वदौहिक करने के लिए विलायत जायेगा। बड़ा भाई होने के कारण उसका वहां जाना उचित है। उधर से बंसीलाल (अमरनाथ का छोटा भाई) की भार्या प्रत्येक को बताती थी कि पासपोर्ट बनाने के समय सुरेंद्रनाथ अपने वारिस का नाम बंसीलाल ही लिख दिया है। अत: दोनों (बंसीलाल और उसकी पत्नी) ही विलायत जाने के अधिकारी हैं। यह एक विकट समस्या थी-दो पक्षों मे। एक तरफ से अमरनाथ तथा उसके बेटों में तथा दूसरी तरफ बंसीलाल के ससुराल में। बंसीलाल की सास बोलती थी-कि यह अनपढ़ अरंधती तरंगा (कश्मीरी पंडितानियों का विशेष प्रकार का शिरोधान) तथा डेजिहोर (कश्मीरी पंडितानियों का विशेष प्रकार का कर्णभूषण) पहनकर कैसे विलायत जाएगी? और उसका बूढा पति (अमरनाथ) जिसे जम्मू का टिकट खरीदना नहीं आता है भला वह ऐसी स्थिति में विदेश कैसे जाएगा? भला लोग क्या कहेंगे? क्या इसके यहां कोई शिक्षित न था इसलिए उसने अपनी बी०ए०पास लडकी (बंसीलाल की पत्नी) को विलायत जाने के लिए तैयार किया। साथ ही उसे यह भी बताया कि सूची के अनुसार अपने भाई की शादी के लिए किसी न किसी प्रकार से अवश्य चीज़े खरीद कर लानी चाहिए। उसको इसकी चिंता न थी कि विलायत में सुरेंद्रनाथ का अंत्येष्टि संस्कार विधिवत् हो या न हो। वह केवल स्वार्थवश अपनी लड़की को विदेश भेज़ना चाहती थी। इसीलिए निकलते समय मां ने अपनी लड़की को बाईस रूपए चीज़ें ख़रीदने के लिए दिए।

इस प्रकार कहानीकार ने यथार्थ का चित्रण इस कहानी में किया है।

दूसरी कहानी हृदयकौल भारती की है। उसका शीषर्क है - 'श्रज़' (एक काल्पनिक पक्षी) यह दार्शनिक कहानियों में से उत्कृष्ट कहानी गिनी

जाती है। यह एक प्रतीकात्मक कहानी है जिसमें कहानीकार ने जीवात्मा तथा परमात्मा का संयोग दर्शाया है या प्रकृति तथा पुरुष का संयोग। श्रज़ नामक पक्षी आसामान पर चांदनी को खाना चाहता है। इस प्रयत्न में वह सफल नहीं होता है। अंतत: वह ज़मीन पर तड़प कर गिरता है और मर जाता है। ज़मीन पर उसे कीड़े खाते हैं। बाद में फिर वह जीवित होता है। फिर चांदनी को खाना चाहता है। इसी प्रकार जीव भी इस संसार में आता है, फिर मर जाता है। जीव आवागमन के चक्र में आता रहता है। अंत में वह (जीवात्मा) परमारत्मा में लीन होता है। यह इस कहानी का सार है। 'भारती' की कहानियां दार्शनिक तत्वों से ओतप्रोत होती है। यह विशेषता इनकी कहानियों में उभरती है।

टी०एन०कौल ने अपने लेख में प्रो०काशीनाथ दर के व्यक्तित्व तथा कृतित्व पर प्रकाश डाला है। काशीनाथ दर का जन्म श्रीनगर में 1925 ई० में हुआ। पंजाब विश्वविद्यालय से बी०ए० परीक्षा उत्तीर्ण करके आप संस्कृत में एम०ए० करने के लिए लाहौर गये। एम०ए० में उत्तीर्ण होकर आप पहले पुंछ के गवर्नमेंट कालेज में प्रवक्ता के रूप में नियुक्त हुएं। आप उस समय हिंदी में भी एम०ए० करने की तैयारी कर रहे थे। कालांतर आप श्रीनगर के 'अमरसिंह कालेज' से सेवानिवृत्त हुए। बाद में आप 'परमानंद रिसर्च इन्सटिच्यूट' में निदेशक के रूप में नियुक्त हुए। इस संस्थान में आपको अनुसंधान करने का सुअवसर मिला। 1984 ई० में आपने पार्थिव शरीर छोड़ दिया।

आपने अपने समय में कश्मीरी साहित्य की अनुपम सेवा की। आप 'गलम्पसिज़ आफ कश्मीरी कलचर' के संपादक रहे है। इसमे कश्मीरी भाषा व साहित्य पर अंग्रजी में अनुसंधानात्मक लेख छपते थे। आपने महाकवि कालिदास के नाटक 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का अनुवाद कश्मीरी भाषा मेंकिया है जो शीघ्र ही 'जम्मू व कश्मीर ललित कला संस्कृति व साहित्य अकादमी' की ओर से प्रकाशित होगा। इसके अतिरिक्त आप 'केंद्रीय हिंदी निदेशालय' के तत्वावधान में प्रकाशित त्रिभाषा कोश (अंग्रेज़ी-हिंदी-कश्मीरी) के संयोजक रहे है। आपके शोधात्मक लेख 'कश्मीर विश्वविद्यालय' के

कश्मीरी विभाग द्वारा प्रकाशित अनहार में (कश्मीरी भाषा) में प्रकाशित हुए है। इन्हे हिंदी, संस्कृत, उर्दू, कश्मीरी आदि भाषाओं पर पूर्ण अधिकार था। विस्तारभय से आपके प्रकाशनों की सूची यहां नहीं दी जाती है।

कश्मीरी साहित्य के मूर्धन्य कवि श्री मिर्ज़ा आरिफ की नज़म उल्लेखनीय है। नज़म इस प्रकार है:-

''येत्यथ छु बम हुत्यथ छय श्राख
योहय खाक छु आदम ज़ाद
येत्यथ छु नार हुत्यथ छु मार
छि आसार फसादुक्य
सीनस छु हे चटान मूल
कति कोत वोत यि संसार
न पुण्य न पाफ, न रोत न क्रोत।
यि मनस वुज़िस तिय गव सोर
धर्म तु दीन छि प्रानेमुत्य
बेहतर छि कथुय मॅशरावुन्य
मीमस छु मीम करान कार।
भयुक छु च्वपॉर्य हाहाकार।''

नज़म का भावार्थ इस समय संसार में चारों ओर हाहाकार मचा हुआ है। फसाद, आगज़नी, लूटमार तथा हिंसा दिनबदिन बढ़ती है। बम का विस्फोट जगह-जगह पर हो रहा है। अव यहां पाप और पुण्य, धर्म तथा अधर्म में कोई भेद नही रहा है। आज का मानव दानव बन गया है। वह हिंसा पर तुला हुआ है। उसके मन में जो विचार उठता है, चाहे बुरा भी हो, उसकी ओर आज का मनुष्य ध्यान नही देता है। यदि सांप्रदायिकता की आग बुझ न जाए, मानवता की रक्षा किसी रूप में संभव नहीं है।

इस कविता से कवि की सहृदयता का परिचय मिलता है। हिंसक घटनाओं से उसका मन व्याकुल होता है। वह संसार में शांति चाहता है जिससे

मानवता की रक्षा हो सके। वस्तुत: कवि कीपीड़ा या व्यथा केवल कवि की ही नही, अपितु समस्त मानव जाति की है।

श्री चमनलाल 'चमन' की कविता भावपक्ष की दृष्टि से उत्तम है। इनकी कविता का शीर्षक-व्यथ है। व्यथ वितस्ता का अपभ्रंश रूप है। इसका वर्णन सबसे पहले हमें ऋग्वेद में मिलता है। यह प्रतीकात्मक कविता है। व्यथ का प्रभाव जिस तरह चिरकाल से चलता रहा है उसी प्रकार मनुष्य का जीवन भी अनादि काल से यह हमें अनुप्राणित करता रहता है। इसने हर प्रकार से हमारे जीवन को सुखी तथा समृदधशाली बना दिया है। युंगातरों में इसका प्रवाह नहीं रुकेगा। इसका स्त्रोत नित्य है। इस प्रकार कवि आशावादी दिखाई देता है।

इन अंको की कड़ी में ज़फर मुशरफ का लेख 'कॉशिर्यन मारफीनन हंज़ अख साम' (कश्मीरी स्वनिमों का एक अध्ययन) इस शीर्षक के अंतर्गत भाषाविज्ञान की दृष्टि से उल्लेखनीय है। इसमें लेखक ने भाषा के स्वनिमों का विश्लेषण विस्तृत रूप से किया है। कश्मीरी स्वनिमों के भेद उदाहरणों द्वारा स्पष्ट किए है। कश्मीरी स्वनिम कारकों, पुरुषों, वचनों तथा लिगों के अनुसार बदलते हैं। जैसे:-

कर्तृकारक

पुरुष	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरूष	बु (मैं)	ॲस्य (हम)
मध्यम पुरूष	चु (तुम)	तॊह्य (आप)
अन्य पुरूष	सु स्व (वह) वह (स्त्री)	तिम, तिमु (वे)

इन उदहारणों से स्पष्ट है कि भाषाविज्ञान पर लेखक को पूर्ण अधिकार है।

इसके अतिरिक्त जिन लेखकों तथा कवियों ने कश्मीरी साहित्य की विभिन्न विधाओं को विकसित करने में शीराजा में महत्वपूर्ण योग अथवा साथ दिया है उनकी नामावली इस प्रकार है:- रहमान राही, मखनलाल बेकस,

गुलाम नबी आतश, अर्जुनदेव मज़बूर, मखनलाल कंवल, दीनानाथ नादिम, इकबाल फहीम, श्री शंभुनाथ भटट हलीम, गुलाम नबी फिराक, मुज़फर आज़िम, मोतीलाल साक़ी, मखनलाल महव, प्यारेलाल हताश आदि।

कश्मीरी-विश्वविद्यालय के कश्मीरी विभाग ने गतवर्ष ग्रियर्सन पर एक बृहत 'सेमिनार' का आयोजन किया। इसमें स्थानीय विद्वानों के अतिरिक्त बाहर से भी विद्वानों को आमंत्रित किया गया। यहां पर यह कहना असंगत न होगा कि आयरलैडं निवासी सरजार्ज ग्रियर्सन का योगदान कश्मीरी भाषा व सहित्य को समृदध बनाने में चिरस्मरणीय रहेगा। सबसे पहले उन्होंने महामहोपाध्याय श्री मुकुन्दराम शास्त्री की सहायता से कश्मीरी डिक्शनरी के चार खंड देवनागरी लिपि में बंगाल की 'एशियाटिक सोसाइटी' से प्रकाशित किए। 'लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया' कश्मीरी शब्दामृतम् तथा शिवपरिणय आदि पुस्तकों का भी संपादन उन्होंने किया। अत: उनके महत्वपूर्ण योगदान को दृष्टि में रखकर कश्मीरी विभाग के अध्यक्ष ने उनकी पावन-स्मृति में उनकी रचनाओं तथा उनके द्वारा संपदित कश्मीरी पुस्तकों पर एक संगोष्ठी का आयोजन किया। इस त्रिदिवसीय संगोष्ठी में जिन लेखकों ने शोधात्मक लेख उनकी नामावली इस प्रकार है:- डॉ० ओंकारनाथ कौल, प्रो० पृथ्वीनाथ पुष्प, डॉ० मरगूब बानिहाली, डॉ० बदरीनाथ कल्ला, डॉ० सोमनाथ कौल आदि।

इन दो विभागों के अतिरिक्त अर्थात् कल्चरल अकादमी तथा कश्मीरी विभाग के अतिरिक्त कश्मीर में 'अदबी मरकज़ कामराज़' तथा अन्य स्वयं सेवी संस्थाएं 'कश्मीरी लंगवेज फोरम' आदि कश्मीरी भाषा व साहित्य के प्रचार तथा प्रसार के लिए प्रयत्नशील हैं। यह हमारे लिए हर्ष का विषय है कि इस वर्ष सरकार ने प्राइमरी कक्षाओं तक कश्मीरी भाषा को अनिवार्य घोषित किया। इससे कश्मीरी भाषा को अवश्य प्रोत्साहन मिलेगा। इस दिशा में सरकार का यह क़दम प्रशंसनीय ही नहीं अपितु कश्मीरीयों के लिए महान उपलब्धि है।

कश्मीरी साहित्य :1989

जम्मू व कश्मीर की सप्रसिद्ध संस्था - 'जम्मू व कश्मीर ललित-कला संस्कृति व साहित्य अकादमी' की ओर से इस वर्ष कश्मीरी 'शीराज़ा' के छह अंको में से केवल पाँच ही अंक प्रकाशित हुए है। इसका छठा अङ्क कश्मीर के मूर्धन्य कवि स्वर्गीय श्री दीनानाथ नादिम की कविताओं का संग्रह है जो अभी मुद्रणाधीन है। उक्त पत्रिका के पाँच अंको में साहित्य की विभिन्न विधाओं पर प्रकाश डाला गया है। इनमें नज्में, गज़लें, नातें, कहानियाँ तथा लेख आदि लिखे गए हैं जिनसे साहित्यकारों की विभिन्न विषयों पर रुचि स्वत: आंकी जाती है।

शोधात्मक लेखों में से रहमानराही का (मज़हबी शायरी-एक बह्स) मोहम्मद यूसुफ टेंग का गुलिस्तान सैदी (फ़ारसी कवि की कृति पर लेख) गुलाम नबी आतश का-फाज़िल कश्मीरी आदि है। रहमान राही ने मज़हबी शायरी-एक बहस नामक लेख 1988 में 'कश्मीर विश्वविद्यालय' के कश्मीरी विभाग द्वारा आयोजित संगोष्ठी में पढ़ा था। यह लेख 'शीराज़ा' के एक अंक में 1989 ई० में प्रकाशित हुआ है। इस विषय पर विभिन्न साहित्यिक गोष्ठियों में वादविवाद भी हुआ था। यह शोधात्मक लेख इतना लोकप्रिय हुआ कि इसका प्रसारण कश्मीर रेडियो से भी हुआ था। प्रो० रहमान राही की दृष्टि से धार्मिक कविता का दायरा सीमित होता है। ऐसी कविता केवल आस्तिकों के लिए होती है नास्तिकों के लिए नहीं। नास्तिक धर्मिक कविता से प्रभावित नहीं होते है। अत: इसका दृष्टिकोण संकुचित होता है। धार्मिक शायरी में-नातें, भजन तथा लीलाएँ आदि गिनी जाती हैं। कविता की परिभाषा क्या है ? इसका विवेचन आपने पाश्चात्य दृष्टिकोण के आधार पर किया है। आपने पाश्चात्य कवियों-शेक्सपियर, वर्डस्वर्थ, कीटस तथा मिल्टन आदि कवियों का गंभीर-अंध्ययन किया है। फलत:आपकी विचारधारा पर इसका प्रभाव आपकी

विभिन्न रचनाओं में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। इस शोधात्मक लेख में आपने कश्मीर के कवियों- महजूर, रसूलमीर तथा लल्लदयद आदि कवियों को पाश्चात्य दृष्टिकोण के आधार पर परखा है। धार्मिक कविता किस तरह सीमित दायरे से हटकर जाति, धर्म तथा वर्ण भेद से ऊपर उठकर विश्वमय कविता का रूप धारण करती है इसकी भी आपने विशद रूप से समीक्षा की है। इस प्रकार आपका यह लेख बहुत ही महत्वपूर्ण है। वस्तुतः राही लेखक, समीक्षक तथा कवि भी हैं। इन तीनों का समन्वय आपके कृतित्व में पाया जाता है।

दूसरा लेख एस०एल०साधु का है। इसके लेखक दामोदर का कुट्टिनी मत है। दामोदर गुप्त संस्कृत के प्रकांड पंडित थे। कश्मीर के सुप्रसिद्ध शासक महाराजा जयापीड के दरबार में उद्भटट्, क्षीरस्वामी, मनोरथ तथा शंखदत्त आदि विद्वान थे। उस दरबार में दामोदर गुप्त का उल्लेख किया गया है। प्राचीन काल में कश्मीर में तीन मतों का प्रचलन था-बौद्धमत, नीलमत तथा शैवमत। घाटी में कुट्टिनी मत का भी काफी प्रभाव था। कुट्टिनी दलाली या व्यभिचारिणी स्त्री को कहते हैं जो दूसरे स्त्रियों को व्यभिचार के लिए फसाती हो। कश्मीरी भाषा में इसे 'फाह फाह कुटिन्य' कहते हैं। इस समय भी यह शब्द प्रचलित है। अकबर इल्लाही ने ऐसी स्त्रियों को उस्ताद भी कहा है। समाजिक कुरीति हमारे समाज में उस समय भी प्रचलित थी। इसलिए संस्कृत साहित्य के विख्यात कवि आचार्य क्षेमेन्द्र ने भी अपनी रचना 'समयमातृका' में ऐसी बदचलन स्त्रियों का वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त क्षेमेन्द्र की अन्य कृत्ति - 'देशोपदेश' में भी वेश्यालयों, गणिकाओं तथा कामक्रीड़ा में आसक्त पुरुषों का उल्लेख भी पाया जाता है। इस लेख के लेखक ने 'देशेपदेश' नामक कृति का संकेत नहीं दिया है। पुराने ज़माने में सरकार की ओर से उसे दंड दिया जाता था। कश्मीर में राजा सिंहदेव 1348-1362 ई० तक राज्य करता था। इतिहासकार 'हसन खुयहामी' के अनुसार यह राजा एक नर्तकी अथवा उत्तमाङ्गी का मधुर संगीत सुनकर अत्यंत प्रसन्न हुआ। प्रसन्न होकर-

नर्तकी से पूछने लगा-माँगों-तुम्हे क्या जरूरत है ? नर्तकी ने कहा-जिस सरकारी आदेश के कारण पिता को दुराचारिणी लड़की के होने पर सजा दी जाती है उस आदेश को खत्म करना चाहिए। राजा ने उसकी प्रार्थना सुनी। वह आदेश तुरंत हटाया गया। इतिहासकार जोनराज राजतरंगिणी में लिखता है। सुल्तान अल्ला-उल्दीन ने भी (1344-1355) वह बुरा रिवाज़ खत्म कर दिया जिससे संतानहीन किंतु दुराचारिणी विधवा ससुर की संपत्ति की अधिकारी बन सकती। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि पुराने जमाने में भ्रष्टाचार, पापाचार, दुराचार आदि अवगुणों से हमारा समाज अवनती के गर्त्त में गिरा हुआ था। इसका ज्वलंत उदहारण 'देशोपदेश' है। इसमें कवि ने समाज की पतित अवस्था यादुर्दशा पर पूर्णरूप से प्रकाश ड़ाला है। समाज में वेश्यावृति का प्रचलन था। कुरूप स्त्रियां अंगराग मलकर अपने आपको सजाती थीं। इस तरह लोगों को फंसानी थी।

बाज़ारों और गलियों मे घूम-घूम कर पीन पयोधरों से लोगों को आकृष्ट करती थीं। एक मालती नाम की युवती कुमार्ग पर चलती है। वह विकराल नाम की एक अनुभवी कुट्टिनी के पास जाकर उससे पुरुषों को फंसाने के लिए नीति आदि सीखती है। नीति आदि सीखकर वह कुकर्म में अपना जीवन बिताती है। इसतरह कुट्टिनी मत का प्रचलन कश्मीर में था। अंत में दामोदर कवि एक श्लोक में कहता है - जो यह काव्य अच्छी तरह से पढ़े या इसका गंभीर रूप में अध्ययन करे, उसे कोई कुट्टिनी अपने वश में नहीं कर सकती है। इससे यह स्पष्ट है कि कवि यह काव्य लिखकर लोगों का पथप्रदर्शन करना चाहता है। ऐतिहासिक दृष्टि से कुट्टिनी मत का महत्व भी है। हर्ष रचित 'रत्नावली' नाटक के एक अंक का मंचन दामोदर ने किया है। इससे मालूम होता है कि संस्कृत की नाट्यकाला उस समय चरम सीमा पर पहुँची थी। इस प्रकार एस०एल०साधु का यह लेख ज्ञानवर्धक तथा सारगर्भित है। कश्मीरी कविता में 'ड़ल' इस शीर्षक के अंतर्गत 'शीराज़ा' में मोहम्मद यूसुफ टेंग का शोधात्मक लेख प्रकाशित हुआ है। इसमें टेंग साहिब ने कश्मीरी

कवियों द्वारा रचित झीलड़ल का वर्णन विस्तृत रूप से किया है। सबसे पहले इसका वर्णन 'शेख उल आलम' अपनी कविता में करता है बाद में सतारहवीं शती में मोहम्मद गामी। मोहम्मद गामी का समकालीन कवि रसूलमीर ड़ल का वह चित्रण प्रस्तुत करता है। जिसने नूरजहाँ तथा जहांगीर से पहले दिल को मोहित किया था:-

''स्वनु लांके चाने शांके गॅयि आधर आर कूल्य।
जस्तु मय पख अस्तु चाय नाव त्राव मंज़ुय ड़लय लो।।''

हिंदी:– कितंने आशिक आर्त होकर स्वनलांके (संस्कृत–स्वर्णलंका–झीलड़ल मे प्रसिद्ध द्वीप) चले गए। अरे प्रेमी। जल्दी मत चल, ड़ल में धीरे-धिरे नाव चलाओं। इस तरह से संभोग श्रृंगार का वर्णन करके रसूलमीर आशिकों का मन इसकी ओर आकृष्ट करता है। वस्तुत: चिरकाल से अशिक (प्रेमी) इसके घाट पर संगीत सभा का आयोजन करते है और इससे अपने दिल को अह्लादित करके प्रेम के अथाह सागर में अवगाहन करते रहते हैं। नि:संदेह रसूल मीर का यह मार्मिक चित्रण है।

''पाद लूसिम नाद हो दिमय, वनवय लाल गोम हे।
शालमार ड़ल्य हय लो।।''

हिंदी:- आशिकों की मानसिक शांति देने वाला ड़ल है। नायिका अपने नायक को ड़ल के किनारे ढूंढती है और कहती है-मेरे पाँव ढूंढते-ढूंढते थक गए हैं। मै बुलाती हूँ। मेरा नायक ड़ल के किनारे-किनारे शालमार बाग गया है। इसी तरह शमस क्रालवारी ने अपनी रचनाओं में आध्यात्मिक रूप से ड़ल का वर्णन इस तरह किया है। उदाहरण के रूप में निम्न पद्य दृष्टव्य है:-

''मस बु कॅरथस राथ के प्यालय हनो,
बड़ि ड़लु ज़ोलुम छ़लु म्वख मे हाविनो।
खसुवुनि तेलबलु नालय हनो।।''

हिंदी:- विरह की अवस्था में नायिका नायक से कहती है-अरे नायक! कल रात को जो अपने मुझे मद्य का प्याला पिलाया, उससे मै मदोन्मत्त हुई। छल से

मेरा प्रियतम ड़ल से भाग गया। मुझे तेलबल के नाला से दर्शन दे दो।

आध्यात्मिक पक्ष में अर्थ:- साक़ी ने मुझे अमृत का प्याला पिलाया। उससे मैं ब्रह्म में लीन गई। मुझे ब्रह्मानंद का अनुभव हुआ। इसी तरह अन्य सूफी कवियों ने भी ड़ल के आध्यात्मिक पक्ष पर प्रकाश ड़ाल दिया है। इनमे, न्यामसॉब, वहाब खार, अहमद वटवारी, शसम फक़ीर, समदमीर तथा अहमद राह के नाम उल्लेखनीय है। अहमद राह के शब्दों में:-

''शहज़ाद ब्यूठुम रंगु शिकारे।
ड़ल सवारे सालस द्राव।।''

हिंदी:- शाहजादा रंगीन शिकारे (नाव) में बैठ गया-ड़ल की सवारी में दावत पर चला गया। क्रांतिकारी कवि महजूर की भावाभिव्यक्ति निम्न पद्यों में दर्शनीय है:-

''सेरि ड़लक चु वुछ बहार,
चश्मु ज़ु थविमय तैयार।
वार तरान तरान छलो।।''

हिन्दी:- माशूक आशिक़ से कहती है-ड़ल निशात तथा शालामार की रहस्यमय बहार देखो। आपके साथ प्रेम करने के लिए मैनें दो आँखे तैयार रखी है। अर्थात् प्रेम के लिए मेरी आँखें आतुर है। किश्ती से पार करके आ जाओं। कालांतर आधुनिक कवियों में श्री दीनानाथ नादिम, तथा कमिल आदि ने ड़ल संबंधी कविताएँ लिखकर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। 'शीराज़ा' के एक अंक में पुरातत्व संबंधी एक शोधात्मक लेख प्रकाशित हुआ है। इसका शीर्षक है - सिमथन का अपभ्रंश रूप है। इस गाँव का ऐतिहासिक महत्व भी है। इस स्थान में पुरातत्त्वविदों के उत्खनन ने कश्मीर की प्राचीन सभ्यता व संस्कृति के विषय में एक नया अध्याय जोड़ा है। इससे इतिहासकारों तथा अनुसंधान करने वालों के लिए नई सामग्री उपलब्ध हुई है। सिमथन के उत्खनन से चार युगों का पता चलता है - पहला युग, दूसरा युग, तीसरा युग तथा चौथा युग। पहले दौर में तांबे के सिक्के, मिट्टी के बर्तन, तश्तरियाँ, गुलदान,

हांडियाँ आदि प्राप्त हो गई है। अहिछत्र (साँप का छत्र) के साथ एक मुद्रा भी निकली है। जो ब्राह्मी लिपि में लिखी गई है। स्पष्ट है कि कश्मीर में ब्रह्मी लिपि का प्रचलन था। इस तरह उनका लेख शोधकर्त्ताओं के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है। मजबूर साहिब का दूसरा लेख - 'वैदिक शायरी में नेचर' शीर्षक के अंतर्गत प्रकाशित हुआ है। इसमें लेखक ने अग्नि, सूर्य, वरूण, उषा आदि प्राकृतिक देवताओं का विस्तार से वर्णन किया है।

वेरीनाग का लेख ऐतिहासिक दृष्टि से ज्ञानवर्धक है। लेखक के अनुसार वेरीनाग वितस्ता का मूलस्त्रोत है जो अनन्तनाग ज़िले के शाहबाद परगने में स्थित है। वितस्तामाहात्म्य के अनुसार वितस्ता का मूलस्त्रोत वितस्तात्राता (वर्तमान - व्यथुवोतुर) है। इसका उल्लेख लेखक ने अपने लेख में नही किया है। वेरीनाग के पुराने नाम-नीलकुंड, शूलघात तथा क्षिप्त-प्रहार है। 'वेर' इलाके का नाम है। 'नाग' कश्मीरी में तालाब को कहते हैं। जैसे 'वेरनाग' वेरीनाग। अब्दुल फज़ल ने भी इसका वर्णन 'वेरीनाग' के नाम से ही किया है। नीलमत्पुराण में वितस्ता का उल्लेख है जैसे:-

'वितस्तिमांत्र गर्त्तं हि शूलेन कृतवान हरि'

हिंदी:- भवनान शंकर ने त्रिशूल के प्रहार से वितस्ति के बराबर गड्ड़ा किया। यह उदाहरण लेखक ने अपने लेख में नहीं दिया है। स्पष्ट है कि संस्कृत साहित्य का अध्ययन लेखक ने नहीं किया है।

कश्मीरी कहानियों में से ह्रदय कौल भारती की ताफतु उशनेर (हिन्दी - प्रकाश तथा उष्णता) नामक कहानी उत्तम है। यह कहानी प्रतीकात्मक तथा व्यंग्यात्मक है। इसमें कहानीकार को बस्ती में रहकर अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। साहित्यकार को बस्ती में रहकर अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। उसे वहाँ शांति का वातावरण नहीं मिलता हैं। वह इसे पाने के लिए सदा चिंतित रहता है। मरणोपरांत नही मिलता है। वह इसे पाने के लिए सदा चिंतित रहता है। मरणोपरांत जब चित्रगुप्त (पुराणों के अनुसार परलोक में हिसाब किताब लेने वाला यमराज का दूत) उससे हिसाब

लेता है तो वह अपनी ईमानदारी का प्रमाण देता है तथा अपनी बेबसी, लाचारी और दरिद्रता को प्रकट करता है।

चित्रगुप्त के प्रश्नों का उत्तर वह काँपता हुआ इस प्रकार देता है - मैं नाटक आदि लिखकर अपना निर्वाह करता हूँ। परिवार का पालन पोषण भी मैं इसी प्रकार करता हूँ। बेईमानी से संसार में क्या लाभ है? यह सुनकर चित्रगुप्त आश्चर्य-चकित होता है। उसके जीर्णशीर्ण परिधान को देखकर वह हँसता है और वह उसे (साहित्यकार को) परलोक से पटक कर मर्त्यलोक में भेजता है। चर्सी की बात भी वह उसे बताता है लेकिन उसकी ओर चित्रगुप्त ध्यान नहीं देता है। वस्तुत: साहित्यकार के लिए संसार में जीना बहुत कठिन है। वह ठाठ-बाठ से अपना निर्वाह नहीं कर सकता है। इसके बजाए एक चर्सी (चर्स का तस्कर) संसार में ठाठ-बाठ से रहता है। उसका सम्मान हर जगह होता है। उसकी प्रतिष्ठा हर जगह बनी हुई होती है। कितनी विडंबना है कि एक साहित्यकार को न इस लोक में सुख है न परलोक में। परलोक में भी उसके लिए दरवाजे बंद है जहाँ वह शांति पाने का इच्छुक है। हाय! दैव की लीला विचित्र है। अब वह उस स्थान में रहना चाहता है जहाँ प्रकाश और उष्णता हो। प्रकाश ज्ञान का भी सूचक है। अत: वह अंधेरे में रहना नहीं चाहता है। वह प्रकाश उस नई बस्ती में भी नहीं मिल सकता है क्योंकि नई बस्ती में भी लोग भयावह स्थिति से ब्याकुल है। इसलिए लोग वहाँ से भाग जाते हैं। पलायनकर्ता को भी लोग चिड़ाते हैं। उनकी कायरता पर पलायन करने वालों को हँसी आती है। इस दुविधा में पड़कर साहित्यकार कहाँ जाएँ, कहाँ सुख पाए? यह उसके लिए जटिल समस्या है। इसका समाधान ढूंढना ही कहानीकार का उद्देश्य है। इस प्रकार 'भारती' जी ने उक्त कहानी में विश्व के साहित्यकारों की समस्याओं को उभार दिया है तथा कहानी के माध्यम से पाठकों को उन समस्याओं से अवगत कराया है। इसमें संदेह नहीं है कि हृदय कौल भारती गत दो दशको से कश्मीरी कहानियाँ लिख रहे हैं। उनका योगदान कथा-साहित्य में उल्लेखनीय रहा है।

इसके अतिरिक्त अमीन कामिल, मुहीद्दीन गौहर, फयाज़ तिलगामी, अब्दुल रहमान आज़ाद आदि की नातें भी 'शीराज़ा' के विभिन्न अंकों में प्रकाशित हुई हैं। गुलाम मोहम्मद गमगीन, मोहम्मद अयूब बेताब, अब्दुल रहमान गुल तथा गुलशन बदरनी आदि की गज़लों से भी 'शीराज़ा' अंलकृत है। मोहम्मद सुबहान भगत का - 'कश्मीरी ड्रामा का एक जायज़ा' नामक लेख शोध की दृष्टि से उत्तम है। नज़्मों में मखनलाल बेकस की नज़्म उल्लेखनीय है। इसका एक पद्य प्रस्तुत किया जाता है जैसे:-

''सोंतकि नीजर क्याज़ि छेन्योख
यादुय रूदय ना
किथु कॅन्य हुंदरोवुय पकुवुन खून।
नॉरन नॉरन अन्दर रथ गव बान्दि
तु नीजर नीजर फ्यूरुय सोसन्य रंग
बेहि गरि खंड़ि वुशावा ह्यु कड़।।''

हिंदी रूपांतर:-

वसंत की शाद्वलता
कैसे हास यह तुम्हारा ?
भूल गया, माघ की गर्वशील प्रकृति ने
उबलता रक्त कैसे बनाया शीतल ?
बंद हुआ रक्त तेरा नाड़ी नाड़ी में
सोसन्य (कश्मीर में प्रसिद्ध एक पीतवर्ण पुष्प) रंग में परिवर्तित शाद्वलता।
क्षणभर बैठो, दम संभालो।।

मानवीय-करण, प्रकृति-वर्णन तथा भावपक्ष की दृष्टि से मखनलाल की उवत नज़्म श्रेष्ठ है। प्रकृति का विधान अटल है। एक मौसम बीत जाता है तो दूसरा आता है। शरद काल के बाद मौसम बहार अवश्य आता है इसलिए मनुष्य को किसी रूप में हतोत्साह नहीं होना चाहिए। दुख, सुख का सूचक है क्योकि दुःख के बाद सुख का अनुभव मनुष्य अवश्य करता है। प्रकृति भी

हमें नियमित रूप से यह सिखा देती है। यद्यपि शरदकाल में अथवा शिशिर ऋतु में वसंत की हरियाली नष्ट होती है और फूल भूमिसात् हो जाते है अर्थात् मुर्झाते हैं। तथापि वसंत के आगमन पर पंपोश (संस्कृत- पद्म पुण्य-झीलड़ल में खिलने वाला फूल) खिलते है और उसके पत्ते-पत्ते विकसित हो जाते है। यही कवि का संदेश है। इस प्रकार कवि आशावादी है। बिम्ब-विधान में वह कुशल हैं। अवतारकृष्ण रहबर ने इतिहासकार पृथ्वीनाथ बामज़ई के व्यक्तित्व तथा कृतित्व पर शोध-पूर्ण लेख लिखा है। स्वर्गीय आनन्द कौल बामज़ई के सुपुत्र श्री पृथ्वीनाथ कौल बमजाई गत तीन दशकों से कश्मीर के इतिहास पर अंग्रेज़ी में लिख रहे हैं। इनकी बहुत-सी पुस्तकें अंग्रेज़ी में प्रकाशितं हुई हैं। इतिहासकारों में बामज़ई का नाम चिरकाल तक स्मरणीय रहेगा। इन अंको की श्रृंखला में प्रकाशित कविताओं में से श्री सर्वानन्द कौल प्रेमी की कविता किन सहृदयों को आकृष्ट नहीं करती है ? कविता का एक पद्य अवलोकनीय है:-

''बुजरस मंज़ ल्वकुचार वुछुम
अँद्य अँद्य पॊज़ दिलदार वुछुम
तस यॆलि हुसनस गाह वुतल्यव
अँद्य पॅख्य नॊव संसार वुछुम।।''

हिंदी:-

देखा बचपन बुढ़ापे में
देखा सच्चा वह दिलदार
छा गया जब प्रकाश उसका
देखा कैसा नया संसार।।

जीवन में सार प्रेम ही है। प्रेम के बिना जगत निस्सार है। प्रेमी की गज़ल में यही स्वर मुखरित हो उठता है। (प्रेम बिना सब सूना जग में)

'इंस्टीट्यूट ऑफ जम्मू तथा कश्मीर' नामक संख्या के निंदेशक बलराजपुरी की अध्यक्षता में श्रीनगर के 'क्लब भवन' में सितंबर के अंतिम

सप्ताह में 'त्रिदिवसीय संगेष्ठी' का आयोजन हुआ। संगोष्ठी में प्रपत्रों का विषय-पाँच हज़ार वर्ष का कश्मीर था। इसका शुभारंभ इतिहासकार पी०एन०कौल बामज़ई के 'नीलमत्पुराण' नामक सत्र से हुआ। बाद में फिदा मोहम्मद हसनैन आदि लेखकों ने कार्यक्रम के अनुसार विभिन्न सत्रों में प्रपत्र पढ़े। इस सेमिनार में स्थानीय लेखकों के अतिरिक्त भारत के विभिन्न राज्यों से भी लब्धप्रतिष्ठित लेखकों तथा इतिहासकारों को प्रपत्र पढ़ने के लिए आमंत्रित किया गया था। भारत के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ श्री०टी०एन० कौल ने भी चर्चा में भाग लिया। इस संगेष्ठी में माध्यम अंग्रेज़ी था। पहली बार उक्त संस्था के तत्वावधान में श्रीनगर में ऐसी संगोष्ठी आयोजित हुई।

अकादमी की ओर से इस वर्ष 26 तथा 27 दिसंबर 1989 को अखिल भारतीय कश्मीरी लेखकों की 'द्विदिवसीय संगोष्ठी' टैगोर-हाल में आयोजित हुई। इसमें कश्मीर के बुद्धिजीवियों, कवियों तथा लेखकों आदि ने भाग लिया। इस संगोष्ठी में जिन लेखकों ने विभिन्न विषयों पर प्रपत्र पढ़े, उसकी नाभावली इस प्रकार है:-

श्री अर्जुन देव मजबूर	विषय - हमारी शिक्षा प्रणाली और कश्मीरी ज़ुबान
श्री बशर बशीर	विषय - कश्मीरी पत्रकारिता
डॉ० शफी शौक	विषय - आधुनिक कश्मीरी कविता
मोहम्मद शफी सुम्बली	विषय - कश्मीरि अफ़साना-प्राचीन काल और अर्वाचीन काल
निशांत अंसारी,	विषय - मज़हब तथा कश्मीरी ज़बान
रत्नलाल शांत,	विषय - कश्मीरी ज़बान तथा संबंधित संस्थाओं का कार्यकलाप।

इन प्रपत्रों को सुनकर काफी समय तक वाद-विवाद हुआ। चर्चा में भाग लेने वालो के नाम इस प्रकार है: श्री सर्वानन्द कौल प्रेमी, प्रो०पी०एन० पुष्प, श्री रहमान राही, अमीन कामिल, श्री मिर्जा आरिफ बेग आदि थे। इसमें

ऐतिहासिक घटनाओं की ओर लेखक ने ध्यान नहीं दिया था तथा प्रमाणों द्वारा तथ्यों को उभारा नहीं था। फलस्वरूप यह प्रपत्र श्रोताओं में प्रभावशाली सिद्ध न हुआ। शीर्षक के अनुसार प्रपत्र प्रस्तुत न करने से इसमे त्रुटियाँ रह गई थीं. अत; अथवा लेख के प्रकाशित होने से पहले त्रुटियों का निवारण करना लेखक के लिए अत्यन्त आवश्यक है। मोहम्मद शफी सुम्बली का 'कश्मीरि अफ़साना' नामक प्रपत्र उत्कृष्ट था। इसके प्रपत्र पर काफी समय तक चर्चा हुई। अन्त में शाम के समय हास्यरसमय कविसम्मेलन का आयोजन भी हुआ। इस संगोष्ठी की विशेषता यह रही है कि इसमे 'कश्मीरि विश्वकोश' के दूसरे खंड का विमोचन संपन्न हुआ। दुर्भाग्य से इसकी प्रतियाँ अभी पाठकों तक नहीं पहुँची अत: इसके अभाव में इसका मूल्यांकन करना इस सर्वेक्षण में मेरे लिए संभव नहीं है। उल्लेखनीय बात यह है कि 'कश्मीरी शब्दकोश' के सात खंडों के प्रकाशित होने के बाद 'कश्मीरी विश्वकोश' का प्रकाशित होना हमारे लिए गौरव की बात है। किसी भी भाषा का विश्वकोश का प्रकाशित होना हमारे लिए संभव नहीं है। उल्लेखनीय बात यह है कि 'कश्मीरी शब्दकोश' के सात खंडो के प्रकाशित होने के बाद कश्मीरी विश्वकोश का प्रकाशित होना हमारे लिए गौरव की बात है। किसी भी भाषा का विश्वकोश उस भाषा व साहित्य का भविष्य समुज्जवल है। विश्वकोश विश्व की अक्षय निधि है. इसकी सीमा विशाल तथा विस्तीर्ण है। विश्व के कोने-कोने में स्थित कश्मीरियों के लिए यह महान तथा अभिनव उपलब्धि है। निसंदेह, इसका श्रेय यदि किसी संस्था को जाता है तो वह है - जम्मू व कश्मीर कल्चरल अकादमी। इस दिशा में अकादमी का प्रयास स्तुत्य है।



कश्मीरी साहित्य : 1993

कश्मीरी में साहित्यक गतिविधयाँ गत चार वषों से विषम-परिस्थितियों के कारण मंद पड़ी हुई है। जम्मू व कश्मीर कल्चरल अकादमी जो राज्य में एक प्रतिष्ठित साहित्य तथा सांस्कृतिक संस्था मानो जाती है, वह भी रचनाऐ समय पर प्रकाशित नही कर पाती है। उनके द्वारा प्रकाशित द्वैमासिक कश्मीरी शीराज़ा कई वर्ष से प्रकाशित नही हुआ है। कश्मीरी के साहित्यकार विस्थापित होने के कारण अपनी कश्मीरी रचनाएँ प्रकाशित करने में असमर्थ है। उसका मूल कारण अर्थाभाव के अतिरिक्त पाठकों में पुस्तकें खरीदने की अरुचि। उर्दू लिपि के माध्यम से प्रकाशित कश्मीरी साहित्य के पाठक अब नगण्य है। बिखरे हुए कश्मीरी साहित्यकार अब अपनी रचनाऐ देवनागरी लिपि के माध्यम से ही प्रकाशित करते है क्योंकि इस लिपि का बाज़ार भारत के कोने-कोने में नज़रे आता है। इसके अतिरित्क भावात्मक एकता को सुदृढ़ करने के लिए इस लिपि का प्रचार-प्रसार करना अत्यंत आवश्यक है।

अत: इन परिस्थितियों को दृष्टि में रख कर कश्मीरी साहित्यकारों ने देवनागरी लिपि को सक्षम माध्यम बनाया। यहाँ पर यह कहना युवित-संगत होगा कि केंद्रीय हिदी निदेशालय ने आज से कई वर्ष पूव दोनो लिपियों नस्तालीख (उर्दू) तथा देवनागरी लिपि को कश्मीरी भाषा के लिए स्वीकृत किया है। उनके दवारा प्रकाशित साहित्य-द्विभाषिक वार्तालाप पस्तिका (हिदी, कश्मीरी गाईड) जिसका लिप्यतरकार मैं हूँ। तथा त्तिभाषाकोश (हिन्दी, अंग्रेज़ी तथा कश्मीरी) इसके संपादक़ मंडल में भी मैं हूँ। इन दोनों पुस्तकों में उवत दोनों लिपियों का प्रयोग किया गया है। स्पष्ट है कि भारत सरकार ने ये दोनों लिपियां इसके लिए निर्धारित की है।

सोभाग्य से कश्मीर के जाने-माने कवि लेखक तथा समीक्षक श्री सईद रसूल पांपोर को इस वर्ष 1993 ई० में साहित्य अकादमी ने उनकी

कश्मीरी रचना - 'कैंह नतु कैंह' (कूछ न कूछ) को पुरस्कृत किया है। यह रचना 216 पृष्ठों की है। गुर्णामक दृष्टि से यह बहुत आकर्पक है। इसका मूल्य साठ रुपए मात्र है इसकी छपाई भी सुन्दर है। यह रचना पांपोर के विविध विषयों पर लिखे गए निबंधों का संकलन है जिसमें बीस निबध प्रकाशित हुए है। इनमें-सादगी, जूतों की चोरी, भ्रांति, जमहूरियत, अब दोबारा कर्फ्यू मेरी मन पसद तखनीक (रचना) यह दुनिया रहने के योग्य नही आदि है। सादगी नामक लेख का स्तर प्रकार है सादगी जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग है तथा मानवता का आभूषण। इस विश्व को प्रकृति ने सादगी से सम्लंकृत किया है। आज का मानव सागर को बांध सकता है, मरुस्थल को जलमय बना सकता है। असंभव को भी संभव बना सकता है। लेकिन इतनी क्षमता के बावजूद भी वह प्रकृति के नियमोंका उल्लंधन नही कर सकता है। अत: मनुष्य को पर्यावरण की ओर ध्यान देना चाहिए। मनुष्य के विचार ऊँचे होने चाहिए और जीवन सरल। सादा भोजन खाने से मनुष्य सुखमय तथा शांतिमय जीवन बिता सकता हो, उसे अलंकारों की आवश्यकता नही है। सादगी से मनुष्य का आचरण जाना जा सकता है। ऐसे मनुष्यों में वैर, भेदभाव, ईर्ष्या आदि नहीं होती है। सादगी में भाईचारा तथा प्रेम है इसके गुण गाना सरल है लेकिन इस पर अमल करना कठिन है। सादगी का पर्याय-संतोष है मनुष्य का जीवन इसी से सफल बन सकता है। सादगी से जीवन की कठिनतम यात्रा सरल हो सकती है ओर संदुर बन सकती है लेखक के अनुसार सादगी एक बून्य (चिनार) है जिसके नीचे सारे शीतलता का आनंद उठा सकते है। अत: हमें इसका पालन करना चाहिए: आजकल के ज़माने में लोग सादगी को ओर ध्यान नहीं देते है। सादगी जीवन का सार है। मनुष्य का स्वभाव सादगी से ही परखा जाता है। अत: सादा जीवन ही ऊँचे आदर्शों की आधारशिला है इन पर चलने से मनुष्य बुंलदियों को आसनी से छू सकता है। लेखक का अन्य लेख - 'बूट चूर' (जूतो की चोरी) शीर्षक के अंतर्गत आता है। कश्मीरी लोगों के पुराने पहनावों में से पुलहोर (घास का बनाया हुआ जूता) कदीम पहनाया माना

जाता है अब यह जूता पुराने आसारों में से गिना जाता है। इसका प्रयोग इस समय केवल कश्मीरी पंडित में ही दिखाई देत: है। वह भी विशेष कर अत्येष्टि क्रिया के समय शव को यह पुलहोर पहनाया जाता है। बाद में शव का दाह संस्कार किया जाता है। यह जूता पुराने ज़माने में बड़े-बड़े पहाड़ो की बर्फीली चोटियों पर चढ़ते समय प्रयोग में लाया जाता था। साधारण लोग भी दूरदराज़ जगहों में जाकर इसका इस्तेमाल करते थे। आश्चर्य की बात है कि यहपुलहोर भी चोरी से लिया जाता था। धीरे-धीरे लोगों ने इसका प्रयोग छोड़ दिया। अब समय के परिवर्तन से लोग अंबेसडर आदि नए किस्म के जूते पहनते है। इस विषय में लेखक को एक अविस्मरनीय घटना याद आती है। एक बार वह श्रीनगर की एक प्रसिद्ध मस्जिद में नमाज़ पढ़ने के लिए गया। वहां से निकल कर उसकी चप्पल जो उसने 50 रुपए में खरीदी थी कोई चुराकर ले गया। बाद में उसे नंगे पांव ही घर जाना पड़ा। रास्ते में चलते-चलते उसको बहुत शर्म आई आखिर तो घर वापिस जाना ही था इस घटना से उसे बहुत दुःख हुआ। उसने वादा किया कि नमाज़ पढ़ने के लिए मस्जिद में भी जूता पहन कर नही जाना चाहिए इस चोरी के संबंध में उसको एक अन्य ऐतिहासिक घटना याद आगई। एक बार चीनी यात्री ह्यून सांग (सातवी सदी) का बारामुल्ला के एक विख्यात बोद्धविहार में जूता चुरा लिया गया था, उस समय उसने कश्मीरियों के विषय में वया सोचा होगा, यह ईश्वर ही जानता है। सचमुच यह मनुष्य के पतन की पराकाष्टा है तब से यह सिलसिला हमारी वादी में जारी है।

एक बार 'अदबी मरकज़ कामिराज़' की ओर से बारामुल्ला में कश्मीरी साहित्यकारों का सम्मेलन आयोजित किया गया। इसमें कश्मीर के प्राय: सभी साहित्यकार-कवि, लेखक, समीक्षक तथा नाटककार आदि आमंत्रित किए गए थे। कार्यक्रम के अनुसार एक प्रतिष्ठित ज़िलाधिकारी के मकान में बैठके हुआ करती थी। इसी मकान में साहित्यकारों के खाने पीने आदि की व्यवस्था की गई थी। बैठक को समाप्ति पर ऐसा पता चला कि किसी ने प्रात:काल के समय एक सुप्रसिदध साहित्यकार श्री हाज़नी साहिब का जूता

चुरा लिया। सब साहित्यकार इस कारनामें से लज्जित हुए। बाद में किसी तरह कब्रिस्तान की एक कब्र के पास जूता मिला गया। इस घटना की चर्चा स्थानीय दैनिक समचार पत्र - 'अफताब' में प्रकाशित हुई। अनेक साहित्यकारों ने इस विषय पर अपने भाव व्यवत किए। लेखक के अनुसार यह अस्वस्थ परंपरा अदबी मरकज़ों में रह जाएगी। इससे बुद्धिजीवी अच्छे साहित्यकारों के शोधात्मक लेखों से हमेशा के लिए वंचित हो जाएंगे। यह कैसी विडंबना है कि लोग खुदा के घर में भी बदकारी से परहेज़ नही करते है। बीसवी सदी में भी लोगो ने अपना स्वभाव नही छोड़ा। वस्तुत किसी भी युग में मनुय का स्वभाव बदलता नही है।

अन्य व्यंग्यात्मक लेख जभ्हूरियत (लोकतंत्र) के विषय में लिखा गया है। योरोपीय जनतंत्र प्रणाली तथा भारत की जनतंत्र प्रणाली में बहुत अंतर है। भारत के राजनीतिज्ञ स्वराज्य के नाम पर स्वार्थ सिद्धि के लिए सब कुछ करने के लिए तैयार है। वे इसे धंधा समझकर व्यपार करते है और लोगों को आश्वासनों से प्रसन्न करते है। मज़दूरी की जम्हूरियत असली है, पूंजीपतियों की नकली हमारे भारत में सही रूप से प्रतिनिधियों का चुनाव नहीं होता है। अब यहाँ धार्मिक लोकतंत्र प्रणाली भी वजूद में आई है। यह धार्मिक लोकतंत्र प्रणाली किस राज्य में अस्तित्व में आई है, इसका उल्लेख लेख ने नहीं किया है। प्रत्येक शासक लोकतंत्र का रक्षक तथा जनता का प्रतिनिधित्व करता है। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखे तो पता चलता है कि सब प्रतिनिधि अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए बहुरूपिया बन जाते है। लोंकतंत्र का अर्थ है - जनता द्वारा शासन चलाना। लेकिन आजकल यहां सब उल्टा ही चलता है। स्वतंत्रता के बाद किसानों को और भूमि और लोगों को अन्य अधिकार मिले। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक मे सर बाल्टर लारंस साहिब ने जिन कृषि-संबंधी सुधारों का वर्णन किया था। वे भी यहाँ लागू हो गए। जन प्रतिनिधियों के हितों की ओर ध्यान दिया गया।

जमहूरियत, यह पारिभाषिक शब्द अरबी भाषा का है जो जमहूर से

निकला हुआ है जिसका अर्थ एक ही जगह पर जमा करना है। यह राष्ट्र आदि के लिए भी प्रयुक्त होता है। इसी तरह अंग्रेज़ी का डेमोक्रेसी शब्द है यह दो लातीनी (लैटिन) शब्दों का संयुवत रूप है। डेमोक्रेटिय और डेमोस, लोग जनता कटोस बल, अर्थात् जनता की शवित या जनता का अधिकार, जिसे हम जम्हूरियत कहते है। इस तरह लेखक ने जमहूरियत शब्द की व्युत्पत्ति दिखाई है। हमारे स्वार्थो राजनेताओं ने 'जम्हूरियत' का गला गोंट दिया है वे लोगों का शोषण करते है। जिस समय कोई आदमी वोट डालने के लिए बूथ पर जाता है तो वहाँ उसका मन बहुत ही उद्विग्न हो जाता है। इस संबंध में लेखक को एक घटना याद आती उन्हें देखकर यहाँ का चुनाव अधिकारी उन्हें कहता है। अरे. हाजी साहिब। अपनें यहाँ आने का कष्ट वयों किया? हम आपके सेवक यहां आपकी सेवा करने के लिए ही हाज़िर है। हमनें आपका वोट सबसे यहाँ पहले मतदान-पेटिका मेंड़ाल दिया है। आप इस विषय में नश्चिंत रहें। जो हारने वाला होगा, वह अवश्य जीतेगा ओर जो जीतने वाला होगा, वह अवश्य भारी मतों से हारेगा। यह सुनकर हाजी साहिब वापिस घर जाते है। इस तरह बूथों (बूथ) पर चमत्कार दिखाने वाले बहुत मिलते है। लोकतंत्र की इस प्रणाली से राष्ट्र का महत्त्व घट जाता है। जिन गाँवों को ये प्रतिनिधि अभियान के समय स्वर्ग के समान अथवा लंदन के समान बनाने का दावा करते है। वहाँ पीने का पानी भी मनुष्य को सुलभ नही होता है, पुलों के निर्माण अथवा सडकों के निर्माण की बात ही क्या है। इस तरह प्रतिनिधियों के वादे वोट देने के बाद खोखले सिद्ध होते है। उनमें दमखम तो है नहीं। केवल चापूलसी चाटुकारिता ही मुख्य रूप से चलती है। उनके ऐसे व्यवहार से सच्चाई कोसों दूर भाग जाती है। वह बेचारी भी शर्मिदा होकर पहाड़ को गहरी गुफाओं में छिप कर रह जाती है। यह है लोकतंत्र की प्रणाली। यह हमारें प्रतिनिधियों का अचरण है। लोकतंत्र ने लोगों के सुख व आराम को हराम कर दिया है। इसके कारण अधिकारी अनुशासनहीन तथा उच्छृंखल बन गए है। कोई किसी की बात सुनने के लिए तैयार नही है। बड़े और छोटे में कोई अंतर

नहीं है। लोग दिशाहीन तथा लक्ष्यहीन ही गए है। कार्यालयों में तानाशाही तथा फीताशाही (रेडटेप) जारी है। अधिकारी वर्ग अपने आपको लोगों का सेवक (सेवा करने वाला) नहीं समझाते है। वह अपने अधिकारों का प्रयोग करता है इस तरह शासनतंत्र इसके कारण दिन-प्रति-दिन बिगड़ता चला जा रहा है। जुल्म करनें में अधिकारी वर्ग चंगेज़खाँ को भी परास्त कर देते है। इंसान के खून प्यासे चारों नज़र आते है। यही है हमारी जमहूरियत। भला इस तरह राष्ट्रकी नाव कैसे पार हो सकती है। सब अपने स्वार्थ में लगे रहते है।

इसमें कोई संदेह नही है कि शिक्षा का प्रसार दिन-प्रति-दिन व्यापक हो रहा है मगर शिक्षा का प्रकाश, लेखक के अनुसार, हमें अंधकार की ओर ले जाता है। ऐसे स्थिति ने मनुष्य वर्तमान युग में अपनी मंजिल तक तब ही पहुंच सकता है, जब वह मानववादी दृष्टिकोण उत्पन्न कर सब के साथ भाईचारा तथा प्रेम से रहे। अन्यथा वह जम्हूरियत का नाम बदनाम करेगा। इस तरह लेखक ने जमहूरियत की बुराइयों की ओर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला है। इस लेख में लेखक ने जमहूरियत के गुणों की अपेक्षा उसके अवगुणों पर अपना ध्यान केंद्रित किया है। न जाने रचनाकार बीसवी सदी के अंतिम दशक में वयों निराश हो गया है? वया वह जम्हूरियत के वरदानों का महत्त्व नही जानता है? आज के मानव को वैधानिक गारंटी है। वह इस गारंटी के तहत अपने अधिकारों (हकूक) के लिए जीवन के अंतिम क्षण तक लड़ सकता है। इस जनतंत्र में प्रत्येक को जाति, वर्ग के भेद के बिना समानाधिकार है।

इनका अन्य लेख-मेरी मन पसंद रचना है। इसमें लेखक ने अपनी रचनाओं का उल्लेख किया है। उनकी अभिव्यवित का माध्यम गज़ल, रुबाई, लेख, कहानियाँ तथा यात्रा विवरण है वे इन विभिन्न साहित्यक विधाओं के माध्यम से अपनी अभिव्यवित में सक्षम है। प्राकृतिक सौदर्य ही अभिव्यवित का संबल माध्यम है। बचपन से उन्हें चांदनी के साथ लगाव रहा है। इसी ने लेखक की सुप्त चेतना को कविता के रूप में जागृत कर दिया है। वस्तुत: यह उनकी जीवन-संगिनी बन गई है। तभी तो उनके उदगार चाँदनी के विषय में

इस प्रकार वयवत हुए है :-

''लोलु नज़रन रॉच़ हुंद शेहजार ज़ून
लोलु देवानन मॅछ्युल अनहार ज़ून
शोयरन हुंदि दुनियिहिच बॅड़ राजुरेन्य।

अर्थ:- प्रेम भरी निगाहों को शीतलता प्रदान करने वाली है चाँदनी। मस्त देवानों की अनुहार तथा कवि-संसार को बड़ी महारानी। इस तरह विभिन्न साहित्यिक विधाओं से समलंकृत यह रचना पाठकों को अपनी सौरभ से अवश्य सुवासित करती रहेगी । इस वर्ष श्री गुलाम सफदर की अन्य रचना है - 'गंजि कुबरवी। इसको पृष्ठ संख्या 92 है। छपाई पठनीय है। इसमें पद नाते तथा मनक़बत आदि विधाए पाई जाती है। यह रचना सूफी दर्शन अथव सूफीमत से प्रभावित है सूफियों के अनुसार यह संसार नश्वर है केवल खुदा ही सार है। सूफी अनल हक (मैं खुदा हूँ) इस पर विश्वास करते है जैसे वेदान्ती अंह ब्रह्मस्मि अथार्त मै ब्रह मैं हूं पर करते है। सूफीमत पर वेदांत का काफी प्रभाव पड़ा है। सूफियों और वेदांतियों को विचारधारा में काफी साम्य मिलता है केवल उनकी पारिभाषिक शब्दावली भिन्न है। इस पद्यात्मक रचना का विषय आध्यात्मिक चितन है। आध्यात्मिक चिंतन ही जीव का लक्ष्य है। इस विषय में रचनाकार का यह पद्य दृष्टव्य है :-

''अख दमाह सोन यिता साली, लालो बोज़ म्यॉनी ज़ार।
बारि संसार कुत च़ालो, लालो बोज़ म्यॉन्य ज़ार।।
कोल्य दम मरि गलि न्यालो, अदु त्रावनम अंद मज़ार।
मोर खेयितन गोंटु शालो, लालो बोज़ म्यॉन्य ज़ार।।
हा सफदर क्याह चोन हालो, च़े ना तोत कुनि दर शुमार।
अख दमाह सोन यिताह सालो, लालो बोज़ म्यॉन्य ज़ार।।

इस कविता का अर्थ:- रे अल्लाह। आप मेरी प्रार्थना सुन लीजिए। एक क्षण के लिए मेरी दावत पर आ जाओं। इस संसार का भार कितना मै सह लूं रे अल्लाह। मेरी प्रार्थना सुन लो। समय पर यह शरीर त्यागना पड़ेगा, इसका

सारा ढांचा खत्म हो जाएगा। ऐसे स्थिति में मुझे मज़ार के कोने में बंधुजन छिड़ देंगे। मेरे शव को चील तथा गीदड़ खाएंगे रे अल्लाह। मेरी प्रार्थना सुन लीजिए। अरे सफदर! (यह कवि का नाम है) तुम्हारी गणना वहाँ नगण्य है। रचनाकार ईश्वर से अपनी मुवित के लिए प्रार्थना करता है। इस भवसागर में फसा हुआ जीव ईश्वर के अनुग्रह के बिना मुक्ति पाने में अर्थात नजात हासिल करनें में असमर्थ है। माया के कारण जीव वास्तविकता को नही जान सकता है। अज्ञान अथवा अविद्या के नष्ट होने पर वह ब्रह को पहचान सकता है। वस्तुत: जीव ही ब्रह्म का रूप है। यह भाव निम्नपद्य में कवि स्पष्ट करता है:-

''चु छुखो बु किनु बु छुस चु तो
कवो बूज़थ नो।
हर शापे बेरंग बारंग छुनो
कवो बूज़थ नो० ।। (पृष्ठ नं० 35)

ईश्वर प्रत्येक कण में व्याप्त है । वह निराकार होकर भी साकार है। उसका जलवा अथवा प्रकाश ज़रे-ज़रे में स्थित है। वह अजन्मा तथा अनादि है। इस तरह कवि की यह रचना सूफिमत से अनुप्राणित है। इस रचना में अरबी तथा फारसी की शब्दावली प्रचुर मात्रा में पाई जाती है। संस्कृत सब्दों का अरबीकरण किया है सादन तथा मनकल आदि।

कश्मीरी साहित्य के विकास के क्षेत्र में अग्रणी मासिक पत्रिका– कोशुर समाचार गत कई वर्षो से तीन भाषाओं-हिंदी, अंग्रेज़ी तथा कश्मीरी में प्रकाशित होती है। इसका प्रकाशन दिल्ली में कश्मीरी समिति द्वारा हो रहा है इस वर्ष समिति ने-संत विशेषक प्रकाशित किया है। इसके मुखपृष्ठ पर कवियत्री रूप भवानी का चित्र छपा हुआ है जिससे इसका आर्कषण बढ़ गया है। पत्रिका के भिन्न-भिन्न अनुभाग, भिन्न-भिन्न संपादक मडलों समलंकृत है। कश्मीरी संपादक मंडल में श्री शंभुनाथ भट्ट 'हलीम' है जो कश्मीरी भाषा के जाने माने लेखक तथा कवि है। इस अंक में लेखकों की रचनाए इस प्रकार

है :- श्री अनुपम कौल का - कश्मीरी संतों का योगदान, स्व० शिवजी क्रंड़ीगामी का - परमानंद - एक महान गृहस्थी योगी, शहीद, सर्वानद कौल का रौपु भवानी, श्री अयूब साबिर काशेख उल्ल आलम के प्रति नज़्म तथा डॉ० बदरीनाथ कल्ला का - नुंद ऋषि तथा कश्मीर शैवदर्शन। श्री अनुपम कौल का - कश्मीरी संतो का योगदान एक शोधात्मक लेख है। इस लेख में – लल्दयद नुंद ऋषि रोपु भवानी, परमानंद बहाबखार, न्याम सोब, शाह कलंदर - फकीर लक्ष्णमण जी बुलबुल, रहिम साहिब कृष्ण, जी राज़दान मनवटी हलवर जूकवकस, प्रकाश राम, अफताब जी भास्कार।

दी जाती है । इसके विशाल दृष्टिकोण के कारण सब लोक इस दर्शन की ओर प्रवृत्त ही गए। इसका विशेष प्रभाव मुसलमान संतों में भी पाया जाता है जिसकी परंपरा आजकल भी कश्मीर में पाई जाती है। यह परंपरा सनातन तथा अमर है। वितस्ता नदी की तरह इसकी धारा निर्बाध रुप से प्रत्येक युग में बहती रहेगी। इसकी अमृतधारा को बंद करने का नापाक इरादा कभी सफल नही होगा। डाँ० बी० एन० कल्ला का योगदान गत तीन दशकों से कश्मीरी साहित्य को समृदध बनाने में उल्लेखनीय रहा है इनके अनेक शोधात्मक लेख कश्मीर विश्वविद्यालय दवारा प्रकाशित अनहार, जम्मू व कश्मीर कल्चरल अकादमी दवारा प्रकाशित शीराज़ा तथा हमारा साहित्य, कश्मीरी समिति द्वारा प्रकाशित कोशुर समाचार आदि है। इन लेखों में कल्हण, बिल्हण, आचार्य मम्मट तथा क्षेमेंद्र आदि भी शामिल है। कश्मीरी माध्यम से संस्कृत साहित्य के दार्शनिकों, इतिहासकारों तथा लेखकों के व्यक्तित्व तथा कृतित्व से जनसाधारण को परिचित कराना इसका लक्ष्य रहा है। संक्षेप में, कश्मीरी साहित्य विषम परिस्थितियों के बावजूद भी विकास पथ पर बढ़ रहा है।



कश्मीरी साहित्य : 1999

इस वर्ष कश्मीरी साहित्य की विभिन्न विधाओं में लिखा गया साहित्य पाठकों को अनेक रूपों में मिला है। सर्वप्रथम तेजरावल का कविता संग्रह 'गॊछ़ पोशि वनाह' अर्थात् चाहिए फूलों का वन (भरमार) प्रकाशित हुआ है। इसका मुखपृष्ठ बहुत ही आकर्षक है। इसके चित्र में कवि अपने दोंनो खुले हाथों में फूल भरना चाहता है। भारतीय संस्कृति में फूल शांति का प्रतीक माना जाता है। कवि कश्मीर में शांति चाहता है। वह इसके लिए बहुत ही उत्सुक है। इसकी कविताओं में इसी दशा में अनेक प्रतीकात्मक का रूप मिलते हैं। इस पुस्तक में एक सौ चौवीस पृष्ठ हैं। इसके प्राक्कथन में कवि ने स्पष्टरूपों में लिखा है कि मैंने यह कश्मीरी कविता का संकलन लोभ के कारण अथवा किसी दबाब के कारण या किसी चाटुकारिता के कारण नहीं लिखा है। मैंने इसमें (पुस्तक में) कश्मीरी कविता को नई दिशा देकर ग़ज़लें, वाख, आदि लिखे हैं। सबसे पहले कवि ने व्यनथ (हि. विनती) से मंगलाचरण किया है जैसे :-

''चॖ म्योनुय सिरिय छुख चॖ म्योनुय माह, नॅयिस्तान न छँड़िथ करय पूज़ा।
यॆत्यन त्रॉविथ चॖ़ पॅद्य तॅती फॊल्य पोश, यॆत्यन त्रॉवुथ नज़र तॅती प्यव गाह।।
अॅछन हुंद गाश छुख क्वठ्यन छुख होश, ह्यसन छुख रॉछदर तॖ नब्ज़न शाह,
चॖ कॉयिम अंतॖ रॊस अटल समयाह।।''

अर्थ :- आप मेरे सूरज हैं आप मेरे माह, वनों में ढूंढकर करूं पूजा।
पडे चरण जहां आपके, विकसित हुए वहां कुसुम।
जहां दृष्टि ड़ाली, वहां पड़ा प्रकाश।।
आंखों का प्रकाश तू, शरीर का चेतन, इंद्रियों का रक्षक तू नाड़ियों का स्वास।
तू ही आदि है, तू ही अंत, तू ही अनंत है, तू ही अटल काल।।

इसकी एक ग़ज़ल का अवलोकन कीजिए :-

''नावा छम थॅवमुचॖ़ व्यथि तारस, अदॖ कथ छुस खॊचा़न अंधकारस।

प्रथ कांह वुछ असवुन लछि़ बुज़्य गव, व्वन्य क्याह पतु रूदुय संहारस,
वनि रायाह पानिच बैयि हू हू, मन यीरु वसान छुम कथ आरस,
लागर ज़िस यस सोंचस छ्यन, यी छा म्वलुनावुन संसारस।
प्रथ कांह मौसम छु बेशकलाह, छन करखा सोंतस या हारस।
यथ वति छुनु ज़न ति ज़ोवुहन कांह, प्रारान छुस अथ तुलिहे बारस।।''

अर्थ :- नाव रखी नदी पार के लिए, क्यों डर जाऊं अंधेरे से
अब संहार में क्या रहा है? कलकलरव, नदी का केवल
किस नाले में बहता है मन, सोच मेरा थाह नहीं पाता
क्या यह संसार में अमूल्य ?, मौसम प्रत्येक रूपहीन है
न कहीं भेद वसंत और आषाढ़ में, दीखता न ड़गर में कोई जन
कोई हाथ लगा दे बोझ को।।, हूं प्रतीक्षा में अब इसकी।।

यह गज़ल कवि ने आतंकवाद के विषय में लिखी है। कवि के अनुसार वसंत शांति का प्रतीक है तथा आषाढ़ आतंक का। आंतकचाद के कारण अब सबों के चेहरे मैले दिखाई देते है। न कहीं मुस्कान, न कहीं शांति। अशांति का वातावरण चारों ओर छाया हुआ है। अब सोच पर भी मुहर लग गई है। चारों दिशाओं में शून्य दिखाई देता हैं। अब जीवन भी असहाय तथा बाझिल बन गया है। कवि कहता हैं कि कब वसंत ऋतु आएगी और कब फूलों की महक से सारा वातावरण सुगंधित होगा।

दूसरी पुस्तक मोहनलाल आश की है। इस पुस्तक का नाम 'तखलीक़ तु तनकीद' (रचना तथा समीक्षा) है। यह पुस्तक एक सौ दस पृष्ठों की है। गेटअप की दृष्टि से यह बहुत ही सुंदर है। प्राक्कथन में लेखक लिखता है कि कश्मीरी साहित्य में प्राय: गद्य साहित्य का अभाव है। यद्यपि पद्य साहित्य का आरंभ पुराने ज़माने से हो रहा है। तथापि गद्य साहित्य का आविर्भाव बीसवी शती में ही हुआ था। फलस्वरूप कहानियाँ उपन्यास आदि भी इसी दौर में लिखे गए आधुनिक साहित्यक प्रवृत्ति ने समीक्षको को भी जन्म दिया, लेकिन अभी भी संतोषजनक गद्य का अभाव ही दिखाई देता हें। लेखक के

मतानुसार इसका मुख्य कारण यह है कि इसे (कश्मीरी भाषा को) सरकारी संरक्षकत्व प्राप्त नहीं है, न ही विदयालयों में इसे पढ़ाया जाता है। इसके अतिरिक्त 1990 में कश्मीरी पंडितों को एक महान, प्रलय का सामना करना पड़ा। पलायन के समय घर-बार छोड़कर वे इस समय असहाय रूप में भारत के विभिन्न राज्यों में कालयापन कर रहे हैं। इससे उनकी परम्परा नष्ट हो गई। सारा साहित्य आतंकवादियों ने जला दिया। लेखकों का यह अद़बीघर नष्ट हो गया। कुछ लेखकों ने मायूसी की हालत में रहकर कश्मीरी में लिखना छोड़ दिया। अस्तु, इस महान् कार्य का बीड़ा उठाकर मैंने कलमकारों का साहित्य एकत्र किया और साहित्यिक संग्रह लिखा, जिससे साहित्यकारों को किसी हंद तक लाभ हो।

समीक्षा (तनक़ीद) की क्या परिभाषा है, इस पर लेखक ने पूर्णरूप से प्रकाश ड़ाला है। समीक्षा का अर्थ रचना का मूल्यांकन करना, निष्पक्ष रूप से। समीक्षा वही कर सकता है जिसने वह विषय गंभीर रूप से पढ़ा हो अर्थात् गम्भीर रूप से उस विषय का अध्ययन किया हो समीक्षा एक प्रकार की कसौटी है। जिस प्रकार कसौटी पर सोने और अन्य धातुओं की परख मनुषय कर सकता है उसी प्रकार समीक्षक किसी रचना की सही परख कर सकता हैं। शेक्सपियर के अनुसार- "One who does not know and says that he knows all is fool, shame on him." अर्थात जो व्यक्ति कुछ न जानता हो और यूं ही कहता हो कि मैं सब कुछ जानता हूं वह मूर्ख है, वह त्याज्य है, समीक्षक की जानकारी पर एक योरोपिय विद्वान् Remond Willaims का कथन- "An enquiry into the reading of literature or into the present position of any of the arts has a danger of becoming no more than marginal, unless the cultural atmosphere in which all the arts exist, is recognized in the discussion". समीक्षक के लिए यह बात ज़रूरी है कि संस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में किसी रचना को समझे, समीक्षा करने में तीन प्रकार की मनोवैज्ञानिक

प्रक्रियाएं इस्तेमाल होती हैं :- 1. Absorbed attention एकाग्र-अवधान 2. Conscious attention चैतन्य अवधान 3. General attention सामान्य अवधान। लेखक के अनुसार चौदहवीं शती की प्रथम कवियत्री-लल्लद्यद उत्कृष्ट समीक्षक मानी जाती है। इसकी समीक्षा का 'कन्वास' पटल विस्मृत है, जैसे-सामाजिक विषमता, अबला की परवशता, ससुरालवालों का बहू के साथ अत्याचार, मूर्तिपूजा, पशुहिंसा, पाखंडियों का बोलबाला, कपटी साधुओं का सम्मान, समाजिक कुरीतियां तथा सांप्रदायिकता आदि। इन सब बिंदुओं पर इसने प्रकाश ड़ाला है तथा इनका विरोध 'वाखों' द्वारा किया है। सबसे पहले इसने सामाजिक चेतना को जगा दिया। कपटी लोगों के विषय में उसकी अभिव्यक्ति इस प्रकार है जैसे :-

''अव्यस्तारि पॉथ्यन छि हामालि वरान, यिथु तॉत परान राम पंजरिस।
गीता परान तु हीथा लबान, परम गीता तु परान छस।।''

अर्थ :- बुद्धिहीन लोग उसी प्रकार पवित्र पुस्तकें पढ़ते हैं जिस प्रकार पिंजरों में बंद तोते 'रामराम' पढ़ते हैं। वे गीता केवल कपट रूप से पढ़ते हैं। मैनें गीता पढ़ी, मै जीवन के प्रत्येक क्षण में इसे पढ़ती हूं। अर्थात गीता का अध्ययन आंतरिक रूप से करना चाहिए, बाह्यरूप से नहीं। मूर्ति पूर्जा के विरोध में लल्लद्यद का स्वर इस प्रकार मुखरित होता है जैसे :-

''देववटा दिवर वटा, प्यठ व्वन्य छुय इकवाठ।
पूज़ा कस करख हूट बटा, कर मनस तु पवनस संघाट।।''

अर्थ :- हे हठधर्मी भट्ट। देवता भी पत्थ्र का देवालय भी, ऊपर नीचे एक ही बटा (पत्थर) है। तू किसकी पूजा करोगे मन तथा पवन को एक सात कर दो। पवन से यहां तात्पर्य है-प्राण से। इसी प्रकार नुंदऋषि के श्रुक्यों (सं-श्लोक) में एकता का स्वर प्रतिध्वनित होता है। एक पद्य उदहारण के रूप में प्रस्तुत किया जाता है जेसे :-

''ॲकिस मालिस माजि हुंद्यन, तिमन दय त्रॉविथत क्याह।
मुस्लमान तु क्याह हंद्यन, कर बंधन तोशि ख्वदायाह।।''

अर्थ :- एक ही मां बाप की संतान को, दुई से जल्दी दूर रखों।
मुसलमानों तथा हिंदुओं पर, रहों प्रसन्न रे साहिब अब।।

अब्दुल अहद आज़ाद और महजूर के बाद कश्मीरी साहित्य में प्रगतिवादी दौर का आगाज़ होता है। दीनानाथ नादिम को भी प्रगतिवादी कवियों में प्रमुख कवि माना जाता है। वह आधुनिक कविता का जन्मदाता है। वही कश्मीरी साहित्य का पहला कवि है जिस ने कश्मीरी नज़्म का दामन चारों ओर फैला दिया। आपने बुंबर इंबर ज़ल (भ्रमरतथा यम्बर्ज़ल नामक - एक कश्मीरि फ़ूल) का फीचर लिखा जिसे देश-विदेशों में मंचित किया गया। आपने पहली बार दुनिया के साहित्यकारों तथा समीक्षकों को यह दिखाया कि कश्मीरी ज़वान समृद्ध तथा ध्यान देने योग्य ज़बान है। 'व्यथ आयि माहरॅन्य सोनुये' यानी आई दुल्हन बनके वितस्ता, आई दुल्हन वनके यहां। यह 'ओपेरा' कश्मीरी में बहुत ही लोकप्रिय हुआ। प्रत्येक कश्मीरी वासी की जबान पर यह नज़्म है। नादिम कश्मीरी भाषा का कल्पृक्ष है। हम कश्मीरी नज़्म की जिस ओर दृष्टि डाले, वहीं वृक्ष की छाया और शीतलता नज़र आती है। नादिम ने तरक्की पसंद नज़्में लिखीं, लेकिन कुछ समीक्षकों का कथन इस विषय में इस प्रकार है कि नादिम की नज्में नारेबाज़ी के सिवाय कुछ नहीं है। मगर इसमें भी अगर नादिम की कविता का गंभीर रूप से अध्ययन किया जाए तो बहुत ही आनंद होता है। इसने कश्मीरी कविता में (Free Verse) स्वछंद पद्य तथा (Blank Verse Sonet) यानी चौदह पंक्तियों की पदयात्मक शैली आदि लिखे तथा जपानी शैली के हाइकू नज़्मों का सूत्रपात किया। वस्तुत: आज का मानव भौतिकवाद से बहुत प्रभावित हुआ है। आध्यात्किता से यह कोसों दूर पड़ा हुआ है। उसकी रचना पर इसका प्रभाव बखूबी नज़र आता है। आज का साहित्यकार सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक दृष्टि से बहुत मायूस है। उसकी रचना पर इसका किसी न किसी रूप में प्रभाव स्पष्टरूप से परिलक्षित होता है। इस श्रेणी में रहमान राही, हामदी कश्मीरी, मश्ल सुल्तान पुरी, महीउद्दीन गौक्हर, निशात अंसारी, मरगूब बानहाली, नाजी मनुवर, तेजरावल,

मोहनलाल आश, पी.एन.कौल सायिल आदि हैं। आजकल की कविता, विशेष करके बीसवी शती के अंतिम चरण की कविता बहुत ही त्रासदायक, भयानक तथा प्राणन्तुद है। आंतकवाद के कारण कश्मीरी पंडितों के विस्थापन के बाद जम्मू आदि राज्यों में जो इस जाति की दुर्दशा हुई है, उसका वर्णन करना इस लघु लेख में संभव नहीं हैं। तो भी कुछ आवश्यक वातों की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना ज़रूरी है।

एक ही कबूतरखाने में अर्थात् छोटे कमरे में मां-वाप, लड़की, बहू, बच्चों का रहना तथा उसी में सोना कितना दुर्भाग्यपूर्ण हैं। शौचनीय है कि आर्थिक दशा के कारण बच्चों का कुपोषण, उनकी पढ़ाई तथा उनका भविष्य आदि अंधकारमय बन गया है। प्रतिकूल जलवायु के कारण विभिन्न बीमारियों से ग्रस्त होकर इलाज के अभाव में कुसमय मरना आदि विस्थापितों की समस्याएं हे जिनका समाधान वर्तमान परिस्थितियों में असंभव है। इन विषम परिस्थितियों से त्रस्त होकर कश्मीरी कवियों को अनेक रचनाएं प्रकाशित हुई हैं। इनमें मोतीलाल साक़ी का 'गाश फ्वल्याह ज़ांह' (क्या कभी प्रकाश फैलेगा ?) रहमान राही, मुहम्मदअहसन आसन, शंभुनाथ भट्ट हलीम, गुलामनबी जोहर, नजीरअहमद नज़ीर, मजरूह रशीद, मोहनलाल आश, गुलामनबी फिराक़, तनहा निज़ामी आदि हैं। कश्मीरी कविताकी मूलाधार दो महान् विभूतियां है- लल्लद्यद तथा नुंद ऋषि। इन दोनों पर कश्मीरी शैवदर्शन का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। मुसलमानों के कश्मीर में आने से पहले यहांशैव दर्शन आठवीं शती से बारहवीं शती तक पराकाष्ठा पर पहुंचा था। इस दर्शन का प्रभाव किसी न किसी रूप में मुसलमान कवियों में-अर्थात शमसफ़कीर तथा अहद ज़रगर आदि की रचनाओं में दिखाई देता है। पर यह बात ध्यातव्य है कि शैव दर्शन के बाद ही कश्मीर में सूफी मत का प्रचार हुआ। इस पुस्तक में एक अध्याय तसवुफ अर्थात् भक्ति पर आधारित है। लेखक लिखता है : कश्मीर में इस्लाम तलवार से नहीं फैला बल्कि ज्ञान, बुद्धि तथा अमल से इसका प्रचार तथा विस्तार हुआ है। (पृष्ठ नं.101) मै लेखक के इस मत से

सहमत नहीं हूं। मध्यकालीन इतिहासकार जोनराज राजतरङ्गिणी के अनुसार जिस तरह टिड्डियां फसल को नष्ट करती हैं, तथा आंधी या तूफान वृक्षों को उखाड़ देते हैं, उसी तरह यबनों ने कश्मीर के देशाचार को अर्थात् संस्कृति को नष्ट कर दिया। (जोनराजतंरगिणी-श्लोक नं. 575) इन अमानवीय घटनाओं की पुष्टि फारसी इतिहासकारों ने भी की है। फिरिश्ता के अनुसार-हिंदू विरोधी नीति के कारण ब्राह्मणों ने आत्महत्याएं कीं। कुछ पलायन के लिए मज़बूर हुए। (फिरिश्ता-II) 341 इस तरह लेखक ने इस रचना में तुष्टीकरण-नीति अपनाकर यवनों को खुश करने का व्यर्थ प्रयास किया है।

इस वर्ष जम्मू व कश्मीर सूचना विभाग के द्वारा आलव (सं.ख.) नामक एक कश्मीरी संक्षिप्त नज़्म अंक जनवरी-अप्रैल 1999 में प्रकाशित हुआ है। यह पुस्तक तीन सौ चार पृष्ठों पर आधारित है। पुस्तक की सज्जा आकर्षक है। इस पुस्तक के निरीक्षक सुधांशुपांड़ेय तथा संपादक मुही-उद्दीन ऋषि हैं। इसमें निम्न लेखकों ने क्रमानुसार समीक्षात्मक लेख लिखे हैं:-

लेखक	विषय
प्रो. शफी शौक	कश्मीरी संक्षिप्त नज़्म ऐतिहासिक तथा समीक्षात्मक परिप्रेक्ष्य में।
नाजी मुनवर	संक्षिप्त नज़्म-महमूदगामी तक।
मोतीलाल साकी	भक्तिभावना के कवि।
डॉ मशल सुल्तानपुरी	गुलाम अहमद महजूर।
डॉ महफूल जान	अब्दुलअहद आजाद।
प्रो. रहमान राही	(मा.) ज़िंदु कौल
गुलाम नबी नाज़िर,	गुलाम अहमद फाज़िल और गुलामहसन बेग आरिफ।
सैयद रसूल पोंपुर	दीनानाथ नादिम।
शफी सुंबली	गुलाम नबी फिराक़।
गुलशन मजीद	अमीन कामिल।
मोहम्मद यूसुफ टेंग	रहमान राही।

मकबूल साजिद	मुज़फर आज़िम।
डॉ. अमर मालमोही	अर्जुनदेव मजबूर।
डॉ. शाद रमज़ान	मरगूब बानहाली
डॉ. अफाक अज़ीज़	गुलाम नबी खयाल।
मोतीलाल साकी	वासुदेव रेह
निशात अंसारी	मोतीलाल साकी।
डॉ. मशुताक अहमद	हामदी कश्मीरी।
डॉ.मजरूह रशीद	शफी शौक और गुलशन मजीद
डॉ.अफाक अज़ीज़	गुलाम अहमद, चमनलाल चमन
गुलशन वदरनी	हास्य कवि
गुलामनवी आतश खजूर	मगरिबी
निसार गुलज़ार	मंज़ूर हाशमी
डॉ. शफकत अलताफ	काज़ी गुलाम मुहम्मद, पी.एन. कौल सायिल
डॉ. रत्नलाल तलाशी	मखनलाल कंवल
असीर कश्तवाड़ी	बशीर बदरकही
शाहबाज़ राजोरी	जांबाज़ कश्तवड़ी
ब्रजनाथ बेताब	मखनलाल बेकस
प्रेमीरूमानी	मखनलाल
प्यारे हताश	फारोक़ नाज़की
डॉ. अमर मालमोही	लल्लद्यद।

इसका प्राक्कथन मुहीउद्दीन ऋषि ने लिखा है। रहमान राही के मतानुसार-जहां तक कश्मीरी कविता का संबंध है, कश्मीरी नज्म का आगाज़ तेरहवा शती में शेख-उल-आलम ने किया। किंतु जिसे हम आजकल संक्षिप्त नज़्म कहते हैं, वह संक्षिप्त नज़्म वर्तमान शती के पांचवें दशक में महजूर, आज़ाद तथा जिंदकौल के द्वारा पल्लवित तथा विकसित हुई है। नज़्म-निर्माण के विषय में ज़िन्दुकौल की यह विशेषता है कि 'स्मरण' नामक कविता संग्रह में

प्रथम बार संक्षिप्त रूप से कश्मीरी नज़्मों के दृष्टांत दृष्टिगोचर होते हैं। उनकी संक्षिप्त नज़्में ना तैयारी 'जूग्य' (जोगी) मजबूरियां, 'करनावि तारख ना अपोर' (हिंदी-कब नैया को पार ले जाओं ना) और शीनाह वोलुन (हि.बर्फ पड़ गई) आदि इसी श्रेणी के अंतर्गत आती है। इनकी एक कविता का अवलोकन कीजिए :-

1. राज पनने दीश द्रामुत योर आमुत गिंदने।
   नचुनस ज़न मोर आमुत योर आमुत गिंदने।।
2. रंगु रॉस ऑसिथ खॊतुम मा रंग लॉगिथ नकशि वुछ्य।
   छॊत क्रुहुन तय योर आमुत गिंदने।।
3. पान दिथ मायायि बल तॅथ्य वानु द्रामुत ज़ेननै।
   अज़मावनि ज़ोर आमुत योर आमुत गिंदने।।
4. मुशकि अंबर बॉगरावान कुनि, सुय चंदन तय हिये।
   कुनि सुय अरखूर आमुत योर आमुत गिंदने।।
5. कुनि सुय टैगोर आमुत, शंकराचार्य तु बोद्ध,
   कुनि असि छु योर आमुत, योर आमुत गिंदने।।"

(1) यह कवि की रहस्यवादी कविता है। इसमें कविः- ज़िन्दुकौल इस तथ्य को विभिन्न रूपों में प्रकट करता है कि वह राजा (पर ब्रह्म) अपने स्थान से निकल कर अर्थात अवतरित होकर खेलने के लिए संसार मे आ गया है। माने मोर के रूप में यहां नाचने के लिये आया है।

(2) वह रंगहीन है लेकिन संसार में आकर चित्र के रूप में उसे शायद रंगो से रंजित किया गया हो। कभी श्वेतरंग में, कभी काले रंग में तथा कभी चितकबरे में। इस तरह वह खेलने के लिऐ यहां आ गया है। इस पद्य का भावार्थ यह है कि ईश्वर निराकार होकर भी साकार रूप में संसार में ज़ाहिर होता है। निराकार रूप में वह रंगहीन है मगर साकार रूप में उसके (परब्रह्म) अनेक रूप है।

(3) इस संसार में वह माया को बल देकर उसको जीतने के लिए

निकला है। अपनी शक्ति की परीक्षा के लिए वहां खेलने के लिए आया है।

(4) कहीं यह सुगंध के ढ़ेर कहीं चंदन कहीं 'हिय' - अर्थात् सुगंधित बेल बांटता है। कहीं वह अरखूर (एक प्रकार का कंटीला तथा दुर्गंध युक्त पौधा) के रूप में कहीं दानव के रूप में नज़र आता है।

(5) कभी वह टैगोर के रूप में, कभी शंकराचार्य के तथा कभी भगवान बुद्ध के रूप में आता है। कभी वह हमारे समान मूढ़ जैसा खेलने के लिए आता है। शैवदर्शन के अनुसार यह विश्व के परमशिव की क्रीड़ा का विलास है। वह अपनी स्वांतत्र्य शक्ति से विश्व का निर्माण कर सकता है और उसका संहार भी कर सकता है। वह चतुर्विध सृष्टि में - अंडज, स्वेदज, उद्भिज तथा योनिज के रूपों में प्रकट होकर अपने साकार रूप को प्रकट करता है। मेरे मत से ज़िन्दुकौल की कविता पर शैव दर्शन का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। वेदों में कहा गया है एक सद् विप्रा बहुधा वदंति ईश्वर एक है। लेकिन ऋषि उसको अनेक नामों से कहते हैं। Truth is one sages call it by various names. इस वृहत् पुस्तक में स्व० मोतीलाल साक़ी ने वासुदेव रेह के व्यक्तित्व तथा कृतित्व पर प्रकांश डाला है। वासुदेव रेह आधुनिक कवियों में एक उत्कृष्ट कवि माने जाते है। यद्यपि उनकी कविताए कम ही प्रकाशित हुई है तथापि उनका रंग और शैली अन्य कवियों से अलग-थलग है। उनकी एक अलग पहचान है। उनकी कविताओं, में शुरू से ही आशंका है वेदना और छिपा हुआ रहस्य है। दैवज्ञ न होकर भी उनकी भविष्यवाणी कालांतर सिद्ध हुई है। विभिन्न शंकाओं की ओर उन्होंने इशारा किया था उन शंकाओं में वह स्वयं चक्रव्यूह की तरह फंसगया। हाय! कश्मीर से उसको भी पलायन करने के लिए विवश होना पड़ा। उनकी कविता का एक उदहारण प्रस्तुत है :-

''यिनु कन डोल दियिव, कथ बूज़िथ राय असि क्या सा हे।
यिनु ज़ॉनिव यि छु पर आलव, ॲस्य पान रछिव असि क्याह सा हे।
यामथ कांह गछ़ि नारा दिथ यनु त्वहि बास्यव असि क्या सा हे।

म्यॉन्य यिहय क्रख शहरन गामन - होशा होश।
आलव यि म्योन सामन - होशा होश।।''

अर्थ :- ''न करना अनाकानी कही, सुनकर समझोगे, न हमें क्या है।
न जानना यह पर का नाद हे, अपनी रक्षा हम करेगें, हमें क्या है?
कहीं न कोई आग लगा दे, मालूम होगा, हमें क्या हैं।
यह नाद मेरा शहरों और गांवों में, होश करो होश करो।
यह नाद मेरा साँय साँय, होश करो होश करो।।''

वासुदेव रेह की इस कविता में वह भाव निहित है जो इस समय कश्मीर में दिखाई देता है। इसमें वह लोगों को सचेत करता है कि कोई वादी में आग लगाने के लिए तथा उपद्रव मचाने के लिए आ जाएगा, उसके लिए सजग रहना। इस कविता के माध्यम से वह समाज को सतर्क रहने के लिए कहता है। अंत में वही होता है जो उसने सोचा था। वस्तुत: कवि युगदृष्टा होता हे। वह अपनी नज़र से भूत, भविष्य तथा वर्तमान को जानता है। इनकी कविताओं का अनुवाद अन्य भाषाओं में भी हुआ है। यह उनकी उत्कृष्ट रचनाओं का परिणाम है, सैयद रसूल पांपोर की रचना का नाम - 'मे मशि नु ज़ांह' (मुझे कभी नही भूलेगा) है। यह एक सौ नब्बे (190) पृष्ठों की है। इसकी सज्जा बहुत ही उत्तम है । यह कश्मीरी निबंधों का संग्रह है। इसमें क्रमानुसार लेखक के ये निबंध प्रकाशित हुए है जैसे:-

1. गाशितारूख (प्रकाशमानतारक) मीर गुलाम रसूल नाज़मी
2. आज़ाद तथा महजूर-तुलनात्मक अध्ययन।
3. दीनानाथ नादिम, 4. प्रोफेसर नन्दलाल कौल तालिब, 5. फोफेसर श्रीकंठ तोशखानी 6. नवीन कश्मीरी शायरी 7. गुलाम रसूल संतोष, 8. अब्दुल रहमान आज़ाद 9. चमनलाल चमन 10. रे प्रभो! किसकी तमन्ना निकली। प्रो. पृथ्वीनाथ 'पुष्प', गुलाम मोहम्मद आज़ाद।

लेखक ने प्रो. श्रीकंठ तोशखानी की शख्सियत तथा उनके कृतित्व पर पूर्णरूप से प्रकाश डाला है। तोशखानी साहिब का जन्म 1897 ई० में

एक समृद्ध घराने में हुआ। कुशाग्र बुद्धि होने के कारण आपने दर्शनशास्त्र में एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की और साथ ही एल.एल.बी. की भी परीक्षा पास की। कुछ समय तक आपने वकालत भी की। शिक्षा विभाग में आपने अनेक पदों पर काम किया। शिक्षा विभाग से सेवा निवृत्त होने के वाद आप जम्मू व कश्मीर कल्चरल अकादमी में 1967 ई० से 1980 ई० तक 'कश्मीरी शब्दकोश' की परियोजना में मुख्य संपादक के रूप में काम करते रहे। यह 'शब्दकोश' सात खंडों में प्रकाशित हुआ है। इसमें यह एक विशेषता पाई जाती है कि इन सात खंडो में लगभग चालीस हज़ार शब्दों की व्युत्पत्ति सम्मिलित है। व्युत्पति का काम 'कश्मीरी शब्दकोश' के संपादक डॉबदरीनाथ कल्ला को सौंपा गया था। इससे कोई संदेह नहीं है कि ईश्वर कौल के आधार पर सरजार्ज इब्राहीम ग्रियर्सन ने 'कश्मीरी शब्दकोश' के चार खंड 'बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी' से प्रकाशित किए थे। लेकिन उनमें व्युत्पत्ति का अभाव था। इसके अतिरिक्त तोशखानी जी 'उर्द-कश्मीरी शब्दकोश' के भी संपादक रहे। आप भाषाशास्त्री थे। आप-हिंदी, उर्दू, अंग्रेज़ी तथा संस्कृत के ज्ञाता थे। आप भाषाविद् डॉ. सिद्धेश्वर वर्मा से बहुत प्रभावित हुए थे। आपने सबसे पहले रोमन लिपि में 'कश्मीरी प्राईमर' प्रकाशित किया और इसके साथ नागरी लिपि में भी। बाद में अरबी शैली के आधार पर उन्होंने कश्मीरी लिपि का प्रचलन-किया था जो लोकप्रिय न होने के कारण बाद में आगे नहीं चल सका। हाय! चार दिसंबर 1981 ई० को इनका निधन हो गया।

रसूल पांपोर का अन्य लेख - नवीन कश्मीरी शायरी है। इसमें लेखक लिखता हे कि 1947 ई० में देश का विभाजन हुआ। हिंदुस्तान तथा पाकिस्तान बनने से देश में सांपदायिक दंगे हुए। फलत: निर्दोष लोगों की हत्याएं हुई। चारों ओर रक्तपात हुआ। डोगरा वंश का अंतिम शासक महाराजा हरिसिंह परिस्थितिवश कश्मीर छोड़कर भाग गया और उसका बेटा-राजकुमार कर्णसिंह 'जम्मू कश्मीर राज्य का अध्यक्ष' (सदर) बन गया और शेख मुहम्मद अब्दुल्ला को रियासत का प्रधानमंत्री बनाया गया। रियासत के दो

भागों का विलय अस्थाई रूप से हुआ। एक भाग अभी भी पाकिस्तान का अंग बना हुआ है। लेखक ने इस निबंध में इस ऐतिहासिक तथ्य को नज़र अंदाज़ किया है कि पाकिस्तान के कबाईलियों ने कश्मीर पर हमला किया और अवैध रूप से कश्मीर के अभिन्न भाग को अपने अधिकार में ले लिया जो इस समय 'तथाकथित आज़ाद कश्मीर' के नाम से जाना जाता है। यह तवारीखी हक़ीकत (ऐतिहासिक तथ्य) है कि महाराजा हरिसिंह ने पूर्णरूप से भारत के साथ विलय किया है। इसमें दो मत नहीं हैं। लेखक ने इन तथ्यों का उल्लेख उस पुस्तक में क्यों नहीं किया है ? मैं यह कहने में असमर्थ हूं। पाठकगण जिस समय इस पुस्तक में इस लेख को पढ़ेंगे वे लेखक के इस पक्षपातपूर्ण रवैये से अवश्य शंकित होंगे। ऐसी मेरी धारणा है। आगे लेखक लिखता है कि कश्मीरी कविता ने कालांतर में विभिन्न विधाओं को जन्म दिया, महजूर, आज़ाद तथा नादिम आदि कवियों की रचनाएं गोपीनाथ बत्रा, अहद न्याम, अब्दुल गनी नमतहाली, गुलाम रसूल तकिया, पीर हबीब अल्लाह आदि मंडिलयों में गाते थे। इससे इन कवियों की रचनाएं बहुत लोकप्रिय हुई। ये रचनाएं लोगों की जबान पर अब भी हैं।

''यथ जेलस मंज़ रोज़ुन आसान, हुथ मंज़ क्रूठ,
यथ मंज़ कॉदि सज़ा मोकलॉविथ गुरुकुन नेरान,
हुथ मंज़ लागिमति ज़ाल, मनोष
गर बर दूर जुर्म वरॉयी वुमरन क़ॉद,
वुडवुनि स्यकि मंज़ फ्वलवुनि टूर
अनिगटि कुठर्यन सरस्वत पूज़ान
नरकस जहनमि दरवाज़स प्यठ
तारान बाबे माले वन
दारचि संबले प्राटान वल,
हॊक वॅथरन जाफरि पोशन
वॅतरन सगु नॉविथ कासान लोल

दज़ुवुन्य च़्यंता नखु अथु जेलस
पख वॅहरिथ प्यफरल माहोलस
मा सन शुरि गिंद बाशि करान।।''

अर्थ :- एक आदमी जुर्म की वजह से जेल में रहकर कुछ समय के बाद घर जाता है। दूसरा बेचारा आदमी जुर्म के बिना ही घर से दूर रहकर हमेशा के लिए यानी उम्रभर जेल में रहता है। ग्रीष्म के प्रचंड प्रकोप में अंधेरी कोठरी में वह सरस्वती की पूजा करता है। इस प्रकार नरक के द्वार पर रहकर वायु माला के लिए तरसता रहता है। यानी ग्रीष्मकाल में वह वायु हिलोर जो पीर पंचाल से उठकर अंनतनाग की ओर सारे क्षेत्र में बहती है। उसे पाने को वह उत्सुक रहता है।

इस कोठरी के सामने चिता जलती रहती है। इस भयानक तथा घृणित दृश्य के सामने शिशुगण खेलते रहते हैं। इस कवितामें कवि विस्थापितों का मार्मिक चित्रण करता है। इसके पढ़ने से पाठक के मन में करुणा रस के साथ-साथ बीभत्स रस का भी उद्रेक होता हें। एक तरफ से चिता की आग और दूसरी तरफ से रक्तपात आदि पाठक को संवेदनशील बनाता है। महजूर जानेमाने कश्मीरी भाषा के लेखक, कवि तथा समीक्षक हैं। उनकी अनेक रचनाएं आज तक प्रकाशित हुई हैं।

अनेक वर्षो के बाद हमारे सामने एक ऐसी रचना आई जो मेरे विचार से सर्वश्रेष्ठ रचनाओं में गिनी जाएगी। इस रचना का नाम – 'कॅशीरु मंज़ ड्रामा तहरीक' यानी कश्मीर में नाटक का आन्दोलन। इसके लेखक जाने माने कलाकार मखनलाल सराफ हैं। यह पुस्तक प्रत्येक दृष्टि से उत्तम है। इसकी सज्जा, इसकी प्रिंटिंग तथा इसका कागज आदि उत्तम हे। इसके मुखपृष्ठ पर विभिन्न कलाकारों के चित्र दिए गए हैं जो समय के प्रभाव से अथवा काल गति से पाठकों को याद नहीं रहे, विशेषत: विस्थापन के बाद। इन चित्रों तथा पुस्तक के माध्यम से लेखक ने अतीत को पुनर्जीवित कर दिया है। यह इस रचना की विशेषता है। इस पुस्तक के तीन सौ सड़सठ 367 पृष्ठ

हैं जो वर्णित पुस्तकों में से सबसे अधिक हैं। यह चार भागों में विभक्त है पहला भाग-नाटक का विकासक्रम: दूसरा भाग-विश्व परिप्रेक्ष्य तथा हिंदुस्तानी नाटक। तीसरा भाग-कश्मीर में नाटक (पृष्ठभूमि) चौथा-नाटक का प्रवाह। पाँचवाँ भाग-संदर्भ आदि। इसकी भूमिका स्व० मोतीलाल साक़ी ने लिखी है। नाटक के उद्भव में 1. नाटक की कला 2. फोक़ थियेटर 3. ऐडीशनल थियेटर आदि पर विस्तृतरूप से प्रकाश डाला गया है। यूनान तथा पर्शिया में जंग की तबाही के बाद ललित कलाओं-सहित्य तथा दर्शन आदि का विकास 456 ई० पूर्व से 526 ई० तक होने लगा। इसी दौर में 'एसकेलस' का जन्म हुआ। इस प्रसिद्ध नाटककार ने (92) बयानवे नाटक लिखे जिनमें सात नाटक प्रमुख रहे हैं। इसी प्रकार सोफोकलेज़ (ई०पू० 406-495 ई० तक) यूनान के नशहूर नाटककारों में से गिने जाते हैं। इस महान् नाटककार ने सत्ताईस वर्ष की आयु में ही नाटक लिखा जो श्रेष्ठ नाटकों में से गिना जाता है। इसने अपने जीवनकाल में एक सौ नाटक लिखे जिनमें तीन नाटकों ने विश्व में प्रसिद्धि प्राप्त की।

इस प्रकार लेखक ने पाश्चात्य तथा प्राच्य नाटककारों का परिचय आदि देकर अपनी विद्वत्ता का परिचय दिया। भारतीय नाटकों के विकास के संदर्भ में उनका कथन इस प्रकार है-रंगाचार्य अपनी पुस्तक The Indian Theatre में लिखते हैं कि महाभारत ई. पू. दूसरी शती में पहले छपाया गया। पांडवों की विजय की गाथा जनसाधारण तक गायकों द्वारा पहुंचाई गई जिन्हे अंग्रज़ी में BARDS कहते हैं। हिंदी में भाट।

भरतमुनि का नाटय शास्त्र-भरत का शाब्दिक अर्थ कोश में अभिनेता है। मुनि शब्द का प्रकृतरूप मन है इसका अर्थ जानना है। कहा जाता है कि भरतमुनि का नाट्यशास्त्र ई. तीसरी शती में लिखा गया। इसमें 37 भाग है और 5568 श्लोक है। इस पुस्तक में नाटकशास्त्र की विभिन्न विधाओं पर विस्तार से प्रकाश ड़ाला गया है। रंगशाला को किस प्रकार से सुसज्जित करना चाहिए, इसकी लंबाई तथा चौड़ाई कितनी होनी चाहिए, इन सब बातों की व्याख्या मुनि ने अच्छी तरह से की है। भारत में प्राचीन काल से नाटकों का

विकास हुआ है। भास - (ई.पू.तीसरी शती) ने अनेक नाटक लिखे हैं जिनमें स्वप्नवासदत्ता, उरूभंग, प्रतिमानाटक आदि बहुत ही प्रसिद्ध है। इसी प्रकार अश्वघोष का नाटक 'शारीपुत्र प्रकरण' खंडित रूप में प्राप्त हुआ हैं। नाटक (पृष्ठभूमि)

कश्मीर में नाटकों की परंपरा प्राचीन काल से चलती आ रही है। प्राय: मंदिरों के साथ नाट्यशालाएं भी होती थीं जिनमें विशेष समारोहों अथवा पदों पर नर्तकियाँ नाचती थीं और गायक भी अपनी कला का समय-समय पर प्रर्दशन करते थे। इसमें कथावाचकों की भूमिका भी महत्वपूर्व रही है। कश्मीर के प्राचीन संस्कृत ग्रंथ नीलमतपुराण (छठी शताब्दी ई.) में वर्णित नटों, नर्तकों, वादकों तथा प्रेक्षणक आदि के उदहारणों से यह बात सिद्ध होती है कि कश्मीर में नाटकों का आयोजन विशेष त्योहारों पर होता था। इसी प्रकार दामोदरगुप्त के 'कुट्टिनीमतम्' में नाट्यशाला का समुल्लेख पाया जाता है। कल्हण कृत 'राजतरङ्गिणी से पता चलता है कि हिंदू शासकों के काल में ललित कलाएं पराकाष्ठा तक पहुंची हुई थीं। दिग्विजयी सम्राट् ललितादित्य शासनकाल में इंद्रप्रभा नामक एक नर्तकी बहुत प्रसिद्ध थी। उसकी नृत्यकला से प्रभावित होकर राजा ने उसको अपने दरवार में स्थान दिया। इसी प्रकार बड़शाह के शासन काल में भी यह कला उन्नति के शिखर पर पहुंची थी।

1902 ई० से 1923 ई० तक कश्मीर में कुछ ड्रामा कंपनियां अस्तित्व में आई। उनमें - महाराजा ड्रामा-कंपनी, अमैचर ड्रामा क्लब, सरस्वती ड्रामटिक क्लब, नेशनल क्लव, नेशनल ड्रामटिक क्लब, कश्मीर थियोट्रिकल कंपनी, रामनाटक कंपनी। सबसे पहला कश्मीरी नाटक-'सतुच कहवट' (सत्य की कसौटी) नंदलाल कौल ने 1926 ई० में लिखा। इसका मंचन 1932 ई० तक श्रीनगर के अनेक स्थानों पर हुआ। यह नाटक राजा हरिश्चंद्र पर आधारित था। नाटकों का यह सिलसिला 1947 ई० तक जारी रहा। बाद में 1947 ई० में आजादी के बाद एक क्रान्ति वजूद में आई, जिसके फलस्वरूप अनेक नाटकों का मंचन हुआ। 'जम्मू व कश्मीर कल्चरल अकादमी' की स्थापना

के बाद नाटककारों उत्साहवर्धन हुआ। नाटककारों को समय-समय पर पुरस्कृत भी किया गया। नई प्रतिभाएं सामने आईं उनका योगदान भी इस दिशा में महत्वपूर्ण रहा है। यहां पर यह बात ध्यातव्य है कि मखन सराफ ने गत चार दशकों से कलाकार के रूप में जम्मू व कश्मीर में अपनी छवि बनाई है। पुस्तक के अंतिम भाग में संदर्भों आदि की सूची विस्तृत रूप से दी गई है। निश्चय ही यह पुस्तक शोधकों के लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगी। ऐसी मेरी धारणा है।

'व्यछ़नय' एक कश्मीरी पुस्तक है। इसका संकलक प्रेमी रूमांनी है। इसका मूल लेखक ब्रजप्रेमी है। इस पुस्तक का गैटअप आदि अच्छा है। इसमें अमीर कामिल ने प्राक्कथन लिखा है। पुस्तक ब्रजप्रेमी के लेख से आरंभ होती है। पहला लेख बंसी निर्दोष ने लिखा है। बाद में प्रेमी रूमानी ने 'मेरी कथा' लिखी है। इसके उपरांत निम्न लेख लेखक महोदयों के हैं :- (1) प्रेमनाथ परदेसी-व्यक्तित्व तथा कृतित्व। (2) कश्मीरी में उर्दू साहित्य (3) सआदत हसन मिंटो तथा-कश्मीर (4) कश्मीरी संस्कृति का प्रतिबिंब परदेसी की कला में। (5) मुंशी प्रेमचंद तथा आज़ादी का आंदोलन (6) मुंशी प्रेमचंद तथा उसकी कहानियां (7) मुंशी प्रेमचंद मानव –मित्र के रूप में (8) गालिब का व्यक्तित्व तथा (9) कृतित्व (10) गालिब के पत्र (11) मौलाना अब्दुल क़लाम आज़ाद-निबंधकार के रूप में (12) बहादुरशाह ज़फर-आज़ादी का सेनानी तथा कवि (13) आधुनिक उर्दू उपन्यास (14) समकालीन उर्दू नज़्में-एक परिचय (15) कुछ महिला-उर्दू उपन्यासकार। ये सब लेख अनुसंधान की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

इस वर्ष का पद्य-काव्य एक वयोवृद्ध लेखक ब्रजनाथ हाली का प्रकाशित हुआ है। इस कवि ने अपना संक्षिप्त नाम 'ब्रज हाल्य' रखा है। यह कश्मीरी काव्य एक सौ छह पृष्ठों का है। यह हर एक दृष्टि से अच्छा है। इसका प्राक्कथन मोहनलाल आश ने लिखा है। कवि अपनी कथा (पनुन्य कथ) में लिखता है कि "विस्थापन के बाद मुझ में कश्मीरी में कविता लिखने

की प्रवृत्ति ज़्यादा बढ़ गई, यद्यपि मैं गत दो दशकों से अपना कलाम लिखता रहा हूं।''

पुस्तक में टुख (पद्य लिखने की एक विधा) तथा अनेक गज़लें हैं। 'टुख' से पुस्तक आरंभ होती हैं जैसे :-

''लोल किस रबाबस तारन कर चार, सू हं सू बोज़नावी तार।
सोम रोज़ पानु तय साज़स बम खार, अदु दिय यारस यार दीदार।
ज़िंदु पानस युस थवि लयि सुत्य नारस, सुय अदु वाति यारस निश।
हनि हनि बनि अदु मॉल ओंकारस, अज़थ सोंबरख में तारस क्युत।
काव संज़ि साबनि तन छुख नावान, ख्यन छुख त्रावान करान उपवास।
अँदर्युम मल क्कन छुख नाव नावान, नहकय चावान छुख हाँठ गाव।
कस छुख हावान नाहकुक छ़्छ़, कॉल्य नेरख कुनज़ोन अथु हावान।
नहकय चावान छुख हाँठ गाव।।''

यह कविता रहस्यवादी कविता है। भक्तिरूपी रबाब (एक प्रकार का वाद्य यंत्र) की तारें खीचने से 'सोंह' (सोऽहं सोऽहं) की आवाज़ निकालेगी। सोंह सोंह यह एक दार्शनिक वाक्य है जिसका अर्थ : मैं वही हूं मैं वही हूं अर्थात् जीव (Individual Soul) ब्रह्म (Ultimate) है। मैं उसी ईश्वर का रूप हूं। समत्व दृष्टि से ही जीव उस ईश्वर को पा सकता है और उसका साक्षात्कार कर सकता है। जीवित अवस्था में यदि जीव पर ब्रह्म के साथ साधना अथवा भक्ति के द्वारा अपना शरीर साफ करता है? आहार छोड़कर उपवास रखते हो। अंत: करण का मैल क्यों नहीं दूर करते हो या साफ करते हो, यूं ही बंध्या गाय को दोहते हो। कवि बाह्य शुद्धि की अपेक्षा आंतरिक शुद्धि पर बल देता है। जबतक अंत:करण का मैल दूर न हो जाए तब तक 'ब्रह्म' का साक्षात्कार संभव नहीं है। कबीर दास ने भी कहा है:-

''माला फेरत जुग भया मिटा न मन का फेर।
करका मनका डारि दे मन का मन्नका फेर।।''

धन का संग्रह करना व्यर्थ है। क्योंकि अंत में मनुष्य को सब कुछ

यहां छोड़कर खाली हाथ जाना है, यानी मरना है। यहां कवि संसार की नश्वरता को प्रकट करता है। इस प्रकार 'हाली' की यह पुस्तक आध्यात्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। लल्लद्यद के वाखों (सं. वाक्) का प्रभाव भी इसकी ग़ज़लों में दिखाई देता है।

इस सर्वेक्षण में यह कहना असगेत न होगा कि भारत में देवनागरी लिपि के माध्यम से अनेक पत्रिकाएं कश्मीरी भाषा में प्रकाशित होती हैं। उनमें प्रमुख रूप से दिल्ली से 'कोशुर समाचार' तथा जम्मू से 'खीर भवानी टाइम्स' आदि निकलती हैं। इस शोधात्मक सर्वेक्षण के लेखक - डॉ. बी. एन. कल्ला ने 'कोशुर समाचार' के कश्मीरी अनुभाग में आचार्य अभिनवगुप्त पर कश्मीरी में एक शोधपरक लेख लिखा है। जिसका सारांश इस प्रकार है-आचार्य अभिनवगुप्त का जन्म कश्मीर में दसवीं शती में हुआ।इनके पिता का नाम नरसिंह गुप्त था। अभिनवगुप्त का पूर्वज अत्रिगुप्त माना जाता है। दिग्विजयी सम्राट् ललितादित्य ने एक बार कन्नौज पर आक्रमण किया, वहां से वह संस्कृत के धुरंधर विद्वान् अत्रिगुप्त को अपने साथ कश्मीर ले आया। वहां ललितादित्य ने उसे अग्रहार (जागीर) देकर वितस्ता के किनारे शिव मंदिर के पास बनाया। इसी अत्रिगुप्त का वंशज आचार्य अभिनवगुप्त माना जाता है। आपने अपने पिताश्री से व्याकरण का गंभीर अध्ययन किया। कालांतर में आपने अनेक आचार्यों से विविध शास्त्रों का भी गहन अध्ययन किया। अपनी ज्ञान की प्यास को बुझाने के लिए आप कश्मीर छोड़कर जालंधर पीठ चले गए। वहां आपने शंभुनाथ से कौल संप्रदाय का ज्ञान प्राप्त किया। दक्षिण में आपकों 'शेषनाग' का अवतार मानते हैं। आपकी रचनाएं 42 मानी जाती है। कहा जाता है कि आप कश्मीर के सुप्रसिद्ध गांव मागाम (सं.महाग्राम) की गुफा के अंदर अपने बारह सौ शिष्यों समेत 'व्याप्त चराचर भाव विशेषम्' यह शिवस्तोत्र पढ़ते हुए अंदर घुसे वाद में अपने शिष्यों के समेत वही अंतर्धान हुए।

निश्चय ही शैवदर्शन के आचार्यों में इनका प्रमुख स्थान रहा हैं।

कश्मीर को विषंम परिस्थितियों के कारण इस वर्ष 'जम्मू व कश्मीर कल्चरल अकादमी' से कश्मीरी शीराजा का कोई अंक प्रकाशित नहीं हुआ हैं। इसका हमें खेद है।

इस वर्ष विस्थापित कश्मीरी लेखकों तथा कवियों को अनेक पुस्तकें प्रकाश में आई। इससे स्पष्ट होता हे कि कश्मीरी का भविष्य उज्जवल है। इस दिशा में कश्मीरी साहित्यकारों का योगदान विषम परिस्थितियों में भी उल्लेखनीय रहा है। नि:संदेह, इस समय विस्थापित कश्मीरी साहित्यकार अपनी संस्कृति की रक्षा के लिए एक वीरप्रहरी की तरह सजग है।



कश्मीरी साहित्य - 2002

कश्मीरी गत तेरह वर्षो से आंतकवाद के साए से गुजर रहा। इसके दुष्प्रभाव से कश्मीरि पंडितो को चल-अचल सँपत्ति छोडकर पलायन करना पड़ा। फलत: वे इस समय भारत के विभिन्न प्रांतो में शिविर में रहकर कालयापन कर रहे है।

इस विषय परिस्थितियों को देखकर कश्मीरी साहित्यकार मूकवत् नहीं रह गए। उन्होनें साहित्य की विभिन्न विधाओं के माध्यम से इस त्रासदी का उल्लेख विभिन्न भाषाओं में किया। परिणामस्वरुप हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, अंग्रज़ी तथा कश्मीरी आदि भाषाओ में अनेक रचनाए प्रकाशित हुई। इन रचनाओं में - श्री जगमोहन की अंग्रज़ी पुस्तक - प्रो मोहनलाल कौल की अंग्रज़ी पुस्तक, अर्जुदेव मजबुर की कश्मीरी Frozen Turblance in Kashmir कविताओ का संग्रह डॉ० बी०एन० कल्ला का संस्कृत में 'कश्मीर क्रंदनम' तथा मोहनलाल चरागी की उर्दू पुस्तक आदि उल्लेखनीय है।

इसके अतिरिवत कश्मीर के हिन्दुओं मुसलमान लेखकों तथा कवियों ने आतंकवाद के विरुद्ध विभिन्न पत्रिकाओं में अपने उदगर प्रकट किए। यहाँ दुष्टता के रुप में कवयित्री नसीम शफायो की एक कश्मीरी नज्य (पदय) प्रस्तुत की जाती है :-

''मॅत्य सुंद दुआ फॅकीर की प्रार्थना
यॆमि दारि किन्य क्युथ यि वाव डॊल
रतु दॉव्य छय फुलयि बेरच प्रथ लेंड।
कमि जादि न्यन्दुर पॆयि पहर दरन
व्वन्य छायि छय कोबि ज़ु अस्तानन।।
दयि तिछ़ रॅच़ गॅर रुत साथ बेनिन
बॆयि याद पॆयिन असि ज़ाथ पनुन्य,

रातक्य पॉठ्य गछिकुठ्यन अंदर
कुट काल गटन हुंद सीनु च़ॅटिथ
असवुन असवुन अखताबु खसिन।।
सादन तु रेशन हुंज़ि बस्यतिय मंज़
दिल पनुनी असि असतान बेनिन
बॅड्य पीर बेनिथ बेसकीन बेसकीन येतिकय
अॅछ मुच़िरन तु करामाथ करिन।।''

हिन्दी रुपांतर :-

किस खिड़की से यह वात आया ?
रक्तरंजित प्रफुल्लित शाखाएँ
किस जादू से नींद पड़ी पहरेदारों को
प्रभो अच्छी घड़ी और अच्छी मुहुर्त फिर आए
याद आए फिर हमें अपनी जाति
कोष्ठों में पीर फकीर बैठकर
ईश्वर का नाम स्मरण करे।
काल घटाओं का सीना चीरकर
हँसता हुआ सूरज फिर चढ़े।
साधुओं तथा ऋषियों की बस्ती में
दिल बने अपने ही मंदिर,
निवासी यहाँ के पीर बन कर
करामात करें आँखे खोलकर।।

उक्त कविता में यह भाव ध्वनित होता है कि बाहर कि आँधी ने अर्थात बाह़र के आतंकवादियों ने कश्मीर के सांप्रदायिक सद्भाव, सौहाद्र तथा शांतिमय-वातावरण को दूषित कर दिया है। रक्तपात से यहाँ की मुस्कुराहट खत्म हो गई। खिले हुए फूल मुरझा गए है। कश्मीर प्राचीन काल से - ऋषि वाटिका (कश्मीर में - ऋषिवोर) के नाम से प्रसिद्ध रहा है। यहो के साधुओं

तथा संतो ने समय-समय पर मानवता का संदेश दिया। दुर्भाग्य से राष्ट्रविरोधी तत्वों ने गत कई वर्षो से यहाँ के अमन को बिगड़ दिया। फलत: लोगों को अमानवीय यातनाएँ सहन करनी पड़ी। इन विषम परिस्थितियों को देखकर कवयित्री व्याकुल होती है। शोकाकुल होकर उसकी वाणी प्रस्फुटित होती है। वह चाहती है कि आंतकवाद - पीड़ित कश्मीर में वह खुशनुमा घडी शीघ्र आ जाए ताकि यह अशांति दूर हो जाए। फिर से लोग खुशहाली का जीवन व्यतीत करें।

नसीम शफायी की यह कविता मैने कश्मीरी पंडित सभा द्वारा प्रकाशित क्षीरभवानी टाइम्स के जनवरी 2002 ई० के अंक से उद्धृत की है। यह त्रिभाषीय मासिका पत्रिका जम्मू से प्रकाशित होती है। इस पत्रिक का पहला खंड-अंग्रेजी का दूसरा खंड-हिन्दी का तीसरा-खंड कश्मीरी का है। कश्मीरी खंड के संपादक श्री आर एल जवाहर है। विविध साहित्यिक विधाओं से यह कश्मीरी खंड समलांकृत है। इसमें नज्में, कश्मीरी मुहावरे आदि है। श्री पृथ्वीनाथ मधुप की कश्मीरी लीला भी इसमें प्र्काशित हुई है। इस कश्मीरी लीला का शीर्षक है 'मोजी'। अनुग्रेह करतम। अनुग्रह अपना कर लो माँ। यह लीला भवित रचना उसके पिता पं नीलकंठ शर्मा की है। पं० नीलकण्ठ शर्मा कश्मीर के सुप्रसिदध कवियों में से गिने जाते है। उनकी कश्मीरी रामायण बहुत ही प्रसिद्ध है। दुर्भाग्य से रामायण का प्रकाशन अभी तक नही हुआ है। यह लीला इस प्रकार है :-

(1) ''अनुग्रह अपना कर लो माँ?
पादि कमलन तल माज्य म्यति वरतम
अनुग्रेह करतम मांजी अनुग्रेह करतम
कष्ट दूरकरतम संत्वष्ट रोजतम।
बालकस नाल तोय फरियाद बोज़तम
पाफ-शाफ कासतम संताफ हरतम
अनुग्रेह करतम मॉजी अनुग्रेह करतम।।

(2) बेयि द्र् करतम येमि संसास्क
मटि बोरवालतम खवटि व्यवहारुक्
तंग आस येमि निशि वासना फिरतम
अनुग्रेह करतम मॉजी अनुग्रेह करतम।।

(3) समसार द्वैतन बुय रोटमुत छुस
द्वखु सागरस मंज़ बुय फोटमुत छुस।
खारतम आवलुनि मतु मॅशिरावतम
अनुग्रेह करतम मॉजी अनुग्रेह करतम।।"

हिन्दी रुपांतार :-

(1) पाद पंकज में शरण मुझे भी दे दो जननी,
अनुग्रह अपना मुझ पर कर लो जननी
कष्ट हरो संतुष्ट रहो क्षण माँ । मुझ पर
शिशु तेरा हूँ पुकार सुनो जननी जब
तत्क्षण कर लो कृपा– - -ताकि- - -
पापि- शापों- - संतापों से निवृत्ति हो जाए
अनुग्रेह अपना मुझ पर कर लो क लो माता ।

(2) संसार का भय जननी हर लो समूचा मेरा
यह मिथ्या प्रपंच का भार हटा दो कंधो पर का
मायाजाल में मै फंस-फंसा,
दूर कर लो मेरी बुरी वासना
अनुग्रह अपना मुझ पर कर लो, कर लो माता।

(3) द्वैतभाव न संसार को ,मुझको है जकड़ा
दु:ख सागर में डूबा हूँ में
बीच भंवर से-
निकाल लो मुझ, कभी न भूलो मेरी माँ
अनुग्रह अपना मुझ पर कर लो कर लो माता।।

श्री नीलकंठ की इस लीला पर वेदांत-दर्शन का प्रभाव स्पष्ट रूप दृष्टिगोचर होता मैं वोदांत के अनुसार यह जगत मिथ्या है । केवल ब्रह्म (Ultimate) ही सत्य – है जैसे ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या लेकिन शैवदर्शन के अनुसार यह जगत भी सत्य है और शिव भी।

इस वर्ष कश्मीरी में वित्थापित कश्मीरियों की अनेक रचनाएँ प्रकाशित हुई है। उनमें सर्वप्रथम एक ग्रमीण महिला की उत्तम रचना - 'चंद्र वाख' के नाम से छपी है। इस कवयित्री का चंद्रा ड़ासी है जो अनतनाग की रहने वाली है। पुस्तक की एक विशेषता है कि यह दोनों लिपियों - नागरी और नस्तालीक फारसी में है। इससे दोनों भाषाओं के ज्ञाता लाभान्वित होंगे। दुर्भाग्य से अभी तक जम्मू व कश्मीर सरकार ने लिपि को वैकल्पिक रूप में भी स्वीकृति नहीं दी है। जिससे उर्दू न जानने वाले को कश्मीरी साहित्य पढ़ने में दिक्कत पेश आती है। फलत: वे छरा समृदध साहित्य का रसास्वादन नहीं कर पाते है। चंद्रा ड़ासी की यह पुस्तक वाखो (सं वाक) में लिखी गई है। वाख कश्मीरी में पद्य लिखने की एक शैली है। इसमें चार पाद होते है। कश्मीरी साहित्य की पहली पुस्तक लल्लेश्वरी अथवा लल्लदयद (14 वी सदी) के लल्लवाख कश्मीरी साहित्य में बहुत प्रसिदध है। उसी शैली को अपना कर चंद्रा ड़ासी ने वाख लिखे है। चंद्र ड़सी की रचना ''चंद्र-वाख'' में 283 वाख है। इस रचना में से एक वाख :

छस दपान सोरुय छु चोनुय, केंह तिनो येति छुय म्योन।
दुयी कोसिथ दिम में शवजरा, युथ्ध वुछय प्रकाश चोन।।

रुपांतर :-

कहती हूँ सारा विश्व है तुम्हारा, नहीं है मेरा यहाँ कुछ।
दुविधा दूर कर करो मुझे शुदध, प्रकाश जिससे देखूँ तुम्हारा।।

इस वाख में कवयित्री कहती है कि यह सारा स्थावर विश्व ईश्वर का ही रुप है वयोकि इसका रचयिता वही है। उसके बिना (ईश्वर के बिना) विश्व का अस्तित्व संभव नही है। आगे चल कर वह ईशवर से प्रार्थना करती

है कि मुझमे जो द्वैतभाव है वह मिटा दो। दवैतभाव के मिट जाने पर जीव ईश्वर के स्वरूप को पहचान सकता है और उसके प्रकाश को अर्थात् अखंड ज्योति को देख सकता है। द्वैत अज्ञान है। अज्ञान के कारण ही जीव के मन में यह अपना है और यह पराया है इस प्रकार का दव भाव होता है। इस दवै भाव के कारण वह असली हकीकत को समझ नहीं सकता है। संसार में कलह तथा अशांति का कारण द्वैतभाव का पैदा होना है। इसके मिटने से जीव को ब्रह्म का साक्षात्कार हो सकता है। तथा ईश्वर का प्रकाश (नूर) उसे चारों ओर दिखाई देता है। यह तभी संभव है जब जीव का अंत-कारण-शुद्ध होगा। इन वाखों के अध्ययन से मालूम होता है कि कवयित्री चंद्रा ड़ासी ने विभिन्न दर्शनों का गंभीर रुप से अध्ययन किया। तभी तो उनके वाखों में दार्शानिक तत्वों के स्वर मुखरित हो उठते है। वस्तुत उनकी यह रचना आध्यात्मिक कवियों में श्रेष्ठ मानी जाएगी-ऐसी मेरी धारणा है।

जम्मू व कश्मीर सूचना विभाग द्वारा कश्मीरी में आलव नामक शोधात्मक पत्रिका प्रकाशित होती है। इसके संपादक मुही-उददीन ऋषि साहब है। आलव के ताजा अंक में कश्मीर के उत्कृष्ट साहित्यकारों के लेख, कहानियाँ, गज़ल तथा नज्में प्रकाशित हुई है। इन उत्कृष्ट साहित्यकारों में श्री रहमान राही, अमीन कामिल, अजुर्ददेव मजबूर, मरगूब बानिहाली आादि गिने जाते है। इस अंक में कश्मीरी साहित्य का सर्वेक्षण लेखक डॉ० बद्रीनाथ कल्ला का शोधाथ्मक लेख-कश्मीर के सुप्रसिदध आचार्य अभिनव गुपत पर प्रकाशित हुआ है । उसका साराश इस प्रकार है :-

संस्कृत साहित्य में हमें ऐसे लेखक, कवि आदि मिलते है जिनका वंश परिचय आदि हमें उनकी रचनाओ में नहीं मिलता है। ऐसे कवियों में कवि सम्राट कालिदास का नाम आता है। अभी भी उनका जन्मकाल तथा स्थिति काल समीक्षकों के लिए विवादास्पद रहा है। मगर आचार्य अभिनव गुपत इसमें अपवाद है। उन्होंने अपनी अमर रचनाओं में अपना जीवन परिचय अच्छी तरह दिया है। आचार्य अभिनव गुफत के पिताश्री का नाम नरसिंह गुपत

था और माता का नाम विमलकला था। नरसिंह गुप्त-चुखुलक के नाम से भी समाज में प्रसिद्ध था। दुर्भाग्य से इसकी माता का निधन अल्पायु में हुआ। अत: मातृहीन शिशु के पालन- पौषण का बोझ पिता के कंधो पर आ पड़ा। शैशवावस्था में पिता ने अभिनव गुपत को शिक्षा दीक्षा दी। फलत: उसने व्याकरण तथा साहित्य का अध्ययन किया। उसके पश्चात अभिनव गुपत को विविध शास्त्रो का ज्ञान अनेक गुरुओं से हुआ। जालंधर पीठ में उसने श्री शभुनाथ जी से पढ़ा। इसका उल्लेख अभिनव गुपत ने तंत्रालोक में किया है। नवोन्मेषशातिनी प्रतिभा के कारण अभिनव गुपत ने बयालीस (42) पुस्तके लिाखी जिसमें स्तोत्र, टीकाएँ आदि भी सम्मिलित है। आपकी टीकाएँ और मैलिक ग्रंथ भारतीय साहित्य की अमूल्य निधियाँ है जिनपर केवल कश्मीर को ही नही अपितु सारे संसार को गर्व है।

गत चार दशको से जम्मू व कश्मीर कल्चरल अकादमी कश्मीरी साहित्य के निर्माण तथा प्रकाशन मे महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। इस वर्ष कश्मीरी एनसाइक्लोपीडइआ भाग-4 (कश्मीरी विशवकोश) अकादमी के महत्वपूर्ण प्रकाशकों में गिना जाता है। कश्मीरी विश्कोश का चौथा खंड भाषा तथा साहित्य पर आधारित है। इसके लेखक-अमीन कामिल अर्जुन देव मजबूर बशीर अखतर, रशीद नाजकी, सोमनाथ वीर शाहिद बडगामी, शफी शौक, शमीम अखतर, जफर मुजफर, गुलाम नील आतश, गुलाम नबी नाजिर, मजीद आस्मी महोमद अशरफ टाक, मरगूब बानहाली, मखनलाल सराफ तथा मीर नोशीन निगहत है। कश्मीरी विश्वकोश में पहली प्रविष्टि (Entry) आज़द नज़्म से शुरू होती है। इसकी अंतिम प्रवीष्टी हिकचि्‌ (बच्चों का एक खेल) वोत (गाने) से खत्म होती है। यह विश्व कोरा 424 पृष्ठों का है। इसका गेटअप और कागज़ बढ़िया है। इसकी किताब अत्यंत सुंदर है। इस कोश की प्रविष्टियों में से एक प्रविष्टि कश्मीरी डिवशनरी के विषय में है। इसका सार इस प्रकार है ।- - - - - - डिवशनरी शब्द लतीनी (Lattin) भाषा का पारिभाषिक शब्द-डिक्शननेरस है जिसका अर्थ - शब्दों का संग्रह

था। दुनिया में सबसे पहले इस लातीनी शब्द को एक अंग्रेज़ विद्वान ने 1225 ई० में लातीनी दस्तावेज के शीर्षक के अंतर्गत इस्तेमाल किया था। पंद्रहवी शती में 'लातीनी अंग्रेजी कोश' प्रकाश में आया। ग्राफरी नाम के एक सुप्रसिदध भाषाशास्त्री ने बारह हज़ार अंग्रेज़ी शब्दो का अनुवाद किया। पहली अंग्रेज़ी डिक्शनरी 1552 ई० में वजूद में आई। इस कोश को तरतीबकार यानी क्रम देने वाला रिचर्ड हुलेपेट था। छब्बीस हज़ार शब्दों पर आश्रित यह कोश महत्वपूर्ण माना जाता है। बाद में अनेक कोश विभिन्न भाषाओं मे समय-समय पर प्रकाशित हुए। कश्मीर में कश्मीरी शब्दकोश बनाने का काम अलग-अलग दौरों में हुआ। सबसे पहले सूंतय पंडित ने अठारहवी शती में पद्यों में कश्मीरी में निसाब बनाया। इसमें कश्मीरी और फारसी के शब्द भी थे। दूसरा एक शब्दकोश इसी तरह किसी कश्मीरी ने फारसी, अरबी तथा संस्कृत में बनाया था। कालातंर में पं ईश्वर कौल ने कश्मीरी, संस्कृत तथा हिन्दी में एक कश्मीरी संस्कृत-कोश बनाने का नाम प्रारंभ किया था। दुर्भाग्य से यह काम पूरा होने से पहले ईश्वर कौल 1893 ई० में काल - कवलित हो गए। बाद में यह शब्दकोश पूरा करने का काम सर जार्ज ग्रियर्सन ने महामहोपाधयाय पं मुकुंदराम शास्त्री की सहायता से किया। परिणामस्वरुप कश्मीरी शब्दकोश के चार खंड एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल से प्रकाशित हुए। इसका अंतिम खंड 1932 में प्रकाशित हुआ। इसमें कश्मीरी शब्दों तथा मुहावरों के अर्थ अंग्रेज़ी तथा संस्कृत में दिए है। स्वतंत्रता के बाद जब 1959 ई० में जम्मू व कश्मीर कल्चरल अकादमी की स्थापना श्रीनगर में हुई सबसे पहले वहाँ कश्मीरी शब्दकोश बनाने की प्रक्रिया 1962 ई० में शुरु हुई। सर्वेक्षणकारों ने विभिन्न इलाकों से अलग-अलग वयवासायों के शब्द एकत्रित किए जिन्हें कश्मीरी शब्दकौश में शामिल किया गया। बाद में कश्मीरी शब्दकोश का पहला खंड नवंबर 1968 ई० में तैयार हुआ। इसमे ग्रियर्सन की डिकशनरी की शब्दराशि तथा सर्वेक्षणकारों की शब्दावली भी दर्ज की गई। इसके सात खंड प्रकाशित हुए। इसकी लिपि नस्तालीक (उर्दू) है। ग्रियर्सन ने कश्मीरी

शब्दकोश के लिए लोकप्रिय नागरी लिपि का प्रयोग किया था। अकादमी दवारा पैकाशित कश्मीरी डिकशनरी में यह विशेषता पाई जाती है कि इसमें प्रत्येक शब्द की व्युत्पत्ति दी गई है जो अर्थात् चालीस हज़ार शब्दो की व्युत्पत्ति इस लेख के लेखक - डाँ बदरीनाथ कल्ला शास्त्री ने दी। इसके सात खंडो में प्राय: सैतालीस शब्दों तथा मुहावरों का समावेश हुआ है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से यह डिक्शनरी शोधकों के लिए अत्यंत उपयोगी है। ऐसा मेरा विचार है। इसके मुख्य संपादक प्रो: श्रीकंठतोषखानी है तथा इस डिवशनरी के सहायक है श्री चमनलाल चमन, मोहमद अहमद अंदराबी, बद्रीनाथ कल्ला।

इस डिक्शनरी की प्रविष्टि में यह त्रुटि पाई जाती है कि इसके लेखक मजीद आसमीन ने ईश्वर कौल के 'कश्मीरी दशभाषोदय' का उल्लेख इसमे नही किया है। ईश्वर कौल ने यह कोश संस्कृत पद्यों में लिखा था जो इस समय ज़म्मू व कश्मीर रिसर्च विभाग में सुरक्षित है। इस कोश में कश्मीरी भाषा के अतिरिवत अंग्रेज़ी, अरबी, फारसी तथा बलती आदि दस भाषाओं के पर्याय दिए गए है। कश्मीरी भाषा का भविष्य उज़्जवल है। वह दिन दूर नहीं जब भाषा विश्व की समृदध भाषाओं में गिनी जाएगी।



कश्मीरी साहित्य - 2003

जम्मू व कश्मीर कल्चरल अकादमी गत कई दशकों से स्थानीय भाषाओं-कश्मीरी, डोगरी, भोजपुरी आदि भाषाओं के अतिसिक्त हिंदी, उर्दू तथा पंजाबी आदि भाषाओं में 'शीराज़ा' आदि के माध्यम से विभिन्न साहित्यिक विधाओं को जन-साधारण तक पहुँचाने में प्रयत्नशील है। कश्मीरी- साहित्य के निर्माण में इस साहित्यिक संस्था का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है। इस वर्ष 'कश्मीरी विश्वकोश' के पाँचवे भाग का काम चल रहा है। 'कल्चरल अकादमी' के नए सचिव श्री रमेश मेहता के अदम्य साहस से यह 'विश्वकोश' शीघ्रही प्रकाशित होगा। कश्मीरी शीराज़ा के अंको में से मेरे पास इस समय फरवरी-मार्च का अंक है। इस द्वैमासिक पत्रिका के निरीक्षक श्री बलवंत ठाकुर हैं तथा संपादक मज़ीद आसमी। यह एक सौ बीस पृष्ठात्मक है।

इसमें आलेख, कहानियाँ, गज़ले, समीक्षा तथा पत्र शामिल हैं जो कश्मीरी भाषा के जाने-माने विद्वानों द्वारा लिखे गए हैं। इसके प्राक्कथन में संपादक महोदय लिखते हैं - कश्मीरी साहित्य में दिनबदिन विभिन्न साहित्यक विधाएँ जैसे - अफसानें, नाटक, शायरी आदि विकसित हो रही हैं मगर कश्मीरी उपन्यासों की कमी दिनबदिन महसूस की जा रही है। मुझे इसका मुख्य कारण यह दिखाई देता है कि कश्मीरी पाठकों की संख्या प्रतिदिन घटती जा रही है। अन्य भाषाओं की अपेक्षा कश्मीरी उपन्यास नगण्य है। ऐसी स्थिति में हमें हतोत्साह नही होना चाहिए। इस समय तक जो कश्मीरी उपन्यास प्रकाशित हुए हैं उनके लेखक-अली मोहम्मद लोन, गुलाम रसूल संतोष, गुलाम नबी गौहर तथा बंसी निर्दोष आदि। रसूल पांपुर का लेख-अधिकार सुरक्षित एक व्यंग प्रधान लेख है। इसमे लेखक कश्मीर की वर्तमानकाल की विषम-स्थिति का वर्णन करता है। आंतकवाद के कारण लोगों का जीना बहुत मुश्किल हो गया है। लोगों को शंका की दृष्टि से देखा जाता है। लेखक के

अनुसार बड़ा वही माना जाता है जो छलकपट में निपुण हो, वही हर एक काम में आगे बढ़ सकता है। इसके बजाए एक अच्छा आदमी (सज्जन) जो ईमानदारी से संसार में चलता हो, उसका समाज में न सम्मान है न वह किसी काम में आगे बढ़ सकता है। यह तो विडंबना है।

कवियत्री बानू ज़ईफा की रचना कुलपति जईफा पर समीक्षा करते हुए श्री अमीन कामिल साहब लिखते हैं कि लल्लद्यद तथा वचन लिखने की परंपरा को उस ने क़ायम रखा। अपने वाखों के माध्यम से उन्होंने सूफियाना भावों को आगे बढ़ाया। यह वही आध्यात्मिक भाव है-जिनको शमस फकीर, अहद ज़रगर तथा वाज़मोहमूद आदि ने वाणी प्रदान की। इसके पद्य इसका प्रमाण हैं। यहाँ उसके कुछ पद्य उदहारण के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। पद्यों में से यह पद्य दृष्टव्य है:-

दॊह छुस गुज़रान मंज़ पोश ड़ारन, रात छुस गुज़रान तारकन सुत्य।।
दिल छुस ब्रमान प्यठ कॊह सारन, मॅत्य अश्कु नारन कॊरनम सूर।।

रूपातंर:- गुज़ारता हूँ दिन कुसुमों में, गुज़रता हूँ रात तारों में।
चाहता है दिल पर्वतों में, जलाया मुझको अश्क की आग ने।।

जीव प्राकृतिक दृश्यों को देखकर आनंद-विभोर हो जाता है। प्रकृति के कण-कण में उसे परम तत्व या परब्रह्म का रूप मिलता है। उस सच्चाई का प्रकाश उसे चारों ओर दिखाई देता है। अंत में वह अश्क़ हक़ीकी में विलय होता है। इस प्रकार कवियत्री के 'वाख' आध्यात्मिक पक्ष को अच्छी तरह उभारतें हैं।

द्वैमासिक 'आलव' नामक पत्रिका 'जम्मू व कश्मीर सूचना विभाग' की ओर से कश्मीरी में प्रकाशित होती है। इस पत्रिका के निरीक्षक के.बी.जंड़याल हैं तथा संपादक मोहीउद्दीन ऋषि हैं। यह जुलाई-अगस्त का अंक है। यह पत्रिका अनेक पृष्ठों की है तथा रंगीन चित्रों से भी सुसज्जित है। स्वतंत्रता दिवस पर मुख्यमंत्री श्री मुफ्ती मोहम्मद सईद का संबोधन भी इसमें छुपा हुआ है। इस पत्रिका में सबसे पहले डॉ. रत्नलाल तलाशी का 'भाषा तथा पहचान'

नामक शीर्षक से भाषाविज्ञान पर एक विस्तृत शोधात्मक लेख प्रकाशित हुआ है। इसमें लेखक ने भाषा विज्ञान के भिन्न-भिन्न नियमों पर प्रकाश डाला है। फरडीनंड (Feridinand) और स्यूसुर (saussure) ने भाषाविज्ञान के क्षेत्र में एक नई तबदीली लाई। पहचान के विषय में जों उन्होंने कुछ नियम बनाए हैं उनकी हम निम्न शीर्षकों के अंतर्गत व्याख्या कर सकते है जैसे (1) भाषा तथा बोली (Linguistic and Parole) भाषा विज्ञान संबंधी चिह्न (2) (Linguistic sign) (3) Semiololgy (4) synchronic and Diachnomic (5) Syntagmatic and Paradigmatic Relations इसके अतिरिक्त भाषा तथा बोली में क्या अंतर है? इसका भी इस लेख में विस्तृत रूप से विवेचन किया गया है। लेखन ने पाश्चात्य भाषा शास्त्रियों का गहन अध्ययन करके उनका हवाला दिया है।

मेरे मत से लेख में लेखक ने प्रसद्ध भाषाशास्त्रियों का उल्लेख नही किया है। प्राच्यभाषा शास्त्रियों अथवा वैज्ञानिकों में यास्काचार्य, पाणिनि तथा पतंजलि के नाम इस क्षेत्र में उल्लेखनीय हैं। यास्काचाई (ई.पू.सातंवी शती) ने सबसे पहले भाषाविज्ञान के नियमों-वर्णागम, वर्णलोप तथा वर्ण विपर्यय आदि का वर्णन 'निसक्त' में किया है। वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति (Etymology) भी दी है। इसी प्रकार पाणिनी (ई.पू. चौथी शती) ने अष्टाध्यायी में वैज्ञानिक ढ़ग से वर्णों के उच्चारण स्थान आदि का विश्लेषण किया है। पंतजलि ने भी 'महाभाष्य' में भाषा आदि पर विस्तार से प्रकाश डाला है। इन तथ्यों की ओर लेककों ने ध्यान नहीं दिया है। फलत: यह लेख एक पक्षीय माना जाएगा, ऐसा मेरा मत है। इस प्रकार की त्रुटि होते हुए भी यह शोधात्मक लेख उत्तम है। सोमनाथ वीर भट्ट की गज़ल इसमें दृष्टव्य तथा ध्यातव्य भी है:-

मारु ग़ारज गॅर्य कॅरस ल्वकचार न्यूनमय।
यारुबल पॅंजि यारु सुंद दरबार न्यूनमय।।
ड़खुर खुबन दिथ वन परी आस्था ति खंचमुच वन।
शकलि शमाह गुफ्तार न्यूनमय।।

बाग बोन्यन तल शुहुल मखमॅल्य द्रमुन्य सब्ज़ार।
वीरु वारन हुंद शुहुल शेहजार न्यूनमय।।
नारु छ्टि अकि ज़ोलनम यक़बाल न्यूनमय।।

भावार्थ:- यह गज़ल प्रतीकात्मक है। इसमें कवि आंतकवाद से उत्पन्न अशांति तथा दुख का वर्णन करते हुए कहता है कि इस आंतकवाद के कारण मेरा सर्वस्व लुट गया। मेरा यौवन इसने हर लिया। नदी के किनारे पर मित्र का दरबार अब खत्म हो गया। क्या वन की परी वन गई होगी? मेरी सारी वार्ता अब समाप्त हो गई। बागों तथा चिनारों के नीचे मख़मल जैसी घास तथा हरिद्वर्णता हर ली गई। कवि के मन में यह व्यथा है कि आंतकवाद ने हमारा सुख, चैन तथा अमन आदि ख़त्म कर दिया। अंत में वह पश्चाताप करता है कि यह स्थिति कैसे आ गई?

'आलव' नामक दवैमासिक पत्रिका का सिंतबर-अक्तूबर 2003 का अंक विभिन्न साहित्यिक विधाओं से विभूषित है। प्रो. राही तुलनात्मक साहित्य के बारे में लिखते है:- तुलनात्मक साहित्य का क्या अभिप्राय है? इसका इतिहास क्या है? इसकी आवश्यकता कितनी है? साहित्यिक समीक्षा तथा इतिहास के साथ साथ इसकी महत्ता इस दिशा में क्या है? इसके विकास की संभावनाएँ कितनी हैं? ये कुछ प्रारंभिक प्रश्न हैं। चूंकि कश्मीर के साहित्यिक जगत में तुलनात्मक साहित्य जगत में तुलनात्मक साहित्य का अस्तित्व अब विकसित हो रहा है अत: इस पर विचार करने की अत्यंत आवश्यकता है। तुलनात्मक अध्ययन के समय हमें विभिन्न भाषाओं का ज्ञान होना चाहिए। यदि हम किसी की उत्कृष्ट रचना का अन्य भाषा में लिखित दूसरी रचना के साथ तुलनात्मक अध्ययन करें, हमें उस दूसरी रचना का सम्यक् ज्ञान होना चाहिए, इतना ही नहीं उसकी संस्कृति का तथा इतिहास आदि का ज्ञान भी ज़रूरी है। यदि कोई समीक्षक महजूर की नज़्म ग्रीसकूर, (किसान की कन्या) का वर्डसवर्थ की कविता - The solitary Reaper के साथ तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर अपनी राय क़ायम करे तो वह

अपना व्यक्तिगत मत इन दोनों कविताओं का मूल्यांकन कर प्रस्तुत कर सकता है। इसमें कोई आपत्ति नही है। तुलनात्मक साहित्य के लिए हमारे पास गतिविधियों का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र लोकसाहित्य तथा हमारी कश्मीरी भाषा है जो प्रत्येक रूप में समृद्ध है। इस मोखिक साहित्य तथा लिखित साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन कर यह देख सकते हैं कि हमारी लिखित शायरी में जो विभिन्न विधाएँ हैं या जिन विभिन्न विभिन्न विधाओं का हम शायरी में प्रयोग कर सकते हैं, उनका विकास किस तरह से हुआ है। यह हमारी लोककथाएँ किन दूसरी भाषाओं के साथ मिलती जुलती हैं। इन लोक कथाओं में पात्रों का व्यवहार एक जैसा दिखाई देता है। इस तरह का अध्ययन साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जाएगा। इसमे यह भी मालूम हो सकता है कि लिखित साहित्य ने लोक-साहित्य को प्रभावित कर दिया है या लोक-साहित्य ने लिखित-साहित्य को जन्म दिया। इन तथ्यों पर विचार करना ज़रूरी है। यह शोधात्मक लेख गेषणात्मक तथा ज्ञानवर्धक भी है। मशल सुलतानपुरी का 'मोरिख हसन सुंद ल्यूखमुत जगराफ़िया कश्मीर' तथा 'इतिहासकार 'हसन' का लिखा हुआ भौगोलिक कश्मीर मानक' लेख भी महत्वपूर्ण है। पीरहसन खुयहामी एक अच्छा कवि था। वह फारसी तथा कश्मीरी इन दोनों भाषाओं में पद्य लिखता था। वह फारसी भाषा का एक सुप्रसिद्ध साहित्यकार तथा कश्मीरी का सुप्रतिष्ठित इतिहासकार भी। लेखक के मत से यह पहला लेखक है जिसने इतिहास के अतिरिक्त कश्मीर के भूगोल पर भी लेखनी उठाई। उसने तत्कालीन स्रोतों के आधार पर कश्मीर का इतिहास फारसी में लिखा। कल्हण की 'राजतरतंगिणी' में जिन कुछ राजाओं का वर्णन नहीं मिलता है, उन राजाओं का हवाला हसनशाह ने 'रत्नाकर पुराण' के आधार पर कश्मीर का इतिहास फारसी में लिखा। कल्हण की 'राजतरंगिणी' में जिन कुछ राजाओं का वर्णन नही मिलता है, उन राजाओं का हवाला हसनशाह ने 'रत्नाकर पुराण' के आधार पर तारीख हसन में दिया है। दुर्भाग्य से यह पुराण इस समय नहीं मिलता है। कश्मीर के भूगोल के वर्णन में

हसनशाह ने इसकी लंबाई और चौड़ाई का उल्लेख भी किया है। इसने परगनों (सं.पुरगण) (डोगरा राज्य में परगनों को तहसील का नाम दिया गया) कश्मीर के बागों, मंदिरों, अस्थापनों तथा मस्जिदों का विस्तृत रूप से वर्णन किया है। इस अंक में लिपिविषयक शोधात्मक लेख डॉ. बरदीनाथ कल्ला का है। इस लेख का सार यहाँ दिया जाता है। प्राचीन काल में कश्मीर में विभिन्न लिपियों का प्रचलन था। इन लिपियों में खरोष्ठी, ब्राह्मी, शारदा, नागरी, नस्ख (अरबी) नस्तालिक़ (उर्दू), रोमन आदि लिपियों का प्रचलन रहा है। खरोष्ठी तथा ब्राह्मी लिपियों में हमे कोई लिखित साहित्य नहीं मिलता। कुषाण युग में हमें खरोष्ठी लिपि में ठीकरियों पर एक से दस तक की गिनती मिलती है। ये ठीकरियाँ इस समय 'जम्मू व कश्मीर के संग्रहालय' में उपल्ब्ध हैं।

खरोष्ठी लिपि मध्य एशिया की लिपि स्वीकार की जाती है। यह लिपि दाईं ओर लिखी जाती है। सम्राट् अशोक के शिलालेख हमें ब्राह्मी लिपि के अलावा खरोष्ठी लिपि में भी उपलब्ध हैं। इससे यह स्पष्ट होता कि भारत में पुराने ज़माने में दो लिपियाँ प्रचलित थी इन दोनों लिपियों का प्रभाव कश्मीर में भी पड़ा जिसका उदहारण हमें विभिन्न रूपों में मिलता है। इस कुषाण युग में कश्मीर में नागार्जुन की अध्यक्षता में कुंडलवन विहार में (वर्तमान-कानिसपुर में) बौद्धों का चतुर्थ विराट् सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में 'विभाषा शास्त्र' की जटिलता को दूर करके सरलीकरण किया गया। बाद में इनको ताम्रपट्टों पर खोदकर भूगर्भ में रखा गया। ये ताम्रपट्ट (ज़मीनदोज़) किस लिपि में लिखे गए, अबतक यह किसी को विदित नहीं है। यदि पुरातत्वज्ञ इन ताम्रपट्टों को भूगर्भ से निकालेंगे, तो इससे इतिहास में एक नया अध्याय जुड़ जाएगा तथा नए ऐतिहासिक तथ्य हमारे सामने आ जाँएगे। इस विषय में मेरा मत्त यह है कि यह ताम्रपट्ट पाली में लिखें हुए होंगे, क्योकि बौद्धों के धर्म ग्रंथ धम्मपद आदि पाली में लिखें हुए उपलब्ध हैं।

कल्हण की 'राजतरंगिणी' के अनुसार महाराजा ललितादित्य मुक्तापीड़ का दौर आठवीं शती माना जाता है। इस दौर का मार्तंड के मंदिर में ब्राह्मी

लिपि में एक शिलालेख नज़र आता है। कालांतर में हमें कोई शिलालेख या दस्तावेज इस लिपि में दृष्टिगोचर नहीं होता है। इसी युग में अर्थात आठवीं शती में छुम्मपद या संग्रहश्लोक भी हमें मिलते हैं। कालान्तर दसवी तथा ग्याहरवीं शती के प्रथम चरण में आचार्य अभिनवगुप्त की रचनाएँ विशेषतः तंत्रालोक आदि शारदा लिपि में उपलब्ध हैं।

दसवीं शती में दिद्दा रानी के शारदा लिपि के सिक्के श्रीनगर के 'प्रताप सिंह संग्रहालय' के अतिरिक्त 'लाहौर के संग्रहालय' में भी पाए जाते हैं। यहाँ हमारे लिए यह बात ध्यातव्य है कि शारदा लिपि उत्तर पश्चिमीय ब्राह्मी लिपि की एक शाखा है। इसके बाद महेश्वरानंद की रचना - 'महार्थ मंजरी' प्राकृतभाषा में उपलब्ध है। यह रचना बारहवीं शती की है तथा 'जम्मू व कश्मीर के रिसर्च विभाग' में सुरक्षित है। तेरहवीं शती का हमें शारदा लिपि में शितिकंठ का 'महानय-प्रकाश' 'जम्मू व कश्मीर के प्रत्न विभाग' में मिलता है। यह रचना कश्मीरी साहित्य की पहली रचना मानी जाती है। इसी शती की भूर्जपत्रों पर शारदा में लिखित पांडुलिपि वामदेव की कृति 'मुनिमतमणिमाला' है।

गतवर्ष यह पांडुलिपि मैंने स्वंय उक्त विभाग में जीर्ण शीर्ण अवस्था में देखी। चौदहवीं शती की दो अमर रचनाएँ-लल्लद्यद के वाख (सं. वाक्) तथा नुन्दऋषि के श्रुक्य (सं.श्लोक-रलयोरभेदः) शारदा लिपि में हैं। नुन्दऋषि के श्रुक्य मैंने आचार्य दीनानाथ यक्ष शास्त्री के निजी पुस्तकालय में ज़वाहरनगर (श्रीनगर) में देखे थे। अफसोस! आंतकवाद के कारण ये पुस्तकें नष्ट हो गईं। नुन्द ऋषि की ऋषि-शिक्षा भी इसी लिपी में लिखी गई थी जो इस समय उपलब्ध नहीं है। मेरे पास इस समय शारदा में लल्लवाखों की पांडुलीपि मौजूद हैं। इसके अतिरिक्त पंद्रहवी शती की भट्टावतार की रचना 'बाणासुर कथा' इसी लिपि में है। यह रचना इस समय 'पूना भण्ड़ारकर ओरियंटल रिसर्च' में है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा स्वीकृत परियोजना के अंतर्गत मुझे 2015 ई० में पूना जाना पड़ा। वहाँ मैंने इसका अध्ययन किया।

यह पांडुलिपि वहां सुरक्षित है।

सुलतान शहाबुद्दीन के शासन काल में .... ई. में अनंतनाग के जिले में स्थित 'कूटिहर' नामक गाँव में शारदा लिपि में एक शिलालेख मिलता है। इसके बाद जैन-उल्लाब्दीन्बड़शाह के शासन काल में अर्थात् पंद्रहवी शती का शिलालेख 'खौनमुह' गाँव से एक मील उतर में भुवनेश्वरी नामक स्थान में एक पत्थर पर खुदा हुआ है। यह भी इस समय 'प्रताप सिंह संग्रहालय' में उपलब्ध है। इसी युग का दूसरा शिलालेख संत मुकदम साहब का 'वसीयतनामा' फारसी भाषा के अतिरिक्त शारदा लिपि में भी प्राप्त होता है। कालान्तर क्षेमेंद्र ने संस्कृत भाषा में 'लोक प्रकाश' लिखा जिस में संस्कृत भाषा के अतिरिक्त अरबी फारसी तथा कश्मीरी भाषाओं की शब्दावली मिलती है। यह किताब अर्जीनवीसों (Petition Writers) के लिए एक 'गाइड बुक' के रूप में अदालत के क्रिया कलाप के लिए प्रयुक्त होती थी। इस पुस्तक में अनेक हुंडियों के नमूने मिश्रित भाषा के रूप में दिए हैं। अठारहवीं शती में गणक प्रशस्त ने शारदा लिपि में 'सुख दुख चरित' लिखा। इस तरह शारदा लिपि में लिखने का सिलसिला चिरकाल तक जारी रहा। जर्मनी के एक विश्व-विख्यात संस्कृत-विद्वान डॉ.जार्ज बूलर ने ई. में श्रीनगर में अनेक दुर्लभ संस्कृत पांडुलिपियों की खोज की। उसके बाद एम.ए.स्टेन ने भी जार्ज बूलर का अनुसरण करके कश्मीर में संस्कृत पांडुलिपियों की खोज की जिनमें अधिकांश माहात्म्य-साहित्य आदि है जैसे - वितस्ता-माहात्म्य, शारिका-माहात्म्य तथा शारदा-माहात्म्य आदि। शारदा लिपि में यह पांडुलिपियाँ इस समय उक्त विभाग में सुरक्षित हैं। राजतरंगिणी के संपादक तथा अंग्रेज़ी अनुवादक स्टीन महोदय ने हारी पर्वत की तलहटी में सुरक्षित हैं। राजतरंगिणी के संपादक तथा अंग्रेज़ी अनुवादकस्टीन महोदय ने हारी पर्वत की तलहटी में बाहुउददीन साहब की ज़ियारत के पास कब्रिस्तान में शारदा लिपि में उत्खनित अनेक कब्रों का वर्णन किया है। इसी शती में कर्नल बावर ने 'सेंट्रल तुर्किस्तान' में कुछ संस्कृत की पांडुलिपियाँ प्राप्त कीं। इस समय ये 'बावर मन्सक्रिप्ट'

के नाम से प्रसिद्ध हैं। यहाँ पर यह कहना आंसगत न होगा कि कश्मीर से विस्थापित होने के बाद इस समय भी जम्मू में कुछ कर्मकांडी ब्राह्मण शारदा लिपि में जन्मकुंडली तथा टेवे आदि लिखते हैं। इस प्रकार यह लिपि इस समय भी जीवित है। मध्ययुग में शारदा लिपि के साथ साथ कश्मीर में नस्तालीक़ लिपि वजूद में आई क्योंकि सुलतानों ने यहाँ की सरकारी भाषा फारसी भाषा घोषित की थी। परिणामस्वरूप फारसी भाषा में संस्कृत पुस्तकों का अनुवाद किया गया। इसमें कल्हण की राजतरंगिणी तथा महाभारत का फारसी अनुवाद उल्लेखनीय है। इन पुस्तकों का अनुवाद बड़शाह के शासनकाल में किया गया। इन पुस्तकों के अनुवादक मुल्ला जामि कृत -'युसुफ-ज़ुलेखां' का अनुवाद संस्कृत पद्यों में किया गया। यह अनुवाद 'कथा कौतुक' के नाम से प्रसिद्ध हे। नस्तालीक़ के साथ साथ हमे नस्ख (अरबी) में भी अनेक शिलालेख मिलते हे। यहाँ पर यह तथ्य ध्यातव्य है कि बाईबल का अनुवाद सबसे पहले 'शारदा लिपि' में हुआ।

सुलतान दौर में नागरी-लिपि का भी विकास हुआ। बाद में डोगरा शासनकाल में इसकी बहुमुखी उन्नति हुई। 'जम्मू व कश्मीर के प्रत्नविभाग' से शितिकंठ का 'महानय प्रकाश' तथा 'लल्लवाख' नागरी लिपि में प्रकाशित हुए। कांलातर जार्ज इब्राहम ग्रियर्सन ने रोमन तथा नागरी लिपि में 'कश्मीरी डिक्शनरी' के चार खंड 'एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल' से ई० से ई० तक प्रकाशित किए।

1947 ई० के बाद यानी स्वतंत्रता के बाद कश्मीरी भाषा का चहुमुखी विकास हुआ। फलत: कश्मीरी भाषा लिखने के लिए नस्ख लिपि को निर्धारित किया गया। इस नस्ख में प्राइमर आदि भी लिखे गए। बाद में यह लिपि कुछ त्रुटियों के कारण प्रचलित न हुई। कालान्तर नस्तालीक़ को कश्मीरी के लिए स्वीकृत किया गया। यह लिपि काफी लोकप्रिय हुई। इसी वैज्ञानिक लिपि में 'कश्मीरी शब्द-कोश' के सात खंड 'कल्चरल अकादमी' की ओर से प्रकाशित हुए तथा 'कश्मीरी–विश्वकोश' के चार खंड भी।

वर्तमान लिपि के साथ साथ आवाश्यकतानुसार अंतर्राष्ट्रीय लिपि का भी प्रयोग होता है। 'केंद्रीय हिंदी निदेशालय' आर. के. पुरम, नई दिल्ली ने 'त्रिभाषा कोश' (हिंदी, अंग्रेज़ी तथा कश्मीरी) दोनों लिपियों नागरी तथा नस्तालीक में प्रकाशित किए हैं। इस कोश का मैं भी सहसंपादक रहा हूँ। इसके अतिरिक्त 'द्विभाषिक वार्तालाप-पुस्तिका' का लिप्यंतरण दोनों लिपियों में किया गया। यह पुस्तिका भी 'केंद्रीय हिंदी निदेशालय' के प्रकाशनों में से एक है। उक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि कश्मीर में समय-समय पर विविध लिपियों का विकास हुआ। अनेक भाषाओं-हिंदी, संस्कृत, प्राकृत, कश्मीरी, उर्दू, अरबी तथा फारसी आदि में अनेक रचनाएँ विभिन्न युगों में लिखी गई। लिखने का यह क्रम कश्मीर की सुप्रसिद्ध तथा सुप्रतिष्ठित कवियत्री बिमला रैणा की अमर रचना - 'व्यथ छय शॉगिथ' (वितस्ता तो सोई नहीं) 'फनकार कल्चरल ऑर्गनाईज़ेशन' से प्रकाशित हुई है। व्यथ यानी वितस्ता या दरिया झेलम प्रतीकात्मक है। व्यथ संस्कृत-वितस्ता शब्द का अपभ्रंश रूप है। इसका वर्णन ऋग्वेद के नदी जैसे - 'इयं में गंगे यमुने सरस्वती वितस्ता०'' सूक्त में पाया जाता है। इससे प्राचीनता स्वंय सिद्ध होती है। ग्रीक भाषा में इसे बिडास्पस कहते है जो वितस्तस या बितस्तस् से मिलता जुलता है।

वैदिक युग से यह वितस्ता अनेक युगों-हिंदूयुग, सुलतानयुग, शाहमीरी युग, पठानयुग, चकयुग, मुगलयुग, डोगरायुग तथा स्वंत्रता युग की साक्षिणी रही है। इसने विभिन्न राजाओं तथा सुलतानों आदि का उत्थान और पतन देखा। लेकिन किसी युग में वितस्ता का प्रवाह बंद नहीं हुआ। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण बिमला रैणा की कृति है। इस में दो सौ तेरह 'वाख' हैं तथा कुछ नज़्में भी हैं। यह रचना एक सौ तीस पृष्ठ की है। यह सुन्दर चित्रों से सुसज्जित है। यह 'वाख़ संग्रह' दोनों लिपियों-नस्तालीक़ तथा नागरी में लिखा हुआ है। यही इसकी विशेषता है। इससे दोनों लिपियों के ज्ञाता लाभान्वित होते हैं।

बिमला रैणा की शायरी की एक यह विशेषता है कि इसमे वितस्ता की कहानी संकेतो तथा रूपकों द्वारा दर्शाई गई है। लल्लद्यद के बाद बिमला

जी ने वाखों के निर्माण की कला को आगे बढ़ाया।

प्रो० रहमान राही जी का मत इस रचना के बारे में:- बिमला जी की प्रथम रचना - 'रेश्य माल्युन म्योन' ऋषि भूमि मेरी है। इसके अध्ययन से पाठकों को मालूम हुआ होगा कि 'वाख़ों' की परंपरा का इस समय भी ह्रास नहीं हुआ है। इस वक्त भी एक संवेदनशील मनुष्य को बौद्धिक ज्ञान तथा दिल की धड़कनों की अभिव्यक्ति का सामर्थ्य है। इस समय मेरे पास बिमला जी की दूसरी रचना - 'व्यथ मा छॆ शोंगिथ' है। इसके आद्योपांत पढ़ने से मुझे ज्ञात हुआ है कि जो मैंने पहली रचना में उद्भव तथा प्रयोग शीर्षक के अंतर्गत समीक्षा की थी, वह भी इस रचना के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती है। इस 'वाख सग्रंह' में ऐसे भी उत्कृष्ट वाख (सं. वाख) हैं जो कश्मीरी भाषा के भाषा-विज्ञान विषयक स्त्रोतों की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करते हैं तथा कश्मीरी बोलने वालों को उपयुक्त भावभिव्यक्ति के साधन प्रदान करते हैं।

श्री पृथ्वीनाथ सायिल का मत:- वाखों कीपरंपरा को जारी रखकर मेरी बहन बिमला जी ने आत्म-ज्ञान का, परलोक तथा इहलोक का परिचय दिया। इनके 'वाख़' कश्मीरी संस्कृति के कश्मीरीयत के तथा ऋषि स्वभाव का प्रतिनिधित्व करते है। मुझे आशा है कि अब वे जल्दी ही तीसरा संग्रह भी प्रकाशित करेंगी।

कश्मीर में शैवदर्शन का उद्भव तथा विकास आठवीं शती से बारहवीं शती तक हुआ। इन पाँच शताब्दियों में शैव-दर्शन के आचार्य - वसुगुप्त, सोमानंद, उत्पल देव, अभिनवगुप्त तथा क्षोमराज आदि पैदा हुए जिन्होंने अपनी अमर रचनाओं से सारे विश्व को आश्चर्यचकित कर दिया। उस समय लोकभाषा संस्कृत थी। अत: शैवाचार्यों ने अपनी रचनाएँ - शिवसूत्र, परमर्थसार, ईश्वरप्रत्यभिज्ञा तथा शिवदृष्टि आदि संस्कृत में लिखीं। कश्मीर में 1914 ई० से सुलतान युग शुरू हुआ। इसी युग में यानी चौदहवीं शती में लल्लदयद का जन्म हुआ। इसने 'लल्ल वाख़' कश्मीरी भाषा में लिखें। इसके 'वाख़' शैव दर्शन के प्रभाव से अछूते न रहे। फलत: कश्मीरी भाषा के

माध्यम से उसने कश्मीर-शैवदर्शन के प्रचार व प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया। बाद में परवर्ती लेखकों तथा कवियों की रचनाओं पर भी इसका प्रभाव अक्षुण्ण रूप से पड़ता रहा। नुन्द ऋषि, शमस फकीर, अहदज़रगर तथा परमानंद आदि के नाम इस श्रृंखला में उल्लेखनीय हैं। यह परंपरा आज भी जीवित है। बिमला रैणा की रचना - 'व्यथ मा छे शॉगिथ' में शैवदर्शन के तत्व स्पष्ट रूप से दिखाई देते है। उदहारण के रूप में यहाँ कुछ 'वाख़' दिए जाते है :-

शिवन शक्ती ग्यूंद छ्यव छ़ारे, शिवस शहन गॅयि मिलुवन।
स्वरनय साज़ा ह्यथ ग्वड़ु सारे, राज़स करान साज़ मिलुवन।।

रूपांतर :-

खेला, गुप्त रूप शिव शक्ति ने, मिलन हुआ शिव का श्वासों से।
शहनाई का वादन'लेकर, होता आत्मा का संयोग।।

शैवदर्शन के अनुसार शिव शक्ति से अलग नहिँ हैं। शिव शक्ति के बिना शव (मुर्दा) है। शिव ज्ञान रूप है। शक्ति क्रिया रूप है। इन दोनों के संयोग से यह संसार का चक्र चलता रहता है। जिस तरह चांद चांदनी से अलग नही है उसी तरह शिव शक्ति से अलग नहीं हैं। शिव ही शक्ति है शक्ति ही शिव है। यह केवल नामरूप का भेद है। विश्वमय अवस्था में वह विमर्श रूप है। जहाँ प्रकाश है वहां विमर्श भी है। प्रकाश चैतन्यात्मक ज़्योति है - विमर्श उसका ज्ञान। इन दोनों का तादात्म्य संबध है। अत: चैतन्यात्मक रूप का नाम शिव है। यह जगत शिव का क्रीडा-विलास है। शिव अपनी स्वातंत्र्य शक्ति से इस विश्व को बनाता है तथा इसका संहार भी करता है।

अंत में जीव उसी परम शिव के साथ मिलता है। उसके प्राण तथा अपान आदि उसी में विलीन होते हैं। जीव के अंदर श्वास-उश्वास की जो शाहनाई बजती है। वह भी उसी में मिलती है। 'वाखों' में से यह 'वाख' शैवदर्शन की दृष्टि से उत्तम है :-

ग्वगर सोरूय अँदर त्रॊपिम, लंगर लंजन गजन ठान।
अन्थुर मंत्र यंत्र श्रॊपिन, ज़ान अदु ज़ोनुम आत्म ज्ञान।।

भावार्थ:- मैंने क्रियात्मक इंद्रियों को अंतमुर्ख बना लिया। इन्हें बाह्य वृत्तियों से निवृत्त कर दिया। यंत्र, मंत्र तथा तंत्र उसी में समा दिए। सब ऐसी स्थिति में मुझे आत्म-ज्ञान हुआ। यानी मुझे अपनी प्रत्यभिज्ञा हो गई।

इन उदहारणों मे शैवदर्शन के स्वर स्वत: अनुगूंजित होते है। अंत में मेरा विचार इस रचना के बारे में यही है कि हिंदी साहित्य की रहस्यवादी कवियत्रियों में जो प्रमुख स्थान महादेवी वर्मा का है वही स्थान कश्मीरी साहित्य की रहस्यवादी कवियत्रियों में से इक्कीसवीं शती में विमला जी रैणा को लल्लदयद के बाद प्राप्त है। ऐसी मेरी धारणा है।

इस वर्ष 'जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी' ने 'कुलियाति परमानंद' (परमानंद की संपूर्ण कविताओं का संग्रह) की पांडुलिपि, संशोधन करने के लिए मुझे भेजी। परमानन्द की यह पुस्तक आज से तीस वर्ष पहले तीन विद्वानों प्रो. जयालाल कौल, प्रो. श्रीकंठतोषखानी तथा श्री मोतीलाल साकी ने संगृहीत तथा संपादित की थी। दुर्भाय से वह मूल पुस्तक त्रुटियों से भरी हुई थी। उसमे शब्दों के अर्थ भी गलत दिए गए थे। अत: अकादमी ने उसे पुनः आंकलन के लिए मुझे दी थी। उसमें शब्दों के अर्थ भी गलत दिए गए थे। अत: अकादमी ने उसे पुन: छापने का निर्णय लिया और मेरे पास उसकी पांडुलिपि भेज दी। मैंने उस संग्रह में आमूल-चूल परिवर्तन किया। कठिन शब्दों के अर्थ लिखकर उनकी टिप्पणी (comments) भी लिखी। अब अकादमी ने उसे प्रकाशनार्थ प्रेस को भेज दिया है। यह इसी वर्ष प्रकाशित हुई है।

इसी वर्ष की अन्य पुस्तक डॉ. अफाक़ अज़ीज़ की है। पुस्तक का नाम 'मल्लखाह' है। यह अस्सी पृष्ठों की है। 'मध्य एशियाई केंद्र' से यह प्रकाशित हुई हैं जहाँ लेखक रिसर्चर के रूप में काम करता है। इस पुस्तक में लेखक ने अन्य विषयों के अतिरिक्त मल्लखाह पर विस्तृत रूप से लिख दिया है। मलखाह के स्त्रोत तथा - अर्थ के बारे में लेखक मल शब्द को विभिन्न भाषाओं के साथ जोड़ता है, खाह का भी इसी तरह अन्य भाषाओं के साथ संबंध बताकर इसके अर्थको प्रकट करता है। मल खाह मलखाह का

अर्थ - मज़ार है जहाँ मुर्दो को दफनाया जाता है। यह मलखाह श्रीनगर में हारी पर्वत की तलहटी में स्थित है। कई लेखक मल शब्द को आस्ट्रिक तथा द्रविड़ भाषा परिवार के साथ जोड़तें हैं जो मेरी दृष्टि से बिल्कुल गलत है। इस शब्द का संबंध वह मलयालम शब्द से बताते हैं। ध्वनि साम्य के आधार पर ही किसी भाषा के स्त्रोत को दूसरी भाषा का स्त्रोत निर्धारित करना भाषा-विज्ञान की दृष्टि से सही नहीं है।

वस्तुत: सुलतान युग में जब हिंदूओं की हत्या धर्म परिवर्तन के लिए की जाती थी, उस समय उन्हें मल्लखाह में दफनाया जाता था। इतिहासकार जोनराज की 'राजतरंगिणी' में ऐसी मर्मान्तक घटनाओं का वर्णन मिलता है। फारसी के सुप्रसिद्ध इतिहासकार 'फरिश्ता' ने भी अपने इतिहास में इन अमानवीय घटनाओं की पुष्टि की है। मुल्ला लोग हिंदुओं को मारकर वहाँ दफनाते थे। इसलिए इस स्थान का नाम 'मल्लखाह' पड़ गया है। 'खाह शब्द' कश्मीरी भाषा का है जो संस्कृत के 'क्षेत्र' का बिगड़ा हुआ रूप है। क्षेत्र से सभी भारतीय भाषाओं में खेत बन गया है अथवा संस्कृत के कृषि शब्द से कश्मीरी में 'खाह' बन गया है। कृषि का अर्थ खेत है। प्राय: ष ध्वनि कश्मीरी में क्रमश:दह, क्रुह, तथा हथ आदि बनते हैं। भारतीय भाषाओं में क्रमश: ये शब्द दस, कोस तथा सौ आदि का रूप धारण करते है। इसे भाषा-वैज्ञानिक के आधार पर लेखक के मत से मैं सहमत नहीं हूँ, कश्मीरी भाषा पर आस्ट्रिक तथा द्रविड़ भाषा परिवार का कोई प्रभाव नहीं है। ऐसा मेरा मत है। विस्तार भय के कारण लेखक के अन्य विषयों पर मैं टिप्पणी नहीं करूगाँ यह पुस्तक भ्रांतियों से भरपूर है।

इस प्रकार इस वर्ष का सर्वेक्षण संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत किया गया है। न जाने, इस सर्वेक्षण में कितने नाम छूट गए हों, और भूल चूक हुई हो। तदर्थ क्षमा याचना।



कश्मीरी साहित्य का संवेक्षण - 2004

गत पन्द्रह वर्षों से कश्मीरी पंड़ित भारत के विभिन्न राज्यों में कालयापन हर रहे है। इसका मूलकारण कश्मीर की विषम परिस्थितियाँ हैं। विस्थापित होने के बाद भी उन्होंने कश्मीरियत को नहीं छोड़ा। वे एक वीर प्रहरी की तरह अपनी विरासत की रक्षा कर रहे है। यदि उनकी यह पैतृक सम्पति खत्म हो जायेगी, उनका अस्तित्व (वजूद) भी कालान्तर खत्म हो जाएगा। अतः वे संघर्षो से जूझते हुए भी साहित्य के माध्यम से अपने वजूद को कायम रखे हुए है। भग्र-शिविरों तथा भग्र-धर्मशालाओ में रहकर भी वे अपनी-साहित्य साधना में जुटे हुए है। यही कारण है कि इन पन्द्रह वर्षों में उनकी अनेक रचनाये कश्मीरी में प्रकाशित हुई है जिनका व्यौरा आगे दिया जा रहा है।

सरकारी तथा गैरसरकारी संस्थाये कश्मीरी साहित्य के प्रकाशन में लगी हुई है। सरकारी संस्थओं में 'जम्मू व कश्मीर कल्चरल अकादेमी' तथा 'कश्मीर विश्वविद्यालय' के स्नातकोतर कश्मीरी विभाग गत कई दशको से इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है। जम्मू व कश्मीर कल्चरल अकादेमी के महत्व पूर्ण प्रकाशनो में से कश्मीरी शब्द कोच के सात खंड तथा कश्मीरी विश्वकोश के चार खंड अहं माने जाते है। कश्मीरी शब्द कोश के सात खंडो में इस सर्वेक्षण के लेखक ने चालीस हज़ार कश्मीरी शब्दों की व्युत्पति (Etymology) दी है। इसका उल्लेख शब्दकोश के प्रथम खंड की भूमिका मे प्रो० श्रीकंठ तोषखानी, मुख्य संपादक कश्मीरी शब्दकोश ने किया है। इसी प्रकार स्नातकोचर कश्मीरी विभाग के प्रकाशनों में से महत्वपूर्ण ये है:- 'कश्मीरी साहित्य का इतिहास' (इसके लेखक हैं नाजीमुनंवर तथा शफीशौक)। ग्रियर्सन विशेषांक कश्मीरी लोक अदब 'कॉशुर शैवमत' (लेखक डॉ० बदरीनाथ कल्ला आदि)। उस वर्ष जम्मू व कश्मीर कल्चरल अकादेमी ने प्रायः तीस बर्षों के बाद 'कुलियाति परमानन्द' (परमानन्द की कविताओं का

संग्रह) का दूसरा संस्करण प्रकाशित किया। इस का पहला संस्करण त्रुटिया से भरा हुआ था। मूलग्रंथ में भी यत्र तत्र त्रुटिया दिखाई देती थी। अत: अकादेमी ने मुझे दूसरा शुद्ध संस्करण निकालने के लिए प्रार्थना की। मैंने आद्योपांत मूल ग्रंथ की त्रुटियां निवारण कर दी। इस समय परमांनद का जो ग्रंथ अकादेमी ने प्रकाशित किया है, वह 538 पृष्टात्मक है। प्रथम संस्करण में इसके दो खंड थे। अब एक ही खंड में इस समूचे ग्रंथ को प्रकाशित कर दिया है। इसका कागज़ बढ़िया है तथा प्रंटिंग (Printing) सुवाच्य तथा आकर्षक है। इसके प्रथम प्रष्ट पर श्री परमानन्द जी का हाथ में माला धारण करते हुए तथा गोलाकार पगडी पहने हुए प्रसन्न मुद्रा में चित्र पाठकों को चुम्बक की तरह आकृष्ट करता है। इसके प्राक्कथन में अब्दुल अलरुफ कारी साहिब ने कश्मीरी में इस प्रकार लिखा है:-

''कल्चरल अकादेमी' जब से वजूद में आई तब से कश्मीर के सुप्रसिद्ध तथा सुप्रतिष्ठित कवियों का कलाम तथा उनका जीवन वृत संग्रह करके अनेक पुस्तकों के रूप में पाठकों तक पहुंचाने में प्रयत्नशील रही है। इन कवियों में से कुछ ऐसे भी संत कवि थे जिनकी वाणी (कलाम) इधर उधर बिखरी हुई थी। इन भक्त कवियों में से परमांनद का कलाम भी ऐसा ही था, जो हमने एकत्रित करके पुस्तक के रूप में पाठकों के सामने रखा। पहले अकादेमी ने इसे दो खंडो में प्रकाशित किया था।

अब ये दोनों खंड अलम्य थे। पाठकों तथा शोधकों के आग्रह पर अब हमने दोनों खंडों को मिलाकार एक खंड में छपाया। इससे गवेषकों तथा पाठकों को सुविधा होगी। इस काम में हमें डॉ० बदरीनाथ कल्ला ने संशोधक के रूप में काम किया तथा बडी लगन से प्रूफ का संशोधन भी किया। जिसके लिए हम उनके प्रति आभार प्रकट करते हैं। हमें आशा है कि हमारी कोशिश कामयाब होगी।''

पुस्तक के कठिन शब्दों का अर्थ भी मैंने लिखा है। टिप्पणी भी पुस्तक के नीचे लिखी जिससे कठिन शब्दों को समझने में पाठकों को सुविधा

होगी। आत्मा शब्द का लक्षण मैंने इस प्रकार दिया - चैतन्यमात्मा - अर्थात् आत्मा (रूह) उसे कहते है जिसमे चेतनता हो। जो जीव-जंतोओं को चेतनता प्रदान करे, उसे आत्मा कहते हैं। आत्मा का यह लक्षण- आचार्य वसुगुप्त ने शिवसूत्रों में दिया है। श्रीमदभगवद्गीता में परमांनद के 'आत्मा' विषय में विस्तृत व्याख्या पाई जाती है। व्यक्तित्व तथा कृतित्व पर प्रकाश डालना है। यहाँ आवश्यक है कि परमानन्द जी का जन्म मट्टन (सं० मार्तण्ड) के निकट अनन्तनाग ज़िला में 'सीर' नामक गांव में सन् 1791 ई० में पठानशासन काल में हुआ था। इसके पिता का नाम श्री कृष्ण पंडित था तथा माता का नाम सरस्वती था। यह व्यवसाय से पटवारी था। परमानन्द ऐतिहासिक मार्तण्ड तीर्थ में साधुओ तथा संतो के सम्पर्क में रहा। परिणामस्वरूप उनके व्यक्तित्व पर इसका विशेष प्रभाव पड़ा। निदान उन्होंने अपना सारा जीवन कृष्ण भक्ति में ही बिताया। उन्होंने कृष्ण भक्त कवियों में वही स्थान प्राप्त किया जो राम भक्त के कवियों में प्रकाशराम कुर्यगोम को प्राप्त हुआ है। इसकी तीन रचनाये हैः- ''राधा स्वयं वर'', ''सुदामा चरित्र'' तथा ''शिवलग्न''। इनके काव्य में शैवदर्शन तथा वेदान्त दर्शन का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। इसके अतिरिक्त अनुप्रास एवं यमकालङ्कार की अनुपम छटा भी प्राप्त होती है। उदाहरण के रूप में प्रस्तुत हैः-

''पोश तस दिव़्कियि लूख ऑस्य यिवान,
पोश तस पूज़ि ऑस्य लागाने,
पोश तस कृष्ण व्वपुकारक संतान।''

लोग देवकी के पास पोशतस बधाई देने के लिए आते है। दूसरी पचक्ति में पोशतस का अर्थ उसे फूल अर्पित करने थे। तीसरी पचक्ति में पोशता अर्थ – चिंरजीवी का अर्थ होता है। इसकी कृष्ण भक्ति का निदर्शन (नमूना)

''गूकल ह्रदय म्योन तति चोन गूर्‌यवान।
च़्यथ व्यमर्श दिप्तिमान भगवानो।।

व्रच़ म्यानि गूपीय च़े पतु लारान, बंसरी नादु वादु मतानो।
नशरिथ ह्यस तु होश मॅशरिथ पर तु पान, च़्यथ व्यमर्श दीप्तिमान भगवानो।।
नारद जुव येलि ज़ातुक लेखान, वुछ वुछ अॅछ ओस मूरानो।
वॅन्य दिथ तु वेंदिथ वॅनिथ नु ज़ानानु, च़्यथ विमर्श दीप्तिमान भगवानो।।
पादन मीठ्य दिन्य सादन छु अरमान, यिम पाद हृदि लूख दारानो।
कृष्णु पाद नित्य नियम हृदि तोजानु, च़्यथ विमर्श दीप्तिमान भगवानो।।
तफ हुम ज़फ जग हुम ज़ंगि चुय करान, स्वयं माया छुख वरानो।
दीवी नाम अथ नामस वनान, च़्यथ विमर्श दीप्तिमान भगवानो।।
सत् ज़न छिस हृदि मंज़लिस लदान, मायियि मंज़ छिस ललवानो।
त्रिकारण तस छि कार्य शूबान, च़्यथ व्यमर्श दीप्तिमान भगवानो।।''

हिन्दी अर्थ:- हृदय मेरा गोकुल है, वही तुम्हारी गायें चरती है। हे चित-विमर्श दीप्तिमान भगवान। वृतियां मेरी गोपियां है तुम्हारे पीछे दौड़ती है। ये अपने आपकी सुध खोकर बांसुरी का नाद सुनकर मतवाली हो उठती है। नारद मुनि जिस समय टेवा (जातक) लिखता था, वह टेवा देख कर आंखे मुंदता (मलता) था टेवा देख कर भी वह इसका रहस्य जानने में असमर्थ था अत: बोल भी नहीं सकता था। भगवान कृष्ण के चरणों को चूमना साधुओं के लिए कठिन था इस चरणों को लोग हृदय में धारण करते थे, वे नित्य नियम से इन चरणों का ध्यान मन में करते थे। हे चित विमर्श दीप्तिमान भगवान! आपके द्वारा ही संसार में ज़प तप तथा होम आदि होता है। यह आप की माया ही है। आपकी माया के कारण ही यह सब कुछ जग में दिखाई देता है। देवियाँ बाद में अमुक नाम से अर्थात श्रीकृष्ण आदि नाम से आपको पुकारती है वस्तुत: सत्य एक ही है। ऋषि लोग उसे अनेक नामों से पुकारते है। जैसे – एकं सद्विप्रा: बहुधा बदन्ति (truth is on sages call it by various names) सज्जन आपको हृदय के पर्यङ्क में (पालकी में) रखते है। बाद में माया में आपको झूलाते है। यानी जिस समय आप संसार में जन्म लेते है। माया के कारण आपको लोग नाम देकर प्यार करते है वस्तुत: आप मायातीत तथा

गुणातीत है। आपके कहार तीन कारण शोभा देते है। यह कविता/लीला/ शैवदर्शन के प्रभाव से अछूती न रही। इसमें प्रकाश तथा 'विमर्श' शब्द शैवदर्शन के परिभाषिक शब्द है। अत: इनकी यहा व्याख्या करना संगत प्रतीत होता है। साधारण रूप से प्रकाश रोशनी को कहते है तथा विमर्श विचार को। यहा यह प्रकाश-सूर्य, चन्द्रमा तथा आग आदि का प्रकाश नहीं है। सूर्य, चन्द्रमा तथा आग प्रकाश जड़ है। कश्मीर शैवदर्शन में प्रकाश का अर्थ चैतन्य से है। शिव प्रकाशमय तथा विमर्शमय है। कहा भी गया है। प्रकाश विमर्शमयो हि शिव:। शिव के ये दो रूप आपस में ऐसे जुडे हुए है किएक दूसरे से अलग नहीं हो सकते। प्रकाश अर्न्तमुखी है तथा विमर्श बहिर्मखी। यानी विमर्श परमशिव का साकार रूप, जिस तरह चैत्न्य (Consciousness) तथा प्रतीति (Awareness) ये दो भिन्न रूप नहीं, उसी प्रकार प्रकाश और विमर्श भिन्न भिन्न नहीं है।

संत परमांनद जी ने वच़न, भजन तथा लीलाये भी लिखी है। लीला में ईश्वर का स्तुति गान होता है। कश्मीरी साहित्य में लीला तथा वच़न साहित्यिक विधाये है। लीला तथा वच़न छन्दों में लिखे जाते है। परमानन्दजी की यह कृष्ण अवतार-लीला ध्यातव्य है जैसे:-

''गटि मंज़ गाश आव चाने ज़्यनय, जय जय जय जय दिवकी नन्दनय।
यॆति शक्ति सुत्य छुख नाना रूपय, क्षीर संमद्रु मंज़ु शीश रूपय।
वासदीव म्वख बॆयि शंकर शनय, जय जय जय जय देवकी नन्दनय।।''

रे कृष्ण जी। आपके जन्म से संसार में प्रकाश (ज्ञान) आ गया तथा अंधेरा (अज्ञान) मिट गया। देवकी जी के लाड़ले पुत्र! आपकी जय जय हो। शक्ति के साथ आपके नाना प्रकार के रूप है क्षीर सागर में से आप शेषनाग के रूप है। आप विष्णु के रूप भी तथा शंकर भी है। आपकी जय जयकार हो।

जम्मू कश्मीर राज्य के अतिरिक्त केन्द्रीय भारतीय भाषा संस्थान मैसूर भी गत कई वर्षो से कश्मीरी साहित्य के प्रकार तथा प्रसार के अतिरिक्त प्रकाशन मे भी उल्लेखनीय काम कर रहा है। उन्होने मैसूर में दो बार कार्य

शालाओ (Workshop) का आयोजन कश्मीरी हिन्दी कोश के निर्माण के लिए किया था इस दो कार्यशालाओं में मुझे भी आमंत्रित किया था। वहां हमने कश्मीरी हिन्दी कोश को अंतिम रूप दिया। संभवत: यह कोश शीघ्र ही छप जायेगा। इस कोश की विशेषता यह है कि यह दोनो लिपियो (नस्तालीक) उर्दू तथा नागरी में) लिखा गया है। इस साल भारतीय भाषा संस्थान तथा संप्रति ने नागरी लिपि के माध्यम से कश्मीरी सीखने के लिए कश्मीरी प्राहमर तथा रीडर ये दोनो पुस्तके प्रकाशित की। प्राईमर का शीर्षक है:– 'वॉलिव कॉशुर हेछिव'/आओ कश्मीरी सीखे इस पुस्तक का संपादक रूपकृष्ण भट्ट है। उदय नारायण सिंह, निर्देशक 'भारतीय भाषा संस्थान' मैसूर पुस्तक के आरंभ मे अपनी बात में इस प्रकार लिखते है:– 'भारतीय भाषा संस्थान' का मुख्य उद्देश्य रहा है। सभी भारतीय भाषाओं का सुमचित विकास करना एवं उनमें आवश्यकता अनुसार पाठ्य सामग्रीय तैयार करना। भारतीय भाषाओं के शिक्षण प्रशिक्षण का क्षेत्र इस संस्थान के लिए सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र रहा है। संस्थान द्वारा प्रकाशित करीब चार सौ पुस्तकों में से अधिकतर पुस्तके' भाषा शिक्षण के क्षेत्र में ही है।

कश्मीरी भाषा में भी इससेपूर्व काफी पुस्तके प्रकाशित की गई है। पिछले एक दशक से चले आ रहे हो आतंकवाद की वजह से कश्मीर से विस्थापित लोगो की मातृ भाषा आज दुराहे पर खडी है। कश्मीरी भूगोल तथा कश्मीरी भाषाओ से दूर रह रहे इन लोगो के लिए और खास कर नई पीढी के लिए कश्मीरी भाषा को बचाये रखना एक बहुत बडी चुनौती और आवश्यकता भी है। इसमे इस संस्थान की ओर से यथा संभव सहायता करना उचित होगा ताकि यह भाषिक संपर्क से अपने सांस्कृतिक संबंधो को जीवित रख सके।

एक बहुभाषी देश होने के नाते भारतीय संदर्भ मे यदि कोई अन्य भाषा सीखनी हो तो इसके लिए हिन्दी सबसे बेहतर माध्यम है। हालांकि इससे पूर्व भी संस्थान ने अंग्रेज़ी, नास्तालीक और देवनागरी में बहुत सारी कश्मीरी पुस्तके प्रकाशित की है, पर प्रस्तुत सामग्री आजकल की मांग को ध्यान में

रखकर तैयार की गई है।

प्रस्तुत पुस्तकों मे से उन भारतीय भाषाओ को भी लाभ होगा, जो हिन्दी भाषा जानते है और कश्मीरी भाषा सीखना चाहते है। ऐसे शिक्षार्थी इस पुस्तक को आधार सामग्री के रूप में प्रयोग मे ला सकते है।

मैं आशा करता हूँ, कि यह पुस्तकें समस्त कश्मीरी भाषा भाषियो के साथ-साथ शेष भाषियो के लिए भी उपयोगी साबित होगी और इनके माध्यम से शिक्षार्थी न केवल कश्मीरी भाषा सीख सकेंगे अपितु उसके प्रचार व प्रसार मे भी अपना अमूल्य योगदान देगे। पुस्तक की पुस्तावना में श्री रूपकृष्ण भट्ट लिखते है:- कश्मीरी सीखने तथा सिखाने के लिए देवनागरी लिपि में कश्मीरी पुस्तकों का अभाव सदा ही रहा है परन्तु इन पुस्तको की आवश्यकता जिस प्रकार और जिस शिद्दत से आज महसूस की जा रही है उस प्रकार अब तक भी महसूस नहीं की जा रही है इसी आवश्यकता को ध्यान में रखकर 'मानव संसाधन विकास मंत्रालय शिक्षा विभाग', भारत सरकार ने हाल ही में देवनागरी लिपि मे कश्मीरी पुस्तके को प्रकाशित करने की स्वीकृति दी है। समय की मांग तथा भारत सरकार की स्वीकृति के प्रेरणा स्वरूप वर्तमान पुस्तके की रचना की गई है

कश्मीरी प्राइमर निम्नलिखित विद्वानों ने तैयार किया डॉ० ओमकार एन. कौल, डॉ० रतन लाल शात, डॉ०अमर मालमोही तथा डॉ० ओ.एन.रैणा। रीडर के बनवाने मे निम्नलिखित विद्वानों का सहयोग लिया गया। श्री मोती लाल क्यमू, डॉ० सोमनाथ रैणा, प्रो० डॉ० बदरीनाथ कल्ला, प्रो० हरिकृष्ण कौल, डॉ० सोम नाथ कौल, श्री पी.एन कौल 'सायिल' श्री रतनलाल जोहर, डॉ० प्रेमी रोमानी, श्री जयकृष्ण मकतूम, श्री जगन्नाथ सागर।

हम श्री महाराज कृष्ण काव, पूर्व शिक्षा सचिव भारत सरकार के प्रति आभार व्यक्त करते है, जिन्होंने अपने कार्यकाल में कश्मीरी के लिए यह सामग्री बनवाने मे हमे सहयोग दिया।

इस पुस्तको को (D.T.P.) तैयार करने के लिए रिंकू कौल को

धन्यवाद। प्रइमर की पृष्ठ संख्या सठ (60) है तथा रीडर की पृषठ संख्या एक सौ तेईस (123)। रीडर में राजा ललितादित्य, अमरनाथ यात्रा लल्लद्यद आदि पर अभ्यास (मश्क) दिये गये है। इस वर्ष नाजी मुनवर ने गवेषक तथा तरतीबकार के रूप में मकबूल अमृतसरी का कश्मीरी कलाम नस्तालीक (उर्दू) मे प्रकाशित किया। पुस्तक 196 पृष्ठात्मक है। गेटप तथा कागज़ बहुत बढिया है। प्रथम पृष्ठ पर मकबूल अमृतसरी का कलाम संक्षिप्त रूप में छपा है। पुस्तक का क्रम इस प्रकार है – सरनामा, मकबूल अमृतसरी कलाम गज़ल व वच़न, ज़ु नात तथा माहिइमज़ान-द-पहल्यनामा हु युसुफ ज़ुलेखा।

लेखक का कथन है कि मै गत तीस पैंतीस वर्षो से इसके कलाम के बारे में तहकीक कर रहा हूँ इस कवि के विषय में मेरे छोटे मोटे लेख भी प्रकाशित हुए है। अंत में मुझे इस कवि की पांडुलिपि ढूंढने के लिए काफी परिश्रम करना पडा। मैंने इसकी यानी मकबूल अमृतसरी की पांडुलिपि कश्मीर के सुप्रसिद्ध कवि महजूर के सुपुत्र इबनि महजूर के निजी पुस्तकालय में प्राप्त की। घर में इसका गहरा अध्ययन मैंने किया। इससे संशय ग्रस्त प्रश्नों का जवाब अनायास ही मुझे मिला। मकबूल अमृतसरी के कलाम तथा उसके जीवन के बारे में लोगों को साहित्यकारों को बहुत कम जानकारी है। कुछ साहित्यकार इसके कलाम को मकबूल शाह क्रालवारी का कलाम मानते है। जो सरासर गलत है। मकबूल अमृतसरी का कलाम मकबूल शाह क्रालवारी के कलाम से बिल्कुल अलग थलग है। अमृतसरी की शैली तथा मकबूल शाह की शैली मे आकाश-पाताल का अन्तर है। यहां लेखक (नाजी मुनवर) तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर मकबूल अमृतसरी तथा महजूर का इन दोनो कवियो का कलाम प्रस्तुत करता है :-

मकबूल अमृसरी:-

मसा छिव लोलु मस द्युत थम रसय पॉठ्य स्वन्दरे बॉम्बरो।
मसा रोश रोशि यिखना पोश लागय स्वन्दरे बोम्बरो।।
यिम्बरज़ल खस्तु करथस मस्तु चैश्मय खश्मु सान।

वुछ यितम यूर्य अस्त अस्तय दस्त करहय यरे बोम्बरो।।

महजूर:- तमन्ना चानि दीदारुक मे छुम यम्बरज़ले बोम्बरो।
फोजिस यामथ लजिस वुछने गजिस चाने कले बोम्बरो।।
यि कद चोन ज़न छि पोशय कुल फुलय बर्जस्त छस बिल्कुल।
वुछिथ सोंम्बल तु रंगनु गुल, यि दिल मा तम्बले बोम्बुरो।।

अर्थ:-मकबूल अमृतसरी रे मधुप! मुझ सुंदरी को आपने धीरे धीरे प्रेम की मदिरा पिलाई। मत रूठ जल्दी आना। मैं आपका स्वागत फूलो से करूं। मुझ यम्बरज़ल (कश्मीर में एक सुप्रसिद्ध फूल) को आपने खराब कर दिया। रे मधुप! धीरे धीरे मेरे पास आजाओ।

अर्थ (महजूर):- अरे मधुप! मुझ यम्बरजल को आपके दर्शन की अभिलाषा है। जिस समय मेरा यौवन भर आया, मैं आपको देखने के लिए आतुर हो गई। मैं आपकी उत्सुकता के कारण गल गई है (नष्ट हो गई)। यह आपका कद मानो विकसित फूलों का पेड है। यहां अनेक प्रकार के रंग बिरंगे फूलों को देखकर क्या मेरा मन नहीं मचलेगा?

गवेषक के अनुसार मकबूल अमृतसरी का कलाम:- रहस्यात्मक (तसवुफ से युक्त) है। जब कि महजूर का कलाम श्रृंगारसर से युक्त। इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि महजूर से पहले अमृतसरी पैदा हुआ था। तभी तो अमृतसरी के भावों की छाप महजूर के कलाम पर स्पष्टरूप से दृष्टिगोचर होती है। मेरे विचार से इस गुमनाम शायर को नाजी मुनवर ने बडे अनथक प्रयत्न से साधारण लोगों तक इस पुस्तक के माध्यम से लाने का भरसक प्रयत्न किया है। निश्चय ही नाजी मुनवर का यह शोध-कार्य पाठको को चुम्बक की तरह आकृष्ट करता रहेगा। ऐसी मेरी धारणा है इसके बाद नागराद-3 तहकीक नम्बर नागराद् अदबी संगम, जम्मू से नस्तालीक में प्रकाशित मजलिस इदारत में:- मोहन लाल आश, जवाहर लाल सरोर तथा जगन्नाथ सागर। इस पुस्तक का संपादक:- श्री मक्खन लाल कंवल है। इसमे विभिन्न विषयों पर विस्थापित लेखको के लेख प्रकाशित हुए है। जिसकी सूची इस

प्रकार है :-

1. सोन मीरास/हमारी विरासत - मोहनलाल आश
2. अॅस्य ऑस्य तु अॅस्य आसव/हमे थे और हम होंगे - ममक्खनलाल कंवल
3. वनुवुन तु अम्युक पोत नज़र/वनवुन (मंगलगीत) कश्मीरी गाने की एक विद्या) और इसकी पृष्टभूमि।
4. पोशिवानु हॉल्य भखुत्य तु शॉयिर/पोशि बान हाली भक्त तथा कवि - डॉ० भूषणलाल कौल।
5. शंकरचार तु दुर्गानाग/शंकराचार्य तथा दुर्गानाग - सोमनाथ भट्ट 'वीर'।
6. प्रेमनाथ परदेसी संद्य अफसानु तु कॅशीर/प्रेमनाथ परदेसी के अफसाने तथा कश्मीर - डा० प्रेमी रोमानी।
7. वाख शेली हुंज़ मूजूद सूरतिहाल/वाख शेली की वर्तमान स्थिति - मोहनलाल आश।
8. अफसानस अंदर न्वक्तु नज़र तु दखुल/अफसाने मे दृष्टिकोण तथा हस्तक्षेप - डॉ० रतनलाल शांत।
9. ज़िलु डोडाहस मंज़ कॉशुर अदब/ज़िला डोडा मे कश्मीरी साहित्य - वली मोहम्मद कष्टवाडी।
10. कॉशुर अपसानु 9 सरसरी नज़र/कशमीरी अफसाना - रतनलाल जौहर।
11. अॅज़्यकिस दोरस मंज़ सूफी शॉयरी हुंज़ अॅहमियत/आज के युग मे सूफी शायरी की महत्ता।
12. कॉशरि अदबुक पोत मंज़र/कश्मीरी साहित्य की पृष्ठ भूमि - जवाहरलाल कोसम।
13. नागरादुक अख तारुफ/नागराद का एक परिचय – जगन्नाथ सागर।

इस प्रकार इस पुस्तक - नागराद में तेरह लेख विभिन्न लेखकों के प्रकाशित हुए है। यह पुस्तक एक सौ अठराह पृष्ठात्मक है इसका इन लेखों में मोतीलाल क्यमू का लेख मैंने डायोपांत पढ़ा। यह लेख एक शोधात्मक लेख है। इसमें लेखक ने 'वनुवुन' के महत्त्व पर प्रकाश डाल दिया है। वैदिक

युग से लेकर आजतक 'वनुवुन' के स्वरूप में कोई तबदीली नहीं आई है। हाँ, इसमें कोई संदेह नहीं है कि विस्थापित होने के बाद कश्मीरी पंडितों की संस्कृति तहस नहस होगई। हज़ारों वर्षों से चल रही हमारी परम्परा प्राय: ह्रास की ओर जा रही है। इस समय ये विस्थापित कश्मीरी साहित्यकार अपनी संस्कृति को बचाने के लिए अपना सर्वस्व त्यागने के लिए तैयार है। शिविरों में बैठकर, रहकर वे साहित्य साधना में लगे हुए हैं। साहित्य के माध्यम से वे अपनी विरासत को बचाने के लिए कृतसंकल्प हैं।

'वनुवुन' मांगलिक गीत है जो मेखला संस्कार अथवा यगोपवीत संस्कार तथा विवाह संस्कार के समय महिलाओं द्वारा स्वरों के समेत (उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित समेत) गाया जाता है। वनवुन मूलत: संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ कहना है। यानी कश्मीररी में वन, वन हिन्दी में कहो, कहों। संस्कृत में वर्णय वर्णय। कालान्तर यह वनुवुन गाने के अर्थ में प्रचलित हुआ। आषा विज्ञान की दृष्टि से यह शब्द (वनुवुन) अर्थ विस्तार का उदाहरण माना जायेगा।

दूसरा ऐतिहासिक लेख श्री सोमनाथ 'वीर' का 'शंकराचार तथा दुर्गानाग' है। लेखक ने अनेक ऐतिहासिक पुस्तकों का अध्ययन करके यह लेख लिखा। इतिहासकार पी०एन०कौल बामज़ाई के अनुसार सबसे पहले महाराजा अशोक के पुत्र जलौक ने शंकराचार्य का मंदिर बनवाया। तत्पश्चात् महाराजा गोपादित्य ने इस मंदिर का निर्माण नये सिरे से करवाया। इस मंदिर का नाम 'ज्येष्ठेश्वर' रख दिया। इससे इस पहाड़ी का नाम 'गोपादरी' पड़ा। इस समय भी इस अधित्यका का नाम गुपकर है। श्रीनगर में 'गुपकार' प्रसिद्ध जगह है। मलत: इसका वर्णन 'राजतरङ्गिणी' में मिलता है।

आगे लेखक पुस्तक के चौंतीस पृष्ठ (34) पर लिखता है। कि आदि गुरु शंकराचार्य अपने शिष्यों के समेत आचार्य अभिनवगुप्त के साथ 'शक्ति' पर वाद-विवाद करने के लिए कश्मीर आगये। वे अभिनवगुप्त के शक्तिवाद से प्रभावित हो गये तथा उन्होंने (शंकराचार्य ने) शक्ति को मान लिया। लेखक

का यानी सोमनाथ का यह कथन बिल्कुल गलत है। मै इसके इस मत से सहमत नहीं हूँ। शंकराचार्य आठवी शती में यहां आये। इसमे कोई संदेह नहीं है। यहां के विद्वानों के साथ शंकराचार्य ने बहस किया। शंकराचार्य वेदान्त दर्शन के मर्मज्ञ थे वे शक्ति को नहीं मानते थे। वे 'ब्रह्म सत्य' जगत मिथ्या, 'ब्रह्म सत्य' है। जगत मिथ्या है इसको मानते थे। बाद में वे शक्ति को मानने लगे। शंकाराचार्य का आठवी शती माना जाता है। आचार्य अभिनवगुप्त का समय दसवी तथा ग्यारहवी शती का प्रथम चरण माना जाता है। यहां शंकराचार्य तथा अभिनवगुप्त के समय में प्राय: दो सदियों का अन्तर है अत: उनका यह कथन निराधार तथा भ्रान्तिपूर्व है। शक्तिवाद के कारण ही शंकराचार्य ने कश्मीर में सौन्दर्य लहरी का निर्माण किया तथा पुस्तक के प्रथम श्लोक में उन्होंने शक्ति की स्तुति की जैसे:-

शिव: शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्त: प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खुल कुशल: स्पन्दितुमपि।।
अतस्तवामाराध्यां हरि-हर-विरिञ्चादिभिरपि
प्रणान्तुं स्तोतुं व कथमकृतपुण्य: प्रभवति।।

श्लोक का भावार्थ:- शक्तियुक्त शिव ही इस सारे संसार को चलाने मे समर्थ है। उसके बिना एक पत्ता भी हिल नही सकता है। इसीलिए ब्रह्-विष्णु-महेश आपकी आराधना करते है। मैं पापी (शंकराचार्य) कैसी आपकी स्तुति कर सकूं ? इस प्रमाण के आधार पर हम यह कह सकते है कि आदि गुरु शंकराचार्य के समय आचार्य अभिनवगुप्त पैदा नहीं हुए थे। यह सब इतिहासकार मानते है। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि शंकराचार्य के नाम पर ही मंदिर का नाम 'शंकराचार' पडा इतना ही नहीं, बल्कि इस पहाडी को लोग इस समय भी शंकराचार पहाड कहते है।

इस पहाडी के नीचे प्राचीन दुर्गानाग है। यहां दुर्गा जी की मूर्ति है और इसके साथ ही एक छोटा चश्मा (कश्मीरी में नाग) है दुर्गानाग एक तीर्थ स्थान माना जाता है। यहां यात्री प्रतिवर्ष श्रावण पूर्णिमा के पावन पर्व पर तालाब में

नहाकर बाद में शंकराचार्य मंदिर में भगवान शिवजी का दर्शन करते है। दुर्गा अष्टमी के दिन यहां यज्ञ रचाया जाता है। हज़ारो तीर्थयात्री इसमे सम्मिलित होते है।

प्राय: आज से एक सौ वर्ष पहले यहां शिवजी भट्ट नाम का एक तपस्वी साधना करने ले लिए या। यहां के बोर्ड ने उसको एक हज़ार एक सौ आठ (1108) शंकराचार्य की पदवी दी। वह यहा का पीठाधीश्वर नियत हुआ। कश्मीरी पंडित उसको शिवरतनगीर के नाम से जानते थे, इस समय उसकी समाधि भी दुर्गानाग के परिसर में विद्यमान है। अब इस मंदिर के प्राङ्गण में यात्रा भवन का निर्माण भी हुआ ।

पुराने ज़माने में शंकराचार के मंदिर तक श्रीनगर के शुराहयार 9 संस्कृत-षोडयविहार) से सीढिया बनाई गई थी – यात्री शुराहयार वितस्ता के किनारे पर स्थित) से सीधे मंदिर तक इन सीढीयो के द्वारा पहुंचते थे।यह एक ऐतिहासिक तथ्य है। हाय! मध्ययुग मे यात्री सुलतानो के शासनकाल में इन सीढियो को कट्टारपंथी मुसलमानो ने तोड दिया। ओर इन सीढियो को उन्होंने मसजिद के निर्माण मे लगा दिया। इसका हवाला (reference) हमें कश्मीर के इतिहास में मिलता है। इस तवारीखी हकीकत को भी लेखक ने नज़र अंदाज कर दिया। अस्मु विस्थापित अवस्था में इतना लिखना यहां पर यह भाषा वैज्ञानिक नियम ध्यातव्य है कि संस्कृत शर्ब्द 'विहार' का अपभ्रंश रूप कश्मीरी में यार बन गया है। कश्मीर में शैवधर्म के साथ साथ वौद्ध धर्म का भी प्रचलन था। कश्मीर के अनेक शासकों ने वितस्ता नदी (वर्तमान-झेलम) के दायें बायें किनारो पर अनेक विहार बनवाये थे जैसे गणपतिविहार (कश्मीरी मे गणपतयार) वैखुरी विहार (कश्मीरी - खरयार) सोमविहार (कश्मीरी - सोमयार) पुरुषविहार (कश्मीरी - पोर्शयार) आदि। इन विहारों के आसार इस समय भी हजारों वर्षो के बाद कश्मीर में यत्र तत्र नजर आते है। आठवी शती के सुप्रसिद्ध शासक - ललितादित्य मुक्तापीड ने अपने शासनकाल के समय कश्मीर में अनेक बौद्धविहार बनवाये थे। इस विहारो का उल्लेख

कल्हण पंडित ने राजतरङ्गिणी मे किया है। यह यार फारसी शब्द नही है जो मित्र के रूप में यहां प्रयुक्त होता है। बल्कि यह यार संस्कृत के विहार शब्द का बिगडा हुआ रूप है।

जम्मू व कश्मीर के सूचना विभाग की ओर से द्विमसिक पत्रिका - आलव कश्मीरी में प्रकाशित होती है इसके संपादक मही-उद्दीन ऋषि साहिब है। जो कश्मीरी भाषा के प्रचार व प्रसार के लिए गत कई वर्षो से दिल व जान से कोशिश कर रहे है। इन वर्ष भी आलव के छ: अंक प्रकाशित हुए है। इस अंकों में नातें, ग़ज़लें, वाख, अफसानें, नज़में, तथा लेख आदि प्रकाशित होते है। इसके अतिरिक्त आपकी चिठियां भी समय समय पर प्रकाशित होती है। इस अंक में डॉ० बदरीनाथ कल्ला के 'वाख' प्रथम बार प्रकाशित हुए है। ये 'वाख' दृषृव्य है :-

''दयि दयि करान प्रॊवुथ नो कैंह, दयि दयि करान गोय द्वहॅ।
मनुच दुई येलि चुय त्रावख, अदु हो प्रावख परमु गथ।।''

अर्थ:- ईश्वर ईश्वर करते कुछ नही पाया, प्रभु का नाम लेते लेते दिन और रातें बीत गई। अरे जीव! जब तुम मन से द्वैतभाव छोड दोगे तब उस स्थिति में तुम परम गति प्राप्त करोगे। शैवदर्शन का सार अद्वैतवाद है।

''मनु मंदिरस मंज़ सोरुय व्यपिथ छुय, श्रपिथ छय यि सॉरुय बुतराथ।
यि ज़ानुन छुय द्वर्लब ज़ीवस, ज़ॉनिथ प्रावख चुय परमुगथ।।''

अर्थ:- यहा सारा संसार मनरूपी मंदिर में समा हुआ है अर्थात इसमें सारा चराचर स्थित है। यह जानना मनुष्य के लिए दुर्लभ है। जब वह यह जानेगा तब वह परमगति को प्राप्त करेगा। मनुष्य के मन में ही ईश्वर स्थित है। वह यूं ही उसे ढूंढने के लिए निष्फल प्रयत्न करता है। अपने आप को पहचानना ही प्रत्यभिज्ञा दर्शन है। जिसने अपने आप को पहचाना उसी ने ईश्वर को भी पहचाना। आचार्य अभिनवगुप्त कहते है। मोक्षो नाम नैवान्य: स्वरूपं प्रथनं हि तत्। अर्थात अपने आपको पहचानना ही मुक्ति है।

''तन नॉविथ नो मन ज़ाह श्वद गोय, मनु मंदसर चॆय त्रॊपरिथ बर।

तनस मनस येलि कुन करखय, तेलि हो प्रावख परमुगथ।।''

अर्थ:- शरीर साफ करने पर भी अर्थात नहाने से तेरा मन शुद्ध नही हुआ। आपने मन रूपी मंदिर में दरवाज़े बंद कर दिये. । जब तुम तन और मन को एक करोगे तब तुम परमगति को प्राप्त करोगे।

''ज्ञानु सॅदरस मंज़ ग्वतु येलि दिख हो, म्वलुल्य मोख्तुदानु लबख हो।
आत्मुज्ञानु सुत्यन जहान ज़ोतुनावख, वुन्य हो प्रावख परमुगथ।।''

अर्थ:- ज्ञानरूपी समुद्र में जब तुम गोता मारोगे, तब तुम अमूल्य – मोतियो के दाने हासिल करोगे। आत्मज्ञान से तुम सारे संसार को आलोकित करोगे इस दशा में तुम परमगति को प्राप्त करोगे। आत्मज्ञान के समान कोई ज्ञान नही है।

''च़्यथ सिरियि येलि प्रकाश छ़टे, अज्ञानु अनिगटु पानय हटे।
मनु कुठिस तॉर्य मुच़रुनये, तेलि हो प्रावख परमुगत।।''

अर्थ:- चित सूर्य के प्रकाश से अज्ञान रूपी अंधेरा स्वत: मिल जातेगा। मन रूपी कमरे कि किवाड उस समय स्वयं खुल हायेगे। उस दया में परमगति प्राप्त कर सकोगे।

''बीदस मंज़ येलि अबीद मानख, सोरुय ब्रह्मांड कुन येलि ज़ानख।
शिवु सुंद्य रूप कुनुय वुछुख, तेलि हो प्रावख परमगथ।।''

अर्थ:- भेद मे भी जब तुम अभेद मानोगे। जब तुम सारे ब्रह्मांड को एक ही जानोगे। शिव के भिन्न भिन्न रूपो को एक ही जानोगे, उस स्थिति में परमगति को प्राप्त करोगे। मनुष्य को संसार के पदार्थो में जो भिन्नता दिखाई देती है, वह उसकी भ्रांति है। जब वह (जीव) इन भिन्न भिन्न पदार्थो को ब्रह्मांड मे एक रूप से देखेगा, तब वह उस शिव (ultimate truth) यानी अज़ीम हकीकत को पहचानेगा ओर उसी में विलय हो जायेगा। वस्तुत: अभेददृष्टि से ही उस परम सत्य को मनुष्य जान सकेगा। ये शिव के ही अनेक रूप है। यह संसार शिव का ही क्रीडा विलास है पशुभाव में जीव उसकी हकीकत को पहचानने में असमर्थ है। इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि कवि शैवदर्शन के प्रभाव से अछूता न रहा है।

इसी श्रृंखला में खीर भवानी टाइम्स की पत्रिका भी आती है यह पत्रिका कश्मीरी पंडित सभा जम्मू से प्रकाशित होती है। इसमें तीन भाग है। अंग्रेज़ी, हिन्दी तथा कश्मीरी। कश्मीरी भाग के संपादक- डॉ० रोशन सराफ है। इस भाग की विषय सूची इस प्रकार है:–

1. अख कथ /एक कथा – रोशि रोशि
2. शिव लीला – डॉ० बदरीनाथ कल्ला,
3. मन्नथ - मोहिनी कौल
4. चश्म लोसम/आंखे थक गई – राजदुलारी कदलबुजू
5. लीला – प्यारे भान
6. दुहमंद्य व्यच़ार/शुद्ध विचार – रोशि रोशि
7. वच़न/वचन - हृदयनाथ कौल रिंद
8. ज़ नज़्म/दो नज़में – डॉ० बृ०कृ०मोज़ा

9. रोशि रोशि एक कथा/अख कथ/शीर्षक के अन्तगर्त अपना मानसिक दु:ख प्रकट करता है। इस एक कथा में यह लिखता है कि दुनिया में अनेक भाषाये बोली जाती है। रूस में रुसी, चीन में चीनी, जर्मनी में जर्मन, ब्रटिन में अंग्रेज़ी, हिन्दुस्तान में हिन्दी आदि भाषाओ का प्रयोग होता है। विस्थापित होने के बाद कश्मीरियों ने विशेषत: कश्मीरी पंडितो ने अपनी मातृ भाषा भुला दी । वे घर में भी अपने बच्चों के साथ हिन्दी में बात करते है। यह एक पुकार की विडम्बना है। अपनी मातृभाषा को भूलकर वे इसके साथ अन्याय करते है। मेरे मतानुसार कश्मीरी पंडित (inferiority complex) के शिकार बन गये है अत: वे अपने दैनिक व्यवहार में अंग्रेजी आदि भाषाओं का प्रयोग करते है। यदि हम अपनी मातृभाषा-कशमीरी को भूल जायेगे तो हमारी कश्मीरयत कहां रहेगी ? वह स्वत: ही कालान्तर खत्म हो जायेगी। यदि हम बच्चों को अन्यभाषाओं के साथ अपनी मातृ भाषा नही सिखायेगी, हमारी भावी पीढी हमे कोसेगी। अत: यह हमारा नैतिक कर्तव्य बन जाता है कि हम अपने शिशुओ को घर में मातृभाषा सिखाये, अन्यथा हमारा सांस्कृतिक पतन अवश्य होगा।

इस प्रकार के उद्‌गार रोशि रोशि ने उक्त कथा में प्रकट किये है यहां मैंने उसके विचार इसलिए उदधृत किये है। ताकि पाठको को विशेषत: कश्मीरी पंडितो को अपनी मातृभाषा सीखने का शौक पैदा हो जाये तथा उनमे इस भाषा के प्रति रुचि बढ जाये। मैं भी व्यक्तिगत रूप से उनके विचारों से सहमत हूँ। दूसरा विषय – डॉ० बदरीनाथ कल्ला की - शिवलीला है। इसमे वह भगवान शंकर से प्रार्थना करता है कि वह इन असुरों/ आंतकवादियों को नाश करे जिन्होंने हमारी (कश्मीरी पंडितो की) चल अचल संपति नष्ट कर दी। जिनका जाल सारे संसार में फैला हुआ है। जो किसी न किसी समय डसने की प्रतीक्षा में है। भला हम उनके साथ कैसे मुकाबला कर सकते है? परमात्मा हमारा रक्षक होते है। तथा उनका भक्षक है यही भाव इस लीला में दृष्टव्य है :–

1. हावतम दर्शुन जटाधारी शिव शंकर ही त्रिशूल धारी,
भस्मु रंग छुख चु वस्त्रधारी चुय छुख कपालमालु धारी।
मनु मंदरस मंज़ मुच़राव तॉरी, शिव शंकर ही त्रिशूलदारी।।

अर्थ:- रे त्रिशूल धारी तथा जटाधारी शंकर मुझे दर्शन दिखाओ। आप कपाल माला धारी तथा भस्म रंग के वस्त्रधारी हैं। मेरे मन-मंदिर के किवाड खोलिए।

2. हटि वासुक्य नाग छुख चुय धारी,जटि गंगा छय वसान जारी।
ड्यकि च़ंदर छुय शूबान च़वपोरी शिव शंकर।।

अर्थ:- आपके गले में वासुकिनाग है और जटाओ से गंगा बहती है। आपके माथे पर चांद चारो ओर शोभा देता है।

3. दीवन मंज़ छुख त्रिनेत्रधारी कामदीवुन भस्मु कारीये।
व्यलाप रंती हंदुय बोज़तम सारी, शिव शंकर।।

अर्थ:- देवताओ के आप त्रिनेत्रधारी है। आप कमदेव के भस्मकारी है। रति के विलाप सुनिये तो।

4. काल कूट व्यह ख्यथ छि नमान सारी,
चुय बन्योख नीलकंठ धारी।
दिवताह यि वुछिथ गय हार्य हारी, शिव शंकर।।

अर्थ:- काल कूट विष खाकर आपको सब झुकते है। इससे आप नीलकंठ धारी बन गये ये देखके देवता भी हार गये।।

5. वृषभस खसिथ छुख शाह सवारी पतु पतु दिवताह लारानी।
रुद्रगण पूज़ान च़ेय छिय सारी, शिव शंकर ०।।

अर्थ:- आप बैल पर सवार है आपके पीछे पीछे देवता दौडते है (दर्शन के लिए)। सारे रुद्रगण आपकी पूजा करते है।

6. उमादस बस छय आज्ञाकारी, प्रज़लान चानि गाह छिय सारी।
मेति दितु दर्शुन लगय पार्य पारी, शिव शंकर।।

अर्थ:– उमा हाथ जोडकर आपकी आज्ञा का पालन करती है। आपके प्रकाश से सारे चमकते है। मैं आप पर बलि हो जाऊँ, मुझे भी तो दर्शन दीजिए।

7. गंधर्व चानि डेडि प्रारान सारी कर यियि दर्शनस वारीये।
पोशि पूज़ करहोस थ्कय प्रार्य प्रारी, शिव शंकर।।

अर्थ:- आप के द्वार पर सारे गंधर्व प्रतीक्षा करते है। दर्शन की वारी हमे कब आयेगी। फूलों से हम उनकी पूजा करना चाहते है।

8. बुतराच़ प्यठ छुख चु उपकारी, पार्वती सुत्य् छ़ालु मारनी।
शिवु शक्ती हुंद्य यिम रूप सारी, शिव शंकर।।

अर्थ:– इस भूलोक में आप उपकारी है। पार्वती के साथ आप रतिक्रीडा में लगे हुए है। ये सब शिव तथा शक्ति के रूप है।

9. साकारु रूपु किन्य् छिय नमान सारी, भक्तयन हुंद हितुकारीये।
अमृतरस चाव असि नटि नारी, शिव शंकर।।

अर्थ:– साकार रूप के कारण हम आपको नमन करते है। आप भक्तों के हितकारी हैं हमे अमृत का रस पूर्णरूप से पिलाये।

10. अम्बरनाथ ग्वफि मंज़ वात्यमुत्य सारी, कर यियि दर्शनस वारीये।
रतनदीप आलविथ छलोस पाद सारी, शिव शंकर।।

अर्थ:– शंकर का दर्शन करने के लिए सारे अमरनाथ की गुफा में पहुंचे है। रत्नदीपों की आरात्रिका निकालकर वे शंकर के चरणकमलो को धोना चाहते

है।

11. वंदहोस पादन अस्य अछ सारी, हरमुख दिमुहोस नाद सारी।
लागोस ब्यल तु मादल चार्य चारी, शिव शंकर।।

अर्थ:– हम अपनी आंखे उनके चरणकमलों पर निछावर करना चाहते है, हरमुख पर्वन पर उनको बुलाना चाहते है। बल्वपत्र तथा मादल चुन चुन कर उन्हे लगाना चाहते है।

12. मायाज़ालन वल्यम, तय सारी अपज़िस करान अटु बारीये।
च्यथ सिरिय मय प्रकाश थव जारी, शिव शंकर।।

अर्थ:- हम सब मायाजाल में फंसे हुए है। असत्य का व्यवहार करते है। मेरा चित् प्रकाश जारी रखे।

13. सर्पव ज़ाल वून्यमुत्य च्पारी, ट्वपि हुंज़ करान तयारीये।
राक्षसन हुंद छुख संहार कारी, शिव शंकर।।

अर्थ:–सांपों ने चारो ओर जाल बिछाये हुए है। अब वे डसने की ताक में है। हे त्रिशूलधारी शंकर! आप ही राक्षसों का संहार करने वाले है।

इसी वर्ष जाने माने नाटककार श्री मोतीलाल क्यमू का 'शाफ' (हि शाप) नामक ऐतिहासिक नाटक नागरी लिपि में प्रकाशित हुआ है। यह सतानवे (97) पृष्ठात्मक है। इस नाटक की विशेषता यह है कि संस्कृत नाटक की तरह इसमे सूत्रधार तथा विदूषक जैसे पात्र है।

कश्मीर के राजा गोनंद को कौरवों की ओर से महाभारत की लडाई में सम्मिलित होने के लिए निमंत्रण -पत्र मिलाता है यहां जाकर गोनंद को मार दिया जाता है। बाद में उसका पुत्र दामोदर उसका प्रतिशोध लेने के लिए गांधार जाता है। वहां श्रीकृष्ण के द्वारा उसकी मृत्यु हो जाती है। अंत में दामोदर की रानी गर्भवती यशोमती को राज्याभिषेक करने लिए श्रीकृष्ण कश्मीर जाता है। वहां विधिवत उसकी ताजपोशी होती है। यह इस नाटक का सार है। इसके अतिरिक्त श्री मोतीलाल क्यमू ने इसी वर्ष बांड नाटयम नामक पुस्तक नस्तालीक (उर्दू) में प्रकाशित की है। यह पुस्तक भरतमुनि: कृत 'नाट्य शास्त्रम्' के

आधार पर लिखी गई है। आजतक ऐसी रचना मैं ने किसी की नहीं देखी है। मेरे मत से यह रचना उत्कृष्ट रचनाओ में से गिनी जायेगी।

यहां पर यह कहना असंगत न होगा कि कोशुर समाचार गत सात दशको से दिल्ली से प्रकाशित हो रहा है। इसमे तीन खंड है। अंग्रेज़ी, हिन्दी, तथा कश्मीरी। कश्मीरी खंड के सुप्रसिद्ध कवि तथा लेखक श्री शंभुनाथ भट्ट हलीम है। जो गत पांच दशकों से संपादक के रूप में काम कर रहे है। इस खंड में व्यथि हंदुय आलव/वितस्ता के नाद इनकी रचना पर भूषण मल्ला 'भूषण' ने समीक्षा की है। इन पुष्ट प्रमाणों के आधार पर हम कह सकते है कि विस्थापित कश्मीरी साहित्यकार इसके विकास में कटिबद्ध तथा कृत संकल्प है।



तृतीय खण्ड

कश्मीर-जलतरंग वितस्ता के वैदिक संदर्भ

प्राचीनकाल में आर्यावर्त में कश्मीर को ही 'शारदापीठ' होने का गौरव प्राप्त था। सांस्कृतिक गतिविधियों तथा ज्ञान-विज्ञान का मुख्य केन्द्र होने के अतिरिक्त यह तीर्थों का केंद्र भी माना जाता है। इन पावन तीर्थों का उल्लेख संस्कृत साहित्य के विभिन्न ग्रंथों में विशेषतया भृङ्गीशसंहिता, नीलमतपुराण, राजतरङ्गिणी, हरचरितचिंतामणि तथा माहात्म्यों में विस्तार से वर्णित है। 'वितस्तामाहात्म्य' में इस तीर्थ का वर्णन इस प्रकार मिलता है।

''पृथिष्यां यानि तीर्थानि तानि काश्मीर मण्डले।
काश्मीरे यानि तीर्थानि तानि वैतस्तिके जले।''

पृथ्वी पर जितने भी तीर्थ हैं, वे कश्मीर भूमंडल में है। कश्मीर में जितने भी तीर्थ हैं वे वितस्ता के जल में हैं। इसकी पुष्टि में कल्हण का कथन है:-

''चक्रभृद्विजयेशादि केशवेशान भूषिते।
तिलांशोऽपि यत्र नास्ति पृथिव्यास्तीर्थै बहिष्कृत:।।''

चक्रधर चकड़ार विजयेश्वर बिजबिहारा विष्णुधाम और शिव धामों से शोभित जिस कश्मीर मंडल का भूभाग तिल भी तीर्थों से रहित नहीं हैं। इन तथ्यों के आधार पर कश्मीर तीर्थों का सम्राट कहलाने योग्य हैं। इन तीर्थों में अधिक प्रसिद्ध मार्तंडतीर्थ, प्रयाग तीर्थ, कोटितीर्थ तथा शारदा तीर्थ और कश्मीर-जलतरंग वितस्ता एक विशिष्ट तीर्थ माना जाता है। इन तीर्थों के अतिरिक्त नदियों में वितस्ता को भी एक नदी के भौतिक तथा आध्यात्मिक स्वरूप को दृष्टि में रख कर ऋषियों तथा मुनियों ने इसकी महत्ता का वर्णन अपनी रचनाओं में मुक्तकंठ से किया है। तथा देवी मानकर इसकी स्तुति की है। वितस्ता हज़ारों वर्षों से कश्मीर मंडल में प्रवाहित होती आयी है। यह हमारी सनतान परंपराओं की प्रतीक हैं। इसके अक्षुण्ण प्रवाह में जनमानस का प्रतिबिंब

मुखरित हो रहा है। इसका कल-कल करता प्रवाह अलौकिक आनंद देते हुए लोगों को आध्यात्मिक शांति प्रदान करता है। इसके पावन तटों पर बसकर त्रिकालदर्शि ऋषियों-भृङ्गीश तथा गौतम आदि को परम सत्य का साक्षात्कार हुआ था। शैवदर्शन के मर्मज्ञ अभिनवगुत्त पादाचार्य ने यहीं ऐसे शैवदर्शन के ग्रंथों का प्रणयन किया जिन की ख्याति केवल भारत में ही नहीं समूचे विश्व में हैं।

यह वैदिक काल से स्वदेशी सासकों तथा विदेशि शासकों की साक्षिणी रही है। इसने सुसासकों तथा कुशासकों के अनेक उतार चढ़ाव देखे हैं। मध्यकाल में जहां इसने बड़शाह जैसे सहनशील, शांतिप्रिय तथा लोकप्रिय सुशासकों का दौर देखा, वहां कट्टरपंथि शासकों का दौर भी देखा।

वितस्ता का उद्गम - नीलमतपुराण के अनुसार इस नदी को कश्मीर के प्रथम शासक नीलनाग की पुत्री माना गया है। इसके अनुदार जब महर्षि कश्यप ने सतीसर से पानी का पूर्ण रूप से निकास करवाया, तो पानी के अभाव में नागों को अनेक कठिनाइयां जेलनी पड़ीं। सात ही पिसाचों (आर्यों की एक निम्न जाति को कच्चा मांस काती थी) से संपर्क होने के कारण लोगों के (नागों के) आचरण पर बुरा प्रबाव पड़ा था। इस लिए इन दोषों के निवारण के लिए महर्षि कस्यप ने सिवजी से नम्रतापूवर्क प्रार्थना की कि पार्वती को वितस्ता के रूप में प्रवाहित होने का आदेश दिया जाये। पार्वती को वितस्ता के रूप में प्रवाहित होने का आदेश दिया जाये। पार्वती ने शिवजी की आज्ञा स्वीकार कर ली। इसके बाद सिवजी ने अपना त्रिशूल नीलनाग के निकट ही वितस्ता के बराबर जमीन में गाड़ दिया। इसमें से पावति वितस्ता के रूप में बाहर फूट पड़ी। वितस्ति संस्कृत-शब्द है जिसका अर्थ बारह अंगुल के बराबर दूरी है या खुले हाथ के अंगूठे से कनिष्ठिका तक की लंबाई है। वितस्ति के बराबर गर्त से निकलने के कारण ही इस दरिया का नाम वितस्ता पड़ा जेसे:-

''तस्या: नाम वितस्तेति कृतवान् शंकर: स्वयम्।

वितस्तिमात्रं गर्तं तु शूलेन कृतवान् हरिः।।''

ऋग्वेद के नदी सूक्त में वितस्ता का उल्लेख अन्य नदियों-जैसे विपाशा (व्यास) शतद्रुः (सतलुज) आदि के साथ हुआ है। इससे इसकी पवित्रता, प्राचीनता तथा महानता का परिचय स्वतः होता है। वितस्ता शब्द का प्रकृत रूप विदस्ता है अपभ्रंशरूप वि (ह) त्थ। पटोलिमी के अनुसार वितस्ता को ग्रीकभाषा में 'बिडास्पस' कहते हैं। पाश्चात्य संस्कृत विद्वान् एम. ए. स्टीन के अनुसार आठवीं शती के चीनी ऐतिहासिक दस्तावेज़ों में वितस्ता का नाम 'वितस्ता' पाया जाता है। यहां ध्वनि नियम के सिद्धान्तों के अनुसार वितस्ता शब्द में वर्ण विपर्यय के उदहारण मिलते हैं। 'वितस्ता माहात्म्यं' के अनुसार जिस नदी में स्नान करने से मनुष्य की आन्तरिक तथा बाह्य शुद्धि होती है। वह वितस्ता कही जाति है। इस नदी के अन्य नाम भी हें जैसे, नीलजा, नीलकुंड़ तथा शूलघाता आदि। नीलमतपुराण में प्रायः कश्मीर की इन नदियों का उल्लेख है जैसे-गोदावरी, हर्षपथा, माहुरी, मधुमती, कनकवाहिनी तथा गंगा आदि। इन सब नदियों में से 'वितस्ता' ही सर्वश्रेष्ठ है। नीलमत् के अनुसार यह दो बार लुप्त गुई और तब ही उसने दोबारा लुप्त होना स्वीकार किया जब इसे सिन्धु विशेषकर और गोदावरी का साहचर्य प्राप्त हुआ। अंततः 'आखुबिल' से विशोका ने और गंगबल झील से सिन्धु ने जन्म लिया। ये तीनों मंथर गति से कश्मीर में बहने लगीं।

'वितस्ता माहात्म्य' में वितस्तवर्णिका को (कश्मीरी-व्यथवोतर) का स्त्रोत माना गया है। यह जगह 'वेरीनाग' से प्रायः दो मील नीचे उत्तर पश्चिम में स्थित है। कल्हण 'नीलकुंड़' को ही वितस्ता का स्त्रोत मानता है। 'वितस्ता माहात्म्य' में इस स्थान का नाम वेरीनाग नही बल्कि विरनाग है। इसकी पुष्टि में यह कहा गया है कि शिवजी ने कश्मीर में जन लोक-कल्याण के लिए पार्वती को नदी के रूप में प्रवाहित होने का आदेश दिया तो वह अपने प्रिय से अलग होकर वियोग में अकुलाती हुई वहां से चल पड़ी। अतः इस स्थान का नाम 'विरनाग' पड़ा। बाद में यहीं क्षेत्र 'वेरीनाग' प्रसिद्ध हुआ। अंनतनाग नाम

के अंतर्गत 'आजकल का शाहबाद पुराने समय में 'वेर' के नाम से विख्यात था। सम्राट् अकबर के मंत्री अबुलफ़ज़ल ने 'आईना-ए-अकबरी' में इस परगने का नाम 'वेर' ही दिया है। यही नीलनाग परगने के नाम से फिर अनुस्यूत होकर बाद में 'वेरीनाग' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अबुलफ़ज़ल के मतानुसार यह चश्मा वितस्ता का आदि स्त्रोत है।

नीलनाग अथवा वेरीनाग से नि:सृत वितस्ता नदी मार्ग में अन्य छोटी नदियों के समेत बृहदाकार में अंनतनाग (वितस्ता माहात्म्य के अनुसार-अनंतक्षेत्र) में पहुंचती है।यहां वितस्ता का रूप निखर आता हे। आज का 'ब्रिंगी नाला' सबसे पहले इसके साथ मिलता है। उत्तर पूर्व से आरपथ नदी अछाबल से निकलकर विशाल प्रवाह में बदल्ती है और यह संगम खनबल मेंनजर आता हें। उत्तर में ल्यदर (सं० लंबोदरी) नदी शेषनाग झील से निकल कर वितस्ता के गहरे पानी में विलीन हो जाती हे। इस तरह यहां वितस्ता बडा आकार धारण करके 'खनबल' से श्रीनगर की ओर मंदगति से बहने लगती हे। यहीं से इसमें नौकाओं का यातायात शुरू होता है।

श्रीनगर तक आते-आते वितस्ता के किनारे पर कई तीर्थ और हिन्दू शासकों की राजधानियां बनी हुइ थीं। खनबल से प्राय:दो मील नीचे 'विजयेश्वर व्यज्यब्रोर' का महान् तीर्थ स्थित है। कल्हण के साक्ष्य के आधार पर यह तीर्थ प्राचीन तीर्थों में गिना जाता हैं। यहां पर सम्राट् अशोक ने दो मंदिर अवलोकेश्वर के नाम से बनवाए थे। जनश्रुति के अनुसार यहां एक 'विश्वविद्यालय' भी था। विजयेश्वर तीर्थ की उत्कृष्टता के कारण इसका उल्लेख कल्हण कृत राजतरंगिणी में जयरथ कृत हर चरिचिंतामणि: तथा विजयेश्वर माहात्म्यमें भी पाया जाता हैं।

आगे चलकर वितस्ता के साथ विशवनदी कुलग्राम रंब्यआरा शुपियन की ओर से इसमें मिलजाति है। फिर इसका उत्तरीय जलमार्ग बिजबिहारा के नीचे गंभीरसंगम में मिल जाता है। इस क्षेत्र का नाम प्राचीनकाल में 'गंभीर संगम' था। जब यह केवल संगम के नाम से विख्यात है। विशव नदी का प्राचीन स्त्रोत 'कौंसरनाग' माना जाता है। इस नदी का वर्णन-नीलमतपुराण,

कल्हण राजतरङ्गिणी, हरचरितचिंतामणि तथा वितस्तामाहात्म्य में मिलता है।

संगम से कुछ मील नीचे की तरफ, नामक गांव आता है। यह गांव उत्पलवंश के सुप्रसिद्ध महाराजा अवंतिवर्मन की याद को ताज़ा करता हे। इस समय यहां दो मंदिरों के खंडहर नज़र आते हैं। इसी महाराजा के समय में विपलव के प्रकोप से बचने के लिए 'सुय्या' नामक एक इंजीनियर ने वितस्ता के प्रवाह को बांधों से नियंतित कर दिया तथा लोगों को पुनः जीवन दान दिया। अवंतिपुर से पांच मील नीचे कार्कोट वंशीय, महापराक्रमी तथा दिग्विजयी मुक्तापीड़ ललितादित्य द्वारा स्थापित ल्यतपोर दृष्टिगौचर होता है। इसके बाद यह नदी तीन-चार मील की दूरी पर 'पद्मपुर' पहुंचती है। यह नगरी महारानी जया देवी के भाई पद्म ने बसायी थी।

पंतजलि-कृत 'महाबाष्य' के प्रदीप टीका के लेखक कैयट इसी गांव के रहने वाले थे। यहीं पर कश्मीरी भाषा की पहली सुप्रसिद्ध कवियत्री परम योगिनी लल्लद्यद का एक तालाब भी मौजूद है जो 'लल्लत्राग' के नाम से प्रसिद्ध है। अब वितस्ता श्रीनगर के बहुत निकट आ जाती है और सीमापुर से पांद्रेंठन पहुंचती है।

यह 'स्यमपोर' निघण्टु के रचयिता प्रसिद्ध वैद्य नरहरि का जन्म स्थान था। इसी के आस-पास सिंहगुहा नामक 'बिद्यामठ' में शैवाचार्य सोमानन्द अपने शिष्यों को पढ़ाते थे। इसके उत्तर-पश्चिम भाग में अर्थात् ख्यनमुष में बिल्हण कवि पैदा हुए थे। इस स्थान का वर्नण स्वयं कवि ने 'विक्रमाङ्कदेव चरित' में किया है। स्पष्ट है कि यह स्थान उस समय-संस्कृत का शिक्षण केन्द्र रहा होगा। यह राजा प्रवरसेर प्रथम की राजधानी थी। इतिहासकारों का कहना हे कि श्रीनगर की नींव प्रसिद्ध मौर्य सम्राट् अशोक (236-293 ई.पू.) ने रखी थी। आज यहां बौद्ध विहारों शैव और वैष्णव मंदिरों के खंडहर देखने को मिलते हैं। यहीं से वितस्ता 'शुरहयार' पहुंच कर 'दुबज्य' नामक जगह पर प्राचीन महासरित 'चूंठय क्वल' से मिलती है। वस्तुतः डल झील का अधिकांश जल 'चूंठय क्वल' के द्वारा वितस्ता में मिल जाता है। वितस्तामाहात्म्य

में वर्णित ड़ल झील का नाम पुराने जमाने में 'दलसर' था। जो ख्वड़बल तक फैली हुई थी। इसके बीच एक 'मक्षिका स्वामी' का मन्दिर बना हुआ था। मक्षिकास्वामी का अपंभ्रश 'मायसूम' कहा जाता है। वितस्तामाहात्म्य में इसका नाम 'मायासीमा' दिया गया है। 'मायसूमा' चूंठ्यक्वल तथा वितस्ता के बीच एक द्वीप था। मार और वितस्ता के संगम पर दिदारानी के पति महाराजा क्षेमगुप्त (980/1-1003ई.) ने 'क्षोमगौरीश्वरी' का मन्दिर बनवाया था। श्री कण्ठचरित के रचयिता महाकवि मंख ने भी इस संगम का विवरण दिया है। श्रीवर ने अपनी कृति-'राजतरङ्गिणी' में इसे आधुनिक नाम 'मारीसंगम' दिया है। इसका नाम वितस्यों यानी मारी है। आगे कुछ डेढ़ सौ गज़ वितस्ता से बांयी ओर एक नहर निकाली गई थी जो आजकल 'कटक्वल' नाम से प्रसिद्ध है। राजतरङ्गिणी में इसका नाम 'क्षिप्तिका कुल्या' वर्णित हैं।

वितस्ता नदी के बायें तट पर गदाधर (विष्णु) का मन्दिर है। यह मन्दिर ड़ोगरा शासकों ने बनवाया था। कटक्वल तथा गदाधर जी के इस छोटे भूखंड के साथ एक प्रसिद्ध स्थान 'काठलेश्वर' है। इसका उल्लेख वितस्तामाहात्म्य के उन्नीसवें पटल में है। इस माहात्म्य में इस स्थान का नाम 'क्ष्ठेल' दिया गया हे। यह क्ष्ठेल मोहल्ला पुराने ज़माने में इतना प्रसिद्ध था कि इसका प्रमाण महाकवि बिल्हण के विक्रमांकदेवचरित, क़ल्हणकृत-राजतरङ्गिणी तथा श्रीवर की राजतरङ्गिणी में मिलती है। काठलेश्वर में महाराजाओं के प्रासाद बने हुए थे जो काष्ठ यानि लकड़ी से बनाये गये थे। इस समय हमें इन महलों के आसार नहीं मिलते हैं। कल्हण के अनुसार महाराज अवन्तिवर्मा का महल सोमर्तीथ के सामने था। इस र्तीथ की लोकप्रियता के कारण इसका वर्नण कल्हण राजतरङ्गिणी के अतिरिक्त 'हरचरित चिन्तामणि' तथा 'वितास्तामाहात्म्य' में भी मिलता है। इस महल के समीप ही सदाशिव मन्दिर आज का 'पुरुषयार' है।

इसी वितस्ता के दाये तट पर गणपतितीर्थ (गणपतयार) तथा वर्धमानेश्वर (मलयार) हैं। इसके बाद यह नदी अपना मार्ग बनाती हुई महाकाली, महाकाल,

गांखन, रत्नसर, लक्ष्मीक्षेत्र तथा लोकारितीर्थ आदि से गुजर कर 'वीर' पहुंचती, महाकाल का तीर्थ वितस्ता के बायें तट पर वर्तमान महाकाली के सामने था। इस तीर्थ का वर्णन वितस्तामाहात्म्य में मिलता है। महाकाली का तीर्थ-पहले बौद्ध विहार था। इसकी स्थापात्यकला इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। यवनों के शासन काल में यह विहार मस्जिद के रूप में परिवर्तित हुआ। दुर्भाग्य से महाकाल के अवशेष इस समय-अन्य तीर्थों के समान नहीं मिलते हैं।

छटे तथा सातवें पुल के मध्य में 'द्यदमर' के निकट दूध गंगा वितस्ता के साथ मिलती है। यहां यह ध्यातव्य है कि श्रीनगर से प्राय: तीस मील की दूरी पर यूसमर्ग में एक प्रसिद्ध सरोवर नीलबंध है जो दूधगंगा का स्त्रोत माना जाता हे। वितस्तामाहात्म्य में इसे श्वेतगंगा का नाम दिया गया हे। यह नीलनाग, नीकुंड से भिन्न है। दूधगंगा को कश्मीरी भाषा में 'छचक्वल' भी कहते हैं। क्योंकि इसका पानी दूध के सामान श्वेत है।

'द्यदमर' से होती हुई वितस्ता शादीपुर के सामने सिन्धु के साथ मिलती है। सिन्धुनदी गंगबल सरोवर से बहती हुई 'दुग्धाश्रम' (आजकल का 'द्वदरहोम' माना जाता है) में प्रवेश करती है। गंगबल नामक सरोवर हरमुकुट पर्वत के नीचे स्थित है। गंगबल को नीलमत्पुराण, राजतरङ्गिणी, हरचरित चिन्तामणि तथा हरमुकुटमाहात्म्य में 'उत्तरमानस' के नाम से अभिहित किया गया है। इससे गंगबल नामक तीर्थ की प्रतिष्ठा स्वयं ही सिद्ध होती है। नीलमत्पुराण में सिन्धु को गंगा का तथा वितस्ता को यमुना का दर्जा दिया गया है। इसलिए यहां के रचनाकारों ने इस संगम को 'प्रयागराज' की उपधि से समलंकृत किया है। 'वितस्तामाहात्म्य' में प्रयाग को तीर्थों का राजा प्रमाणित किया गया है। इस वितस्ता और सिन्धु के मध्यभाग में द्वीप पर एक अक्षयवट था, आजकल यहां पर भावानींवृक्ष चिनार लगा हुआ है। 'वितस्तामाहात्म्य' में अक्षयवट का प्रमाण मिलता है। अस्थिक्षेपण इसी संगम में किया जाता है। पुराने जमाने से ही कश्मीरी ब्राह्मणों का यह प्रतिष्ठित तीर्थ है।

संगम से कुछ मील नीचे सुबंल गांव बसा हुआ है। वितस्तामाहात्म्य

में इस गांव का नाम 'सीमाबलि' कहा गया है। जब वितस्ता बायीं तरफ बह रही थी तो पुराने जमाने में वहीं पर 'जयपुर' नामक राजधानी महाराजा जयापीड़ ने बनाई ती। इसी के निकट अन्दरकोट नामक कश्मीर के हिन्दू शासकों की अन्तिम राजधानी थी। प्रो० जार्ज बूहलर ने अपने रिपोर्ट में 'अन्दरकोट' का भौगोलिक वर्णन किया है।

सुम्बल गांव में नन्दकेश्वर तीर्थ वितस्ता के तट का भौगोलिक वर्णन दिया हैं। यह स्थान नन्दिकेश्वर कहा जाता है। यहीं सो कुछ दूरी पर वितस्ता से निकली गई एक नहर 'मानसबल' की ओर जाती हे। इस सरोवर का वर्णन हमें नीलमत्पुराण, जोनराजतरङ्गिणी तथा वितस्तामाहात्म्य में मिलता है। वितस्ता नदी आगे चल कर वुल्लर झील में से अपना रास्ता बनाती हुई सोपोर की बढ़ती है। वितस्तामाहात्म्य में सोपोर का नाम 'सुरेजापुर' लिखा गया है। वुल्लर झील का प्राचीन नाम महापद्मसर था। जोनराज इसका नाम उल्लोल बताते है। उल्लोल का अपभ्रंशरूप कश्मीरी में वुलर बनता है। जोनराज की राजतरङ्गिणी के अतिरिक्त ध्यानेश्वर माहात्म्य में भी इसका नाम उल्लोल है।

'नीलमत्पुराण' में महापद्मसर के विषय में यह प्रसंग प्रसिद्ध है कि प्राचीनकाल में महापद्मसर चन्द्रपुर नामक नगर था जहां षडङ्गुल नामक नाग प्रतिदिन स्त्रियों का अपहरण करता था। उसके दुर्व्यव्हार को देख कर नागों के राजा नील ने उसके वहां रहने पर प्रतिबन्ध लगाया। बाद में महर्षि दुर्वासा के शाप के कारण यह क्षेत्र जलमग्न होकर झील में तबदील हो गया था। इस ध्वंसित नगर के अवशेष इस समय भी 'वुल्लर' के पानी में दिखाई देते हैं। वुल्लर से निकल कर वितस्ता सोपोर के किनारे को स्पर्श करती है। आगे बढ़कर वितस्ता में हन्दवारा की ओर से तथा अन्य नदियां पोहर मावर और मिल जाती हें। जोनराज ने इस नदी को पहर कहा है। 'नीलमत्पुराण' में हमल को शामला तथा मावर को 'माहुरी' बताया गया है। इस तरह वितस्ता अपने कलेवर को अन्य नदियों विशेषत: मधुमती के साहचर्य से परिपुष्ट होकर बारामूला की ओर बढ़ने लगती है। यहां पर वराहरूप में विष्णु का प्राचीन

मन्दिर स्थित था जो आजकल 'कोटितीर्थ' के नाम से प्रसिद्ध है। वितस्ता के बायें तट पर प्राचीन बौद्ध नगरों के खंडहर मिलते हैं। आज का वुष्कोर कुषाण वंशीय सम्राट् कनिष्क के पुत्र हविष्क के द्वारा बसाया हुवा हविष्कपुर है। राजा ललितादित्य ने यहीं पर शानदार मुक्तास्वामिन् यानी विष्णु मन्दिर तथा एक विशाल विहार के समेत एक स्तूप का भी निर्माण किया था। चीनी यात्री ह्यूनसांग ने यहां के तीर्थों, विहारों तथा स्तूपों का वर्णन किया हे। क्षेमगुप्त ने यहां दो मठ बनवाये थे। जीवन का अन्तिम काल उसने इन मठों में रहकर व्यतीत किया था। कनिघंम का उल्लेख इस तथ्य की पुष्टि करता है।

राजा कनिष्क ने इसी स्थान के समीप ही वितस्ता के वाम तट पर 'कनिष्कपुर' की नींव डाली थी। यह आजकल 'कानिसपोर' के नाम से पहचाना जाता है। यहीं से लोग 'शारदा' नामक प्रसिद्ध तीर्थ की यात्रा शुरू करते थे। आगे बढ़कर वितस्ता पहाड़ी प्रदेश में संकुचित मार्ग से प्रवेश करती है। यहां से कुछ दूरी कन्यका माता का तीर्थ आता है। इसे कश्मीरी भाषा में 'कॅन्यमॉज' कहते हैं। यहां पर पुराने जमाने में एक द्वार बनाया गया था जिसे द्रङ्ग कहते हें। द्ररङ्ग शब्द संस्कृत-द्वारा अङ्ग द्रङ्ग का अपभ्रंश रूप हैं। यहां सेना के विभिन्न अङ्ग रहते थे और आने जाने वाले देशी-विदेशी लोगों पर कड़ी नज़र रखी जाती थी। यह घाटी का प्रवेशद्वार माना जाता था। अत: सामरिकदृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण जगह मानी जाती थी। इसी द्वार से सातवीं शती में ह्यूनसांग कश्मीर आया था। इसी जगह पर पुराने ज़माने में भाद्रपद शुल्कपक्ष द्वादशी को इन्द्र द्वादशी (इन्द्रबाह) का उत्सव मनाया जााता था। प्राचीन समय में यहां आमोद प्रमोद का पर्व मनायाा जाता था। अब यहां पर पितरों के लिए श्राद्ध-तर्पण किया जाता है। इस तीर्थ से पहले, ही वितस्ता मन्दगति से 'खानघाट' पहुंचती है। यह इस नदी का आखिरी पड़ाव है। कल्हण-राजतरङ्गिणी के अनुसार यह स्थान महाराजा मेघवाहन की रानी 'रवादना' ने एक बौद्ध विहार के रूप में बसाया था। इस तरह नीलनाग से (वेरीनाग) निकल कर यह वितस्ता खादनयार तक प्राय: सत्तर मील की यात्रा करती है। इसके बाद यह

नदी तथाकथित आज़ाद कश्मीर में मुज़फराबाद के निकट 'कृष्णगंगा' से मिल जाती है। कृष्णगंगा से पाकिस्तान में 'झेहलम' नामक क्षेत्र में से गुजरने के कारण इसका नाम आजकल झेलम पड़ गया है। वास्तव में मध्यकालीन इतिहासकारों तथा अन्य लेखकों की रचनाओं में वितस्ता झेलम के नाम से प्रसिद्ध है। बाद में विदेशी लेखकों लारेन्स आदि ने भी इसी का अनुसरण किया। आजकल इस नाम के प्राचलित होने का यही मुख्य कारण है। कश्मीरी पंडित इस परम पावन नदी को 'व्यथ' के नाम से पुकारते हैं। वे इस वितस्ता का जन्मोत्सव भाद्रपद कृष्णपक्ष त्रयोदशी को 'व्यथ् त्रुवाह' के नाम से मानते हैं। इस दिन वितस्ता में नाना प्रकार के फलों तथा फूलों की भेंट चढ़ाई जाती हे। सायंकाल के समय लोग गोलाकार घास के आसन आरियां बनाकर उन पर दिये रखकर 'वितस्ता' मां को अर्पित करते हैं और उसकी पूजा करते हैं। 'नीलमत्पुराण' में इसकी पवित्रता तथा महानता का द्योतक निम्नपद्य दृष्टव्य हैं :-

''तत्र नद्य:स्था पुण्या:पुष्यानि च सरांस्यपि।
देवालया महापुण्यास्तेषां चैव तथाश्रमा:।।
तन्मध्येन च निर्याता सीमान्तमिव कुर्वती।
वितस्ता परमादेवी साक्षाद् हिमनगोद्भवा।।''

इस कश्मीर में पवित्र नदियां, सरोवर, पुष्पफल देने वाले मन्दिर तथा आश्रम हैं। पवित्र नीलनाग से निकल कर, काश्मीर मंडल को स्त्री के केशवपाशह की तरह दो खंड़ों में विभक्त करती हुई, यह परम वितस्ता हिमालय की मानस पुत्री है।

निश्चय ही वितस्ता के प्रवाह में शैवधर्म, वैष्णवधर्म, बौद्धधर्म तथा सूफीधर्म की धाराओं का अनोखा संगम सन्निहित है तभी तो कवियों तथा लेखकों ने इसको साधारण नदी न मानकर दिव्यमाता का महत्व प्रदान किया है। इसी जल तरंगों में कश्मीर का गरिमापूर्ण अतीत तथा गौरवशाली तरंगायित हो रहा है।

✵

संदर्भ

1. कल्हणकृत राजतरङ्गिणी, एम.ए.स्टीन
2. जोनराज-राजतरङ्गिणी, श्री कण्ठकौल
3. श्रीवर राजतरङ्गिणी, श्री कण्ठकौल
4. नील मतपुराण, डॉ. वेद कुमारी
5. आईना-ए-अकबरी, अब्बुल फज़ल
6. हरचरित चिन्तामणि:, बम्बई माला सीरीज़।
7. विक्रमाङ्क देवचरित, प्रो० बुहलर (संपादित)
8. Ancient Geography of Kashmir - M.A. Stain
9. Report Insearch of Sanskrit Manuscripts in Kashmir - Prof. Bhular
Cunninghams ancient Geography of India-Edited by S. Majundar Shastri
10. नीलजा - जम्मू व कश्मीर राष्ट्र भाषा प्रचार समिति श्रीनगर

शिवरात्रि का रहस्य तथा उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि

कश्मीर की उत्सव परम्पराओं में एक प्राचीन तथा सर्वजनमान्य शिवरात्रि का एक त्यौहार है जो अपनी नवीनता तथा प्राचीनता एव काश्मीरिक अनुश्रुति (परम्परा) परायणता के लिए कश्मीर में विख्यात है। साथ ही अपना एक नूतन स्थान यहां निर्धारित करती है जो पर्वतीय प्रदेशों को छोडकर शेषभारत में मनाये जाने वाले त्यौहारों से सर्वथा अनुपम है। त्यौहार मनाने का उद्देश्य हमारे पूर्वजों द्वारा स्थापित आदर्शों को पुनः जागृत करके लोगों में शान्ति, प्रेम सहनशीलता आदि सद्गुणों को बढ़ावा देना हैं। शिव का स्वरूप एवं महत्व कालरात्रि, मोहरात्रि, हररात्रि, शिवरात्रि एवं तालरात्रि के रूप में कश्मीर की ''श्री संहिता'' में वर्णित है। इन में से घोररूप शिव का स्वरूप कालरात्रि, मोहरात्रि हररात्रि में भयङ्करतम प्रतीत होता है। सर्वसाधरण इस भयङ्कर स्वरूप को ध्यान व स्मरण करने में सर्वथा असमर्थ है। अतएव उसने शिवरात्रि जो कल्याण कारिणी–रात्रि, एवं तालरात्रि अर्थात् ताण्डवरात्रि का महत्व दिया है और उसे ही अपना इष्ट समझ कर पूजा का विषय बनाया है। शिवरात्रि के त्यौहार का उद्देश्य कालरात्रि (अज्ञान) को दूर करके उसे प्रकाश (ज्ञान) में तबदील करना है। शिवरात्रि प्रतिपादक पद्धतियों में कामा अर्थात् फाल्गुण कृष्णपक्ष त्रयोदशी के प्रदोष (सायंकाल) में ज्वालालिङ्ग (Luminous biggest piller) का प्रादुर्भाव हुआ है इसके प्रादुर्भाव में आते ही सब दिशायें एवं विदिशायें निस्तेज होगई और जनता उस स्वरूप को अत्यधिक प्रकाशमय होने के कारण देखने में असमर्थ थी अतः वह पूजा

के उपयुक्त उस समय को जान न पाई, आगे चलकर उस का स्वरूप बहुत रूपों में परिवर्तित हुआ। कालरात्रि, मोहरात्रि और हरात्रि में रुद्र की पूजा होती है जो कालरात्रि महाप्रलय के दृश्य का प्रतीक है। सुखाभिलाषिणी जनता के लिए इन उत्सवों की पूजा करना अभीष्ट नहीं है। इसलिए इनके मनाने का सार्वत्रिक प्रचार कश्मीर में नहीं है। यह शिवरात्रि का पावन उत्सव शताब्दियों से कश्मीरमण्डल में मनाया जा रहा है।

यह त्यौहार कब से कश्मीर में मनाया जा रहा है। इसके विषय में कहना कठिन है अब हम प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर इसके विषय में कुछ प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

शिव के नाम अनेक हैं – शंकर, महादेव, हर, भव, सदाशिव, पशुपति आदि है। रुद्र भी इसका एक पर्याय है। संभवत: यह रुद्र वैदिक रुद्र है। जिसका उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। यह शिव वैदिकयुग के रुद्र से अलग–थलग है। वैदि्करुद्र कठोर स्वभाव का है किन्तु पौराणिक शिव कल्याण करने वाला तथा शान्तिदेने वाला है। उसी शिव से यहां हमारा अनिप्राय है।

शिव की पूजा भारत में वैदिक युग से पहले की जाती थी। सिन्धुघाटी में प्रागैतिहासिक युग के अवशेष जो हमें मोहेंजोदड़ो तथा हडपा में मिले हैं, उनसे पता चलता है कि शैवधर्म का प्रचार सिन्धुसभ्यता में भी था और वहां के लोग इस धर्म के अनुयायी थे। वहां खोदने से अनेकों लिङ्ग मिले हैं और भगवान् पशुपति तथा शाम्भवी मुद्रा में एक योगी की मूर्ति भी मिली है। मातृशक्ति की पूजा भी उस युग में सिन्धुघाटी के निवासियों में प्रचलित थी। 'लिङ्ग' प्रणालियों (योगनियों) में स्थित शिवलिङ्गों की उपलब्धि हुई है जो शिव–शक्ति की पूजा की द्योतक है।

कश्मीर शिवप्रधान देश है यहां विष्णु, ब्रह्मा आदि देवताओं की अपेक्षा शिव की ही उपासना प्रधानरूप से होती थी, अतएव शिवधाम प्रचुरमात्रा में शताब्दियों के बाद इस समय भी पाये जाते हैं जिनमें सुरेश्वर महादेव आदि उपलब्ध है 'राजतरङ्गिणी' से प्राचीन कश्मीर के इतिहास ग्रन्थ 'नीलमत्पुराण' में शिव की पूजा का वर्णन मिलता है। डॉ० बुह्लर ने इस ग्रन्थ की तिथि छटी शताब्दी निर्धारित की है। पुस्तक में इस त्यौहार के वर्णन से पता चलता है कि यहां के लोग छटी शताब्दी से पहले ही यह उत्सव मनाते थे। जयरथ की कृति 'हरचरितचिन्तामणि:' में शिवरात्रि का वर्णन और उसका माहात्म्य पुराणों के आधार पर लिखा गया है जिसके आधार पर इस समय भी हम शिवरात्रि मनाते हैं। जयरथ ने उस समय प्रचलित प्रतिपादक ग्रन्थों में शिवरात्रि की कथाओं का संग्रह एवं माहात्म्यों का वर्णन किया है।

कश्मीर में इस उत्सव पर एक विस्तृत साहित्य था जो अपने अपने दृष्टिकोण के अनुसार इस उत्सव की परिभाषा देते हुए महत्ता प्रतिपादन करते आये। यह ग्रन्थ अब अनुपलब्ध है। इसके बाद इनमें से कई एक ग्रन्थों के नाम महामहेश्वराचार्य जयरथ ने जो बारहवीं शताब्दी में कश्मीर में विद्यमान थे, अपनी प्रसिद्ध कृति 'हरचरितचिन्तामणि:' के महाकाव्य में तीन ऐसे ग्रन्थों का परिचय दिया हैं जो अब अप्राप्य है। इनके नाम यह हैं — अनन्तभास्करी, विद्यापुरण तथा दूतीडामरतन्त्र। इनके अतिरिक्त शिवपुराण, स्कन्धपुराण और ब्रह्माण्डपुराण में भी इसकी विशद व्याख्या पाई जाती है। पुराणों के अनुसार भिन्न भिन्न इतिवृत्त मिलते हैं जिनका यहां पर समावेश करना अप्रासङ्गिक प्रतीत होता है। परन्तु यह उत्सव समस्त हिमालयपर्वत उपत्यकावर्ती प्रदेशों में प्रचलित होने के कारण ज्ञात होता हैं कि यह उत्सव

नेपाल से लेकर हिमाचल प्रदेश की समस्त घाटियों में मनाया जाता है। विशेषकर जितने भी प्रसिद्ध शिवधाम हैं जैसे केदारनाथ, बदरीनाथ, लाटायनमहादेव अमरनाथ आदि सब हिमालय के पार्वतीय प्रदेशों में विद्यमान है।

कश्मीर में यह उत्सव समस्त उत्सवों की अपेक्षा महत्तम तथा प्राचीनतम माना जाता है। इसका यह आशय है कि कश्मीरदेश प्राचीन काल से शिवभक्तिपरायण था। यही कारण है कश्मीर के प्राचीन से प्राचीन काव्य जैसे कालिदास का कुमारसंभव, रत्नाकार का हरविजय, सोमदेव का 'कथासरितसागर' में अनेकों शिवपरक आख्यान एवं तदनुसार क्षेमेन्द्र की 'बृहत्कथामंजरी' में भी अनेक आख्यान शिवपरायण मिलते हैं। इसी प्रकार उत्पलदेव की शिवस्तोत्रावली, अवतारकवि का ईश्वरशतक, कल्हण का अर्धनारीश्वरस्तोत्र, एवं अन्यान्य कवि मंख का श्रीकण्ठचरित, जगद्धरभट्ठ की स्तुतिकुसमञ्जलि, शिवसम्बन्धी कश्मीर के विख्यात काव्यग्रन्थ है। कहा जाता है कि कश्मीर में दुर्वासा मुनि ने उग्रतपस्या के फल स्वरूप शैवमत का जन्म कश्मीर में किया था और यहीं कश्मीर में शैवशास्त्र के आदि प्रवर्तक मानेजाते हैं। इन्होंने ही शिवमहिम्नस्तोत्र तथा त्रिपुरामहिम्तस्तोत्र शिव के सम्बन्ध में अत्यद्भुत स्तोत्रग्रन्थों की रचना की है। इसके बाद आचार्य उत्पलदेव ने नवमी शताब्दी के पूर्वार्धं में आविर्भूत होकर महामुनि दुर्वासा की इस शिवसिद्धान्त की बल्ली को पुष्पित और पल्लवित किया। एक और तो उन्होंने सिद्धान्तग्रन्थ ईश्वरप्रत्यभिज्ञा और उसकी टीका विवृति (अप्राप्य) तथा दूसरी ओर इनके सुयोग्य शिष्य अभिनवगुप्त ने इस कृति को विमर्शिनी (टीका) से विभूषित किया। कहना न होगा कि इसी आचार्यउत्पलदेव ने ही एक भक्तिग्रन्थ, जो 'शिवस्तोत्रावली' के नाम से विख्यात है, शिवरात्रि के विषय में

लिखा है :—

यत्र सोऽस्तमयमेति विवस्वान्, चन्द्रमःप्रभृतिभिः सह सर्वैः।
कापि सा विजयते शिवरात्रिः, स्वप्रभाप्रसरभासुररूपा।।

उत्पलदेव का आशय इस प्रकार से है जहां प्रमाता (Subject) प्रमेय (Object) के साथ अस्त होता है वही कोई अनिर्वचनीय शिवरात्रि के नाम से प्रसिद्ध है जो अपने प्राकाश से प्रकाशरूप है अर्थात् जो किसी प्रकाश से प्रकाशित नहीं होती है। इसमें जो रात्रि शब्द है वह इस अर्थ का द्योतक है कि नितान्त अनुतमसावृत रात्रि ही प्रकाशमय प्रतीत होती है जिसमें आचार्य ने वेद की रात्रिसूक्त के अन्तर्गत शिवरात्रि के इस मंत्र का संकेत दिया है:—

संवेशिनीं संयमनीं ग्रहनक्षत्रमालिनीम्।
प्रपन्नोऽहं शिवॉरात्रि भद्रे पारमशीमहि।।   (रात्रिसूक्त)

शिवरात्रि के विषय में प्रमुख विचारधारा यह है कि इस दिन ज्वालालिङ्ग का आविर्भाव हुआ है और वही ज्वालार्लिङ्ग ज्योतिर्लिङ्ग के नाम से भी प्रसिद्ध है। इसी ज्योतिलिंङ्ग का प्रतिरूप रसलिंङ्ग है जिसे कश्मीर में 'अमरेश्वर' भी कहते हैं और जिसका प्रसिद्ध धाम श्रीअमरनाथजी है। यह ज्वालालिंङ्ग ही शैवशास्त्र में वर्णित प्रकाश का प्रतीक (Symbol) है और शैवशास्त्र के अनुसार शिव और शक्ति का यामल (मिलाप) स्वरूप ही शिवरात्रि का समुचित समन्वय है क्योंकि शिव ही प्रकाशस्वरूप होने के कारण विमर्श से भिन्न नहीं है जहां शिव का वर्णन होता है उसके साथ अवश्य शक्ति होती है कहा भी गया है :—

शिवश्च शक्तिमद्रूपात् व्यतिरेकं न गच्छति।
तादात्म्यमनयोर्विद्यात् चन्द्रचन्द्रिकयोरिव।।

'शक्तयोऽस्य जगत्सर्वं शक्तिमांस्तु महेश्वरः'। शिव और

शक्ति का यामल स्वरूप संयोग ही शिवरात्रि कहलाई जाती है। शिव स्वयं ज्ञानस्वरूप तथा चैतन्यरूप है। शक्ति उसे कर्मों की ओर प्रेरित करती है। संसार में जीव का संकल्प तबतक सफल नहीं होता है जब तक वह उसको सफल बनाने के लिए यत्न या उद्योग न करे। जैसे भगवान् शिव ने स्वयं कहा है कि "प्रयत्न: साधक:" संसार में जो कुछ क्रियाकलाप होता है वह इन दो तत्बों पर निर्भर है। शैवशास्त्र के अनुसार इन दो तत्त्वों के बिना संसारचक्र कदापि नहीं चल सकता है। अत: इन दो तत्त्वों का होना नितान्त आवश्यक है। जहां इन दोनों में से किसी एक का नाम र्निदेश होता है वहां दोनों का ही भान होता है। शिव सदा शक्ति से अभिन्न एवं ओतप्रोत है। ये सांख्यशास्त्र के प्रकृति पुरुष के समान अन्योन्याश्रयी होते हुए एक दूसरे के ज्ञापक हैं। पर यह दोनों अजड़ एवं प्रकाश और विमर्शस्वरूप है। साँख्य के अनुसार प्रकृति के समान शक्ति जड़ नहीं है। एवं शैवमत के अनुसार क्रम से पशुप्रमाता मन्त्र, मन्त्रमहेश्वर – प्रलयाकल, विज्ञानाकल, सकलाकल, सदाशिव आदि प्रमातृ भूमिकाओं में लांधता हुआ परमशिव में लीन होता है। जिसप्रकार स्फुलिंङ्ग (अग्निकण) एक उस महान अग्नि से अभिन्न होकर भी भिन्न प्रतीत होते हुए भी महाज्वाला में तद्रूप होते हैं। उसी तरह से अनुस्वरूप जीव भी उस महान् शिव स्वरूप में लीन होता है। अत: तत् तत् अवस्थाओं में प्रमाता का प्रचलन साक्षात् सत्य भासित होता है। जैसा कि उसका वह स्वरूप भी प्रमाणरूप से प्रकाशमान है वैसा उसका प्रमेय भी प्रकाश रूप ही है। इस प्रकार के ज्ञान का ही यह महोत्सव परिचायक हैं। और यह उत्सव अनादिकाल से कश्मीरी पण्डित जनता अपनी रीतियों के अनुसार मानती आरही है जिसमें कश्मीरी पण्डितों की जातियाँ तीन शाखाओं में विभक्त थी जो आजकल लुप्तप्राय ही है। यह

शाखायें अथवा सम्प्रदाय यह हैं — दक्षाचार, महाचार एवं वामाचार। इनमें से दक्षाचार सप्रदाय की तिथि इस प्रकार है। दक्ष संस्कृत में प्रबुद्ध को कहते हैं। ज्ञानवान ही शैवी दीक्षा का अधिकारी होसकता है। गुरु रूप सूर्य के उपदेश के बिना वह निर्मल नहीं होसकता है जिस प्रकार सूयोर्दय के बिना पदार्थों का स्फुट अवभासन नहीं होता है, उसी प्रकार सूर्य के प्रकाश के बिना यह उत्सव मनाना उसके मत से असंगतसा लगता था। अत: दक्षाचार मार्ग के अनुयायी इस उत्सव को उदय व्यापिनी तिथि में ही मनाया करते थे अर्थात् तत्काल सूर्योदय के समय पर ही वह शिव पूजा में व्यस्त रहते थे। इसका यह तात्पर्य है कि ज्वालालिंङ्ग के प्रदोष में आविर्भूत होने पर भी वह लोग उसके तात्कालिक प्रखर एवं दु:सह तेज को सहन न करसके और प्रभात में सूर्योदय के समय उसके कुछ शान्त होने पर उनको वह (ज्वालालिंङ्ग) दिखाई दिया। अत: वह उदयव्यापिनी तिथि पर ही अधिक बल देते थे। इसी प्रकार महाचार का भी वर्णन इस प्रकार से आता है जबकि ज्वालालिंङ्ग (महाप्रकाशस्तम्भ) अर्धरात्रि में शान्त होकर जनता के लिए सह्य होगया तब से महाचार संप्रदाय के अनुयायियों ने निशीथिकाल (आधीरात) में इसे पूजना उचित समझा। इन दोनों सिद्धान्तों के विपरीत वामाचार जो कामकेश्वरमत के मुख्य अनुयायियों में से है, उनका कथन है कि प्रदोषो रजनीमुखम्मित्यमर: (अमरकोश) काल में ही आंखों को चुंधियानेवाले प्रकाश के स्तम्भ के (ज्वालालिंङ्ग) के चकाचौंध में ही इसकी पूजा विहित है क्योंकि उनके मत से सर्वप्रथम इसी वेला में ज्वालालिंङ्ग उदय हुआ था। अत: तिथियों में भेद होना स्वाभाविक ही प्रतीत होता है। वामाचार और दक्षाचार के अनुयायी विद्यापुराण तथा दूतिड़ामर आदि शिवरात्रि विषयक इतिहासों के अनुसार इस उत्सव को

प्राय: फाल्गुण प्रतिपदा से लेकर अमावस्या तक मनाते थे। त्रयोदशी के रात को यह उत्सव सम्पन्न होता था जो कि प्रतिपदा से आरम्भ होता था। त्रयोदशी के यज्ञ को भैरवयाग कहते थे। इसमें अष्टभैरव परमशिव के ही प्रतीक है, उनकी विधिपूर्वक पूजा होती थी और जिसकी अमिटछाप आजकल की पूजा में पाई जाती है।

कश्मीर के प्रसिद्ध विद्वान शिवोपाध्याय ने अपने ''शिवरात्रिनिर्णय:'' ग्रंथ में शिवरात्रि के दिन शुद्ध अन्न खाना ही उचित समझाा है और प्राणि हिंसा की निन्दा की है।

वटुकभैरव की पूजाविधि : वटुकभैरव की पूजा तथा रामभैरव (जो रामग्ओड के नाम से भी पुकारा जाता है, जिनका विधान शिवरात्रिपूजा में है, इस दिन जो ज्वालालिंङ्ग का आविर्भाव होता है वह चित् अर्थात् चैतन्यरूप ज्वाला का प्रकाश होता है। प्रकाश सदा अपरिछिन्न, अनन्त और अप्रमेय होता है। यही कारण है कि इस प्रकाश के आदि और अन्त को ब्रह्मा और विष्णु नापने के लिए पाताल और आकाश की ओर प्रकाश की थाह जानने के लिए चल पडे, पर वे पाने में असमर्थ हुए। इसी ज्वालालिंङ्ग का प्रतीक शिवलिंङ्ग भी गोलाकार होता है।, अर्थात् जिसका आदि अन्त का भान नहीं होता है। शिवपूजा के तत्व अनादिकाल से भारत में और इसके आसपास पडोसीदेशों में समीरिया, थाइलैण्ड, कम्बोडिया, जावा, सुमात्रा, इण्डोचीन; अफगानिस्तान, आदि में किसी न किसी रूप में प्रचलित थे।

कश्मीर में प्राय: ज्वालालिङ् की पूजा कुम्भों में होती है अर्थात् जलघटों में इसकी पूजा होती है क्योंकि शक्तिविशिष्ट शिव सूर्य कहलाता है। वही फाल्गुण मास में कुम्भराशि में होने के कारण कुम्भराशि के प्रतीकभूत कुम्भों की ही पूजा होती है।

सूर्य तथा चन्द्रमा कुम्भक प्राणयाम में प्राणगति तथा अपानगति में स्थित रहते हैं। एवं प्राणरूप सूर्य अपान रूप चन्द्रमा आन्तरिकयाग में केवल कुम्भक (प्राणायाम का भेद) में होते हैं। अत: कुम्भक के प्रतीकभूत कुम्भराशि पर कुम्भों की पूजा होती है।

ज्वालालिङ्ग का स्वरूप महाप्रकाश चैतन्यरूप ही है। ब्रह्मा जो रजोगुण स्वरूपमन कहलाता है। सात्विकबुद्धि जो सूक्ष्मरूप से है, वही विष्णु कहलाती है। इन तीनों का समावेश शिवरात्रि का वास्तविक निरूपण है और जितने भी देवता पशु, पंखी, मानव आदि हैं, वह सब चैतन्यप्रकाश की चिंगारियां हैं। जिस प्रकार अग्नि के अग्निकण, उसी प्रकार चैतन्यस्वरूप शिव से क्षेत्रप अनेकों निकलते हैं और विमर्शशक्ति से ही मन, बुद्धि आदि उत्पन्न होते हैं। क्षेत्र शरीर माना गया है उसके पालक जीव हैं अर्थात् क्षेत्रपाल जीव कहलाते हैं। उसका तिक्तादि रस और भोग्य अन्न है। ज्वालालिङ्ग निर्विकल्प है।

इस प्रारम्भ में कह आये हैं कि ज्वालालिङ्ग का प्रादुर्भाव फाल्गुण कृष्ण त्रयोदशी में हुआ है। उस समय ज्वालालिङ्ग का स्वरूप घोर एवं अघोरतम था। घोर से अभिप्राय तीव्र, दु:सह तथा प्रचण्डस्वरूप है। अघोर से सौम्य, दर्शनीय एवं व्यक्तरूप से है। अघोरतम से सौम्यतम, भद्र दर्शनीयतम, शान्तरूप से है जिसको क्रमश: वामाचार, दक्षाचार तथा महाचार के अनुयायी अपने अपने दृष्टिकोण के अनुसार देखते हैं। वामाचारियों के लिए ज्वालालिङ्ग घोर रूप एवं दक्षाचारियों के लिए अघोर एवं महाचारियों के लिए अघोरतम। तीनों मतों के अनुयायी क्रमश: प्रदोष तथा उसके अनन्तरकाल एवं अर्धरात्रि में ज्वालालिङ्ग को अपने मत के अनुसार पूजते हैं।

त्रयोदशी के दिन ही शिवरात्रि की पूजा का विधान है क्योंकि उस के अन्तर्गत पांचमात्रायें मानी गई हैं अर्थात् अकार,

मकार तथा बिन्दु एवं अर्धचन्द्र, निरोध, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिनी, समना, उन्मना, ये बारह कलायें तेरहवीं चित्भानु में समाविष्ट होती हैं अर्थात् वही चित्सूर्य अपनी स्वातन्त्रय शक्ति से वैखरी शक्ति के रूप में परिणत होकर जगत् का आभास जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति के रूप से करता है। इस प्रकार तेरहवें कलात्मक् चिद्भानु की प्रतीक, त्रयोदशी में पूजा का विधान है। यह 'स्वच्छन्दशास्त्र' का मत है। इसकी पुष्टि हमें हतिहास से भी मिलती है, शिवरात्रि त्रयोदशी। (जोनराज)

शिवचतुर्दशी का व्रत इससे सर्वथा भिन्न है जो माघ की कृष्णचतुर्दशी एवं फाल्गुण की कृष्णचतुर्दशी में विहित है। इन दोनों में प्रथम तो कश्मीर में दूसरा व्रत प्रायः समस्त भारत में मानाया जाता है। दोनों उपवास पर आधारित हैं। शिवरात्रि त्रयोदशी के उत्सव को शास्त्रों में 'भैरवयाग' कहा गया है। यह भैरव उत्सव कश्मीर में भैरवयाग के नाम से विख्यात है। इस में योगनियों तथा भैरवों को बलि दी जाती है। अतएव इस याग में मांस का प्रचलन अनिवार्य सा प्रतीत होता है। एक ओर से कश्मीर के अत्यधिकं शीत वातावरण में अन्तर इस समय से आता है और दो तीन मासों की मलिनता तथा दुर्गन्धिपूर्ण वातावरण को स्वच्छता से निर्मल बनाया जा रहा है और सूर्यदेव का क्रमिक उदय होता है क्योंकि यही स्थावर और जङ्गमात्मक जगत् का आत्मा है। इसीसे सस्यादि फलों का परिपाक होता है जिसका शकुन इसी उत्सव में अनादि काल से कश्मीरी देखते थे। इस शिवरात्रि के पुनीत उत्सव में कुछ एक अशास्त्रीय कर्मों का प्रचलन है जो सर्वथा त्याज एवं हेय है। जैसा कि जुआं खेलना एवं समाजिक कुरीतियां आदि। इसके अतिरिक्त मुसल्मान काल में मुसलमानों ने इस पुनीत पूजा में पुत्तलपूजा का समावेश किया है। कहा जाता है जब सुन्नी मुसलमानों ने इस

पूजा का विशेष चमत्कार तथा अत्यद्भुत प्रभाव प्रत्यक्षरूप से देखा, तो वह नितान्त प्रभावित हुए और समय समय पर पूजा के चमत्कारों से अत्यन्त चकित हुए। तब उन्होंने अपनी कल्याण कामना के निमित्त मूर्तिपूजा विरोधी होते हुए भी अपने बडे भाई कश्मीरी पण्डितों को जिनसे कुछ शताब्दियों से पूर्व वे विधर्म में प्रवेशकर अलग हुए थे, पुत्तल पूजा के लिए बाध्य किया। तब से यह ''सुन्नीपुतल'' पूजा में समाविष्ट हुआ है और ''स्वनिपुत्तल'' नाम से इसको पुकारते हैं। करते भी वह क्या? शताब्दिों के अत्याचाारों तथा अन्याय, एवं कर आदि के देने से कश्मीरी पण्डित त्रस्त थे। अतः लगता है कि उन्होंने इस को पूजा में मान्यता दी होगी। मेरे मतानुसार 'स्थाणुः पुत्तलः' से सनिपोंतल का नामकरण हुआ है। यानी स्थाणोः शिव जी का पुन्तलः प्वतुल – अर्थात् पुतला या मूर्ति – से हुआ है।

ऐसा एक अनुमान है क्योंकि शिवरात्रि प्रतिपादक कथाओं में पुत्तल का वर्णन मिलता नहीं, केवल लौकिकाचार में कुछ भेड आदि के पुतले आटे से कईयों की रीति के अनुसार बनाये जाते हैं।

इसी प्रकार सिक्खों ने भी अपने शासनकाल में मुसल्मानों के समान ही पण्डित जाति को इसलिए बाध्य किया था कि वह भी ''सत् नाम सत् नाम वैगुरूजी'' को इस परमपावनी चमत्कारिणी एवं रहस्यमयीपूजा में समुचित स्थान देने का अनुग्रह करें जिससे कश्मीरी पण्डित जनता ने तब इसलिए सहर्ष स्वीकार किया था कि सिक्खलोग गोब्राह्मणरक्षक होने के नाते उनके धर्म और जीवन को पुनर्जीवित करने वाले थे। अतएव त्रयोदशी के पूर्व द्वादशी में ''वागरिबाह'' के नाम से प्रसिद्ध है। विशेषकर सिक्खों के आश्रय में रहनेवाले पण्डितों में ही इस पूजा का विशेष प्रचार रहा है जैसे दर, भान, तिक्कू, राज़दान आदि।

इनके सम्बन्ध से इनके पुरोहितों में भी। शिवरात्रिपरक शास्त्रों में 'वागुर' का उललेख मिलता नहीं। अतएव इस प्रकार का अनुमान लगाना सहज ही प्रतीत होता है। माहात्म्यों के आधार पर अनेकों शिवरात्रिविषयक कथायें प्रचलित हैं जिन का उल्लेख करना अनुचित एवं अप्रासङ्गिक प्रतीत होता है केवल उदाहरण के रूप में एक कथा का सार लिखा जाता है :—

श्री सुन्दरनालक वन में स्वच्छन्द नाथ ने श्री भैरव का स्वरूप धारण करने के बाद अनेकों शक्तिस्वरूपा देवियों तथा योगिनियों का दर्शन किया जो शिवरात्रि के व्रत के सम्बन्ध अनेक प्रकाश के शुभ कार्य कलाप में व्यस्त थीं। भयानक रूपध ाारी स्वच्छन्दनाथ को देखकर भयभीत होकर इधर उधर भागती हुई वह नज़र आयी, केवल एकमात्र देवी वहां टिक गयी। वीरनायक स्वच्छन्द को अपने गणों से चारों ओर से संयुक्त देखकर त्रिकूटा पर्वत के शिखर पर बैठी हुई देवी क्रोध में उद्दीप्त हुई। तब एक जलकुम्भ पर दृष्टि पडते ही उससे वदुरुपधारी एकगण प्रकट हुआ, अर्थात् वटुक, जो स्वच्छन्द भैरव को प्रहार करने के लिए उद्यत हुआ। प्रहार करने को उद्यत (वटुकभैरव) गण की ओर देखकर श्री स्वच्छन्दनाथ ने अपनी बाहु को उससे निपटने के लिए प्रेरित किया। प्रति प्रहार के अभिलाषी स्वच्छन्दनाथ की ओर देखते हुए देवी ने दूसरे घट को देखकर हुङ्कार किया। तब दूसरे घट से दूसरा रमणीय रमणभैरव प्रार्दुभूत हुआ। एवं अन्यान्य घटों से अनेकों भैरव उत्पन्न हुए। उनको देवी ने आज्ञा देदी कि भैरव को दूर हटाने का प्रयत्न करो। तुम दोनों मेरे पुत्र सत्वोगुण तथा रजोगुण के स्वरूप हो। तुम अपने अन्य गणों के समेत भैरव को दूर भगा देने में जुट जाओ इस तरह जब स्वच्छन्दनाथ के सन्मुख वह झूझने को चले तो वह (स्वच्छन्द) अन्तर्धान हुआ, इस प्रकार कुम्भों को भैरवों का उत्पतिस्थान होने

के नाते इस अवसर पर पूजते हैं।

देवी का एक पुत्र उसके (देवी के) दृष्टि उत्पन्न होने के कारण वटुरूपधारी वटुक कहलाता है तथा देवी की शुभदृष्टि से उत्पन्न पुत्र दिव्यरूप धारी रमण अथवा राम कहलाता है। देवी जी ने इन दोनों के लिए उनके अपने गणों के समेत फाल्गुण कृष्ण त्रयोदशी के दिन बलि तथा पूजा का विधान नियत किया है। इसलिए इस उत्सव को भैरवयाग के रूप में उसी दिन काश्मीरी पण्डित जनता मनाती है। इन दोनों को वटुकभैरव तथा रामभैरव अथावा रामग्ओड़ के नाम से भक्त पुकारते हैं। इस वरदानरूप देवी के शासन से तथा उसीके द्वारा कथित नाना पदार्थों से उनकी तृप्ति की जाती है। भैरवों के इस वरदान को देखकर सब भयभीत एवं पलायित शक्तियों को स्वच्छन्दभैरव ने आवाहन किया। तब यह समस्त शक्तियां डरकर देवी के सामने ही आगयीं। इस के बाद देवी ने उनको आश्वासन दिया, "अब भयभीत होने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि मेरे पुत्र वटुक तथा रमण के दर्शन से स्वच्छन्द भैरव अन्तर्धान होगये।" अत: आपको अपने इष्ट पदार्थों से इन्हें तृप्त करना चाहिए। तब वटुकभैरव ने कहा, स्थावर जंगमात्मक जगत् मुझ में ही अवस्थित है, एवं पालन का काम रमण, राम के अधीन है, अन्य कोई नहीं।

इसके अनन्तर देवी ने अपनी मस्त शक्तियों को अपने ही शरीर में लीन किया। तब वटुकभैरव के वचन से कोपित स्वच्छन्दभैरव ने प्रदोष से लेकर निशीथपर्यन्त अपने धोररूप तेज को ज्वालालिङ्ग के रूप में प्रकट किया, जिसके ऊर्ध्वभाग तथा अधोभाग को देखने के लिए वटुक एवं रमण (राम) क्रमश: ऊपर तथा नीचे की ओर चले गये किन्तु छोर देख न पाये। निदान वह उसके शरण में पड़कर केवल चरणों का ही आश्रय

ढूंढने में लग गये।

हेरथ का नामकरण :

रन्तुकाम स्वच्छन्दनाथ ने इसदिन तीनबार रति का हेरते, हेरते, हेरते सम्बोधन किया। इस प्रकार सम्बोधन करने के अनन्तर इस पर्व की संज्ञा ''हेरथ'' नाम से हुई। तब से यह व्रत ''हेरथ'' नाम से प्रसिद्ध हुआ।

नाटः मेरे मतानुसार 'हर रात्रि' यानी शिव जी की रात है। 'हर रात्रि' का बिगड़ा हुआ रूप — 'हेरत' है।



मार्तण्ड

भारतवर्ष के पुराकालीन भारतीय वास्तु एवं मूर्तिकला में मार्तण्ड का विशिष्ट स्थान है। उसके खंडरात अभी भी प्रभावोत्पादक एवं संसार की श्रेष्ठ कालकृतियों में गिने जाते है।

मार्तण्ड का स्थापत्य पूर्णतया कश्मीर की देन है। मगर गान्धार शैली उसमें अट्टहास करती हुई नज़र आती है।

उत्तरगुप्त कालीन मूर्तिकला की प्रगति गान्धार कला शैली से प्रभावित है। उसने कश्मीर में प्रायः सभी मन्दिरों के लिए प्रतिकृति का कार्य किया है। जनरल कनिघम ने सन् 1848 ई० में 'मार्तण्ड' के संदर्भ में लिखा है : ''कश्मीर के समस्त ध्वंसावशेषों की भव्यता में सबसे अधिक आकर्षक तथा परिणाम एवं वातावरण की दृष्टि से मार्तण्ड का ध्वंसावशेष सुन्दर है। यह गौरवशाली ध्वंसावशेष मट्टन की ऊंची अधित्यका के उत्तरी छोर पर है। अनन्तनाग से तीन मील पूर्व में है। यहां के लोग इसे 'पाण्ड़व लरि' यानी पाण्डवों का घर तथा सर्वसाधारण लोग 'मट्टन' कहते हैं। किन्तु मट्टन संस्कृत शब्द मार्तण्ड का अपभंश रूप है।

मार्तण्ड का स्थापत्य एवं उसकी परिकल्पना पूर्व एवं पश्चिम का अनुपम कलात्मक मिश्रण है। कश्मीर के इतिहास से पत्ता चलता है कि कश्मीर पर तुर्किस्तान, अफगानिस्तान, गान्धार, यूनानी तथा ईरानी वास्तुकला का प्रभाव पड़ चुका था, गांधार शैली ग्रीस (यूनान) से प्रभवित थी। दिग्विजयी ललितादित्य ने अनेक प्रकार के स्थापत्यों को देखा था। उनके पर्यटन, प्रतिभा, प्रतिमा एवं वास्तु आदि दर्शनों के फल स्वरूप नूतन शैली का विकसित होना जरुरी था। उस पर कश्मीर का प्रभाव होना अवश्ंयभावी था। मार्तण्ड का मन्दिर इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

मन्दिर के पृष्ठभाग पर आठ पंक्तियों का एक भग्नावस्था में निम्न

शिलालेख लगा है। मन्दिर के पृष्ठभाग पर आठ पंक्तियों का एक भाग्नवस्था में निम्न शिलालेख पाया जाता है :-

1. हतश्चायं...।
2. पदमोभ हेतुत:स्वान् नाभि पद्मोद् भवाद् ब्रह्म प्राप्रिकृतोद्य..।
3. व्याप्युग्रधमोत्कर श्राध्य कर्तुपि प्रजां प्रतिदिन कुर्वन्निवाशान्नवाभूवि...।
4. वादव्यासजगत् त्रयाश्म मादाय:कुर्वन्नसदैवोदयम् चक्राक्रान्ति समुज्ज्वल: परिप...।
5. जो मुरारेरपि। क्रान्ताननना दिगम्बरात्कर परिव्याप्त त्रिलोकी तलाद् गोभि. ..।
6. मतानि ज्ञानशशभृत्खण्डस्य धाभ प्रभु भ्रम्यिन्नृत्त विधायिनोऽपि जगतो यशङ्कर...।
7. पप्रियोस्य त्रयसोपेन्दाब्जनाना प्रसभमपहृता शेष रक्षाश्रमस्य श्रीमा...।
8. श्रीमृताण्डस्य बिम्बं श्री श्री वर्मासपर्याहित

उक्त आलेख से यह सिद्ध होता है कि यशकर्मी श्रीवर्मा ने जो त्रिमूर्ति से भी बढ गये थे प्रबल शान्ति द्वारा प्रेरित होकर अपने राज्य के 70 वें वर्ष में मार्तण्ड की मूर्ति स्थापित करायी। इस अनुमान के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि रणादित्य ने रणपुरस्वामी नामक 'सूर्य मन्दिर' की स्थापना की थी। इसका प्रमाण मन्दिर के प्रथम मंच तक जाता है। उसके बाद ललितादित्य मुक्तापीड़ ने मरम्मत कर दूसरा मंच तथा मन्दिर बनाया। बाद में श्री वर्मा ने सूर्य मूर्त्ति की स्थापना की। यह मन्दिर 500 वर्षों तक अछूता रहा हे।



संदर्भ

1. जोन राज कृत राजतर ङ्गिणी: डॉ० रघुनाथ सिंह।



चतुर्थ खण्ड

कश्मीरी लोकगीत

कश्मीर में लोकगीतों की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। इन लोकगीतों में यहां की लोक संस्कृति का सूक्ष्म एवं यथार्थ चित्रण मिलता है। इतिहास के अध्ययन से पता चलता है कि कश्मीर विभिन्न संस्कृतियों का संगम-स्थल रहा है। इस संस्कृति पर हिन्दू, बौद्ध तथा इस्लाम धर्म का समय-समय पर प्रभाव पड़ता रहा है। सभी संस्कृतियों को आत्मसात् करके यह प्रदेश एकता के सूत्र को दृढ बनाता हुआ आदर्शमय रूप प्रस्तुत करता है। राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक परिवेश में जब यहां के लोगों ने कोई परिवर्तन देखा, तो यहां के लोकगीत जनजीवन से जुड़कर प्रकाश में आ गए।

ये लोकगीत विभिन्न रूपों मे पाये जाते है। इन गीतों में शुर्यबाथ (शिशु-गीत) वर्फ (महिला नृत्यगान) कविय्यबाथ (कृषक गीत) लड़ी शाह (हास्य व्यंग गीत) छकरिबाथ (शादी-ब्याह पर गाये जानेन वाले गीत) तथा वनवुन (मंगल गीत) मुख्य हैं।

इन कश्मीरी लोकगीतों में लय के साथ संगीत भी है। कश्मीरी संगीत का लोकप्रिय रूप छकरी जिसमें मटका तथा तुम्बक नारी का प्रयोग होता है। छकरी में प्राय:छ:पुरुषों की अथवा छ:स्त्रियों की कड़ी जैसे होती है। यानी छ: आदमी गोलाकार में बैठते हैं। इसमें अन्य यंत्रों का सहारा भी लिया जाता है। इसमें मटका मिट्ठी का होता है और वह तबले का काम देता है। तुम्बक नारी पक्की मिट्टी की नाली सी बनी होती है। इसका अगला हिस्सा गोलाकार होता है। जिसके खाली पैंदे पर किसी पशु की चमड़ी मढी होती है, जिस पर हस्तप्रहार करने से ढोलक जैसी आवाज़ पैदा होती है। इसके अतिरिक्त कश्मीर में एक और वाद्य यंत्र संतूर (संस्कृत-शततंत्री) भी प्रसिद्ध है, जिसका प्रयोग लोकगीतों के समय किया जाता है। ये लोकगीत प्रबन्धात्मक भी हैं और गाए भी हैं।

निर्लाइ, वर्फ, छकरी, लड़ीशाह एवं (वदनवान-मृत्यु) आदि से सम्बन्धित है।कश्मीरमें हिन्दू तथा मुसलमान अपने-अपने संस्कार विशेष उत्सवों पर हर्ष तथा उल्लास से मनाते हैं। हिन्दू महिलायें 'मेखला संस्कार' अर्थात् यज्ञोपवीत तथा विवाह के शुभ अवसरों पर जो लोकगीत गाती हैं, उन्हे कश्मीरी में 'वनवुन' कहा जाता है। वनवुन-वैदिक-मंत्रों के समान सस्वर (उदात्त, अनुदात तथा स्वरित सहित) गया जाता है। जैसे :-

''शुक्लं वॅरिथ वनवुन ह्योतमय,
श्वब फल द्युतये माजि भवॉनी।
स्वर्ग प्यठ ऑनमय पण्ड़था छ़ॉड़िथ,
ॲग्नु क्वण्ड़स क्युत ह्युतुन साथ च़ॉरिथ।।''

अर्थात:- 'शुक्लाम्बर धरं विष्णुं' श्लोक पढ़कर मैंने मंगल गीत आरम्भ किया। माता भवानी आपको शुभ फल दे। स्वर्ग से मैंने पण्ड़ित ढूंढ कर लाये अग्नि कुण्ड के लिए अर्थात् होम के लिए मुहूर्त निकाला। यज्ञोपवीत संस्कार समाप्त होने पर जब ब्रह्मचारी 'वटु' दरिया पर सन्ध्योपासना के लिए छत्र धारण करके जाता है। उस समय तो महिलायें गाती हुईं एक प्रकार का नृत्य करती हैं। इस पुण्य अवसर पर बारी-बारी से एक-एक महिला गाती है और अन्य महिलाये उसके इर्द गिर्द नाचती और सिक्के न्यौछावर करती जाती हैं और यह मंगल गीत गाती हैं :-

''हुम वॉथुम वॅगि खॉतुम, तॉत वॉथुम यारु बल।
बब बुड्य लाल वॉथुम, तॉत वॉथुम यारु बल।।''

अर्थात:- होम समाप्त करके मंड़न ब्रह्मचारी 'व्यूग' यानी रंगोली पर खड़ा हुआ फिर तोते के समान सुन्दर बालक दरिया पर गया। मुण्डन का संस्कार हिन्दुओं तथा मुस्लमानों में समानरूप से मिलता है। इस संस्कार के समय बालक के जटाओं (बालों) को काटा जाता है। यही जटाकर्तन कश्मीरी में 'ज़र कासय' के नाम से प्रसिद्ध है। उस समय नाई बालक के बाल कैंची से काटता है। इन कटे बालों को बाद में कुछ अखरोटों के साथ किसी तीर्थ स्थान

पर ज़मीन के नीचे दबाया जाता है। कश्मीरी मुसलमान मुण्डन का संस्कार अपने लड़के और लड़की, का किसी दरगाह या मस्जिद में कराते हैं। इस अवसर पर महिलायें इस प्रकार गाती है।

''बिस्मिल्लाह कॅरिथ ज़रु कासयो, इस्मे आज़म परयो।''

अर्तातः- तुम्हारा मुण्डन करा दूंगी। बिस्मिल्लाह करके उस आज़ाम (परमात्मा) का नाम सबसे पहले ले लूंगी। कश्मीरी हिन्दुओं (पण्डितों) का विवाह समारोह तीन दिन चलता है। पहले दिन 'मेंहदी रात', दूसरे दिन दिव्यगायन (दिवगोन) तथा तीसरे दिन-विवाह यानी लग्न। इन भिन्न-भिन्न समारोहों पर अनेक प्रकार के लोकगीतों से वातावरण अह्लादपूर्ण तथा शान्तिमय दिखाई देता है। कश्मीर में मुस्लमान भी विवाह का आरम्भ 'मेंहदी रात' से करते हैं। वे भी दुल्हन को इस दिन मेंहदीं लगाते हैं। उसे मेंहदी लगाते समय स्त्रियां इस प्रकार गाती हैः-

''अज़ छम माँज़िराथ पगाह येनिवोलुय।
कूकिल्व पॉट गुलि वॉलुये।।''

अर्थातः- आज मेंहदी रात हे, कल बरात आएगी। कोकिला बेटी ने कलाईयों में रेशम की डोरी बांध रखी है।

कश्मीर प्राचीनकाल में ललित कलाओं विशेषरूप से नाट्यकला तथा नृत्यकला में बहुत आगे बढ़ा था। इसका प्रमाण हमें विभिन्न स्त्रोतों से मिलता है। 'नीलम्तपुराण' से हमे मालूम होता है कि घाटी में सामान्यरूप से समय-समय पर नाट्य प्रदर्शन होता था। इसमें हमें विशेष तिथियों पर नाट्य प्रदर्शन के अनेक उदहारण तथा विशेष तिथियों पर नाट्य प्रदर्शन के अनेक उदहारण तथा विशेष तिथियों पर नटों (रंगजीवियों) द्वारा प्रेक्षादान के संकेत भी मिलते हैं।

इसके अतिरिक्त पुरातत्वविदों को खरोष्ठी लिपि में चौथी शती की 'एक टाइल' हारवन से प्राप्त हुई है। उसमें रेखा चित्रों में तीन संगीतकार दिखाई देते हैं। उनमें एक बांसुरी,मध्य में एक मंजीरा और तीसरा ढोल बजाता दिखाई देता है। दूसरी टाइल में एक महिला संगीतकार ढोल बजाती है। तीसरी टाइल में नर्तकी नज़र आती है। इस संदर्भ में हमे अन्य रचनाओं में भी दृश्य

श्रव्य साधनों का वर्णन मिलता है।

कश्मीर के सुप्रसिद्ध कवि दामोदर गुप्त ने अपनी रचना - 'कुट्टनी मतम्' में लिखा है कि यहां नृत्य का प्रदर्शनविशेष उत्सवों पर किया जाता था। इसी प्रकार सुप्रसिद्ध इतिहासकार कल्हण पण्डित के अनुसार यहां नृत्य का प्रदर्शन प्राय:विशेष रूप से देवालयों में किया जाता था। इस तरह अन्त: साक्ष्यों तथा बाह्य साक्ष्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है। कि कश्मीर में नृत्य एवं गायन की परम्परा प्राचीनकाल से चली आ रही है।

कश्मीर में कई शताब्दियों तक हिन्दू शासकों ने नृत्य कला को प्रोत्साहित कर दिया था। दिग्विजयी सम्राट् ललितादित्य मुक्तापीड़ के राज दरबार को इन्द्रप्रभा नामक एक नर्तकी सुशोभित करती थी। इसका उल्लेख हमें राजतरंगिणी में मिलता है। यद्यपि मध्यकाल में सुलतान ज़ैन-उल्लाब्दीन को छोड़कर अन्य शासकों ने नृत्यकला की ओर ध्यान नहीं दिया तथापि कश्मीरी नृत्य की अथवा नाट्यकला की प्राचीन शैलियों के अंश आज भी किसी न किसी रूप में नज़र आते हैं। कालान्तर इन्होंने लोकनृत्य का रूप धारण कर लिया है। इनमें से कुछ एक का वर्णन संक्षिप्त रूप में किया जाता है।

रोफ-रोव:

यह कश्मीरी लोकनृत्य बहुत ही लोकप्रिय है। इसका शाब्दिक अर्थ नाचना और गाना है। यह नृत्य प्राय:मुसलमान महिलायें विशेष उत्सवों पर यानी शादी या ईद के अवसर पर करती है। गाने वाली नारियां दो वर्गों में बंट जाती है। एक वर्ग की नारियां दो पग आगे चलकर और फिर दो पग पीछे हटकर एक पंक्ति के बोल बोलती हैं। उसके बाद दूसरे वर्ग की नारियां भी इसी तरह दूसरी पंक्ति बोल बोलकर दो पग आगे और फिर दो पग पीछे हटकर अपने स्थान पर लौट आती हैं। दोनों वर्गों की नारियां अपने-अपने वर्ग में एक दूसरे की भुजाओं को जकड़ कर सामूहिक रूप से आगे-पीछे होकर 'रोफ' करती है। 'रोफ' के इन लोकगीतों में आनन्द की भावना प्रस्फुटित होती है। कभी-कभी 'रोफ' उस समय भी किया जाता है। जब दुल्हा अपने ससुराल की ओर प्रस्थान करता है या वह दुल्हन को

अपने साथ साथ वापस घर ले आता है। किसी समय ऐसी भी स्थिति आ जाती हे जिस की दुल्हन ससुराल के कटु व्यवहार से तंग आकर 'रोफ' के माध्यम से अपनी व्यथा को प्रकट करती है :-

''ब्वद्रस-ब्वद्रस यार् बल कुनये।
तति हय समखुम बब पन्नुये।।
निवान तय नीनस गर् पन्नुये।
हेरि-हेरि कॉरनम पोशि वथरुनये।।
लॊत-लॊत ह्यॊतमस ऒश त्रावुनुये।
दॊपनम कूरि गछ़ि च़ालनुये।।''

अर्थात:- लड़की उतर कर नदी के किनारे पहुंची, वहां मुझे प्रिय पिता मिले, वह मुझे मायके के द्वार तक ले गये, वहां स्वागत में उन्होंने फूल बिछाये। धीरे-धीरे मैं राज़ (रहस्य) खोलती गई तथा आंसुओं की धारा मेरी आंखों से फूट पड़ी, कहने लगे बेटी, यह सब कुछ तुम्हें सहना है।

दमाल्य-दम्माली :

कश्मीरी लोकनृत्य का एक रूप है। इसका शाब्दिक अर्थ है उछल कूद यह नृत्य बहुत पुराना तथा साधारण है। कश्मीरी घाटी में 'गांदरवल' के नज़दीक लाल बाबा साहब के उर्सम (विशेष पर्व मुसलमानों का) पर मेला लगता है, और इस मेले पर यह नृत्य कई दिनों तक चलता रहता है। लोग भिन्न-भिन्न दिशाओं से आते है और नृत्य का आनन्द लेते हें। नर्मक एक लम्बे दायरे के अन्दर नाचते हें। एक ओर बड़े-बड़े ढोल बजाने वाले होते हैं और बीच में नाचने वाले। कश्मीरी भाषा में इन नर्तकों को 'दम्बाली फकीर' कहते हैं। ढोल पर चोट पड़ती है तो दम्बाली फकीर उछलते कूदते हैं।

लड़ी शाह:कश्मीरी लोक संगीत में लड़ीशाह का महत्वपूर्ण स्थान हे। लड़ीशाह किसी घटना को पद्यों में झुलता है। विशेष अवसरों पर किसी विशेष घटना को पद्यात्मक रूप देकर लड़ीशाह उसे घर-घर जाकर सुनाता हे, उस समय उसके हाथमें एक वाद्ययंत्र या त्रुम-त्रुम होता है। त्रुम-त्रुम एक ताल

वाद्य है। प्राय: पौने मीटर लोहे की छड़ में अनेक लोहे के छल्ले डालकर इसके सिरों को मोड़ देते हें। इसे बजाने के लिएइसके मुड़े हुए एक सिरे को बाएं बगल के साथ टिका कर तथा दूसरे मुड़े को बांए हाथ से पकड़ कर दाएं हाथ से लोहे के छल्लों को एक विशेष लय में संचालित रखने का क्रम जारी रखते हुए लयात्मक ध्वनि पैदा की जाती हैं। कभी-कभी लड़ीशाह में व्यंग की प्रधानता होती है। सबसे पहले जब कश्मीर में हवाई जहाज आया तो लड़ीशाह की वाणी ने धूम मचा दि थी।

''हवाई जाहज़ आव मुल्के कश्मीर।
यिमव बूज़ तिमव कोर तोबु तकसीर।।''

हिकट:

यह नृत्य भी साधारण है जो बालाओं तथा युवतियों का नृत्य है। हिकट-शकट का बिगड़ा हुआ रूप है। संस्कृत में शकट का अर्थ पहिया है। जिस प्रकार पहिया घूमता है उसी प्रकार हिकट में बालाएं गोलाकार में नाचती है। दो लड़कियां एक दूसरे के आमने-सामने खड़ी होकर तथा बाहों को एक दूसरे के आमने-सामने खड़ी होकर तथा बाहों को एक दूसरे पर रख, गुणा चिन्ह सा बनाकर एक दूसरे का हाथपकड़ती है और धीरे-धीरे 'हिकट' के बोल बोलते हुए गोलाकार में नाचती हैं। नृत्य-पहले धीमी गति से आरम्भ होता है उस के बाद एक बाला एक बोल बोलती हे दूसरी इसका जवाब देती है। अन्तिम दो बोलों तक पहुंचते-पहुंचते नाच एवं इसकी लय तेज हो जाती है।

''ग्रटु ज़्ला दीतव यॆति छुय नीतव।
बॅड़ मॉज्य कोत गॉमुच,
पशस प्यठ प्यामुच़।।

अथार्त् :- ज़रा अपनी चक्की देना, यह पड़ी है लेलो, मां कहां है? छत पर उसका बच्चा हुआ है। इस तरह कश्मीरी लोकगीतों के विविध आयाम हैं। नि:संदेह, लोकगीत मिली-जुली संस्कृति के प्रतीक तथा परिचायक हैं।



कश्मीरी साहित्य और यूरोप के शोधकर्ता

ऐतिहासिक स्त्रोतों के अनुसार कश्मीरी साहित्य का श्रीगणेश शितिकण्ठ के 'महानय प्रकाश' से होता है। विद्वानों के मतानुसार शितिकण्ठ का जन्म तेरहंवी शती में माना जाता है। अतः कश्मीरी साहित्य की पहली रचना यही मानी जाती है। इस कृति का संपादन महामहोपाध्याय पं० मुकुन्दराम शास्त्री ने किया तथा इसका प्रकाशन 1918 ई० में जम्मू व कश्मीर के प्रत्नविद्याप्रकाश (रिसर्च) से देवनागरी लिपि में हुआ। इस कृति में चौदह उदय (भाग) हैं तथा सौ से अधिक पद्य हैं। इस कृति पर शैवदर्शन का प्रभाव स्पष्टरूप से दृष्टिगोचर होता है क्योंकि कश्मीर में शैवदर्शन का विकास आठवीं शती से चौदहवीं शती तक पराकाष्ठा पर था। यही कारण है कि इसका प्रभाव हमें संस्कृत-रचनाओं के अतिरिक्त कश्मीरी रचनाओं पर भी दिखाई देता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण 'महानय-प्रकाश' है। इस कृति में संस्कृत के तत्सम तथा तद्भाव शब्दों के अतिरिक्त प्रायः प्राकृत तथा अपभ्रंश की शब्दावली भी प्रचुर-मात्रा में मिलती है अर्थात् तत्कालीन प्रचलित कश्मीरी-भाषा का स्वरूप पूर्णरूप से मिलता है। अतः यह कहना संगत नहीं है कि 'महानय प्रकाश' कश्मीरी साहित्य का प्रथम निदर्शन नहीं है। इस कृति का एक पद्य दृष्टान्त के रूप में प्रस्तुत किया जाता है :-

''यसु यसु जन्तुस संविद यस यस
नील पीत सुख दुख सरूप।
उदयिस दत्त समानी समरस
कम कम्पन तस तस अनुरूप।।''

अर्थात् जिस जिस प्राणी को उसकी बाह्य इन्द्रियों के द्वारा या उसके मन के द्वारा जो जो नील पीत आदि रूपा या सुख दुखादिरूपा संवेदना उदित होती है, वह वह इस कममार्ग के अनुकूल वनती हुई एकरूप समरसाकार

महासंवित् ही के रूप में उसके लिए चमक उठती है।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि कल्हण-कृत राजतरङ्गिणी में 'रङ्गस्स हेलु दिण्णेति' अर्थात् रंग को हेल नामक गांव दिया गया, आदि कश्मीरी वाक्यों तथा शब्दों का प्रयोग किया गया है। इसी तरह संस्कृत साहित्य के श्रेष्ठ कवि क्षेमेन्द्र (ग्यारहवीं शती) के 'देशोपदेश' नामक काव्य में 'देशभाषा पदैः मिश्रैः' देशीयभाषा का तथा कल्हण के समकालीन बिल्हण (बारहवीं शती) के महाकाव्य 'विकमाङ्कदेवचरित' में ''यत्रस्त्रीणां किमपंर जन्मभापावदेव प्रत्यावासं विलसति वचः संस्कृतं-प्राकृतञ्च'' अर्थात् जहां की स्त्रियां जन्मभाषा की तरह (कश्मीरी की तरह) संस्कृत तथा प्राकृत का प्रयोग करती थीं, इस में मातृभाषा कश्मीरी के संकेत मिलते हैं। इन उदाहरणों से यह बात स्पष्ट होती है कि उस समय भी कश्मीरी साहित्य का निर्माण किसी न किसी रूप में हुआ होगा किन्तु कश्मीर में राजनैतिक परिस्थितियों के कारण इसका विकास नहीं हो सका।

'महानय प्रकाश' के बाद चौदहवीं शती में कश्मीर की प्रथम प्रसिद्ध कवियत्री परम योगिनी ललद्यद के वाख (वाक्) पाए जाते हैं। ललद्यद के जन्म के विषय में यद्यपि विद्वानों में मतमतान्तर हैं तथापि इस मत से सभी सहमत हैं कि उसका जन्म चौदहवीं शती में हुआ है। प्राचीन संस्कृत के इतिहासकारों ने जोनराज तथा श्रीवर में ललद्यद के जन्म के विषय में कुछ नहीं लिखा है। फारसी भाषा के सुप्रसिद्ध इतिहासकार पीर गुलाम हसन खुयहामी ने सबसे पहले 'तारीख हसन' में ललद्यद की जीवन घटनाओं का वर्णन किया है। उसके बाद मध्ययुगीन मुस्लिम इतिहासकारों में से बाबा दाऊद मुश्काती ने 'असरार-उल-अबरार' में, ख्वाजा मोहम्मद अज़म दीदमरी ने, वाक-आल-ए-कश्मीर' में, मुहम्मद दीन फौक ने 'ख्वातीन कश्मीर' में ललद्यद का उल्लेख विस्तृत रूप से किया है। इसका जन्म पद्मपुर (वर्तमान पांपोर) नामक गांव के एक ब्राह्मण घराने में हुआ था। इनके गुरु का नाम सिद्धमोल था जो शैवदर्शन का मर्मज्ञ था। इन्हीं से लल्लद्यद ने दीक्षा ली थी। अन्त में गृहस्थ

छोड़कर वह आध्यात्मिक मार्ग की ओर प्रवृत्त हुई।

लल्लद्यद का जन्म उन विकट परिस्थितियों में हुआ जिस समय कश्मीर में दो संस्कृतियों के बीच टकराव था। एक संस्कृत का सूर्य लुप्त हुआ था तथा दूसरी संस्कृति का सूर्य उदित हुआ था। इन दो सांस्कृतिक धाराओं के बीच में लल्लद्यद के 'वाख' लोगों को मानवता तथा शांति का संदेश देने में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुए। अद्वैतवाद पर चलने वाली उस उत्कृष्ट योगिनी ने शैवदर्शन का संदेश इस 'अमर वाख' में इस प्रकार दिया है :-

''शिव छुय थलि थलि रोज़ान, मो ज़ान ह्योंद तु मुसल्मान।।''

अर्थ:- कण कण में है शिव का वास, मत कर भेद हिन्दू मुस्लिम में।

लल्लद्यद के बाद ऋषि सम्प्रदाय के संस्थापक नुन्दऋषि का नाम कश्मीरी साहित्य में उल्लेखनीय है। इनका जन्म सन् 1377-78 ई० में 'कैमूह' नामक गांव में हुआ था। ये गृहस्थी होकर भी महात्माओं की तरह गिरि कन्दराओं में अपनी साधना में रहते थे। अंत में संन्यास धारण करके ये वैष्णव रहे। इनकी मृत्यु 1442 ई० में हुई। इनके श्रुक्य (श्लोक) कश्मीरी साहित्य में सदा अमर रहेंगे। इनके वाखों पर सूफीमत के अतिरिक्त 'प्रत्यभिज्ञा दर्शन' का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। इनके श्रुक्यों में एक 'श्रुख' दृष्टव्य है :-

''सु म्य निशे बु तस निशे, म्य तस निशे करार आव।
नाहंकु छोंडुम म्य परदीशे, पनने दीशे म्य यार आव।।''

अर्थ:- वह मेरे पास है मैं उसके पास हूँ। मुझे उसी के पास आनन्द मिला। मैंने उसे व्यर्थ ही दूसरे देशों में ढूंढा।

अपने ही देश अर्थात् अपने आप में ही मेरा प्रियतम (परम-शिव) मेरे हाथ आया।

चौदहवीं शती के बाद कश्मीरी साहित्य में विशेष प्रगति नहीं हुई है। जैन उल्लाब्दीन के समय (1420-1470) हमें लारनिवासी भट्टावतार की 'बाणासुर कथा' पद्यों मे मिलती है। यह कथा 'हरिवंश पुराण' के आधार पर लिखी गई है। इसमें भगवान् कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न को बाणासुर की पुत्री उषा के

साथ प्रेम होता है। इसी प्रेमाख्यान का वर्णन इस खण्ड़काव्य में कवि ने मार्मिक शैली में किया है। इस काव्य में संस्कृत छन्दों के अतिरिक्त कश्मीरी छन्दों- दुक्कटिका, नर्कटका, वञचवाजा आदि का प्रयोग किया गया है। इन पद्यों में से एक पद्य उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जाता है :-

''शुन उप एकमने तू भूप, बाणस कृष्णस महायुद्ध भूपव।
यो पत जित्तेन सुरूपा, असुर सो बन्नाय सा सुबुद्ध।।''

अर्थ:- अरे राजन्! एकाग्रम होकर तू सुन। बाणासुर तथा कृष्ण में लड़ाई हुई। इसके बाद उस सुन्दर असुर को जीता गया, मैं उसके बारे में बताऊँ कि वह (असुर) बड़ा बुद्धिमान है।

यह काव्य कवि ने देशीय भाषा में लिखा है जिसका संकेत उन्होंने अपने काव्य में अन्तिम पद्य में इस प्रकार से किया है :-

''श्री जैनोल्लभदीने नरपति रचिते धर्मराज्ये सुशुद्धे,
बड़िवंशे वत्सरे इह पनमेत सरसे कृष्णबाणान युद्धे।
देश्यो अवतार भहे विरचोन रमणी आख्य पश्येत् सिद्धे,
बन्धा गीर्वाणभाषि अज़ हरिवंशे भारतेति गरुद्धे।।''

इसी के शासन काल के समय हमें नोत्थसोम तथा यौधभट्ट की कश्मीरी रचनाओं 'जैन चरित' तथा जैनप्रकाश' का संकेत श्रीवर कृत राजतरङ्गिणी में मिलता है। दुर्भाग्य से ये दोनों रचनाएं अलभ्य हैं। बाद में शाहमीरी शासनकाल के बाद चक शासनकाल (1554-1486 ई०) मुगल शासन काल, अफगान शासन काल, सिख शासन काल (1815-1846) डोगरा शासन काल (1843-1946 ई०) इन कालों में कश्मीरी साहित्य की विभिन्न विधाओं की उल्लेखनीय प्रगति न हो सकी। क्योंकि इन दौरों में फारसी भाषा ही राज्यभाषा के पद पर आसीन थी। परिणामस्वरूप कश्मीरी भाषा को राज्याश्रय न मिला।

चक शासन काल में हब्बाखातून तथा अफगान काल में अरणीमाल तथा सिक्ख शासन में परमानन्द आदि साहित्यकारों की रचनायें मिलती हैं।

विरहगीत लिखने का श्रेय हब्बा खातून तथा अरणीमाल को मिलता है। हब्बा खातून गीतिकाल की श्रेष्ठ कवियित्री मानी जाती है। फारसी भाषा के इतिहासकार हसन खुयहामी के कथनानुसार हब्बा खातून युसुफशाह चक की सहवासिनी थी। उसके विरह व्यथित तथा दग्ध हृदय से संतप्त यह कविता दृष्टव्य है :-

''चु़ कम्यू स्वनि म्यानि ब्रम दिथ न्यूनखो, चे़ क्योहज़ि गॅयी म्यॉन्य दु़य।
च़ख त्राव दय मलाल वोंद छुय न यिवान, चे़ क्योहज़ि गॅयी म्यॉन्य दु़य।।''

अर्थ:- तुझे मेरी किस सौत ने भरमाया, जो तू मुझ से घृणा करने लगा। रे मेरे प्रियतम! क्या तेरा दिल यह गुस्सा व नफरत छोड़ नहीं सकता। मुझ से नफरत क्यों। रे मेरे प्रियतम।

अरणीमाल - इनके जन्म के विषय में विद्वानों में मतभेद पाया जाता है। इनका जन्म स्थान पलहालन नामक गांव माता जाता है। इनकी मृत्यु 1800 ई० में बताई जाती है। इसका संकेत स्वयं कवियत्री ने निम्न पद्य में किया है :-

''स्वन हो फोजयरव वनन तु़ केंडज़ालन पलहालन माल्युन छुये।''

इनका विवाह फारसी के प्रसिद्ध कवि मुंशी भवानीदास से हुआ था। अरणीमाल को भी रूपभवानी की तरह मायके में विरह की असह्य वेदना सहनी पड़ी।

उनके दग्ध-हृदय से निकली हुई कविता का एक नमूना देखिए:-

''अरणि रंग गोम श्रावन्य हिये, कर यियो दर्शुन दिये।
शाम सोन्द्रे पामन लॉजिस, आम तावि कोताह गॉजिस
नाम व पैगाम तस कुस निये, कर यियो दर्शुन दिये।।''

अर्थ:- री सखी! प्रियतम के विरह में अरणी फूल की तरह मेरा रंग पीला पड़ गया। न जाने वे कब आयेंगे। उस श्याम सुन्दर ने अर्थात् प्रियतम ने मुझे उपालम्भ का पात्र बनाया। इन विरह के अग्नि-बाणों से मेरा हृदय दहक रहा है। मेरा संदेश उन तक कौन पहुंचाये?

गीतिकाल के बाद कश्मीरी साहित्य में संत कवियों व सूफी कवियों

की परम्परा आरम्भ होती है। इन संत कवियों में शमस फकीर स्वच्छ काल, शाह गफूर, परमानन्द, रहमान डार, न्यामसोब, असदपरे, वाज़महमूद, अहमद बटवार्य आदि कवियों के नाम महत्वपूर्ण हैं। इनमें से कुछ कवियों का परिचय यहां दिया जाता है।

शमस फकीर - इनका जन्म सन् 1843 ई० में श्रीनगर के चिंक्राल मुहल्ला में एक मध्यवर्गीय घराने में हुआ था। इनका वास्तविक नाम मुहम्मद सद्दीक भट्ट था। कालान्तर में सूफी कवि न्यामसाहिब की प्रेरणा से इन्होंने कश्मीरी कविता लिखना प्रारम्भ किया। इनकी कविता सूफीमत तथा वेदान्त दर्शन से प्रभावित है। एक पद्य का नमूना प्रस्तुत है :-

''बोज़ अॅश्कुन दोद यार गोम, मौत माशोक याद प्योम,
मयखानु मंज़ु मय चोम, मौत माशोक याद प्योम।
सॉरी छि प्वखतु बु द्रास ओम, मौत माशोक याद प्योम।।''

अर्थ:- अरे मित्र! मेरे इश्क का दर्द सुन। मुझे मदमस्त प्रियतमा याद आई। मधुशाला में मैंने प्रेम की शराब पी। मुझे प्रियतमा की याद आई। उस कुम्हार (ईश्वर) ने विभिन्न रंगों के बर्तन बनाए, सारे बर्तन तो पक्के थे। मैं ही केवल कच्चा बर्तन हूँ।

स्वच्छक्राल - इनके जन्म मरण की तिथि अभी तक अज्ञात है। ये पुलवामा तहसील में इन्द्र नामक गांव के रहने वाले थे। जाति के ये कुलाल (क्राल) थे। अत: लोग इन्हें स्वच्छक्राल के नाम से पुकारते हैं। इनकी कविता आध्यात्मिक चिन्तन के साथ विरह की वेदना से समाहित है जैसे-

''हता पानु बु कुस गोस, ओस बु बहानय,
माजि यॅलि ज़ास थनुय, पानय ओस बु बहानय।।''

अर्थ:- रे मन! मैं कौन हूँ। इस नश्वर संसार में मेरा जन्म एक बहाना मात्र है। जब मैं गर्भ से निकला तो चांद और सूरज देखे। जैसा मैं इस संसार में आया वैसा ही यहां से चला जाऊंगा। मेरा शरीर केवल निमित्त मात्र था।

शाहगफूर - ये सूफी सम्प्रदाय के प्रथम कवि माने जाते हैं। इनकी

जन्म तिथि अनिश्चित है। इनका जन्म स्थान बड़गाम तहसील में छोन नामक गांव बताया जाता है। इनके काव्य में सूफी दर्शन के अतिरिक्त वेदान्त दर्शन के सिद्धान्त भी पाये जाते हैं जैसे :-

''योत यिथ ज़न्मस केंह छुन लारुन, दारनायि दारुन सो हम सो।
ब्रह्मा विष्णु महीश्वर गछ़ि गारुन, शिव शक्ति आसी तिहंज़ि ज़ेव
पान है खरनय जान ह्यख मारुन, दारणायि दारुन सो हम सो।।''

अर्थः- इस संसार में आकर मनुष्य को कुछ नहीं मिलता है। रे मनुष्य ! तू उसकी धारणा लगाओ जिसका तू रूप है। वेदान्त दर्शन के अनुसार 'तत् त्वमसि' अर्थात् तू (जीव) उसी का (ब्रह्म) का रूप है। रे मनुष्य ! ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर को ढूंढ। शिव तथा शक्ति उसी के (ब्रह्म) रूप हैं। तू अपने समान दूसरों से भी प्रेम कर। तू उसी का ध्यान कर जिसका तू स्वरूप है। तू अपने समान दूसरों से भी प्रेम कर। तू उसी का ध्यान कर जिसका तू स्वरूप है।

परमानन्द - इनका जन्म मट्टन के निकट अनन्तनाग ज़िला में सीर गांव में सन् 1791 ई० में हुआ था। इनके पिता का नाम कृष्ण पण्डित तथा माता का नाम सरस्वती था। इन्होंने अपना बाल्यकाल मार्तण्ड में ही बिताया। मार्तण्ड तीर्थ में साधुओं तथा सन्तों के सम्पर्क में रहकर इनके व्यक्तित्व पर इसका विशेष प्रभाव पड़ा। फलतः इन्होंने अपना सारा जीवन कृष्ण भक्ति में ही बिताया। कृष्ण भक्त शाखा के कवियों में वही स्थान प्राप्त किया जो राम भक्त शाखा के कवियों में हुआ। इनकी कृष्ण भक्ति का एक पद्य दृष्टव्य है :-

''गूकल हृदय म्योन तति चोन गूर्यवान, च़्यथ व्यमर्श दीप्तिमान भगवानो।
वावलूकपाल द्राव लछ डुवु नावानो, इन्द्राज़ पतु लिव नावानो।।
वसन्त रंगु रंगु पोश वथरावानो।। च़्यथ व्यमर्श...।।''

अर्थः- रे आत्मा रूपी नारायण ! मेरा हृदय गोकुल है। वहां ही तुम्हारी गौशाल है। श्रीकृष्ण राधा के विवाह के समय खुद वासुदेव ने धूल हटाकर मार्ग साफ किया। इन्द्र ने पानी का छिड़कांव किया। बसन्त ने रंग बिरंगे फूल बरसाये।

इसी तरह आधुनिक कवियों में मधुसूदन खुयहामी का नाम सूफी

कवियों में परमानन्द तथा कृष्ण राज़ादान के बाद बड़े आदर से लिया जाता है। इनका जन्म श्रीनगर के खरयार मुहल्ला में 1912 ई० में हुआ। इनके पिता का नाम माधवजीव (जुव) था जो कर्मकाण्ड के प्रकाण्ड पण्डित थे।

ये योगाभ्यासी तथा भगवान कृष्ण के अनन्यभक्त थे। इन्होंने शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन करके 'कुरान शरीफ' का भी अध्ययन किया था। इनकी प्रतिभा अद्वितीय थी। इनके कविता संग्रह का नाम 'मधुर्या गिरा' है जिसमें एक सौ से अधिक कवितायें हैं। इन्हेंने अपना नश्वर शरीर 1969 ई० में त्याग दिया। इनके अप्रकाशित काव्य में से कृष्णभक्ति का एक नमूना प्रस्तुत किया जाता है :-

''कृष्ण कृष्ण छुस ज़पान रात्रो द्यन तय, वनतय भगवान कोनय आम।
त्रयि तापु ज़ोलनस संतानन तय, व्योद छुम नु कर्मुफल च़ॅसिथ कुस आम
यिनस तु गछ़नस छुम नु छ़्यन बनन तय, वन तय भगवान कोनय आम।।''

अर्थ:- मैं तो दिनरात श्री कृष्ण का जप करता हूँ। कहो! भगवान क्यों नहीं आगये। मुझे तीन प्रकार के संतापों - आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक ने जलाया। मुझे मालूम नहीं है कि किस कर्मफल के कारण मेरा जन्म इस संसार में हुआ है। आवागमन का सिद्धान्त भी अटूट है।

आधुनिक काल का आरम्भ भी अवतार कृष्ण 'रहबर' के अनुसार 1925 ई० से आरम्भ होता है। इस काल में दो महान् आन्तिकारी कवि पैदा हुए - गुलाम मुहम्मद महजूर तथा अब्दुल अहद आज़ाद। महजूर का जन्म 1885 ई० में पुलवामा तहसील के मित्रगांव में हुआ था। इनके पिता का नाम पीर अब्दुल शाह तथा माता का नाम सईदा बेगम था। 1831 ई० में जब 'मुस्लिम कांफ्रेस' ने डोगराशासन के विरुद्ध नारा लगाया तो लोगों ने उनकी कविता को राष्ट्रीय गीत के रूप में अपनाया। फलस्वरूप उनकी चेतनाप्रद कविता से लोगों में जागृति पैदा हुई। उनकी व्यंगात्मक शेली से यहां तहलका मच गया। कालान्तर 1952 ई० में उनका देहावसन हुआ।

महजूर के समाकलीन अब्दुल अहद आज़ाद का जन्म 1903 ई० में

बडगाम में हुआ। ये अपने गांव में अध्यापक नियुक्त हुए थे। यह अधिक शिक्षित नहीं थे परन्तु इनकी प्रतिभा अनुपम थी। इन्हें कश्मीरी भाषा तथा उर्दू पर समान-अधिकार था। इनकी कश्मीरी कविताओं में विश्वबन्धुत्व की भावनाओं के समेत क्रान्ति की भावना भी स्पष्टरूप से झलकती है। राष्ट्रवादी कवि की मृत्यु 1948 ई० में हुई।

1947 ई० में जब हमारा भारत ब्रिटिश साम्राज्य के चुंगल से आज़ाद हुआ, तो सारे भारत में राष्ट्रीयता की चेतना जागरूक होने लगी। कश्मीर में भी क्रान्तिकारी तथा राष्ट्रवादी कवियों ने अपनी कवितायें इसी शैली में लिखीं। यह शैली सबसे पहले महजूर तथा आज़ाद ने अपनाई। बाद में अन्य कवियों ने भी इस शैली का प्राय: अनुकरण किया। उसके बाद आधुनिक धारा में अन्य कवि, गद्य लेखक, नाटककार, उपन्यासकार भी आते हैं। कवियों में मास्टर जी ज़िन्द कौल, पीर गुलाम रसूल नाज़की, दीनानाथ नादिम, रहमान राही, अमीनक़ामिल, गुलाम नबी फिराक, मुज़फर आज़िम, चमनलाल चमन, मोती लाल साकी, मरगूब बानिहाली, अर्जुन देव मजबूर, वासुदेव रेह, राधेनाथ मसरत, सजूद सैलानी, प्रेमनाथ प्रेमी, मुहम्मद अयूब बेताब, मोती लाल नाज़, पृथ्वीनाथ सायिल, नाजी मुनवर आदि हैं।

कश्मीरी गद्य - कश्मीरी में गद्य लिखने की परम्परा 19वीं से मिलती है। सबसे पहले 1829 ई० में पहली बार बाइबिल के 'न्यू टेस्टो मेण्ट' का अनुवाद कश्मीरी गद्य में हुआ। स्वतंत्रता के बाद कश्मीरी गद्य -साहित्य की तीन मुख्य विधाओं - कहानी, उपन्यास तथा नाटक ने जन्म लिया।

कहानी - कश्मीरी की सबसे पहली कहानी सोमनाथ ज़ुत्शी ने 25 फरवरी 1956 को 'कल्चरल कांग्रेस' में पढ़ी। इस कहानी का शीर्षक 'यॆलि फॊल गाश' था। बाद में दीनानाथ नादिम की कहानी 'जवाबी कार्ड' भी प्रकाशित हुई। इस विधा में जिन महानुभावों ने कथा-साहित्य को समृद्ध किया उनके नाम इस प्रकार हैं - अमीन कामिल, सोफी गुलाम मुहम्मद, ताज बेगम रेंज़ू, अख्तर मुही उद्दीन। अख्तर मुही उद्दीन का 'सतसंगर' नाम से एक कहानी संग्रह

1955 ई० में प्रकाशित हुआ। इस कहानी संग्रह पर इन्हें साहित्य अकादमी, दिल्ली ने पुरस्कृत भी किया। इसके अतिरिक्त इस दिशा में हृदय कौल भारती, अली मुहम्मद लोन, अवतार कृष्ण 'रहबर', गुलाम रसूल संतोष, डा० शंकर रैणा, बंसी निर्दोष, उमेश कौल, हरिकृष्ण कौल, बशीर अख्तर आदि का योगदान भी महत्वपूर्ण है।

उपन्यास - कश्मीरी उपन्यास का जन्म भी बीसवीं शती में हुआ है। कश्मीरी का पहला उपन्यास 'ज़ात बुतराथ' सन् 1955 ई० में श्री हबीब कामरान ने लिखा था। इसका पहला अध्याय 1955 ई० में 'कोंग पोश' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। अवशिष्ट भाग इसके अप्रकाशित ही रहे। कालान्तर तीन उपन्यास लिखे गये। अख्तर मुहीउद्दीन का 'दोद तु दग' पहला उपन्यास माना जाता है। यह एक सामाजिक उपन्यास है। अमीन कामिल का 'गटि मंज़ गाश' 1946 ई० में कबायली आक्रमण की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। यह हिन्दू-मुस्लिम एकता की भावना पर आधारित है। अली मुहम्मद लोन का 'अॅस्य ति छि इन्सान' वस्तुत: एक रिपोतज़ि जिसकी शैली औपन्यासिक कला के अधिक निकट है। 1972 ई० में गुलाम नबी गौहर ने 'मुजरिम' और 'म्युल' नामक दो उपन्यास लिखे। मुजरिम का प्रसारण धारावाहिक रूप में 'रेडियो कश्मीर' से होता रहा है। बंसी निर्दोष का उपन्यास 'अख दोर' तथा अमर मालमोही का 'त्रेश तु तर्पण' भी प्रकाशित हुए हैं। इस तरह अब उपन्यास लिखने का क्रम भी जारी हुआ है।

नाटक - कश्मीरी में धार्मिक उत्सवों पर रामलीला आदि नाटक स्वतन्त्रता से पहले खेले जाते थे किन्तु ऐतिहासिक रूप से सबसे पहले कश्मीरी नाटक 'सतच कॅहवेट' (सत्य की कसौटी) श्री नन्दलाल कौल (मन्दलू) (1877-1940 ई०) ने लिखा। यह नाटक 'समाज सुधार समिति' द्वारा संस्थापित 'नाटयशाला' में अनेक बार दिखाया गया। तदनन्तर गुलाम नबी 'दिलसोज़' (1916-1947) ने 'शीरीन खसरो' नामक नाटक लिखा। ताराचन्द बिस्मिल (1940-1948) तथा श्री नीलकण्ठ शर्मा (1888-1970) ने कुछ धार्मिक

नाटक लिखे। शर्माजी ने 'बिलवा मंगल' तथा 'स्वप्नवासवदत्त दत्त' शीर्षक से दो नाटक लिखे। बाद में प्रेमनाथ परदेसी, नूर मुहम्मद रोशन, पुष्कर भान, सोमनाथ ज़ुत्शी, अली मुहम्मद लोन, अमीन कामिल, मोतीलाल क्यमू, हरिकृष्ण कौल आदि ने भी नाट्य साहित्य के निर्माण में अभिवृद्धि की।

नाट्य शास्त्र में 'मानोलाग' का अत्यन्त महत्व है। कश्मीरी में 'मानोलाग' के प्रचार व प्रसार का श्रेय श्री प्यारेलाल हण्डू को दिया जाता है। इन्होंने सर्वप्रथम इस कला को 1958 ई० में जन्म दिया। इनके 'मानोलाग' सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिए बहुत ही सफल सिद्ध हो सकते हैं। इनका अभिनय यह स्वयं 'स्टेज पर' तथा रेडियो पर समय समय पर करते हैं। इनके मानोलागों में प्राचीन परम्परा सुरक्षित हैं इनके कुछ मानोलाग व्यङ्ग्यात्मक भी हुआ करते हैं। इनके मानोलागों में से 'द्यदि हुंद टेलीफोन' तथा 'शाबान टांगुन्य गॉड्य' बहुत प्रमिद्ध हैं। मानोलाग अब कश्मीर में बहुत ही लोकप्रिय हुए हैं। अब इसका विस्तार भी होने लगा है।

यहां पर यह कहना असंगत न होगा कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही कश्मीरी साहित्य का निर्माण तथा विकास सुव्यवस्थित रूप से होने लगा है। इसके निर्माण, प्रचार व प्रसार तथा प्रकाशन में 'जम्मू व कश्मीर कल्चरल अकादमी' का कार्य महत्वपूर्ण ही नहीं अपितु इतिहास में स्वर्णाक्षरों से उल्लेखनीय भी है। कश्मीरी भाषा के बहुमुखी विकास के लिए सर्वप्रथम अकादमी ने एक परियोजना बनाई जिसके अन्तर्गत 'कश्मीरी शब्दकोश' बनाने को प्राथमिकता दी गई। कालान्तर यह सम्पूर्ण शब्दकोश सात खण्डों में प्रकाशित हुआ। इसमें प्राय: पच्चास हज़ार शब्द एवं मुहावरे हैं। यद्यपि यह काम सर जार्ज ग्रियर्सन ने 1916 ई० में आरम्भ करके 1932 ई० में समाप्त किया था तथापि उसमें शब्द भण्डार इतना ही नहीं था जितना अकादेमी द्वारा प्रकाशित 'कश्मीरी शब्द कोश' में। इसमें यह विशेषता है कि प्राय: प्रत्येक शब्द की व्युत्पत्ति इन खण्डों में दी गई है। इस साहित्यिक संस्था ने अन्य साहित्य की भांति कश्मीरी साहित्य पर आज तक सैंकड़ों पुस्तकें विभिन्न विषयों पर प्रकाशित की हैं।

'अकादेमी' यहां के साहित्यकारों को कश्मीरी साहित्य के निर्माण के लिए आर्थिक सहायता भी प्रदान करती है तथा उनकी विशिष्ट रचनाओं को पुरस्कृत भी किया जाता है। साहित्यिक संस्थाओं को समय समय पर अनुदान देकर उनका उत्साह वर्धन हर प्रकार से किया जाता है। हाल ही में अकादेमी ने 'कश्मीरी विश्वकोश' बनाने की परियोजना आरम्भ की जो एक महत्वपूर्ण अनुसन्धानात्मक काम है। इसका श्रेय अकादेमी के सचिव मुहम्मद यूसुफ टेंग को दिया जाता है जिनके प्रयत्न से इसका बहुमुखी विकास सम्भव हुआ है।

इस अकादेमी के अतिरिक्त गत कई वर्षों से 'कश्मीर विश्वविद्यालय' के कश्मीरी विभाग की ओर से कश्मीरी भाषा व साहित्य की समृद्धि के लिए प्राय: प्रतिवर्ष कश्मीरी भाषा में विभिन्न विषयों पर पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं। इसके लिए कुलपति महोदय के आदेश से परामर्शदात्री-समिति का गठन समय समय पर हो रहा है। कश्मीर विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति डॉ० रईस अहमद ने कश्मीरी साहित्य की प्रगति में विशेष रुचि दिखाई। इस समिति के परामर्श से विविध विषयों में निष्णात विद्वानों को प्राय: प्रतिवर्ष भिन्न भिन्न विषयों की पुस्तकें लिखने तथा अनुवाद करने के लिए पारिश्रमिक दिया जा रहा है। इस विभाग के तत्वावधान में 'त्रिभाषाकोश' का प्रथम खण्ड तैयार हो गया है। इस वर्ष से द्वितीय खण्ड का काम आरम्भ हुआ है। इस कार्य के लिए कुलपति महोदय डा० वाहिद उद्दीन के आदेश से सम्पादक तथा निरीक्षक मण्डल का गठन हुआ है जिसमें निम्न महानुभाव काम करे रहे हैं :-

(1) प्रो० रहमान राही	(2) श्री शफी शौक
(3) श्री सोमनाथ पण्डित	(4) डा० बदरीनाथ कल्ला
(5) श्री रशीद नाज़की	(6) प्रो० गुलाम नबी फिराक़

त्रिभाषा कोष की परियोजना मूलत: 'केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय' की है, जो 'कश्मीर विश्वविद्यालय' को भेज दी गई है।

इसके अतिरिक्त कश्मीरी साहित्य की उन्नति के लिए यहां की स्वयं सेवीसंस्थाएं गत कईवर्षों से काम कर रही है। उन साहित्यिक संस्थाओं में से

- हलका अदब सोनावारी, अदबी मरकज़ कमराज़ तथा कल्चरल आर्गनज़ेशन आदि संस्थायें इस कार्य में प्रयत्नशील हैं। इस दिशा में आकाशवाणी तथा दूरदर्शन के माध्यम से भी कश्मीरी साहित्य का विकास हो रहा है। अत: दृश्य श्रव्य साधनों द्वारा भी इसका प्रचार व प्रसार जारी है। कश्मीरी में साप्ताहिक समाचार भी प्रकाशित होते हैं। वस्तुत: साहित्यिक स्तम्भ के अतिरिक्त देश विदेश के समाचार भी प्रकाशित होते हैं। नि:सन्देह पत्रकारिता के माध्यम से ही कश्मीरी भाषा के प्रति रुचि पैदा हो सकती है। अत: दैनिक, साप्ताहिक तथा पाक्षिक पत्रों का होना नितान्त आवश्यक है।

यूरोप के शोधकर्ता - कश्मीरी भाषा व साहित्य के प्रचार व प्रसार में यूरोपीय शोधकर्ताओं तथा विद्वानों का योगदान भी बहुत ही महत्वपूर्ण रहा है। इन शोधकर्ताओं में से सर जार्ज इब्राहीम ग्रियर्सन, सर आर० एल० स्टीन, डॉ० अलमज़ली, डॉ० नेव, सर रिचर्ड टेम्पल, आर० एल० टर्नर आदि विद्वानों के नाम उल्लेखनीय है।

सर जार्ज ग्रियर्सन - ये ड़ब्लन आयरलैंड के रहने वाले थे। ड़ब्लन आयरलैंड की एक बड़ी बन्दरगाह है। इनका जन्म 7 जनवरी 1859 ई० में हुआ था। इन्हें विभिन्न भाषायें सीखने की रुचि बचपन से ही थी। राबर्ट अटकन की प्रेरणा से इनकी प्रतिभा निखर उठी। इन्होंने 1879 ई० में 'इंडियन सिविल सर्विस' की परीक्षा पास की। कालान्तर में 1883 ई० में, ये भारत आ गए। उस समय ग्रियर्सन की आयु बाईस वर्ष की थी। यहां आकर उन्होंने विभिन्न भारतीय भाषाओं का गम्भीर अध्ययन किया। कालान्तर में इन्हें 'भारतीय भाषाओं के सर्वेक्षण' का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। अधिक कार्य भार से इनका स्वास्थ्य यहां खराब हो गया और इन्हें 1903 ई० में स्वदेश जाना पड़ा। वहां भी उन्होंने अपना काम जारी रखा। इन्होंने जिस काम के लिए यहां बीड़ा उठाया था वह शोध-कार्य इन्होंने 1928 ई० में समाप्त किया। जीवन का अमूल्य भाग इन्होंने भारत में ही व्यतीत किया। इन्होंने 'लिग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया' के कुछ भाग लिखे जिनमें यहां की प्राय: सभी भाषाओं तथा

उपभाषाओं का सर्वेक्षण उपलब्ध होता है। 'लिग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया' के भाग 2 खंड 8 में कश्मीरी भाषा के उद्गम तथा विकास पर विचार किया गया है। इन्होंने सबसे पहले कश्मीरी भाषा को दार्दिक परिवार के अन्तर्गत मान लिया है। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'ए डिकशनरी आफ दि कश्मीरी लंगवेज' चार खंड़ों में सम्पादित की जिसका प्रकाशन 'रायल एशियाटिक सोसाइटी' ने किया। यह काम इन्होंने 1916 ई० से 1932 ई० तक समाप्त किया। यह कोश देवनागरी लिपि में लिखा गया। प्रत्येक शब्द का अर्थ अंग्रेज़ी तथा संस्कृत में दिया गया है। इस कोश में मुकुन्दराम महामहोपाध्याय इनके सहसम्पादक थे। इसके अतिरिक्त इन्होंने कश्मीरी की कुछ पुस्तकों का संपादन भी किया। कश्मीर के सुप्रसिद्ध विद्वान् ईश्वर कौल ने सबसे पहले 'कश्मीरी शब्दामृत' नामक व्याकरण महर्षि पाणिनि के सूत्रों के आधार पर संस्कृत में लिखा। इस कश्मीरी व्याकरण का सम्पादन भी इन्होंने किया तथा इस पुस्तक को 'रायल एशियाटिक सोसाइटी' ने प्रकाशित किया। 'लल्ल वाक्यानि' (कश्मीरी पद्यात्मक वाक्य) भी 1920 ई० में लंदन से प्रकाशित किये गये। इसी प्रकार कृष्ण राज़दान के 'शिवपरिणय' तथा प्रकाश राम 'कुर्यगामी' के कश्मीरी रामायण का भी संपादन इन्होंने किया। इस तरह इन्होंने अपना सारा जीवन कश्मीरी साहित्य के निर्माण में समर्पित किया। इनका देहावसान 9 मार्च 1941 ई० में इंग्लैंड में हुआ।

सर आर० एल० स्टीन - इनका जन्म हंगरी के बुदापेस्ट स्थान में 23 नवम्बर 1842 ई० में हुआ था। इन्होंने 'बुदापेस्ट स्कूल' में प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की। बाद में इंग्लैंड के विश्वविद्यालय में प्राचीन भाषाओं - संस्कृत, ग्रीक आदि का अध्ययन किया। कालान्तर इन्हें पी० एच० डी० की उपाधि से भी समलंकृत किया गया। 1888 ई० से 1899 ई० तक ये 'लाहौर विश्वविद्यालय' के रजिस्ट्रार भी नियुक्त हुये और इन्होंने लाहौर के 'गवर्नमिन्ट ओरियण्टल कालेज' में प्रिंसिपल के रूप में बहुत काल तक काम किया। 1888 ई० में वे पहली बार कश्मीर आये। इसी समय इन्होंने 'राजतरङ्गिणी'

का अनुसन्धानात्मक कार्य भी आरम्भ किया। इन्होंने बड़े परिश्रम के बाद 'राजतरङ्गिणी' का सम्पादन तथा अंग्रेज़ी में अनुवाद भी किया। इसका पहला संस्करण 1900 ई० में प्रकाशित हुआ। भारत सरकार की ओर से 1906-1908 तक ये अनुसन्धानात्मक कार्य करने के लिए मध्य एशिया तथा पश्चिमी चीन चले गये। फलत: उन्हेंने Ser India नामक पुस्तक तीन खंडों में प्रकाशित की। इनकी बहुमुखी प्रतिभा से प्रभावित होकर 1909 ई० में 'रायल ज्योग्राफी सोसइटी' ने इन्हें स्वर्ण पदक प्रदान किया। इसके अतिरिक्त फ्रांस तथा स्वीडन की ओर से भी इन्हें पदक मिल गये। कालान्तर काबुल में 1943 ई० में इन्होंने यह नश्वर शरीर छोड़ दिया। स्टीन महोदय ने कश्मीरी लोक कहानियों का संग्रह 'हातिमस टेलस' शीर्षक से अंग्रज़ी भाषा में छपवाया। उन्होंने ये कहानियां 1893 ई० में सिन्ध (पाज़ील) के रहने वाले हातिम तेली से और एक कश्मीरी पं० श्री गोविन्द कौल की मदद से सुनी थी। इनमें कुछ कहानियाँ भारतीय, कुछ ईरानी तथा कुछ कश्मीरी थीं। कश्मीरी की लोक कहानियों में प्रमुख कहानियाँ शबरंग, तोते की कहानी आदि हैं। इनकी मुख्य पुस्तकों में से ये पुस्तकें हैं:-

1. Archaeological Exploration in Chinese Turkestan
2. Ancient Khotan. 2 vols.
3. Innermost Asia. 3 vols.
4. Innermost Asia (Geographical Journal) 1925.
5. Ruins of Desert Cathomy. 2 vols.
6. Sand-buried ruins of Khotan.
7. Ancient Geography of Kashmir.

इसके अतिरिक्त संस्कृत पाण्डुलिपियों की सूची (Catalogue) भी इन्होंने 'जम्मू रणवीर अनुसंधान पुस्तकालय' में तैयार की।

डॉ० अलमज़ली - ये अंग्रेज़ यहां 1865 ई० में 'मेडिकल मिशनरी' के रूप में आए। इन्होंने A Vocabulary of Kashmiri Language नामक पुस्तक लिखी जो 1872 ई० में लंदन में प्रकाशित हुई। इसमें कश्मीरी शब्दों

के अर्थ अशुद्ध लिखे गए हैं। ग्रियर्सन ने भी इनके शब्दों का प्रयोग 'कश्मीरी डिक्शनरी' में किया है। ये विद्वान् 1872 ई० में गुजरात में स्वर्गवासी हो गये।

डा० नेव - ये 1882 ई० में कश्मीर आ गए। इन्होंने Picturesque Kashmir तथा Thirty Years in Kashmir नामक पुस्तकें लिखीं। कश्मीर में इन्होंने बहुत समय बिताया।

सर रिचर्ड टेंपल - सन् 1924 ई० में इन्होंने The word of Lalla दि वर्ड आफ लल्ला) शीर्षक से लल्लद्यद के विषय में एक महत्वपूर्ण पुस्तक छपवाई। इस में लल्लद्यद के वाक्यों (वाखों) का परिमार्जन करके सारगर्भित भूमिका के समेत प्रस्तुत किया गया।

आर० एल० टर्नर - ये 1922 से 1954 ई० तक लंदन विश्वविद्यालय के अफेरीकन तथा ओरियण्टल विभाग में संस्कृत के अध्यक्ष पद पर आसीन थे। ये 1937 से 1957 ई० तक इस स्कूल के निदेशक भी रहे। इन्होंने 1931 ई० में Comparative and Etymological Dictionary of the Nepali Language प्रकाशित की। इनके गवेषणात्मक कार्य से प्रभावित होकर 1952 ई० में 'वाराणसी हिन्दू विश्वविद्यालय' ने भी 1958 ई० में इन्हें इस उपाधि से अलंकृत किया। इनके महत्वपूर्ण प्रकाशनों में से A Comparative Dictionary of the Indo Aryan Languages मानी जाती है। इस कोश का प्रकाशन 'आक्सफर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस' से 1966 ई० में हुआ। इस कोश में संस्कृत शब्दों के साथ प्राय' भारतीय आर्यभाषाओं तथा उपभाषओं जैसे पाली, प्राकृत, कश्मीरी, पंजाबी, नेपाली, आसामी, बंगाली, उड़िया, बिहारी, मैथिली, भोजपुरी, कोंकणी, सिंहली आदि के साथ साम्य दिखाया गया है। इसमें 1845 शब्द हैं। भाषाविज्ञान की दृष्टि से यह अत्यन्त उपयोगी है।

जे-हिण्टन नोल्ज़ (J Hinton Knowels) - इन्होंने कश्मीर में 1883 84 ई० में ईसाई मिशनरी में काम किया। इस 'मिशनरी' को सफल बनाने में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान है। यहां रहकर ये कश्मीरी लोक-साहित्य

से इतने प्रभावित हुए कि लोक-कयाओं का संकलन उन्होंने 1885 ई० में लंदन में प्रकाशित हुआ। कश्मीरी कहावतों की ओर इनका ध्यान 'कश्मीरी प्रोवर्ब्स एण्ड सेइंग्स' नाम से कश्मीरी कहावतों का कोश लन्दन से छपवाया। रोमन लिपि में लिखित 263 पृष्ठों के इस कोश में प्राय: 1400 मुहावरे, कहावतें आदि संकलित हैं।

फ्रेडरिक ड्रिव (Frederic Drew) - ये कश्मीर में 1862 ई० से 1872 ई० तक रहे। इस अवधि में ये लद्दाख में गवर्नर के रूप में काम करते रहे। इन्होंने रामबनी, पहाड़ी, कष्टवारी तथा कश्मीरी भाषा का तुलनात्मक अध्ययन किया। कालान्तर इन्होंने यहा की भाषाओं के विषय में The Jammu & Kashmir Territorties नामक पुस्तक 1875 ई० में लंदन से प्रकाशित की।

वारोन चार्लस हुगल (Baron Charles Hungle) - ये जर्मनी के थे। 1836 ई० में कश्मीर आकर उन्होंने जम्मू कश्मीर तथा पंजाब के विषय में जर्मन भाषा में एक सुन्दर यात्राविवरण लिखा जिसका बाद में अनुवाद भी हुआ।

एल०बी०बोवरिंग - ये बर्तानिया के निवासी थे। इन्होंने कश्मीरी भाषा की शब्दवाली लिखी जो 1866 ई० में प्रकाशित हुई।

फ्रांकोस वानियर - ये फ्रांस में 1620 ई० में पैदा हुए थे। इनके मां बाप साधराण कृषक थे। इन्होंने 1620 ई० में मैट्रिक की परीक्षा पास की। कालान्तर ये अपनी योग्यता के कारण डाक्टर (चिकित्सक) भी बन गये। इन्होंने 1662 ई० में भारत की यात्रा की। इन्हीं दिनों मुगल सम्राट शहजहां की मृत्यु हुई। इनका सम्बन्ध मुगल दरबार के साथ भी रहा। कुछ समय के बाद फ्रांस के राजा Louis ने इन्हें Travels in the Mogol Empire छपाने की अनुमति दी। ये कश्मीर भी आये थे। इन्होंने पहली बार कश्मीर के विषय में हमें विस्तृतरूप से जानकारी दी। कश्मीर की पौराणिक घटनाओं का भी उन्होंने उल्लेख किया है। इनकी मृत्यु 22 सितम्बर 1688 ई० को पेरिस में हुई।

कार्ल फ्रेडरिक - जर्मनी के इस विद्वान ने जर्मन भाषा में कश्मीरी भाषा के विषय में 1887-88-89 ई० के दौरान बहुत से गवेषणात्मक लेख

लिखे। इस उच्च कोटि के विद्वान ने मुहम्मद गामी की कश्मीरी मसनवी 'यूसुफ ज़ुलेखा' का अनुवाद जर्मन भाषा में किया। यह अनुवाद जर्मन की एक प्रसिद्ध पत्रिका में 1895 से 1899 ई० तक दो बार छप गया।

डॉ० (मिस) गोमरी - इनका जन्म 'कनाडा' में हुआ था। वहां इन्हें डाक्टर की उपाधि भी मिल गई। इन्होंने अपना जीवन कश्मीर में ही बिताया तथा यहां के 'मिशन हस्पतालों' में रोगियों की सेवा तनमन से की। इस तरह इन्होंने अपना जीवन 'ईसाई मिशन सोसइटी' को समर्पित किया था। अपनी मिशनरी के प्रचार कार्य में इन्होंने कश्मीरी भाषा व साहित्य का अध्ययन जारी रखा। बाद में इन्होंने कश्मीरी कविताओं का संग्रह संकलित किया और कुछ अपने गीत रोमन लिपि में 1960 ई० में छपाये। इसके अतिरिक्त 1943 ई० में कश्मीरी गीत भी छपवाये। इस संग्रह का नाम उसने 'कोशरि ग्यवनच पोशमाल' रखा। ये गीत उस समय गिरजाधरों में पढ़ाये जाते थे। इसके अतिरिक्त इन्होंने स्वास्थ्य के विषय में पद्यात्मक कश्मीरी प्राइमर भी लिखा जैसे :-

''पाक ईसव सुंदि पासु कर, म्योन दिल ति पाक कमाल।
युथ करु हो मोहबत चोन, तु वुछ हो चोन जमाल।।''

अर्थ:- शुद्ध ईसा की ओर से मेरा अन्त:करण भी पवित्र कर जिससे मैं आपसे प्रेम करता तथा आपका कमाल देखता। ये अपने देश में ही 1967 ई० में मर गई।

वाल्टर आर लारेंस - इनका जन्म लंदन में 1857 ई० में हुआ। इनकी प्राम्भिक शिक्ष 'डेम्स स्कूल' में हुई। बाद में कालेज में इन्होंने ग्रीक तथा लैटिन भाषायें सीख लीं। आक्सफर्ड में इन्होंने इंडियन सिविल सर्विस की परीक्षा पास की। विगेट साहिब की अध्यक्षता में इन्हें जम्मू व कश्मीर राज्य के भूमान (बन्दोबस्त) का उपाध्यक्ष 1887 ई० में नियुक्त किया गया। कश्मीर में छ: वर्ष तक रहकर सारी घाटी का इन्होंने भ्रमण किया। उन्होंने The Valley of Kashmir नामक पुस्तक अंग्रेज़ी में लिखी। कश्मीरी भाषा के विषय में अपने विचार प्रकट करते हुए ये दोनों भाषाओं में साम्य इस प्रकार दर्शाते हैं :-

ज़्यर्न कथन नु सूद। In many words there cas be no profit.

ज़्यर्न गगुरायन नु रूद। With much thunder there is no rain.

बारोन चार्लस हुगम (Baron Charles Hugel) - ये जर्मनी निवासी थे। 1836 ई० में कश्मीर आकर इन्होंने जम्मू कश्मीर तथा पंजाब के विषय में एक सुन्दर यात्रा विवरण लिखा जिसका बाद में अनुवाद भी हुआ।

टी०ग्राहम बेली - इस अंग्रेज़ विद्वान ने कश्मीरी भाषा के समेत उत्तरी भारत की भाषाओं का भाषाविज्ञान तथा ध्वनि विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन करके Linguistic Studies from the Himalayas नामक पुस्तक लिखी।

नीला क्राम क्रूक - यह एक सुप्रसिद्ध अमेरीकन कवि की लड़की थी। उन्होंने यूनान में शिक्षा प्राप्त की तथा अनेक भाषाओं का वहीं अध्ययन किया। इसके अतिरिक्त इन्होंने संस्कृत भाषा व साहित्य का भी गम्भीर अध्ययन किया था। कालान्तर वह भारत आ गईं। 1933 ई० में वह गांधी आश्रम में सम्मिलित हुईं। उन्होंने अपनी आत्मकथा न्यूयार्क से 1939 ई० में प्रकाशित की। कश्मीरी साहित्य के साथ उन्हें विशेष रुचि थी। अत: उन्होंने कश्मीरी की सुप्रसिद्ध रचनाओं को एकत्रित करके उनका कश्मीरी में अनुवाद किया। उनका यह अनुवाद The Way of the Swan नामक कविता संग्रह में 1959 ई० में छपा। जिन रचनाओं का अनुवाद उन्होंने किया, उनमें ललद्यद, नुन्दर्योष, पं० परमानन्द तथा हब्बा खातून आदि हैं।

इसी तरह अन्य विदेशी शोधकर्ताओं का योगदान भी कश्मीरी भाषा व साहित्य के निर्माण में महत्वपूर्ण रहा है। नि:सन्देह इन विद्वानों का योगदान भावी पीढ़ी के लिए प्रेरणाद यक सिद्ध होगा। ऐसा मेरा मत है।

अत: स्वतन्त्र भारत के सर्वोदय के साथ हमारी यह कश्मीरी भाषा भौगोलिक सीमाओं का अतिक्रमण करके सारे विश्व में अन्य भाषाओं की तरह फले फूले।



संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. राजतरंङ्गिणी : स्टीन द्वारा संपादित।
2. महानय प्रकाश : मुकुन्दराम महामहोपाध्याय द्वारा संपादित।
3. बाणासुर कथा : श्री दीना नाथ शास्त्री द्वारा अनूदित (अप्रकाशित)।
4. कश्मीरी भाषा और साहित्य - डा० शिबन कृष्ण रैणा।
5. Research Biannual Vol. II No. 1, 1978, Published J&K Research Deptt.
6. विक्रमाङ्कदेवचरितन् ब्हूलर द्वारा संपादित।
7. कोशिर ज़बान तु अदब (1976) अमीनर कामिल द्वारा संपादित।
8. कोशिर अदबच तारीख - श्री अवतार कृष्ण रहबर।
9. काश्मीरिक संस्कृत भाषायों स्तुलनात्मकमध्ययनम्। (लेखक का शोध - प्रबन्ध, प्रकाशनाथ प्रेस को दिया गया।)
10. Studies in Kashmir - Prof. Jai Lal Koul.
11. तारीख हसन पीर गुलाम हसन खुयहामी।

मध्य एशिया तथा चीन में कशमीरी बौद्ध- आचायों का योगदान

अन्त:साक्ष्यों तथा बाह्यसाक्ष्यों के आधार पर प्राचीनकाल से कश्मीर का सम्बन्ध ऐतिहासिक, भौगोलिक तथा सांस्कृतिक दृष्टियों से मध्यएशिया के साथ रह चुका है। पुरातत्वविदों के उत्खनन से यह तथ्य सामने आया है कि कश्मीर तथा मध्यएशिया का प्रागैतिहासिक सम्बन्ध बहुत पुराना था। कश्मीर तथा मध्य एशिया के बीच प्राचीन व्यापार-मार्ग ने दोनों देशों को निकट लाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। जिसके फलस्वरूप दोनों देशों में प्रजातिगत तथा जलवायु - सम्बन्धी साम्य हज़ारों वर्षों के बाद आज भी दृष्टगोचर होता है। पाषाणयुगीन बुर्जहोम (भूर्जाश्रिम श्रीनगर की पूर्वोत्तर दिशा में प्राय: आठ मील की दूरी पर स्थित है) के उत्खनन से यह बात प्रमाणित होती है कि दोनों देशों के रहन-सहन के तौर-तरीके तथा अस्त्र-शस्त्र आदि एक जैसे थे। सुप्रसिद्ध सिन्धु घाटी सभ्यता के अवशेषों नें, जम्मू के अखनूर क्षेत्र में स्थित 'मंङा' के तथा कशमीर में स्थित 'सिमथन' के आसारों का पङोसी देशों - अफगानिस्तान, तुर्कमानिया तथा ताजिकिस्तान से गहरा संपर्क दर्शाया है कालान्तर में बौद्ध प्रचारकों, यात्रियों, बुद्धजीवियों तथा दशिनिकों द्वारा विचारों के आदान-प्रदान ने तथा विभिन्न जातियों-कुषाण, हूण, मंगोल तथा अफगानों के आगमन ने दोनों देशों के संस्कृतिक सम्बन्ध को दृढतर बनाया। इन तथ्यों का प्रमाण हमें चिरकाल के बाद आज भी कश्मीर के भग्नावशेषों, संग्रहालय में सुरक्षित कुषाणयुगीन पकी मिट्टा की छोटी मूतियों तथा देवालयों आदि में स्पष्ट रूप से मिलता है।

कश्मीर के बौद्ध आचार्यों ने मध्यएशिया तथा चीन में किस प्रकार बौद्ध-धर्म का प्रचार किया ? इतिहास के परिप्रेक्ष्य में लेख में संक्षिप्त रूप से इसी विषय पर विचार किया गया है।

कश्मीर प्राचीनकाल में महायान बौद्धधर्म का विश्वविख्यात केन्द्र था। इस अवधि में कश्मीर ने बौद्ध-र्धम के अनेक विद्धानों को जन्म ही नहीं दिया अपितु उन्होंने इस धर्म को एक नई दिशा दी तथा इसका प्रचार व प्रसार मध्यएशिया के विभिन्न क्षेत्रों-कूचा, तुरफाम, काशगर, समरकन्द, बलख, खोतान, तिब्बत, चीन मंगोलिया आदि देशों में किया और इस धर्म को सर्वसाधारण तक पहुंचा दिया। इस संदंभ में हमें बहुत प्रमाण मिलते है कि ईसा से पहले छोटे भारतीय उपनिवेश मध्य एशिया के दक्षिणीय क्षेंत्रों में खोतान से लेबनोर Lebnor क्षेत्र तक स्थापित किये गये। भारतीय उपनिवेशों ने र्सवप्रथम इन क्षेत्रों तक बौद्ध-र्धम पहुंचाया।

कश्मीर में बोद्धमत के प्रचार के लिए सबसे पहले सम्राट अशोक (275-236 F&0 पू०) ने वाराणसी के एक बौद्ध-भिक्षु तथा आनन्द के शिष्य माध्यन्तिक को भेजा था। सिहली पुस्तकों के अनुसार तृतोय बौद्ध सभा के बाद अशोक के कथनानुसार धर्मोपिदशक मोग्गलिपुत्ततिस्स विभिन्नदेशों में बौद्धमत के प्रचार के लिए गया। माध्यन्तिक को इस सांस्कृतिक अभियान के लिए कश्मीर तथा गांधार भी भेजा गया। माज्झन्तिक (मध्यन्तिक) ने कश्मीर में बौद्ध-धर्म का प्रचार व प्रसार करने के लिए अपना सारा जीवन समर्पित कर दिया। इसका वर्णन अशोकावदान, अवदान कल्पलता तथा ह्यूनसांग के यात्रा-वृत्तान्त आदि में मिलता है।

दिवयावदान बौद्ध-ग्रन्थ के अनुसार कश्मीर में स्थित तमसवन के कई बौद्ध-भिक्षुओं को अशोक ने तीसरी बौद्धसभा में सम्मिलित होने के लिए पाटलिपुत्र में बुलाया था। इन उदाहरणों से अशोक के बौद्ध-र्धम के प्रति निष्ठा तथा अनुराग का परिचय मिलता है बौद्धमत के प्रति अनन्य श्रद्धा होने के कारण अशोक ने कश्मीर में बौद्ध-भिक्षुओं के लिए पांच सौ विहार स्थापित करवाये। बड़े-बड़े बैत्य तथा गगनचुम्बी स्तूप शुष्क लेत्र (वर्तमान ह्वखलितर) के पास वितस्ता के किनारे पर बनवाये। चीनी यात्री ह्यूनसांग (सातवी शती) के अनुसार उपत्यका में चार स्तूप अशोक ने बनाये थे जिनमें उन्होंने बुद्ध के

अवशेष रखे थे। तिब्बत के प्रसिद्ध इतिहासकार तारानाथ के अनुसार अशोक ने कशमीर के बौद्धसंघो को अग्रहार आदि देने से उत्साहित किया था। इस प्रकार अशोक का योगदान इस धर्म की वृद्धि में उल्लेखनीय है। अशोक के यहाँ के शासकों-मेघवाहन (छठी शताब्दी) तथा ललितादित्य मुक्तापीड (699-736 ई०) आदि राजाओं ने बौद्ध-धर्म से प्रभावित होने के कारण इस धर्म को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भमिका निभाई। मेघवाहन ने इसे राज्य धर्म घोषित किया। इस प्रकार यह धर्म आठवी शती तक चरम सीमा पर पहुंचा था।

इतिहासकार कल्हण के मतानुसार सम्राट अशोक से पहले कश्मीर में राजा नरेन्द्र के शासन काल में भी अनेक बौद्ध विहार स्थापित हुए थे।

स्पष्ट है कि अशोक तथा माध्यन्तिक से पहले कश्मीर में बौद्धमत का विकास हुआ था।

इस संदर्भ में यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि कश्मीर उत्तर भारत में सर्वास्तिवादी बौद्धों का प्रमुख केन्द्र माना जाता था। सर्वास्तिवाद के मर्म को जानने के लिए चीन, जापान, कोरिया, मंगोलिया आदि देशों से विद्धान यहाँ आते थे, उनकी शंकाओं का सामाधान यहाँ शास्त्रीय रीति से होता था। कई विद्धानों के अनुसार इस वाद का जन्मदाता कश्मीर मण्डल था। अस्तु, कश्मीर ही या कोई अन्य देश हो, यह मत तो निर्विवाद है कि कश्मीर में सर्वासितवाद मठिका के बौद्ध-ग्रन्थों पर विस्तुत रूप से भाष्य लिखा गया जिसे वैभाषिका कहते हैं।

सम्राट अशोक ने सारे भारत तथा लंका में बौद्ध-धर्म को स्थापित करने के लिए जिस तरह निष्ठा तथा लगन से काम किया उसी तरह सम्राट-कनिष्क ने गांधार से मध्य एशिया तक इस धर्म के विस्तार के लिए काम किया।

सम्राट अशोक के बाद सर्वप्रथम इस र्धम को सरल तथा लोकप्रिय बनाने में कुषाणवंशीय राजाओं में से सम्राट कनिष्क का नाम गौरव से लिया जाता है। वस्तुत: कुषाणयुग बौद्ध-धर्म का महत्त्वपूर्ण युग माना जाता है। इस

युग को यदि बौद्ध-र्धम का स्वर्णयुग कहा जाए तो कोई अत्युवित न होगी। इस युग में कश्मीर में महायान बौद्ध-र्धम का पूर्णरूप से विकास हुआ। चीनी यात्रियों के वर्णन तथा परमार्थ से प्रकट होता है कि कुषाणवंश के विख्यात सम्राट कनिष्क (प्रथम शती) के काल से कश्मीर में उच्चकोटि के बौद्ध आर्चाय तथा लेखक रहते थे जिनमें कात्यायनी पुत्र, अश्वघोष, वसुबन्धु, वसुमित्र, धर्मत्राता,संघभद्र, विभुद्धसिंह, जिनबंधु, सुनमित्र, सूर्यदेव, जिनत्राता तथा कनकवत्स आदि उल्लेखनीय हैं। इतिहासकार के अनुसार कुषाण राजाओं मे से सम्राट कनिष्क का प्रभाव हिमालय को पार करके यारकन्द तथा खोतान तक फैल गया था। बौद्ध-मुनि पार्श्व की प्रेरणा से प्रथम शती के अंत में उन्होंने कश्मीर में कुण्डलतवन विहार में बौद्ध-धर्म के आचार्यों की चौथी व विशाल परिषद बुलाई जिसमें सर्वास्ति-वादी बौद्ध-भिक्षुओं के अतिरिक्त पांच सौ अर्हत् पांच सौ बोधसत्त्व तथा पांच सौ मूर्धन्य विद्वानों ने भाग लिया। यहां पर इस बात का उल्लेख करना आवश्यक है कि अशोक के समय में बुद्धमत कुछ भागों में विभक्त हुआ था। अत: बुद्धमत के कई एक सम्प्रदाय हो गये थे और वास्तविक सिद्धान्तों का निर्णय स्पष्ट रूप से नही होता था। अत: बौद्ध-र्धम के सिंद्धांतों को निश्चित करने के लिए इस र्धम को चौथी परिषद आचार्य वसुमित्र की अध्यक्षता तथा अश्वघोष की उपाध्यक्षता में यहां सम्पन्न हुई। इस विराट परिषद में विवाद-ग्रस्त, जटिल तथा गूढ़ विषयों पर तर्क-वितर्क हुआ तथा नये सिरे से सूत्र-विनय तथा अभिधर्म ग्रन्थों की गुत्थी को सुलझाकर परिमार्जन किया गया तथा इनकी प्रागाणिकता विद्वत्मण्डली में सिद्ध कर दी गई। साथ ही इन बौद्ध-ग्रन्थों के विवेचनार्थ टीकायें भी लिखी गई। इन्ही को विभाषा शास्त्र अथव उपदेश शास्त्र को संज्ञा दी गई। इस विषय में यवांग-चांग (ह्यू नसांग) का कथन है कि कनिष्क की आज्ञा से ये टीकायें ताम्रपत्रों पर खोदकर पत्थर की पेटियों में रखी गई। बाद में ये पेटियां स्तूपों में सुरक्षित रखी गई। महाकवि अश्वघोष ने इन टीकाओं को साहित्यिक रूप दिया। इस प्रकार विभाषा शास्त्र के अध्ययन का मुख्य पीठ कश्मीर बना। यहां कें

विद्वानों ने इस शस्त्र का अवगाहन करके इसमें विशिष्टता प्राप्त की क्योंकि यहां के विद्वानों में इस शास्त्र के मर्म को जानने की क्षमता थी। फलत: यहां के आचार्यों की कीर्ति सारे एशिया में फैल गई। वसुबन्धु जैसे आचायो को भी इस शास्त्र के रहस्य को जानने के लिए पुरुषपुर (वर्तमान-पैशावर) से आना पड़ा। इस प्रकार विभाषा शास्त्र की संग्रहीत तथा सरलीकरण का श्रेय इस सम्मेलन को ही दिया जाता है। नि:संदेह विभाषा शास्त्र का निर्माण इस सम्मेलन की महान उपलब्धियों में से माना जाता है।

विभाषा शस्त्र के निर्माण ने विदेशों से धुरन्धर विदानों को यहां आकृष्ट किया। विदेशों से आये हुए बौद्ध पण्डित केवल शास्त्रों के मर्म को जानने के लिए तथा अपनी शंकाओं का समाधान करने के लिए यहां नही आते थे अपितु कश्मीर के सुप्रसिद्ध तीर्थ स्थानों को देखने के लिए भी आते थे। वे अपने पहरावे को केसर का रंग देते थे। क्योंकि उस समय केसर यहां ही पैदा होता था। वे ॐ नमो मणि पद्म हों का मंत्र अपने धर्म ग्रंथो में केसर से ही लिखते थे। अत: दोनों रुपों से कश्मीर उनके लिए आकर्षण का केन्द्र था ।

चीनी परंपरा के अनुसार विभाषा शास्त्र के चार विद्धानों में से कश्मीर का प्रतिष्ठित विद्धान धर्मत्राता माना जाता है। अन्य तीन विद्वान तुखार (तुखारिस्तान का घोषक, मरु का वसुमित्र तथा वाराणसी का बुद्वदेव था। चीनी साहित्य के अनुसार धर्मत्राता वसुमित्र का चाचा था जिसके विषय में कहा जाता है कि उसने पच्चवस्तु विभाषा तथा संयुक्त विर्धम-हदयशास्त्र आदि लिखे है। सौत्रान्तिक का आचार्य कश्मीर था।

कनिष्क द्वारा आयोजित इस सभा के कारण कश्मारियों में उत्साह की भावना जागृत हुई तथा उन्होंने यातायात साधनों के अभाव में भी दुर्गम दरों को पार करके चीन तक यह धर्म फैलाया तथा चीनी धर्म में क्रांति लाई। इस संदर्भ में डाँ० पी० सी० बागची का कथन सत्य प्रतीत होता है। कश्मीर का योगदान चीन में बौद्ध धर्म के प्रचार व प्रसार में महत्त्वपूर्ण रहा है। चीन में जाने वाले कश्मीर के बोद्ध विद्वानों की संख्या भारत के विभिन्न भागों से गये हुए

बौद्ध विदानों की अपेक्षा अधिक है। इस तरह कश्मीर के बौद्ध आचार्यों के कारण मध्य एशिया का क्षेत्र स्वाभाविक रुप से बौद्ध-धर्म के प्रभाव में आया।

जिन कश्मीरी बौद्ध आचार्यों ने पारस्परिक संस्कृतिक सांस्कृतिक सम्बन्ध को सुदृढ़ बनाकर सेतु का काम किया, उनका महत्त्वपूर्न योगदान इस प्रकार है:-

कुमार जीव - इसका जन्म कियूत्सी में तिब्बत के उत्तर-पश्चिमीय राज्य में 343 ई० में हुआ था। उसकी शिक्षा कश्मीर में हुई थी। उसका पिता कुमारयान कश्मीर का रहने वाला था तथा उसका सम्बन्ध राज्य के अमात्य वर्श से था। साधारणतया वह भी मंत्री बनता पर कारणवश उसने यह पद ग्रहण न किया। और बौद्ध-धर्म में दीक्षा लेकर वह कूचा (चीन जाने के लिए उत्तरी मार्ग पर कूचा सबसे बहूत बौद्धकेन्द्र था) चला गया। वहां के राजा ने उसका भव्य स्वागत किया और उसे राजगुरु बना दिया। राजमहल की एक राजकुमारी उससे प्रेम करने लगी परिणामस्वरुप कुमारयान का उससे विवाह हो गया। कालान्तर उन्हें पुत्ररत्न पैदा हुआ जिसका नाम उन्होंने कुमारजीव रख दिया। कुमारजीव के नाम में उसके माता-पिता दिनों के नाम सम्मिलित है। कुछ समय के बाद उसकी मां जीवा बौद्ध-धर्म में दीक्षा लेकर भिक्षुणी बन गई। कूचा में कुमारजीव ने संस्कृत भाषा का अध्ययन किया। इस समय यहकेवल सात वर्ष का था और तभी से वह धार्मिक ग्रन्थों को कंठस्थ करने लगा। पहले उसने अनेक सूत्र तथा एक हजांर गाथायें कंठस्थ की फिर अभिधर्म का अध्ययन आरंभ कर दिया। जब कुमारजीव नौ वर्ष का हुआ, तब मां उसका साथ लेकर कश्मीर के विख्यात बौद्ध विद्वान बन्धुदत्त के पास चली गई। उस समय बन्धुदत्त की कीर्ति चारो ओर फैली हुई थी। कहा जाता है कि उसमें प्रतिदिन एक हज़ार श्लोक लिखने की क्षमता थी। उसके पण्डित्य से प्रभावित होकर कुमारजीव ने उससे मध्यम आगम तथा दीर्घ आगम का अध्ययन किया। शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन समाप्त करके कुमारजीव कश्मीर के बौद्ध आचार्यों को अपने सात लेकर कूचा वापिस चला गया। कूचा में सर्वप्रथम उसने एक

बौद्ध विहार की स्थापना की - तथा संस्कृत के कुछ महत्त्वपूर्ण बौद्ध गंथ्रों का अनुवाद कश्मीर आचार्यों के साथ किया। कुमारजीव अपने अनुपम प्रतिभा के कारण श्रोताओं को अपने सारगार्भित व्याख्यानों से तथा प्रवचनों से मुग्ध करता था। हंज़ारों की संख्या में लोग उसका प्रवचन सुनने के लिए विभिन्न क्षेत्रों से आते थे। एशिया के इस दूरवर्तो क्षेत्र में रहकर भी उसकी अक्षय कीर्ति चारों ओर फैली हुई थी। वस्तुत: वह भारतीय ज्ञान का विश्वकोश माना जाता था। कुमारजीव काशगर पहुंचनें पर अपनी माता के समेत वहां एक वर्ष तक रहा। वहां उस ने 444 ई० में त्रिपटिक तथा विभाषा शास्त्र का गम्भीर अध्ययन किया। वहा़ं के राजा ने उसकी नवोन्मेषशालिनी प्रभावित होकर उसे धर्म-प्रवर्तन चक्र-सूत्र पर प्रवचन करने की प्रार्थना की। उसे बाद में सम्मानित भी किया गया। इस तरह कुमार जीव की पैनी सूझ से काशगर तथा कियूत्सी राज्यों में सदभावना तथा मैत्री का श्री गणेश हुआ। उस समय कश्मीर में बौद्ध धर्म प्रचलित था। (काशगर खोतान के द्वार मार्ग पर स्थित है) राजा और राजकुमार जिरत्न में विश्वास करते थे। अत: उन्होंने वहां एक विराट बौद्ध-सम्मेलन का आयोजन किया। इसमें तीन हज़ार भिक्षु सम्मिलित हुए। काशगर के पूर्व में सोची राज्य था जहां के लोग महायान सम्प्रदाय के अनुयायी थे। इस तरह कहा जा सकता है कि कुवयार-राज्य चीनी तुर्किस्तान के आधुनिक यारकंद के स्थान पर था। सोची खोतान के अत्यन्त समीप होने के कारण काशगर में कुमारजीव को सोची के अनेक महायानी भिक्षुओं से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। वहां अध्ययन करते समय कुमारजीव ने हीनयान के वैपुल्य वादी सिद्धांत में अपना विश्वास त्याग दिया। 383 ई० में त्सिनवंश के सम्राट कू-चिएन ने कूचा पर अधिकार करने के लिए अपने सेनापति लू-कुआंग को भेज दिया। यह अभियान सफल हुआ। फलस्वरुप कुमारजीव 401 ई० में चांगआन (चीन) गया वहीं 13 अप्रैल 413 ई० को सत्तर वर्ष को आयु में महामठ में उसका निधन हुआ।

कुमारजीव महामनीषी तथा प्रतिभा-सम्पन्न था। संस्कृत भाषा की

तरह चीनी भाषा पर उसे पूर्ण अधिकार था। उसने बहुत से ऐसे चीनी अनुवादों को एकत्र किया, जिनका अर्थ अस्पष्ट हो गया था। इसलिए राजा तथा कुमारजीव ने सेंग लुएह, सेंग-चिएन-सेंग चाओ आदि आठ सौ भिक्षुओं की सहायता से महाप्रज्ञा-पारमिता सूत्र का अनुवाद फिर से किया।

कुमारजीव का अनुवाद कार्य – कुमारजीव के साथ यश तथा विमलाक्ष नामक दो कश्मीरी बिद्वान चीनी भाषा से संस्कृत में अनुवाद के कार्य में संलग्न थे। 'प्रमुख भिक्षुओं के संस्मरण' के अनुसार कुमारजीव द्वारा चांग–आन में अनूदित ग्रन्थों को संख्या तीन सौ से अधिक थी। उसके अधीन सैकड़ों बौद्ध आचार्य काम करते थे। कहा जाता है कि महाप्रज्ञापारमिकता सूत्र के अनुवाद करनें में पांच सौ लिपिकों ने, और सधर्म-पुंडरीक सूत्र तथा ब्रह्मपरिपृच्छा सूत्र के अनुवाद में दो हज़ार भिक्षुओं ने तथा 'विमलकीति-निर्देश सूत्र का अनुवाद करने में 1200 स्थानीय बौद्धों ने उसकी सहायता की। 60 वर्ष की आयु में वह महायान ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद करने में संलग्न था। बौद्ध धर्म में माध्यमिक दार्शनिक विचारधारा का वह मुख्य प्रवर्तक था और अनुवादित पुस्तकों द्वारा इस मत का चीन में प्रवेश हुआ। इस प्रकार कुमारजीव का योगदान साहित्यिक क्षेत्र में अविस्मरणीय रहेगा।

संघभूति–मेरोप्ले (Mareoble) का कथन है कि कश्मीरी भिक्षुओं नें ही चीन के अन्य भागों में बौद्ध-र्धम फैलाया। संघभूति नामक यह कश्मीरी भिक्षु 381 ई० में चीन की उत्तरी राजधानी में पहुंचा। चीनी विद्वानों के अनुनय करने पर उसने विनयपिटक जैसे संस्कृत ग्रंथो का अनुवाद चीनी भाषा में किया।

गौतमसंघ - जिस समय संघभूति चीन में था कश्मीर का एक आचार्य गौतमसंघ चीन को उत्तरी राजधानी चल गया। वह अपने साथ कस्मीर के बहुत से आचार्यों को ले गया। उसने अनेक बौद्वग्रन्थो का अनुवाद चीनी भाषा में किया। अभिधर्म में वैदुष्य हौने के कारणउसने बौद्ध मत को इस शाखा के सम्बन्ध में बहुत सी पुस्तकें लिखी तथा बौद्धग्रन्थो के पुराने अनुवादो का

संशोधन किया। उसे चीनी भाषा का पर्याप्त ज्ञान था। अंत उसे पता चला कि सोग्दियन भिक्षु-ह्मूयू अन के द्वारा चीन के दीक्षण में लूशन में बौद्ध-धर्म की एक शवितशाली मठिक स्थापित हुई थी। इस भिक्षु ने चीन में बौद्द दंम के प्रसार में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

पुणयत्राता - चीनी ग्रन्थों के अनुसार कुमारजीव के साथ दो कश्मीरी आचार्य पुण्यत्राता तथा उसका शिष्य धर्मयज्ञ चीन गये थे। ये आचार्य बौद्धों के पवित्र ग्रन्थों का अनुवाद तथा भाष्य लिखने के लिए कुमारजीव का निमंत्रण पाकर वहां गये थे। पुण्यत्राता के विषय में इतिहासकरों को अधिक ज्ञान नहीं है। संभवत: वह चौथी शताब्दी के अंत में अथवा पांचवी शताब्दी के समय में कमारजीव के कहने पर वहां गया था 404 ई० में पुण्यत्राता ने कुमारजीव के साथ काम किया। वह उस समय कूचा (काशगर के पश्चिम की ओर कूचा है) में था जिस समय कुमारजीव को बन्दी बनाकर चीन लाया गया । कुमारजीव के प्रचार कार्य में उसने (पुण्यत्राता ने) उसकी सहायता की।

धर्मयश – इसका जन्म कश्मीर के सुप्रसिद्ध ब्राह्मण परिवार में हुआ था। चौदह वर्षकी आयु में उसका सम्पर्क अपने गुरु पुण्यत्राता से हुआ। बौद्ध साहित्य तथा अन्य शास्त्रों के गम्भीर अध्ययन के बाद तीस वर्षकी आयु में वह चीन गया। उसने मध्य एशिया की यात्रा की तथा वहां के लोंगों को बौद्ध धर्म में दीक्षत किया। वह चीन 267-402 ई० में पहुंचा। वहां पहुंचकर उसने चीनी भाषा में कई पुस्तकों का अनुवाद किया। कालान्तर वह मध्य एशिया वापिस आया।

बुद्धयश – यह कश्मीर के सुप्रतिष्ठित ब्रह्माण वंश से सम्बन्ध रखता था। इसका पिता बौद्ध-धर्म पर विश्वास नहीं रखता था। सत्ताईस वर्ष की आयु में वह बौद्ध-धर्म में दीक्षित हुआ तथा बौद्ध-धर्म का प्रचार करने के लिए चीन चला गया। काशगर को बौद्धिक गतिविधियों से वह अत्यन्त प्रभावित हुआ। कालान्तर वह वहां चला गया। वहां उस समय शहर में तीन हज़र से अधिक बौद्ध भिक्षु थे। बुद्धयश के पाण्डित्य तथा ज्ञान से वहां का राजअत्यन्त

प्रभावित हुआ।

फलत: राजा बुद्धयश अनन्य भक्त बना। उसने कुछ वर्षो तक वहां रहने के लिए उससे प्रार्थना की। यही काशगर में कुमारजीव के साथ उसका सम्पर्क हुआ। यहां उसने चीनी भाषा में अनेक ग्रन्थों का अनुवाद किया। जब कुमारजीव की मृत्यु हुइ, यश का मन बहुत दुखी हुआ। उसके शोक को न सहकर वह वापिस कश्मीर आगया 420-423 ई० के मध्य उसने चार ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया जिनमें दीर्घागम तथा धर्म-पिटक विनय है। वास्तव में वह उच्च कोटि का आचार्य था।

विमलाक्ष – यह कश्मीर का एक विख्यात बौद्ध श्रमण था। कुमारजीव के समय भारत और चीन का सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ हुआ था। विमलाक्ष भी कुमारजीव के साथ कूचा गया था वहां कुमारजीव ने उस से विनय सीखा। जिस समय कुमारजीव को बन्दी के रूप में चीन भेजा गया। उस समय विमलाक्ष भी वहां गया। वह चीन 406 ई० में गया। वहां दोनो ने बौद्ध ग्रन्थों पर उल्लेखनीय काम किया। कुमारजीव के 413 ई० में मरणोपरान्त वह दक्षिण चीन चला गया। वहां उससे दो पुस्तकों का अनुवाद किया। इन में एक पुस्तक उपलब्ध नहीं है। दूसरी पुस्तक का नाम दशाध्याय विनय-निदान या दशाध्याय विनय की भूमिका है। बादमें कुमारजीव के गुरु विमलाक्ष की मृत्यु 418 ई० में सत्तर वर्ष की आयु में वहां हुई।

बुद्धजीव - कश्मीर में 'विनय' का आचार्य था तथा महिशासक मठिका का अनुयायी था। वह 423 ई० में नानकिग पहुंचा। उसने 423 तथा 424 ई० में अपनी मठिका के तीन ग्रन्थों का अनुवाद चीनी भाषा में किया तथा चीनी यात्री फाह्यान के उन संस्कृत पांडुलपियों के अनुवाद कार्य में सहायता की जिन्हें वह भारत से.एकत्र करके चीन लाया थी। विनय के तीन अनुवादों में से इसका एक अनुवाद खो गया है। तथा दो अनुवाद – महिशासक - विनय तथा महिशासक का प्रतिमोक्ष सुप्राप्य है। संभवत : जीवन के अन्त तक वह चीन में ही रहा था।

गुणर्वमन - कश्मीर के मूर्धन्य आचायों में से गिना जाता है। वह कश्मीर का राजकुमार था उसका दादा हरिभद्र बहुत ज़ालिम था, अत: उसे राज्य से निकाल दिया गया था। उसका पिता संगानन्द भी देश से निर्वासित किया गया था।

शैशव से ही गुणवर्मण गुणी तथा धर्मात्मा था। बीस वर्ष की आयु में वह श्रमण बन गया। अल्पायु में ही उसने सब शास्त्रों का मन्थन किया जिससे लोगों ने उसे त्रिपटिकाचार्य क नाम से सम्बोधित किया। कुशाग्रबुद्धि होने के कारण उसने हज़ारों सूत्र कण्ठस्थ किये। जब वह तीस वर्षका हुआ, उस समय कश्मीर का राजा संतानहीन मर गया। अत: राजा के अधिकारियों ने उसे कश्मीर का सिहासन संभालने के लिए कहा किन्तु उसनेइस पद को ठुकरा दिया। बाद में वह लंका गया जहां बौद्धों ने उसका स्वागत किया। यहां रहकर उसने उच्चं कोटि के विद्वानों के साथ काम किया तथा वहां के लोंगो की कुरीतियों को दूर करने का प्रयत्न किया। कालान्तर वह यहां से जावा चला गया। इसके प्रयत्न से ही चीन तथा जावा आदि के निकटस्थ द्वीप बौद्धधर्म में दीक्षित हुए। फाह्मान का कथन है कि 425 ई० में जावा में ब्राह्माणधर्म पूर्णरुप से विकसित हुआ था, बौद्ध-र्धम इतना पनपा न था। गुणवर्मन के व्यक्तित्व से वहां के लोंगो की विचारधारा बदल गई फलस्वरूप राजा ने प्रजा के समेत 423 ई० में बौद्ध-धर्म को आत्मसात किया।

इस महान विभुति के प्रभाव से उसकी यश-पताका चारों ओर फहर गई। चीन के तत्कालीन शासक ने उसे अपने देश में आने के लिए निमंत्रण भेजा। बाद में वह जावा छोड़कर 431 ई० में नानकिंग पहुंचा। राजा ने उसका स्वागत किया तथा उसके आवास के लिए वहां 'विशालजितवन विहार' बनवाया जहां उसे राजकीय सम्मान से बिठाया गया। बाद में इस महान आचार्य ने 65 वर्ष की आयु में 432 ई० में पन्चभौतिक शरीर वहां छोड़ दिया।

गुणवर्मन ने ग्यारह संस्कृत पुस्तकों का अनुवाद चीनी भाषा में किया।

उसने नानकिंग में सधर्मपुण्डरीक का खूब प्रचार किया तथा वहां के लोगों की आध्यात्मिक उन्नति के लिए बहुत प्रयत्न किया। पहली बार उसने चीनी भिक्षुओं का संघ संगठित किया। कुमारजीव के प्रयत्न से चीन में जो बोद्ध-धर्म अंकुरित तथा पल्लवित हुआ था गुणवर्मण के पहुंचने से वह पुष्पित हुआ। निःसन्देह गुणवर्मन का योगदान इस दिशा में बहुत ही प्रशंसनीय है।

धर्ममित्र - जितवन विहार का वर्णन हमें कश्मीर के उस सुप्रसिद्ध आचार्य की याद दिलाता है जिसने वहां अनेक बौद्धग्रन्थों का अनुवाद करके नाम कमाया और जो 431 ई० में संभवतः गुणवर्मन से से भी मिला था। उस महान विभूति का नाम धर्ममित्र है जो ध्यान मठिका का विख्यात विद्वान था उसने चीनी भाषा में ध्यान पर बहुत सी संस्कृत पुस्तकों का अनुवाद किया। उसके द्वारा किया गया 'आकाश गर्भ' बाधिसत्त्व धरणि-सूत्र का अनुवाद इस समय भी प्रसिद्ध है। सबसे पहले वह कूचा चला गया जहां उसे राजकीय अधिकारियों ने चीन जाने के लिए आज्ञा नदी। अंत में वह तून-हुंग यदाकदा पहुंच गया। वहां उसने सबसे पहले एक बौद्धविहार की स्थापना की तथा इसके इर्द गिर्द हज़ारो वृक्ष लगाए। वह दीक्षणी चीन चला गया। उसका निधन सत्तासी वर्ष आयु में 442 ई० में जितवनविहार में हुआ। उसने बारह बोद्ध ग्रन्थों का अनुवाद चीनी भाषा में किया।

बुद्धवर्मन - यह कश्मीर के प्रसिद्ध श्रमणों में से गिना जाता है 433 ई० से पहले ही वह दक्षिणी चीन पहुंच गया था। वह विभाषा शास्त्र का विशेषज्ञ था। महाविभाषा शास्त्र का उसने चीनी भाषा में 437-439 ई० तक 60 अध्ययायों में अनुवाद किया। उसके निधन के विषय में निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता है।

रत्नचिन्ता - यह एक कश्मीरी बौद्धभिक्षु था जो एक शाही कत्स्य वंश से सम्बन्ध रखता था। वह विनय शास्त्रमें निष्णात था तथा 96 ई० में चीन पहंचा था। वहां उसने (तिइन-चु-सी) नामक विहार स्थापित किया। उसने संस्कृत की सात पुस्तकोंका अनुवाद 668 ई० से 706 ई० तक चीनी भाषा

किया। अंत में उसका देहांत 721 ई० में हुआ।

वेरोचन – ह्यू नसांग के अनुसार वेरोचन कश्मीर का बौद्धभिक्षु था। वह कश्मीर से अपने साथ भगवान बुद्ध के अवशेष (Relics) खोतान ले गया। उसकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर राजा ने उसके लिए क्षर्मा (Tsarma) नामक विहार बनवाया। यह खोतान मैं पहला बौद्ध विहार माना जाता है।

उपरोक्त बौद्धभिक्षुओं के अतिरिक्त प्रज्ञाबल, बुद्धभद्र गुणभद्र, तथा सूरजभद्र ने भी चीन में बौद्ध-धर्म फैलाने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण काम किया है।

इस प्रकार भारत के अतिरिक्त कश्मीर के बौद्धआचार्यों ने मध्य एशिया तथा चीन में बौद्ध-धर्म के प्रचार व प्रसार के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया था। इस धर्म ने उनकी विचारधारा में महान परिवर्तन किया तथा आत्मा के सिद्धांत से उन्हें परिचित किया। फलत: वहां के लोगों ने आत्मा की नित्यता पर विश्वास किया। वे भारतीय संस्कृति के प्रभाव से अछूते न रहे। उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि चीन की जनता के लिए बौद्ध-धर्म एक प्रकार का आध्यात्मिक संबल प्रमाणित हुआ था।



कश्मीरी विश्वकोश के आलेख

रत्नदेवी बिहार राजा जयसिंह (1128-55) की रानी नें रत्नपुर में बनवाया था। यह गांव श्रीनगर से दक्षिण-पश्चिम में पुल्वामा तथा लोजर के बीच में स्थित है और श्रीनगर से दूर है। कदाचित् इसी बिहार के कारण रत्नपुर का यह नाम पड़ गया है।

रत्नदेवी ने गांव में बिहारों के अतिरिक्त बैकुण्ठनाथ मठ तथा अन्य अनेक भवन बनवाये। इस विषय में कल्हण लिखता है - ''उसके रत्नपुर नामक मठ जिसमें किसी प्रकार की कोई त्रुटि नहीं हैं। एक प्रमुख स्थान हे। इसमें अनेक तोरण हैं। बनावट के कारण यह मठ राजहंस के बड़े पिंजरे के समान हैं।''

रत्नपुर में इस समय इन निर्माणों के अवशेष नज़र नहीं आते हैं न ही यहां पर किसी प्रकार की खुदाई की गई है। 1982 ई० में रत्नपुर में हाई स्कूल के पास उस जगह खुदाई हुई थी जो आजकल 'रत्नसर' के नाम से प्रसिद्ध है। खुदाई के समय वहां प्राचीन ठीकरें तथा ईंटें निकल आयी। अनुमानत: कहा जाता हे कि बारहवी शती के निर्माण एक तरफ 'रत्नसर' के पास ऊंचाई और दूसरी और स्कूल के उत्तर-पश्चिम की ओर ऊंचाई पर थे जो अब कब्रिस्तान है।

रामबाग

रामबाग शेरगढ़ी के बराबर में वितस्ता के दाएं तट पर वर्तमान बिजली घर के पीछे था जहां इस समय भी पुराना घाट मौज़ूद हैं।

यह बाग सिख-गवर्नर दीवान कृपाराम ने बनाया था जो 1825-1830 ई० तक कश्मीर का गर्वनर था। बाग तथा घाट के बीच में उसने एक बालादरी बनवाई थी जहां वह गीष्म ऋतु में मनोविनोद के लिये जाता था। बालादरी का प्रांगण प्रस्तरों से आवृत था।

रामबाग में कृपाराम ने गन्नों के उत्पादन का परीक्षण किया था। यद्यपि उसका परीक्षण सफल रहा किन्तु अधिक सर्दी के कारण गन्नों से शक्कर कम निकली। यह निश्चित नहीं कि कृपाराम द्वारा निर्मित रामबाग उस जगह था जहां आजकल ड़ोगरा महाराजाओं की समाधियां हैं।

जिस रामबाग में ड़ोगरा महाराजाओं की समाधियां हैं वह वितस्ता वे बाये तट पर श्रीनगर से हवाई अड्डे की ओर जाने वाली सड़क पर है। बाग इस समय मोजूद नहीं है, किन्तु महाराजा गुलाबसिंह (1846-87 ई०) की समाधियों शिखर शैली के मंदिरों के रूप में विद्यमान हैं। बाग के क्षेत्र में मकान आदि बैने हुये हैं।

चख़दर (चक्रधर)

'चखधर' चक्रधर का कश्मीरी रूप है। चक्रधर या चक्रव्रत विष्णु का उपनाम है। इस तरह यह विष्णु का देवालय था। चक्रधर मन्दिर विजयेश्वर के उत्तर-पश्चिम की ओर दो किलो मीटर दूर उस टीले पर था जिसे लोग आजकल 'चखदर' या 'ज़खड़ार' कहते है। टीले पर इस समय तोतलुक शाह का मक़बरा तथा एक चिनार का वृक्ष है। इसके चारों ओर भिन्न-भिन्न प्रकार की ठीकरियां बिखरी हुई हैं जिनसे प्राचीनकाल में मंदिर के आने-जाने का पता चलता है। देवालय का वर्णन 'नीलमतपुराण' में भी हुआ है। इसकी प्राचीनता का प्रमाण 'नीलमतपुराण' के अतिरिक्त उन सिक्के से भी मिलता हे जो सिक्के टीले के आसपास के क्षेत्र में मिले हें। इन सिक्कों में कुछ सिक्के ऐसे हैं जिन का सम्बन्ध यूनानी और पार्थियन राजाओं से है।

यहां 'पुरातत्व विभाग' ने उत्खनन द्वारा यूनानी काल के कुछ कलात्मक नमूने पाये है जिनसे पता चलता है कि वहां पुराने जमाने में यूनानियों का आवास था।

चक्रधर मंदिर प्राचीरयुक्त था। किन्तु आकार तथा निर्माण में केवल लकड़ी का प्रयोग हुआ। जिससे प्राचीनकाल के अवशेष पूर्ववत हैं। चहारदीवारी

तथा निर्माण कार्य में लकड़ी का प्रयोग इसलिये जरूरी बना हुआ है कि आसपास के इलाकों में पुराने ज़माने से पत्थरों का अभाव रहा है। टीले पर राष्ट्रीय मार्ग की तरफ एक विशाल द्वार है जिसे आजकल भी लोग 'हेस्यवरन' कहते है। देवालय में अनेक बार आग लगई पर इस बात का पता नहीं चलता है कि जलने के बाद देवालय का पुनर्निर्माण किस ने किया। चक्रधर मंदिर राजा नर के शासनकाल में उस समय जल गया जब राजा के विरोध में नागों ने नरपुर में पत्थर बरसा कर उथल-पुथल मचा दी। भयत्रस्त लोग भागते-भागते चक्रधर मंदिर में छिपने लगे किन्तु नागों ने देवालय को भी नहीं छोड़ा। उन्होनें उसे भी भस्मसात् कर दिया।

राजा सुस्सल (1112-20 ई०) के काल में जब बिद्रोहियों के हाथों राजकीय सेना परास्त हुई। शाहीसेना तथा विजय क्षेत्र के लोग चक्रधर मंदिर के क्षेत्र में अपनी सारी सम्पति लेकर छिपने के लिये चले गये। विद्रोही, मंदिर के आकार को नष्ट न कर सके। अन्त में जनकराज नामक एक व्यक्ति ने चारदीवारी को आग लगा दी। इससे अनगिनत लोग जल गये। जो लोग आग मे से बच कर निकले, उनको बाहर निकाल कर विद्रोहियों ने मार दिया और शवों को टीले पर ही दाह दिया गया।

राजा सुस्सल के बाद किसने मन्दिर का पुन:निर्माण किया, उसके विषय में कुछ ज्ञात नहीं है।

जोनराज (1389-1459 ई०) का यह कथन कि चक्रधर में विष्णु की मूर्ति सुल्तान सिकन्दर ने तोड़ दी। इस से यह संकेत मिलता है कि सुस्सल के शासनकाल में जलने के बाद इस मंदिर का पुन:निर्माण हुआ था जो चौदहवी शती तक विद्यमान था। भिन्न-भिन्न प्रमाणों से यह बात सिद्ध होती है कि चक्रधर मंदिर के आसपास चहारदीवारी काफी विशाल तथा विस्तीर्ण थी अन्यथा किस प्रकार शाही सेना तथा विजय क्षेत्र के लोग छिपने के लिये मंदिर के क्षेत्र में प्रविष्ट हो सकते थे। पुराने पुरावशेषों के कारण टीले की दायीं तरफ 40 गज़ वर्गाकार एक निर्माण के चिन्ह थे।

परीमहल

परीमहल झील डल के दक्षिण तथा पूर्व में 'ओबराय पैलेस होटल', चश्माशाहीबाग के बीच जबरवन पहाड़ की गोद में स्थित है। ह्यूनसांग के कथनानुसार प्राचीन काल में इसी स्थान पर या इसके आसपास ही एक बड़ा बौद्ध विहार या स्तूप था जिस में बुद्ध का दांत था। मगर इस समय इस स्थान पर कही भी प्राचीन अवशेष दृष्टिगोचर नहीं होते।

परीमहल दाराशिकोह ने शाहजहां (1627-58) के समय अपने गुरू अखोंनमुल्लाशाह के लिये ज्योतिष शास्त्र की एक मठिका के रूप में बनाया था। वहां वह ग्रहों की गतियों का निरीक्षण करता था।

पहाड़ के खंखर में निर्मित परीमहल की वास्तुकला पर यूनानी मंदिरों के प्रभाव का गौरव परिलक्षित होता है।

परीमहल में विशेष भवन है। दाई बाई ओर बालादरियां भी हैं और मुख्य भवन में सम्भवत: प्राचीनकाल में गुम्बद था। बाग के ऊपर पांच तहें हें जिन में फब्बारे लगे हुए थे।

मगरकुल्या तथा झरनों के चिन्ह न होने के कारण ऐसा अनुमान किया जाता है कि फब्बारों में ज़मीन के नीचे से पानी बहता था।

डॉ० कैलाशनाथ कौल की देखरेख में वहां 1969-74 ई० के दौरान जो खुदाई हुई उस समय वहां अनेक मिट्टी की नालियां निकाली जिनसे जमीन के नीचे पानी के बहाव में मदद मिली।

परीमहल मुग़ल शैली के निर्माण का नमूना है। इसकी मरम्मत करके इसके गौरव को पुन:स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। अब वहां प्रतिदिन शाम को चिरागन होता है ग्रीष्म ऋतु में खूब फूल खिलते है।

पीछे पर्वत खण्ड तथा आगे डल झील होने के कारण परीमहल की सुन्दरता में चार चांद लग गए हैं इससे दाराशिकोह के सौंदर्य-बोध का पता चलता है। परीमहल कश्मीरियों में 'कून्तिलन' नाम से भी जानाजाता है।

अनन्तनाग

अनन्तनाग का यह नाम उस तालाब के कारण पड़ा जो कस्बे के दक्षिण में फूटता है। यह तालाब प्रसिद्ध तीर्थ था जिसका वर्णन 'नीलमतपुराण' में पाया जाता है। हरचरित् चिन्तामणि तथा अन्य माहात्म्यों में भी अनन्तनाग का उल्लेख है जिससे प्रतीत होता है कि हिन्दुओं के शासन काल में यात्रा के कारण यहां लोगों का आना-जाना रहा था। अनन्तनाग के निकट ही गौतमनाग भी है। इसका वर्णन 'नीलमतपुराण' आदि ग्रन्थों में किया गया है।

अनन्तनाग वस्तुत:शेषनाग का ही एक अन्य रूप है जो विष्णु का आसन है। इस तीर्थ में भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशी के दिन उत्सव मनाया जाता है। इस दिन कश्मीरी पण्डितानियाँ अपने कानों पर धागे का अथवा सोने का सांप लटका कर रखती थी जिसे कश्मीरी में 'अनथ' कहते है। कान पर अनन्त लटकाना नाग पूजा का प्रमाण है।

होगल का यह कथन ऐतिहासिक दृष्टि से प्रमाणित नहीं हुआ है कि राजा नर को इसी स्थान पर व्रत धारी ब्राह्मण मिले थे जिन के शाप के कारण वह (राजा) सांप बन गया था। यह कथा राजतरङ्गिणी में राजा दामोदर के साथ जुड़ी हुई है जो होगल ने राजा नर से मनसूब की है।

इसी तरह उसका यह कथन इतिहास की दृष्टि से सिद्ध नहीं होता कि तालाब के ऊपर जो मन्दिर है उसकी नींव आर्यराज सिन्धुमती ने डाली है। इस समय जो मंदिर इस तालाब के उपर बनाया गया है, वह ज्यादा पुराना नहीं है। इसका पता मंदिर की बनावट से चलता है। मगर मंदिर की कुछ मूर्तियां हज़ार साल तक की पुरानी मालूम होता हैं।

सदाशिव

सदाशिव शिवनाथ का ही उपनाम है चूंकि कश्मीर में शिव मंदिर के भिन्न-भिन्न नाम है जैसे :- भूतेश्वर, कपटेश्वर, प्रवरेश्वर तथा अर्धनारीश्वर आदि। सदाशिव नाम का एक मंदिर राजा अनन्त (1028-1063 ई०) की

रानी सूर्यमती ने बनाया। कल्हण लिखता है कि जब रानी का राज़ नामक पुत्र मर गया, तो राजा तथा रानी दोनों राजभवन छोड़कर निकल गये और सदाशिव मंदिर के पड़ोस में रहने लगे। उसके बाद परवर्ती राजाओं ने भी इसका अनुसरण किया। वे प्राचीन अट्टालिकाओं को छोड़कर इसी जगह निवास करने लगे।

इस तरह सदाशिव मंदिर के आस पास ही राजा अनन्त के समय राजमहल बन गया। नया राजमहल 'कट्ट क्वल' (क्षप्तिकुल्या) वितस्ता को बायें तट पर शेरगढ़ी के पास निकलती है तथा चार किलोमिटर वह कर पुन:इसी में समाती है और वह द्वीप बनता है जिसमें प्राचीनकाल का सारा 'ताशवान' का क्षेत्र आदि आता है। यहां इस बात का भी प्रमाण दिया गया है कि वितस्ता का उत्तरी तथा दक्षिणी तट राजमहल के बराबर था। कल्हण के कथनानुसार 'सदाशिवपुर' वितस्ता के बाएं तट पर था जिसके बराबर दाई तरफ सदरमर (समुद्रमठ) था। इस प्रकार यहां दो बातें प्रकट होती है कि सदाशिवपुर आजकल का पुरुषयार है जिसे सदाशिव मन्दिर होने के कारण सदाशिवपुर का नाम पड़ गया होगा और राजा अनन्त का राजभवन पुरुषयार के आसपास था। सदाशिव मंदिर की इस यादगार को लोक परम्परा भी पुष्ट करती है। स्टाइन लिखते है कि उससे कुछ वर्ष पहले हब्बाकदल में वितस्ता के बाएं तट पर पचास गज़ नीचे एक प्राचीन लिंग खड़ा था जिसे वहां के वासी सदाशिव कहते थे। स्टाइन का यह कथन भी सही है। वह जिस जगह की ओर संकेत करता है वह जगह आजकल का पुरुषयार का घाट है। शिवलिंग इस समय भी पुरुषयार के मंदिर में मौज़ूद है। मंदिर अभी भी घाट के ऊपर बाईं तरफ विद्यमान है। मगर इसकी बनावट में तबदीली आ गई है। इस की वास्तुकला कश्मीर के वर्तमान काल में निर्मित शेखर आकार के मंदिरों के समान है जो कश्मीर के प्राचीन मन्दिरों से भिन्न है।

इससे स्पष्ट होता है कि ग्यारहवीं शती में ही वितस्ता के बायें तट पर ताजमहल बनाया गया था जिसे हर्प के समय में आग लगा दी गई। इससे यह

भी मालूम होता है कि सदाशिव मंदिर राजभवन के निर्माण से पहले ही बनाया गया था। इस के अतिरिक्त इससे यह बात भी प्रकट होती है कि ग्यारहवीं शती से पहले श्रीनगर वितस्ता के बाएं तट पर फैला हुआ था।

अमृत भवन

अमर्यथ भवन (अमृत भवन) लाल चौक से आठ किलो मीटर उत्तर की ओर श्रीनगर 'गांधरबल' सड़क से उस प्रदेश में था जिसे आजकल 'वोत्बवन' कहते हैं।

वस्तुत: अमर्यथ भवन बौद्ध विहार था जो राजा मेघवाहन (पांचवीं शती) की रानी अमृत प्रभा ने सुदूर प्रदेशों से आने वाले बौद्ध भिक्षुओं के लिए बनवाया था। भाषाविज्ञान के नियमों के अनुसार वोंतबवन अमृत भवन का प्राकृत रूप है। इतिहास के प्रमाणों के अनुसार विहार बड़ा उंचा तथा प्रसिद्ध था।

औकांङ्ग (759 ई०) इस विहार का वर्णन तपोवन के नाम से करता है। इस विषय में 'सर आर्ल स्टाइन' का मत यह है कि ओकांग ने इन दो विहारों का जो वर्णन 'अमर्यथ भवन' और तपोवन के नाम से किया है, वस्तुत: वे एक ही निर्माण के दो नाम हैं।

अमृत भवन विहार के अवशेष 'वोंतबदन' और लछिम नदी के मध्य-क्षेत्र में थे। 1895 ई० में यहां स्तूप के समान बीस फुट ऊंचा टीला था जिस का आकार स्तूप समान था। एक वर्ग प्रांगण के आसार बिछाये गये पत्थरों से जाने जाते थे। टीले से तीस गज़ दूर उदयमान सूर्य की ओर उस क्षेत्र में एक तालाब था जिसके इर्दगिर्द दीवार के चिन्ह थे। विहार के कुछ पत्थर महाराजा रंबीर सिंह ने अन्य मंदिरों के निर्माण के लिये लगवाये।

अन्दरकूट

अन्दूरकूट श्रीनगर के उत्तर-पश्चिम में सुम्बल कस्वे से एक मील दूर है। यह वितस्ता के वाये किनारे रेखांश 74-12 तथा अक्षांश 34-31 के

दर्मियान में स्थित हैं। पुराने ज़माने में इस गांव के दो भाग थे। एक भाग हाजन नड़वल (दलदल) के बीच में था दूसरा भाग दल-दल के बाएं तट से सुम्बल तक फैला हुआ था। दोनों भागों में आपस में केवल चार सौ गज़ों का अन्तर था। आठवीं शती (ईस्वी) में इस गावं का प्राय: ढाई वर्ग मील राजा जयपीड़ के समय (751-782) नाजन दलदल पूरा करके हासिल किया गया। वहां एक दृढ़ दुर्ग, बौद्ध विहार तथा विष्णु का मन्दिर बनवाया गया। यह स्थान जयापीड़ के बाद अनेक राजाओं का राज्यासन बन गया। उस समय वितस्ता इस गांव में पश्चिम की ओर उस नाले से बहती थी जिसे आज 'नोरनाला' कहते हैं।

यह जगह 'अन्दरकूट', 'अन्तरकूंट', 'अन्दरकूट', 'जयपोर', 'जयापीड पोर' और 'अन्दरकुल' नाम से भी प्रसिद्ध है। द्वीप का वह भाग जो दलदल के बीच में स्थित है, सुरक्षा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण था। कश्मीर के राजा प्राय:राजनीतिक उथल-पुथल के समय इसी भाग में छिप जाते थे। चारों ओर दलदल के कारण यह सुरक्षित स्थान माना जाता था। अत:दुर्ग के इस भाग को 'अन्तरकोट' यानि अन्दर का किला नाम पड़ा। द्वीप का बाह्यभाग द्वारव्रत बाह्य कोट अथवा बाह्य किले के नामसे प्रसिद्ध है। चूंकि मन्दिर तथा विहार प्राय:अन्दर के ही भाग में थे। इसलिए द्वारव्रत का वह महत्व न रहा। इस सारे भाग को लोगों ने अन्तरकूट के नाम से ही पुकारा जो कालांतर 'अन्दरकूट' ही बना। क़िला बनवाने के अतिरिक्त यहां जयापीड़ तथा उसके मंत्रियों ने विष्णु तथा बौद्ध मंदिरो का निर्माण भी करवाया जिनमें चित्रात्मा केशव, शेष केशव तथा अमृत केशव प्रसिद्ध थे।

राजा अवन्ति वर्मा के (855-883 ई०) आदेश से सुय्या ने वितस्ता का संगम पुरसपुर से शादीपुर के निकट पहुंचा दिया। परिणामस्वरूप अन्दरकूट का यातायात खत्म हुआ। इसीलिए राजा शंकर वर्मा (883-901 ई०) ने अपनी राजधानी शंकरपुर (पटन) में वनाई। प्राय:अन्दरकूट के विहार गिरा दिये गये। उनका मलबा शंकरपुर पहुंचाकर वहां नये देवालय बनावाये गए।

अन्तिम हिंदू शासिका कूटारानी (1338-39 ई०) जब सुलतान शमस उद्दीन शाहमीर (1339-42 ई०) के आक्रमण से तंग आ गई, तो वह अन्दरकूट किले के अन्दर कैद करके राज्य सिंहासन से अलग कर दी गई। अन्त में सुल्तान शाहमीर को वहां दफनाया गया। सुलतान अल्लाउद्दीन (1343-1354 ई०) के समय जब शहर की अधिकतर आबादी दीक्षित की गई तो लोगों का केन्द्र 'जामा मस्जिद' बन गया। उसके इर्दगिंद इलाकों में उसने अल्लाउददीन पोर में नया शहर और वहीं अपनी राजधानी बनाई।

1460 ई० में अन्दरकूट में ज़बरदस्त बाढ़ आ गई जिससे वहां के मकान ढह गए, किन्तु कुछ समय के बाद सुल्तान ज़ैन-उल्लाबदीन बड़शाह (1420-73 ई०) ने यह शहर नये सिरे से पुन:बनवाया। मन्दिरों की मरम्मत कराई। अनेक तालाब खुद्वाये।

धार्मिक दृष्टि से 'अन्दरकूट' का बहुत महत्त्व था। बडशाह के समय तक वहां 'नागयात्रा' तथा 'गनचखुर' जैसे मेले धूमधाम से मनाये जाते थे जिसमें राजा स्वयं सम्मिलित होता था। इन उत्सवों में भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन बांटे जाते थे। सरकारी दफतर निर्माण करने के लिए बड़शाह ने दलदल का बड़ा भाग पूरा करवाया। इसके अतरिक्त सोपोर तक एक नदी निकलवाई। इस नदी का निशाना भी अब विद्यमान नहीं है। 1541 ई० में मिर्ज़ा हैदर दुगलत के आदेश के अनुसार 'अन्दरकूट' किले के निकट एक राजमहल का निर्माण कराया गया जहां मिर्ज़ा हैदर स्वयं रहता था। इस महल की विशेषत यह थी कि वहां पहली बार लकड़ी के वातायन चौखटों में लगाए गए। तारीख हसन के एक प्रमाण के अनुसार जब कश्मीर के सरदारों ने हैदर दुगलत पर हमला किया, तो पहले उन्होंने हैदर दुगलत के महलखानों को लूटा फिर उसे आग दी चूंकि अवुल फज़ल इस महलखाने का उल्लेख करते हुए लिखता है कि जब 1592 ई० में अकबर बादशाह कश्मीर चला गया, तो अन्दरकूट पहुंच कर वह उसी महल में ठहरा।

अवुल फज़ल के कथनानुसार सोलहवीं शती में अन्दरकूट के अधिक

भू-भाग पर केसर भी पैदा होता था। इस समय पुराने आसारों में से कुछ मौजूद नहीं हैं। बोद्ध विहार और विष्णु मन्दिर जो निर्माण किये गये थे-वे पत्थरों के ढेरों में तबदील हो गये हैं।

श्री रामचन्द्र काक नें वहां सर्वेक्षण के समय एक मूर्ति प्राप्त की जो चतुर्भुजविष्णु के रूप में ललितासन मुद्रा में थी। वहां शमसउद्दीन शाहमीर का बीस फुट मकबरापक्की ईटों का है जिसमें देहली के स्तम्भ नक्काशी से सजे हैं।

चक्रेश्वर

कश्मीर में चक्श्वेर के नाम से शिव की पूजा की जाती थी। नीलमतपुराण के अनुसार कश्मीर में चार जगहों पर चक्रेश्वर के देवालय थे। यह स्थान भांडीपुर के पास 'चित्रनार' के ऊपर एक किलो मीटर दूर है। दूसरा स्थान बिजबिहाड़ा (विजयेश्वर) के साथ है। तीसरा स्थान 'इशबर' (ईश्वर) के तालाब के ऊपर है, जिसे 'चक्रतीर्थ' भी कहा करते थे। चौथा स्थान 'खवन-मुंह' के पहाड़ पर है उस जगह को अब 'हर्यश्वर' कहते हैं।

बिजबिहाड़ा के साथ जिस चक्रेश्वर का वर्णन 'नीलमतपुराण' तथा 'वितस्ता माहात्म्य' में हुआ है, वह 'थज्यवारि' (स्थलवाटिका) का देवस्थान है जिसे शिवजटा कहते हैं। यहां पर इस समय भी श्रावण पूर्णिमा के दिन यह उत्सव मनाया जाता हे किन्तु प्राचीन काल के निर्माण के अवशेष यहां कहीं दृष्टिगोचर नहीं होते। 'चक्रेश्वर' नामक एक मन्दिर का उल्लेख कल्हण ने किया है और राजा ललितादित्य की स्थिति का वर्णन वह इस प्रकार करता है : ''राजा से मांग कर इस तरह रानी चक्रमार्दिका ने लक्ष्मण स्वामी की मूर्ति चक्रेश्वर के साथ खड़ी कर दी।'' इस वर्णन से पता चलता है कि लक्ष्मण स्वामी का मन्दिर बनने से पहले ही चक्रेश्वर का निर्माण हुआ था ? लेकिन यह बात सिद्ध नहीं हुई है कि चक्रेश्वर मन्दिर का निर्माण किस ने किया था, कहां किया था और कब किया था ? कल्हण का वर्णन इस बात की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करता है कि ये दोनों मन्दिर 'परिहासपुर' में ही है।

कल्हण लिखता है कि परिहास केशव के साथ अन्य प्रस्तर-भवन का निर्माण करके जिस तरह राजा ने रामस्वामिन् नाम की मूर्ति उस में प्रतिष्ठित कर दी उसी तरह चक्रेश्वर के साथ रानी चक्रमर्दिका ने लक्ष्मण स्वामिन् का मन्दिर बनवाया तथा उस में राजा से मांग कर वह मूर्ति रख दी जो राजा ने किसी शून्यस्थान में ज़मीन खोदकर निकलवाई थी। पुंछ इलाके में यह कथा प्रचलित है कि ललितादित्य ने लक्ष्मण स्वामिन् मन्दिर की मूर्त्ती-पुंछ के इलाके में ज़मीन से निकाल लाई थी। यदि यह कथा सही है तब पुंछ प्राचीनकाल से ही कश्मीर का अंग था।

परिहास केशव तथा राम स्वामिन् मन्दिरों के अवशेष परिहासपुर में ही विदित हुए हें जिससे यह स्पष्ट होता है कि चक्रेश्वर मन्दिर भी वहां ही था। यदि रानी ने लक्ष्मण स्वामिन् मन्दिर परिहासपुर से बाहर बनवाया होता तो उस स्थिति में कल्हण ने अवश्य उस विषय में संकेत किया होता। यदि यह कथा प्रमाणित मान ली जाए कि 'चक्रेश्वर मन्दिर' परिहासपुर में था, उस रूप में यह आठवी शती का निर्माण होता। क्योंकि परिहासपुर को राजा ललितादित्य (695-731 ई०) ने राजधानी के रूप में आठवी शती में ही आबाद किया। चक्रेश्वर मन्दिर के आसार उन्हीं आसारों में से ते जो ग्वर्दन (गोवंर्धन) पठार पर या दिवर में लक्ष्मणपुर में इस समय भी बिखरे हुए हैं। इन अवशेषों का एक महत्त्वपूर्ण खंड डोगरा शासनकाल में तोड़ कर कंकरों (रोड़ी के रूप में) के रूप में प्रयोग किया गया।

जयवन

जयवन का गांव श्रीनगर से ग्यारह किलो मीटर दूर 'ज़बरवन' पहाड़ के पूर्व की ओर स्थित है। इस गांव के उत्तर पूर्व की ओर ख्वनमुह दक्षिण की ओर पातं-छव-ख (पांथ शोकः) तथा पूर्व की ओर पांपुर का विस्तृत केसर का पठार है। गांव में सड़क की दाई तरफ राजा तक्षक का तालाब हे जो सम्भवत: कश्मीर में एकमात्र तालाब है जिस का वर्णन महाभारत के तीथों

तथा कथासरितसागर की कहानियों में किया गया है। एक परम्परा के अनुसार इसी तालाब में से राजा तक्षक पहली बार केसर की गांठ लेकर निकला। उसने यह गांठ पांपुर के एक वैद्य को भेंट के रूप में दी। तक्षक राजा का यह तालाब 40 फुट गोल तथा 60 फुट गहरा है। इसका पानी बहुत ही स्वच्छ तथा निर्मल है। तालाब के चारों ओर पत्थरों की चौरस दीवार है। तीनों ओर 'अग्नि-तप्त देवर' (एक विशेष प्रकार का पत्थर) प्रस्तरों के सोपान हैं और सोपानों के ऊपर पत्थरों का मण्डप है। मण्डप के उपर एक मुसलमान बुज़ुर्ग का पवित्र स्थान है। तालाब के कुछ पत्थर एसे है जिन की बनावट पांद्रेंठन के पत्थरों से मिलती-जुलती है। ऐसे ही कुछ पत्थर गांव के आसपास गड्ढों तथा तालाबों आदि की ओर बिखरे हुए हैं। कल्हण के अनुसार इस गांव को राजा कलश (1089-1101 ई०) ने बसाया। उसने यहां कुछ मंदिर, विहार तथा मठ बनवाये। हसन खुयहामी के मतानुसार यहां अवन्ति वर्मा के मन्त्री प्रभाकर वर्मा ने जयवन गांव में एक विष्णु का मंदिर बनवाया जिसका नाम उसने प्रभाकर स्वामिन् रखा। संस्कृत कवि बिल्हण जो इस गांव के साथ रहता था, वह ज्यवन (जयवन) के विषय में इस प्रकार वर्णन करता है :-

''यहां पर प्रंशसनीय अट्टालिकांए हैं। गांव के बीच मेंतक्षक राजा का पवित्र तालाब है जिस में से कुंकम की गांठ उपहार के रूप में निकली। तालाब पर पूजा करने के लिये विभिन्न दिशाओं से यात्री पूजा करने के लिए आते है।'' आजकल वहां उन भवनों तथा विहारों के अवशेष नहीं हैं। एक अनुमान के अनुसार राजा कलश के पुत्र हर्षदेव ने ये मन्दिर तोड़ दिये और उसने यह गांव उजाड़ दिया।

अबुल फ़ज़ल के कथनानुसार अकबर बादशाह के समय तक आसपास के मुसलमान जमींदार तक्षक तालाब पर पहुंचते तथा केसर की फसल की वृद्धि के लिए तालाब में गाय का दूध चढ़ाते थे।

ज्येष्ठ पूर्णिमा के दिन, जब हरीश्वर में उत्सव होता है लोग इस तालाब पर आते है।

जैन लंका

जोनलांख (जैन लङ्का) बुल्लर में उदयमान सूर्य की ओर एकमात्र द्वीप है। कल्हण-राजतरंगिणी में जैन लंका की कोई चर्चा नहीं है जिससे यह पता चलता है कि बारहवीं शती से पहले लंका का कोई अस्तित्व नहीं था। कुछ लोगों का कहना है कि लांख पुरानी नींव पर बनाई गई थी और इस स्थान पर 'वुलर' किन्हीं भवनों की पत्थरों से पूरा कर दिया गया था। आनन्द कौल बामज़ई लिखते हें कि इस द्वीप का नाम स्वन लांख (स्वर्ण लंका) है।

ज़ैन लंका के विषय में बडशाह के दरबारी कवि तथा इतिहासकार जोनराज का प्रमाण महत्वपूर्ण है। क्योंकि वह जैन लंका के विषय में लिखता है - वास्तुकला के क्षेत्र में उत्कृष्ट सफलता का नमूना 'वुल्लर' था। इसके (महापदमसर) अन्दर पानी में पत्थरों से नावों से पत्थर डालकर एक द्वीप का निर्माण किया गया था। इस तरह जो ज़मीन वहां बन गई उस का नाम 'ज़ॉनु लांख' रखा गया। द्वीप पर सुय्या के निरीक्षण में एक शाही भवन निर्माण किया गया।

एक ऐतिहासिक शिलालेख ज़िसमें लांख की आधारशिला का प्रमाण मिलता हे, वह 'लांख' से विदित हुआ है। शिलालेख इस समय श्री प्रताप संग्रहालय में है। शिलालेख में इस का उल्लेख है कि द्वीप को ज़ैनद्वीप भी कहा करते थे। साथ ही जोनराज का कथन भी प्रमाणित होता है कि द्वीप का निर्माण करने वाला सुल्तान जैन-उल्लाबदीन बडशाह (1420-1470 ई०) है। शिलालेख इस प्रकार है :-

''ए बुकह चों फलक महकम वाद।
मशहूर ब ज़ैन द्वीब दर आलम बाद।।
शह ज़ैन आबाद दरू जशन कुन्द।
पैवस्त चो तारीख खुदश खुरम बाद।।''

आज तक कश्मीर में पाये गये शिलालेखों में से यह फ़ारसी लिपि में सब से पुराना शिलालेख है।

मिर्जा हैदर दुगलत ने लिखा है कि मनोरंजक सभाओं के लिये 'ज़ॉन् लांख' बहुत ही रमणीक स्थान है। हसन लिखता है कि द्वीप की लम्बाई सौ गज़ चौड़ाई 75 गज़। बादशाह ने द्वीप पर एक सुन्दर बाग बनवाया था जिसमें फलदार वृक्ष तथा नाना प्रकार के फूल थे। उत्तर कोने पर तिमंज़िला भवन तथा एक सुन्दर मस्जिद थी।

बर्नेयर (1663 ई०) ने भी 'सफरनामा' में 'ज़ॉन् लांख' का वर्णन किया है। वह लिखता हे कि सर के मध्य-भाग में एक छोटा–सी झोंपड़ी है जिसके साथ एक छोटी वाटिका है। कहा जाता है कि यह द्वीप पानी पर तैरता है जो आश्चर्यजनक है।

शायद 'मोरक्राष्ट' के समय द्वीप का चौरस आकार स्थित न था। वे लिखते है कि द्वीप का घेराव तीन सौ गज़ है। इस पर दो ज़ीर्णशीर्ण मकान हैं। जो भवन उदयमान सूर्य की ओर पत्थरों से बनाया गया हैं उसका सम्बन्ध स्पष्ट रूप से भारतीय वास्तुकला के साथ है। प्राचीनकाल में इसके अनेक डोरदार खम्भे इधर-उधर बिखरे हुए थे जिन पर किसी प्रकार का कोई आलेख न था न कोई मूर्ति। बाईं ओर दूसरा भवन चौरस था जिस की छत साधारण है। 'लांख' के ऊपर कुछ झोंपड़ियां हैं जिनमे रहने-वाले अत्यन्त दरिद्र हैं।

बर्नर चार्लस होगल ने 1835 ई० में 'ज़ैन लांक' का दौरा किया है। उसने अपने सफरनामा में लिखा है :-

''तट के पास ही एक छोटा द्वीप जिसे 'लंका' कहते हैं। इससे हमें इस बात का आभास होता है कि इसके ऊपर एक वेधशाला थी जिस पर ज्योतिष शास्त्र सम्बन्धी सारे परीक्षण किए जाते थे।''

यहाँ एक जीर्णशीर्ण अवस्था में एक बड़ा भवन हे जो प्राचीनकाल में बौद्ध मन्दिर होगा। यह भवन वर्गाकार था। इसके इर्दगिर्द पत्थरों की सीढ़ी थी।

ज़ैन-उल्लाबदीन के द्वीप में हसनखान द्वारा निर्माण किया गया मस्जिद के तथा जैन उल्लाबदीन द्वारा बनाए गए महल के अवशेष बहुत ही आकर्षक हैं।

सर रिचर्ड टैम्पल 1853 (a) ई० में लांक गया। वह लिखता है कि लांक बहुत ही आकर्षक जगह है किन्तु इसका प्राय: सारा क्षेत्र के नीचे है तथा दल-दल से ढका हुआ है जिससे इसका सौन्दर्य मलिन हो गया है। मन्दिर के अवशेषों की वास्तुकला अविशष्ट पुराने मन्दिरों के साथ मिलती-जुलती है। इसका अधोभाग पत्थरों से आवृत्त है और भवन प्रचलित शैली के कारण समलंकृत है। इसके अतिरिक्त वहां सुल्तान ज़ैन-उल्लाब्दीन बड़शाह द्वारा निर्मित मस्जिदों के अवशेष भी हैं जिसमें विशेषतया बड़शाह 'महिस्याम' में पूजा करते थे।

'लांक' पर इस समय स्पष्ट रूप से कुछ अवशेष प्राप्य नहीं हैं पर इधर-उधर पत्थरों के बिखरने के कारण ऐसा आभास होता है कि वहां पुराने ज़माने में भवनों का निर्माण् था।

यद्यपि इतिहासकारों ने 'लांक' पर बनाए गए मस्जिद तथा बालादरी का वर्णन किया है मगर पत्थरों का जो मन्दिर बड़शाह ने बनवाया था, उसका वर्णन नही किया है। हालांकि यह घटना प्रामाणिक है कि 'लांक' बडशाह ने बनवायी। इससे यह बात प्रकट होती है कि इस स्थान पर मन्दिर का निर्माण करने वाला भी बड़शाह ही था।

मूल : मोतीलाल 'साक़ी'

मूल कश्मीरी से अनुवाद : डॉ. बद्रीनाथ कल्ला



कश्मीरी शब्द-कोश

जम्मू व कश्मीर ललित कला संस्कृति व साहित्य अकादमी की स्थापना राज्य की तीन इकाईयों जम्मू कश्मीर तथा लद्दाख के बहुमुखी विकास के लिए राज्य के तत्कालीन मुख्य मंत्री बख्शी गुलाम मोहम्माद ने 1958 ई० में की। इसका मुख्य कार्यलय श्रीनगर में स्थापित हुआ। श्री मिर्जा कमाल-उद्दीन साहिब अकादमी के प्रथम सचिव नियुक्त किये गए।

कश्मीरी भाषा व साहित्य को समुद्ध करने के लिए सबसे पहले कश्मीरी शब्द कोश के निर्माण को प्राथमिकता दी गई अत: इसको साकार रुप देने के लिए अकादमी ने परामर्शदात्री समिति का गठन किया। समिति ने 24 मई 1959 ई० में कश्मीरि डिकश्नरी बनाने पर अधिक बल दिया। परिणाम स्वरुप समिति के प्रस्ताव के अनुसार डिकशनरी बनाने की योजना बनाई गई। इस समिति की सिफारिश से विभिन्न स्थानों ने विभिन्न स्थानों से कश्मीरी श्ब्दों के लिए छ: ग्रजुएटो की नियुवित हुई। इन छ: कर्मर्चरियों ने विभिन्न व्यवसायों, जड़ी बूटियो तथा वनस्पतियों की शब्दावली एकत्रित की। यह काम श्री अख्तर मुहीउद्दीन के निरीक्षण में कराया गया। बाद में वे दूसरे विभाग में तबदील हो गये, अत: उनके दोर में डिकश्नरी की प्रगति न हो सकी। श्री अख्तर मुहीउददीन के के बाद प्रो० श्रीकण्ठ तोषखानी को नवम्बर, 1969 ई० कश्मीर डिक्शनरी तथा उर्दू डिक्शनरी परियोजना का मुख्य संपादक नियुक्त किया गया, बाद में संपादक मंडल की नियुक्ति हुई। 1967 ई० में डिक्शनरी का काम सुव्यवस्थित रूप से शुरू हुआ इसका प्रथम खण्ड नवम्बर 1968 ई० में तैयार हुआ। इस में उन सब कश्मीरी शर्ब्दो का सप्रावेश किया गया जो सर जार्ज गियर्सन की कश्मीरी डिकश्नरी में मौजूद थे तथा जिन शब्दो सर्वोक्षणकारो ने इकटठा किया था। इन शब्दों के परीक्षण के लिए Dictionary Reviewing Committee नियत की गई। इस समिति में पांच

सदस्य थे मिर्ज़ा गुलाम हसन बेग 'आरिफ', प्रो जिया लाल कौल, प्रो० महीउद्दयीन हाजिनी तथा प्रो० पृथ्वीनाथ पुष्प आदि। नवम्बर 1970 ई० में इस समिति ने 'कॉशिर लफ्ज़ राश' कश्मीरी डिकश्नरी के सम्बन्ध में अपनी रिपोर्ट दे दी जिसके कारण कुछ शब्दों को रददकर दिया गया और 1026 नये शब्द इसमें शामिल करने केलिए दिये गये 1971 ईमें राज्य के मुख्य मंत्री श्री गुलाम मोहम्मद सादिक ने दो संपादक मण्डलो का गठन किया। एक कश्मीरी-कश्मीरी डिकश्नरी के लिए, दूसरा संपादक मंडल में उर्द -कश्मीरी डिकश्नरी के लिए। कश्मीरी निरीक्षक मण्डल में प्रो० जिया लाल कौल, प्रो० मुहीउददीन हाजिनी, पो० पी.एन.पुष्प तथा श्री अख्तर मुहीउददीन थे। डिकाश्नरी का पहला काम शब्दो को क्रम में रखना है। इस में मुख्य शब्द पहले रखे गये है। बाद में संयुवत शब्दों को रखा गया है। इन शब्दो के विभिन्न अर्थ भी इसमें स्पष्ट किये गये है। कुछ कठिन शब्दों को उदाहरणों द्वारा समजाया गया है। यहाँ पर यह ध्यातव्य है कि कश्मीरी भाषा में अन्य भारतीय भाषओं की अपेक्षा प्राय: स्वर तथा वयंजन अधिक है। अत: कश्मीरी शब्दों को क्रम में रखना बहुत कठिन है। किसी समय कोई स्वर व्यंजनो के साथ बोलने की सुगमता के साथ प्रयुवत होता है। इसे अंग्रेजी में Glide ग्लाइड कहते है। किसी समय कोई ऐसे शब्दों को ग्लाइड रखता है या कोई नही रखता है जैसे कोई 'चलरय' और कोई 'चलराव' बताता है। या लिखता है। इसी तरह कोई करनाव और कोई करनव। ग्लाइड रखकर ये शब्द एक जगह रखे जायेंगे और ग्लाइड के बिना दूसरी जगह। इस तरह इनके क्रम में सावधानी बरतनी पड़ती है।

प्रत्येक शब्द के साथ उनका मूल: Stemor base तथा उनकी व्युत्पत्ति दी गई है। किसी शब्द का मूल वह रूप होता है जिसे गर्दान किये जाते है। वयुत्पत्ति से अभिप्राय यह है कि अमुक शब्द का मूल क्या है जैसे हम इस शब्द को ले गोर हिन्दी में सिंघाड़ा एक गोर वह होता है जो सिंघाड़े के पौधे से पैदा होता है। उसका मूलरूप कश्मीरी में गार है। यह तब हमें मालूम होता है

जब हम शब्द का गर्दान करते है। जैसे गॊर, गॊर्यन, गार्यव आदि। दूसरा गॊर हिन्दी गुड उसे कहते है जिससे खांड बनता है। इस शब्द का मूल रूप गार नहीं है। यद्यपि यह दोनो शब्द एक जैसे ध्वनि में दिखाई देते है। इसका मूल रूप 'गोर' है। गर्दान करने के समय शब्द को 'गोर' हिन्दी गुड, 'गुड गोरस' हिन्दी गुड को गोरन आदि रूप बनते है इसी तरह 'सौर' शब्द एक 'सोर' का अर्थ है : स्थायी, वफादार आदि है। इसका मूल रूप 'सोर' है। गर्दान के समय इसका यह रुप बनता है, हैसे सार, सोरिस, सार्यन आदि। पहले सोर शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के सार शब्द से है। दूसरा रूप कश्मीरी सोर हिन्दी सुअर पशु-वाचक शब्द है। इसका मूल रूप सार नहीं है। अपितु इस का मूल रूप 'सोर' ही है वयोंकि गर्दान के समय यह शब्द सोर ही रहता है। जैसे सोर सोरस, सोरन आदि। पहले सोर शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'सार' शब्द से हे। दूसरे सोर शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के शूकर शब्द से है। इसका प्राकृत रूप सूअर है। इस तरह संस्कृत से निःसृत कश्मीरी शब्दों की व्युत्पत्ति देना बहुत कठिन काम है, वयोंकि हज़ारो वर्षो से प्रचलित कश्मीरी भाषा मूलरूप का कालचक्र के कारण इतना विकृत तथा बदल गया है कि इसका मूलरूप ढूंढना बहुत ही जटिल बन गया है। जैसे - कश्मीरी 'ज़ुव' हिन्दी द्वीप है का मूलरूप सारा ही बदल गया है। इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के द्वीप शब्द से है। प्रायः संस्कृत की 'द' ध्वनि कश्मीरी में 'ज' ध्वनि में परिवर्तित होती है तथा 'प' ध्वनि 'व' ध्वनि में बदलती है। इस नियम के अनुसार द्वीप शब्द ज़ुव में बदल गया है। इसी तरह कश्मीरी के 'ज' हिन्दी दो वुज़मल हि० बिजली आदि शब्दों की व्युत्तत्ति संस्कृत के 'द्ध' तथा विद्युन्माला से क्रमशः मानी जाती है। जो महानुभाव ध्वनि विज्ञान के नियमो से अपरिचत है, वे ज़ुव हिन्दी द्वीप शब्द को व्युत्पत्ति दीप से कदापि नही मानेगा कश्मीरी भाषा में अठारह स्वर है तथा इक्तालीस व्यंजन इसकी लिपि नस्तालीक है जिस में डिकशनरी प्रकाशित हुई है।

कश्मीरी शब्दो को व्युत्पत्ति जानने के लिए जिन कोशो का अध्ययन

हमें करना पड़ा वे इस प्रकार है:-

1. Comparative Dictionary of the Indian Aryan Languages : R.L Turner

2. A Dictionary of Urdu Classical Hindi and English : John Plates

3. Sanskrit English Dictionary : Sir Monier Williams

4. English Sanskrit Dictionary : Sir M. M. Williams

5. प्राकृत शब्द महार्णन : पं० हरगोविन्द दास तथा विक्रमचंद सेठ

6. हिन्दी शब्द सागर : प्रकाशक : नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी

7. Comprehensive Persian English Dictionary : F. Sleingass

ऊपर तो बताया है कि कश्मीरी डिकशनरी के विभिन्न खण्डो में प्रत्येक शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थ दिये गये है। शाब्दिक अर्थ के साथ लाक्षणिक अर्थ को भी स्पष्ट किया गया है। जैसे रचि दवबस फटुन इसका शाब्दिक अर्थ है कीचड़ के गइडे में डूबना लाक्षणिक अर्थ इसका-मुसीबत मेंफंसना, मुशिकल में पड़ जाना आदि - है। यह शब्द-कोश प्रसिद मुहावरों तथा लोकोक्तियों के अर्थ से भी सभलंङकृत है। इसमें कश्मीरी साहित्यकारों की रचनाओं में पाये जाने वाले उन शब्दो के अर्थ भी दिये गये है जो शब्द अब प्रचलित नहीं है। ऐसे शब्दों के अर्थ के साथ साथ साहित्यकारों तथा उनकी रचनाओं का हवाला भी दिया गया है। जैसे - 'आम डाम' शब्द में सकेंरिय नय करख, आमड़ाम करख, बड़ी दोद तु वलख न ज़ांह 'लल्लयद' आमड़ाम का अर्थ कश्मीरी में पहलेज़ न करना अथवा बदपर्हेजी है।

वर्तमान कश्मीरी शब्दकोश अर्थात् 'कॉशिर डिकश्नरी' सात खण्डो में विभक्त है। इसका पहला खण्ड 'अ' से 'ब' तक है। दूसरा खण्ड 'प' से 'थ', तीसरा खण्ड 'द' से 'र' तक, चोथा खण्ड 'ड़' से 'म' तक, पांचवा खण्ड 'फ' से 'ग' तक, छटा खण्ड 'ल' से 'न' तक, सातवां खण्ड 'व' से 'ए' तक अर्थात् 'बोड़ ए' तक है। डिकश्नरी के संपादकीय मण्डल में श्री अब्दुल खालिक टाक ज़ेनगीरी, श्री चमन लाल 'चमन', श्री बदरीनाथ कल्ला,

मोहम्मद अहमद अन्दराबी, बशीर अखतर, मोतिलाल साकी, अबदुल गनी नदीम, शफी शोक थे। पहले खण्ड से सातवें खण्ड तक जिन्होनें काम किया है वे है बदरीनाथ कल्ला तथा श्री बशीर अख्तर। इसके निरदीक्षक बोर्ड के नाम इस तरह है :-

1. प्रो० मुहीउद्दीन हाजनी
2. प्रो०पी.एन.पुष्प
3. श्री मिर्ज़ा गुलाम हसन बेग आरिफ
4. श्री गुलाम नबी गौहर
5. प्रो० जियालाल कौल
6. श्री अख्तर मुहीउद्दीन

कोश के इन सात खण्डो में प्राय:पचास हज़ार शब्द तथा मुहावरे आदि सम्मिलित है। यहाँ पर यह कहना असंगत न होगा कि सर जार्ज ग्रिपर्सन द्वारा सम्पादित कश्मीरी डिकश्नरी के चार खण्डो में प्राय: केवल पचीस हज़ार शब्द आदि पाये जाते है। यह डिकश्नरी रोमन तथा देवनागरी लिपि में लिखी गई है। इसमें शब्दो की व्युत्पत्ति नहीं दी गई है अकादमी द्वारा प्रकाशित डिकश्नरी में प्राय: चालीस हज़ार शब्दों की व्युत्यत्ति इस लेख के लेख ने दी है। यह इसकी एक मुख्य विशेषता मानी जाती है इसका पहला खण्ड 1972 ई० में प्रकाशित हुआ हे तथा इसका सातवां खण्ड अर्थात अंतिम खण्ड 1979 ई० में।

इसमे सन्देह नही है कि शब्दकोश लिखने की परम्परा कश्मीर में चिरकाल से चलती आ रही है। इन विद्वानो में सूंत्य पंडित अथवा समत्य पंडित, ईश्वर कौल तथा मीर सैफ उददीन के नाम उल्लेखनीय है। इन कोशों में से सूंत्य पंडित का निसाब अर्थात शब्दराशि 1859 ई० को मानी जाती है। यह शब्दराशि पद्यों मेलिखी गई है। इसमें कश्मीरी तथा फारसी के शब्द भी साथ साथ दिये गये है। इसकी पाण्डुलिपि इस समय जम्मू व कशमीर रिसर्च विभाग के फारसी पाण्डुलिपियों के अनुभाग में सुरक्षित है। इसके बाद कश्मीर के सुप्रसिदृ विद्वान ईश्वर कौल ने कश्मीरी शब्दकोश लिखा था लिकिन वह 1893 ई० में अकाल काल क्वलित होने के कारण इस कोश को पूरा न कर सके। इस कोश की सामग्री का प्रयोग सर जार्ज ग्रियर्सन ने कश्मीर डिकश्नरी

में किया है। इसके अतिरिकत कश्मीरी देश भाखोदय नामक कोश ईश्वर कौल ने संस्कृत पद्य में लिखा है, जिसकी पाण्डुलिपि जम्मू व कश्मीर के रिसर्च विभाग मे इस समय मोजूद है। कालान्तर पफ्रांसीसी विद्वान डाँ. अलम जेल्री ने रोमन लिपि में संक्षिप्त कश्मीरी शब्दकोश 1882 ई० में लन्दन मे प्रकाशित कराया । अलमज़ेली के बाद A Dictionary of the Kashmiri Language सर्वप्रथम सर जार्ज ने एशियाटिक सोसायटी बंगाल से प्रकाशित कराई।

इसके चार खण्डो में कश्मीरी शब्दो का अनुवाद संस्कृत तथा अंग्रेज़ी भाषा में दिया गया हे जिसके कारण संस्कृत तथा अंग्रेज़ी भाषा जानने वाला ही गिर्यसन की कश्मीरी डिकशनरी से लाभन्वित हो सकता है। संस्कृत का अनुवाद कश्मीर के मूर्धन्य विद्वान महामहोपाध्याय श्री मुकुन्दराम शास्त्री ने किया है।

ऊपर कहे गये शब्दकोशों में वर्तमान व्युपत्तियुवत 'कॉशिर डिकशनरी' कई विशेषताओं के कारण उत्तम है। इसके प्रकाशित होने से इसके प्रति कश्मीरियों की रुचि उत्तरोत्तर बढ़ती रहती है। भाषा विज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधान करने वालों के लिए यहडिकशनरी बहुत ही उपयोगी है। नि:सन्देह यह जम्मू व कश्मीर कल्चरल अकादमी की महान उपलब्धि है। यहां पर यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि अकादमी के सचिव श्री मुहम्मद युसुफ टेंग के व्यवितत्व से यह परियोजना उनके दिशा निदेश के समय पर सम्पन्न हुई।



कश्मीरी की पहली कहानी
जवाबी कार्ड
(क्वंग पोश से)

जूनद्यद-जूनद्यद! क्या द्यद, अभी तू अन्दर ही है? अपने आने की खबर देकर जमालमीर अचेतन-सा शाद्वल (सब्ज़ घास) पर बैठ गया। नसवार की डिब्बी अपने फटे पुराने फ्यरन (परिधान) के अन्दर की जेब से निकाली और बड़ी मात्रा में नसवार से दोनों तरफ के दांतों को लेप दिया। उसके हाथ में एक छोटी सी छड़ी थी उससे वह धूलि पर चित्रकारी करने लगा। पन्द्रह मिनट बीत गये तो गोशाला के बांई ओर के दरवाज़े के खोलने की आवाक़ आयी तो जमालमीर चौंक उठा। उसने पीछे की ओर मुड़कर देखा तो जूनद्यद पूनम के चांद के समान लग रही थी। उसको देख कर वह हैरान हुआ तथा अनायास ही हंस पड़ा।

हां, तुझे धिक्कार! मैं समझी कि तड़के कोई आ गया है। शैतान कहीं के। तूने तो आवाज़ बदल डाली। मुस्कुराते हुए जूनद्यद बोली-जूनद्यद गांव की नानी और सब की मां। जूनद्यद लम्बे क़द की, बर्फ जैसे श्वेतबालों वाली। इस सफेद कोरे कपड़े का पोछ (लम्बाकुर्त्ता) पहनकर वह वन की रानी जैसी लगती थी।

क्या द्यदी! धूप इतनी प्रखर हुई और तुम्हारी नींद अभी भी नहीं खुली। जमालमीर ने मुंह में से नसवार का घूंट फेंककर कहा। जून बोली-तुम मूर्ख हो, मैं क्या कहूं।

मुझे समझ में नहीं आता हैं कि तुम कब सीखोगे? क्या तुमने नहीं देखा? मैं अभी गोशाला में से निकली तो नीद में कहाँ थी?

जमालमीर सिसकाते हुए किन्तु साहस करके बोला, नहीं द्यद। असल तो गुलसाहिब के कारण.....। जूनद्यद ने त्यौरियां चढ़ा दी। जमालमीर ने झट से बात काट ली। थोड़ी देर के लिए दोनों नीचे की ओर देखने लगे।

अन्त में जूनद्यद ने कहा - यह भी ठीक है। मेरे लिए ज़रूरी था। जाओ, तुम देखो। बदरी का क्या हाल है ? न वह घास खाती है, न चारा। सुबह से इसी की सेवा में लगी थी।

जूनद्यद कौन थी, कहां की थी, कितनी बड़ी थी, ये बातें गांव में किसी को मालूमन थीं, जो वहां सब से वृद्ध था, उसने भी जूनद्यद को वैसा ही देखा था। जून गाँव की हाकिम,गांव की जज, गांव की थानेदार, नम्बरदार, चौकीदार, पटवारी सब कुछ थी। बड़ों की परामर्शदात्री तथा छोटों की साथी। सासों को सीख देने वाली और बहुओं की विश्वासपात्र। यदि पंचायत लगती तो जून को ही फैसला देना पड़ता। किसी को बेगार (कमाई के बिना किसी काम पर जाना) पर जाना हो तो जून की ही आज्ञा से जाता, किसी का व्याह हो तो जून ही मध्यस्थ रहती। किसी को दर्द हो तो, ज़ून को ही दवादारू करना पड़ता। इस इलाके में यह मशहूर था कि ज़ून का कहना पत्थर की लकीर होता था जिसे स्वंय वाइसराय भी बदल नहीं सकता। इसी कारण जून का आवास सारे गांव को ननिहाल-सा लगता था। जिस किसी को कोई कष्ट होता तो वह जून के ही पास दौड़ता।

निचले गांव को लोग 'कावमाल्युन' कहते हैं। इसकी वजह यह है कि इस तरफ के कौवे आते-जाते समय चिनारों पर रात गुज़राते हैं और बहुत से कौवों ने इन चिनारों पर घौसले भी बनाये हैं। आज सूर्यास्त के समय कौवों ने वहां बहुत ही शोर मचाया था, इतना कि नालों का कलकल भी किसी को सुनाई नहीं पड़ रहा था। सहसा बन्दूक की आवाज़ हुई। सारे कौवे कांय-कांय करते हुए चिनार के वृक्षों से उड़ गये। आखिर यह किसने बन्दूक से पटाखा चलाया। वह एक फौजी जवान जा रहा है। शायद यह उसकी ही शैतानी हो। गर्दनें हिलाहिला कर आस-पास के फलदार वृक्षों पर बैठकर कौवे सोचते है - फौजी जवान, हृष्ट-पुष्ट तथा उभरी हुई छाती वाला, जैसे कोई फिरंगी कप्तान। निश्‍िंचत होकर इधर-उधर झूमता हुआ चल रहा है। ज्यों ही वह ऊपर के गांव मे पहुंचा, सारे बच्चे उसके इर्द-गिर्द इकट्‌ठे हो गए। उसकी टांगो

से लिपट गये, कईयों ने उसकी जेबों में हाथ ड़ाल दिये। कुछ उसकी बन्दूक को नाखूनों से कुरचने लगे और सबों ने ज़ोर से कहा-गुलसॉब, हमारा कप्तान गुलसॉब (गुलसाहिब)।

शोरोगुल करते बच्चों का यह जलूस जूनद्यद के आवास पर पहुंचा। खटाक से दरवाज़ा खोलकर जूनद्यद बाहर आई। हंसमुख, चेहरे पर बनावटी संजीदगी, ऊंह, गुलसॉब! बुद्दू कप्तान। यदि ऐसे बुद्धू कप्तान बनते तो....। और उसी क्षण दोनों मां-बेटे ने एक-दूसरे को गले लगा लिया।

गुल साहिब ज़ून का क्या लगता था। यह किसी को मालूम न था। कुछ उसे दद्य की भतीजी की लडकी का बेटा समझते थे तथा कुछ उसके दामाद का पोता किन्तु इस विषय में अधिकतर लोगों की यह राय थी कि ज़ून इसे 'मकदूम साहिब' की सीढ़ी से उठा लायी थी इसलिए इनका आपस में क्या सम्बन्ध था, हमें उससे क्या मतलब ? मगर इतना सबसमझते कि यदि ज़ून की किसी में जान है तो वह गुलसाहिब में। जब से गुलसाहिब 'म्लेशाफौज' में भर्ती हुआ था, तब से वह हमेशा उसका नाम लेती थी। उसकी हर सांस में गुलसाहिब था। वाह! क्या तुमने सुना ? आज गुल ने उड़ी से पत्र लिखा था लिखता है-उसने एक ही दिन सत्रह कबाइलियों को मौत के घाट उतार दिया। स्वनमाली! क्या कहूं ? गुलसाहिब पर बलि हो जाऊं। जवाबीकार्ड लिखा, मानो कागज पर मोतियों के दाने जड़े हों। जमाल मीरा! हमारी दस पीढ़ियां रोशन हुई गुलसाहिब से। वह इस समय भी हमारे कश्मीर की रक्षा करता है।

जिस दिन गुलसाहिब ने वापिस युद्धक्षेत्र में जाना था उस दिन सारे गांव की भीड़ ज़ून के घर जुट गई। सुबह-सुबह ही सब ने चूल्हा जलाया था। सूर्योदय तक सब स्त्री-पुरुष, बड़े तथा छोटे जून के आवास पर इकट्ठे हो गए। कुछ तो प्रसाद लेकर आये थे, कुछ तावीज़ लेकर, कुछ कलिसानों की औरतें के आंचल में 'आंचार' लेकर, कुछ चटनी के गोले लेकर आई थीं। बहुत-सी औरतें सूखे मूल पत्तों की गुच्छियां लाई थीं। ज्यूं ही ज़ून ने दरवाज़ा खोला, त्यों-ही सब यही चाहते थे कि मैं ही पहले अपनी भेंट दूं।

अरे जूनद्यद! जूनद्यद। लो ये पत्तों की गुच्छियां, यह फार्मी शलगमों की। लज्जित होकर ग्वालिन राहत कहने लगी, यह, मैंने गुलसाहिब के वासते सुरक्षित रखी थी। यह सूखे साग की गुच्छियां अपने पास रख लो। तनिक यह साग की गुच्छी भी ले लो। यह तो 'खशपोर' की बाड़ी का वसन्तकालीन कड़म साग है। रमज़ान ने कहा, गुलसाहिब से कहो कि ऐसा साग शहर में मिलना सम्भव नहीं है। यह थोड़ा-सा आंचार भी ले लो, द्यदी! यह निचले गांव के कश्मीरि कड़म का आचार हैं। जूनद्यद! गुलसाहिब को बुलाओ। आखिर वह है कहां? क्या वह अभी आराम में ही है? वासुभट्ट ने आहिस्ता से कहा।

कहा न तुम मूर्ख हो। क्या वह अभी सोया ही होगा? वह मुंह धोने के लिए नाले पर गया है। वह आ ही रहा होगा। हंसते-हंसते ज़ूनद्यद ने कहा।

चिन्ता हो रही है। मैं कंठकाक से छोटा तावीज़ लाया हूँ। चाहता हूं कि मैं उसे स्वंय पहना दूं। वासुभट्ट ने त्यौरियां चढ़ाकर कहा। इतने ही में गुलसाहिब नाले से मुंह धोकर आया। ज्यों ही वह नज़दीक पहुंचा त्यों ही कईयों ने उसे गले लगाया, कईयों ने उसे माथे को चूमा, कईयो ने उसे घेर लिया। इसके बाद जब वह वर्दी पहनकर तथा बन्दूक कन्धे पर लेकर निकला तो प्रसन्नता से सब फूले न समाये। औरतों ने जी खोलकर उसे आर्शीवाद दिया जाओं, गलो! फलो-फूलो। तुम्हारे सब कष्ट दूर हों और तुम्हारा भाग्योदय हो।

सारा गांव उसके पीछे प्राय: चार मील तक गया। वह आंखों से ओझल हुआ तो सारे लौट आये।

आज सुबह से ही आसमान पर कुहरा छाया हुआ था। सूर्योदय तक शिखर मालाएं (कश्मीरी में संगरमाल) बादलों ने घेर ली थी और बादल पहाड़ों की तलहटी तक फैल गये थे। पूर्व की ओर से विकराल बिजलियां चमक रही थीं। लगता था जैसे कहीं पर बारिश की धारायें समेट रही हों। प्राय: ऐसे दिन गांव के लोग अन्दर ही बैठते हैं।

मूल - दीनानाथ नादिम/अनुवाद - डॉ० बद्रीनाथ कल्ला



आधुनिक कश्मीर साहित्य पर संस्कृत का प्रभाव

कश्मीर केवल प्राकृतिक संपदा के लिए ही नहीं अपितु साहित्यिक संपदा के लिए भी विश्वविख्यात है। साहित्यिक संपदा इस सास्यश्यामला, उर्वरा भूमि की देन है, जिसके फलस्वरूप यहां के आचार्यों वसुगुप्त, सोमानन्द, उत्पलदेव, अभिनव गुप्ताचार्य आदि ने ऐसे आध्यात्मिक और दार्शनिक चिन्तन को जन्म दिया जो सब के लिए अनुकरणीय ही नहीं बल्कि ग्राह्य भी है। इस आध्यान्मिकता तथा दार्शनिकता का केन्द्र प्राचीनकाल में शारदापीठ, शारदामठ अथवा शारदा देश था, जो हज़ारों वर्षों से जिज्ञासुकों को इस ज्ञान से आप्लावित करता था। इस रूप में यहां के विद्यामठ तथा विद्याकेन्द्र विदेशी विद्वानों के लिए आकर्षण के केन्द्र थे। इन केन्द्रों की प्रसिद्धि प्राय: सारे एशियाद्वीप में फैली हुई थी। यहीं कारण है कि भारत के अतिरिक्त विदेशों से अर्थात् मध्यएशिया तथा चीन से महान विभूतियां आकर यहां के विविध-शास्त्रों में से कुमार जीव, ह्यूनसांग ओकांग के नाम उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार कश्मीर प्राचीनकाल में भारतीय संस्कृति तथा संस्कृत का प्रधान केन्द्र माना जाता था। यहां के विद्यामठों अथवा विद्याकेन्द्रों का वर्णन महाकवि कल्हण ने अपनी रचना 'राजतरङ्गिणी' में इस प्रकार किया है :-

''विद्यावेश्मनि तुंगानि कुंकुंम सहिमं पय:।
द्राक्षेति यत्र सामान्यमस्ति त्रिदिवदुर्लभम्।।''

यदि संस्कृत वाङ्मय का गंभीर रूप से अध्ययन किया जाए। तो हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि वैदिक युग से संस्कृत तथा कश्मीर का अभिन्न सम्बन्ध रहा है। इस भाषा ने जन-जीवन को प्रभावित ही नहीं किया है, अपितु जनमानस पर अमिट छाप भी डाल दी है। वस्तुत: संस्कृत की प्राचीन गौरवशाली परम्परा ने ही कश्मीर की कीर्तिपताका को विश्व में फहराया है। कश्मीर में

वैदिक संस्कृति व सभ्यता के विभिन्न स्त्रोतों के उदाहरण हमें हज़ारों वर्षों के बाद अब भी विभिन्न रूपों में यत्र-तत्र दिखाई देते हैं। पर्वतों, नदियों, सरोवरों, गांवों तथा जनपदों की नामावली इस ऐतिहासिक तथ्य को स्वत: सिद्ध करती है।

संस्कृत साहित्य का आदिकाल प्रथम शती से चौदहवीं शती तक माना जाता है। इस युग में कश्मीर में संस्कृत का प्रत्येक क्षेत्र में विकास हुआ। प्राय: आठवीं से बारहवीं शती तक कश्मीर के धुरंधर आचार्यों-आनन्दवर्धन, मम्मटाचार्य तथा महिमभट्ट् आदि आलंकारिकों, कल्हण तथा बिल्हण जैसे इतिहासकारों, सोमदेव जैसे कथाकारों, क्षेमेन्द्र जैसे कवियों ने संस्कृत-साहित्य की विभिन्न विधाओं पर समय-समय पर अमर रचनायें लिखीं। यह युग वस्तुत: कश्मीर का स्वर्ण-युग माना जाता है। क्योंकि इस युग ने मानव-चिन्तन को एक नई दिशा तथा एक दर्शन दिया जो संसार में 'प्रत्यभिज्ञा दर्शन' के नाम से प्रसिद्ध है। इस युग में लोगों की अभिव्यक्ति का माध्यम संस्कृत था, जिसका उल्लेख कल्हण के समकालीन बिल्हण ने अपने महाकाव्य-'विक्रमाङ्कदेवचरितम्' में इस प्रकार किया है :-

''ब्रूम: सारस्वतकुलभुव: किं निधे: कौतुकानाम्
तस्यानेकाद्भुतगुण कथा कीर्णकर्णामृतस्य।
यत्रस्त्रीणामपि किमपरं जन्मभाषावदेव
प्रत्यावासं विलसति वच: संस्कृतं प्राकृतञ्च।।''

अर्थ:- हम सारस्वत कुल की जन्मभूमि कश्मीर के कौतुकों के भण्डार के विषय में क्या कुछ कहें, जिस (कश्मीर) भूमि के अनेक अद्भुत गुणों की कथाओं के अमृत से कान परिपूर्ण हैं और जिसमें स्त्रियों की वाणी भी जन्मभाषा (कश्मीरी) की भांति ही संस्कृत तथा प्राकृत के रूप में प्रत्येक घर में निवास करती है। नि:सन्देह यह काल संस्कृत वाङ्मय के पूर्ण विकास का युग था।

कश्मीरी साहित्य का आरंभ मध्यकाल में चौदहवीं शती से प्रारम्भ होता है। हिन्दओं का शासनकाल समाप्त होने के बाद प्राय: मुसलमानों का युग शाहमीरी शासनकाल 1339 ई० से माना जाता है। उसके बाद चक

शासनकाल (1554-1848 ई०) तथा डोगरा शासनकाल (1846 ई० से 1947 ई०)। इन प्राय: पांच सौ वर्षों में संस्कृत के स्थान पर फारसी भाषा ही राजभाषा के रूप में प्रचलित रही। विदेशी प्रभाव के कारण चौदहवीं शती तक संस्कृत भाषा का प्रयोग मिश्रितभाषा के रूप में हुआ। इसका उदाहरण हमें क्षेमेन्द्र रचित 'लोक प्रकाश' में मिलता है जैसे :-

''संवत्सरेऽत्र दिने श्री प्रेनावित कदले रैज्ज़ि अमुकेन रैज़ि-अमुक पुत्रेण हस्ते सति बंगल चीरिका दत्ता। यथा अत्र आगरान्तरे खुज्या अमुक-खुज्या अमुकं प्रति लिखित खुज्या अमुके सलामा बन्दगी ददनीयमिति।'' यह मिश्रित भाषा (अरबी तथा फारसी युक्त भाषा) राज्यकार्यों तथा न्यायालयों में भी प्रचलित थी। फलत: जनता ने वसीयतनामों, शिलालेखों तथा इष्टामों में संस्कृत का प्रयोग किया।

ऐतिहासिक स्त्रोतों के अनुसार कश्मीरी साहित्य का श्री गणेश शितिकंठ के 'महानय प्रकाश' से होता है। विद्वानों के अनुसार शितिकंठ का जन्म तेरहवीं शती में माना जाता है। कश्मीरी साहित्य की यह पहली पद्यरचना मानी जाती है। इस कृति का संपादन इब्राहिम ग्रियर्सन के सहायक संस्कृतविद्वान महामहोपाध्याय पं० मुकुन्दराम शास्त्री ने किया तथा इसका प्रकाशन 1918 ई० में जम्मू व कश्मीर के प्रत्नविद्या प्रकाश (रिसर्च विभाग) से देवनागरी लिपि में हुआ। इस कृति में चौदह उदय (भाग) हैं तथा सौ से अधिक पद्य हैं। इस कृति पर अद्वैत शैवदर्शन का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। क्योंकि कश्मीर में शैवदर्शन का विकास आठवीं शती से चौदहवीं शती तक पराकाष्ठा पर पहुंचा था। यही कारण है कि इसका प्रभाव हमें संस्कृत रचनाओं के अतिरिक्त कश्मीरी रचनाओं पर भी दिखाई देता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण 'महानय प्रकाश' है। इस कृति में संस्कृत के तत्सम तथा तद्भव शब्दों के अतिरिक्त प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं की शब्दावली भी प्रचुरमात्रा में मिलती है अर्थात् तत्कालीन प्रचलित कश्मीरी भाषा का स्वरूप पूर्णरूप से मिलता है। इस कृति के पद्य दृष्टान्त के रूप में प्रस्तुत हैं :-

मूल रूप	कश्मीरी रूप
यसु यसु जन्तुस संविद यस यस	यस यस जन्तुस संविद यस यस
नील पीत सुख दु:ख सरूप।	नील पीत स्वख द्वख सरूपा
उदयिस दत्त समाञी समरस	उदयिस दत्त समाञी समरस।
कम कम्पन तस तस अनुरूप।।	कम कम्पन तस तस अनुरूप।।

अर्थ:- जिस-जिस प्राणी को उसकी बाह्य इन्द्रियों के द्वारा या उसके मन के द्वारा जो-जो नील-पीत आदि रूपा अथवा सुखं-दु:खादि रूपा संवेदना उदित होती है, वह इस क्रम मार्ग के अनुकूल बनती हुई एकरूप समरसाकार महासंवित् ही के रूप में उसके लिए चमक उठती है।

लल्लद्यद - कश्मीरी साहित्य में पहली सर्वोत्कृष्ट कवियत्री मानी जाती है। जिन्होंने अपनी मातृभाषा में 'वाख' (संस्कृतवाक्) लिखकर दिग्भ्रमित जनता का पथ-प्रदर्शन किया तथा जनसाधारण को मातृभाषा के माध्यम से वह सूक्ष्म दर्शन समझाया जो लल्लद्यद से पहले शैवदर्शन के मर्मज्ञों-वसुगुप्त, सोमानन्द, उत्पलदेव तथा अभिनवगुप्तादि आचार्यों ने संस्कृत भाषा में समझाया था। वस्तुत: लल्लद्यद के 'वाख' दो संस्कृतियों के धारा प्रवाह के संगम पर अविनाशी सेतु बनकर जाति, वर्ण तथा भेद के बिना सबों के लिए मानसिक यातायात के साधन बन गये।

'वाखों' के गम्भीर अध्ययन के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उनके 'वाख' शैव दर्शन के गहरे प्रभाव से अछूते न रहे। चौदहवीं शती से पहले तथा चौदहवीं शती के बाद भी जो कश्मीरी कवि पैदा हुए उनकी रचनाओं में कश्मीर शैव-दर्शन का गहरा प्रभाव स्पष्टरूप से मिलता है।

शैवदर्शन के अमूल्य सिद्धान्त क्या है ? इस पर संक्षित रूप से प्रकाश डालना आवश्यक है ? इस दर्शन के अनुसार यह दुनिया सत्य है। वेदान्त की तरह मिथ्या नहीं है जैसे 'ब्रह्म' सत्यं जगन्मिथ्या' ब्रह्म सच्चा है। जगत् मिथ्या है। यह जगत् शाश्वत सत्य का साकार रूप है। शिव सूत्रों के अनुसार आत्मा चैतन्य है जैसे चैतन्यमात्मा। यह चेतन तीन शक्तियों-इच्छा शक्ति, ज्ञानशक्ति

तथा क्रियाशक्ति का सम्मिश्रण है। इस दर्शन के अनुसार इस विश्व का स्त्रोत परमशिव (Ultimate Reality) माना गया है। यह शिव प्रकाश तथा विमर्श रूप है जैसे :- 'प्रकाश विमर्शमयो हिं शिव।'' इसके ये दो रूप आपस में ऐसे जुड़े हुए हैं कि एक दूसरे से अलग नहीं हो सकते। प्रकाश शिव रूप है। विमर्श शक्तिरूप। इस विश्व को पैदा करने वाला और इसका शक्तिमान स्वामी एक महेश्वर या परमशिव है जैसे :- 'शक्तयोऽस्ति जगत्सर्वं शक्तिमान् स महेश्वरः।' इस विश्व में पैदा होने वाले सब लोग इस परमपिता महेश्वर की सन्तान हैं। महेश्वर या परमशिव प्रकाशरूप है और प्राणी प्रकाश के कण हैं। इस दर्शन के अनुसार महेश्वर एक ऐसा तत्त्व है जो सब शक्तियों से भरपूर है। यह सर्वज्ञ, सर्वकर्त्ता, सर्वस्वतंत्र-शक्तिमान है।

लल्लद्यद शैवदर्शन की मर्मज्ञ थी क्योंकि उसने अपने गुरु सिद्धमोल से शैवदर्शन की दीक्षा ली थी। वह इस दार्शनिक ज्ञान-राशि को जन-साधारण तक पहुंचाना चाहती थी इसलिए उसने अपने 'वाखों' में शैवदर्शन को समोकर विभिन्न-संस्कृतियों के कारण उत्पन्न मिली-जुली प्रतिक्रिया को सुधारने की भरसक कोशिश की। वस्तुतः लल्लद्यद शैवदर्शन के सिद्धान्तों को लेकर आगे बढ़ी थी। इसका ज्वलन्त उदाहरण हमें इस 'वाख' में पूर्णरूप से मिलता है :-

''शिव छुय थलि थलि रोज़ान, मो ज़ान ह्योंद तु मुस्लमान।
त्रुकुय छुख तु पान प्रज़नाव, स्वय छय साहिबस सुत्य ज़ॉनी ज़ान।।''

अर्थः- शिव स्थल-स्थल पर (सर्वत्र) व्यापक है। हिन्दू और मुस्लमान में कोई भेदभाव न कर। यदि तू बुद्धिमान है तो अपने आपको पहचान। वही वास्तव में साहिब (शिव) के साथ तुम्हारी जानकारी है। इस 'वाख' में लल्लद्यद इस बात पर ज़ोर देती है कि शिव सर्वव्यापक है। जिस तरह उसके अखण्ड प्रकाश में कोई भेद दिखाई नहीं देता है, उसी प्रकार हिन्दू तथा मुस्लमान में कोई भेद नज़र नहीं आता है। अपने आप को पहचान कर ही जीव शिव का असली तत्त्व जान सकता है। अर्थात् उसे वास्तविक अभेद ज्ञान प्राप्त होता है। यह दर्शन शैवशास्त्र में 'प्रत्यभिज्ञा' के नाम से प्रसिद्ध है। आचार्य अभिनवगुप्त

के अनुसार अपने आप को पहचानना ही मुक्ति है जैसे ''मोक्षो नाम नैवान्य: स्वरूप प्रथनं हि तत्।'' इसकी पुष्टि में इन 'वाखों' में से दूसरा उदाहरण इस प्रकार है :-

''लल बु द्रायस लोलरे, छांड़ान लूसुम द्यन क्यहो राथ।
वुछुम पंड़िथ पनुनि गरे, सुय मे ओसुम न्यछतुर तु साथ।।''

इस 'वाख' में वह बताती है कि मैं लल्ला प्रीत की मतवाली सत्य को ढूंढने निकल पड़ी। ढूंढते-ढूंढते दिन बीता, रातें बीतीं, अन्तत- देखा तो पंड़ित (शिव) मेरे अपने ही घर में था। वास्तव में मनुष्य ईश्वर को वैसे ही बाहर ढूंढता है, जैसे मृग कस्तूरी की सुगंध को बाहर ढूंढता है। मगर उसे यह मालूम नहीं होता कि वह उसकी नाभि में ही है।

इन 'वाखों' का अनुवाद संस्कृत के धुरंधर विद्वान् 'भास्कराचार्य' ने किया है। इस पद्य का अनुवाद इस प्रकार है :-

''लल्लाहं निर्गता दूरम्, अन्वेष्टुं शंकरविभुम्।
अन्ते लब्धो तन्मया स्वस्मिन्, देहे देवो गृहे स्थित:।''

श्रीमद्भगवद्गीता में :-

''ईश्वर: सर्वभूतानां हृद्देशेऽन्तस्तिष्ठति
भ्रामयन् सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया।''

इस दर्शन के अनुसार प्रमाता (Individual soul) परम शिवरूप अणु है। अपने आप को पहचानने से ही वह मूल तत्त्व को जान सकता है। इसके लिए उसे अन्य साधनों पर निर्भर नहीं रहना पड़ता। यह रास्ता उसके लिए बहुत ही सहज है। अत: यह अत्यन्त सिद्धिरूप ज्ञान है। इसीलिए आचार्य उत्पलदेव ने 'ईश्वर-प्रत्यभिज्ञा कारिका' में इसका संकेत यूं किया है :-

''जनस्यायत्न सिद्धयार्थ उदयाकर सूनना।
ईश्वर प्रत्यभिज्ञेयमुत्पले न प्रपादिता।।''

लल्लद्यद या लल्लेश्वरी के बाद ऋषि संप्रदाय के संस्थापक नुन्दऋषि अथवा शेख उल आलम का नाम कश्मीरी साहित्य में उल्लेखनीय है। इसका

जन्म 1377 ई० में खीजोगीपोरा में हुआ था। ये गृहस्थी होकर भी ऋषियों-मुनियों की तरह गिरिकंदराओं में अपनी साधना में रहते थे। अंत में संयास धारण कर के वैष्णव रहे। इनकी मृत्यु 1442 ई० में शेषवन के स्थान पर हुई। इनके शव को 'चार-रि-शरीफ' में दफन किया गया, जहां पर आज एक खानकाह है। इतिहासकार जोनराज ने इनको 'यवनों के सबसे बड़े गुरु' का नाम देदया है जैसे :-

''मल्लानूरदीनो नाम यवनानां परं गुरुम्।।''

कश्मीर के संतों, सूफियों तथा ऋषियों में सबसे अधिक लोकप्रिय नुन्दऋषि हुए हैं। इनकी लोकप्रियता का अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि अफगान गवर्नर अत्तामुहम्मद खान ने इनका नाम सिक्कों पर खुदवाया। इनके कुछ सिक्के लाहौर (पाकिस्तान) के संग्रहालय में विद्यमान हैं। कदाचित् संसार में ये पहले भक्त थे जिनका नाम सिक्कों पर खुदवाया गया।

इनकी वाणी (क़लाम) को 'श्रुक' (श्लोक) कहा जाता है। नुन्दऋषि ने ही इस साहित्यिक विधा को जन्म दिया। इन्होंने 'ऋषि शिक्षा' भी लिखी थी जो अभी तक अलभ्य है। इनके श्रुक्यों पर 'प्रत्यभिज्ञा दर्शन' का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। जैसे :-

''सु मॅ निशे, बु तस निशे, मॅ तस निशे क़रार आव।
नाहक् छ़ॉंडुम मॅ परदीशे, पनुने दीशे मॅ यार आव।।''

अर्थ:- वह मेरे पास है, मैं उसके पास हूँ। मुझे उसी के पास आनन्द मिला। मैं ने उसे व्यर्थ ही दूसरे देश में ढूंढा। अपने ही देश अर्थात् अपने आप में ही मेरा प्रियतम (परमशिव) मेरे हाथ आया। इनके श्रुक्यों में निम्न 'श्रुक' दृष्टव्य है :-

''युस ओस यॅति तु सुय छुय तते, सुय छुय प्रथ शायि रटिथ मकान।
सुय छुय प्याद् तु सुय छुय रथे, सुय छुय सोरुय गुविथ वान।।''

अर्थात् जो वहां था, वही यहां है, वह हर स्थान में व्याप्त है। वही प्यादा भी है और वही रथी भी है, वह हर एक वस्तु में छिपा है और व्याप्त है। वह परमशिव यहां भी, वहां भी, उसी के प्रकाश से यह सारा जगत चमकता

है। वह केवल प्रकाशरूप है। तथा विश्व में वह विमर्शरूप है। अत: वह सर्वव्यापक है। वह प्यादा भी है, रथ चलाने वाला भी। उसका जलवा हर जगह है। उपनिषदों में भी कहा गया है कि उसके प्रकाश से सारा संसार चमकता है 'तस्य भासा सर्वमिंद विभाति।'

चौदहवीं शती के बाद कश्मीरी साहित्य में विशेष प्रगति नहीं हुई। ज़ैन-उल्लाब्दीन बड़शाह के समय (1420-1470 ई०) में हमें लार-निवासी भट्टावतार की 'बाणासुर कथा' कश्मीरी पद्यों में मिलती है। यह कथा 'हरिवंशपुराण' के आधार पर लिखी गई है। इस में भगवान श्री कृष्ण के पोते अनिरुद्ध को बाणासुर की पुत्री उषा के साथ प्रेम होता है। इसी प्रेमख्यान का वर्णन इस खण्डकाव्य में कवि ने मर्मिक शैली में किया है। इस काव्य में संस्कृत छन्दों के अतिरिक्त कश्मीरी-छन्दों दुक्कटिका, नर्कटका आदि का प्रयोग किया गया है। इसके पद्य श्लेषमय होने के कारण बहुत ही आह्लादकर है। उपमा, रूपक, यमक, पुनरुक्तवदाभास आदि अलङ्कारों का प्रयोग कवि ने समुचित से किया है। 'बाणासुर कथा' का पद्य उदाहरण के रूप में प्रस्तुत है:-

''शुनेत वनो कुम्भाजे बाणस अनोथ मंगेत् किथ विनास।
युद्ध महादु:सह ऐ पानस, चल देवा अपवचन म भाष।।''

सुनकर सेनापति कुम्भाज ने बाणासुर को कहा कि आप क्यों विनाश को मांग कर लाते हैं? युद्ध तो विनाशकारी, भयंकर तथा असहनीय है। इस युद्ध से पीछे हटो, मुझे अपवचन यानी गाली-गलौच मत कहो।

यह काव्य कवि ने देशीय भाषा में लिखा है जिसका संकेत उन्होंने अपने काव्य के अन्तिम पद्य में दिया है :- ''श्री ज़ैनोल्लभदीने नरपतिरचिते धर्मराज्ये सुशुद्धेषड्विंशे वत्सरे इह पनमेत सरसे कृष्णबाणान युद्धे। देश्यो अवतार भट्टे विरचीन रमणी आख्य पश्येत् सिद्ध, बन्धा गीर्वाणभाषिरचिते अज़ हरिवंशे भारतेति गरुद्धे।।''

सुलतान ज़ैन-उल्लाब्दीन बड़शाह के जमाने में कश्मीरी भाषा और साहित्य को वह अभिभावकत्व (Patranage) प्राप्त हुआ जो आज तक किसी

दूसरे राजा के शासनकाल में नहीं मिला। बडशाह के दरबार में उन कवियों और कलाकारों का बहुत बड़ा वर्ग मौजूद था। जिन्होंने कश्मीरी काव्य में चारचांद लगाए। इतिहासकार जोनराज के अनुसार नोत्थसोम ने 'ज़ैनचरित' नाम से बड़शाह के जीवन पर एकग्रन्थ कश्मीरी भाषा में लिखा था। योध भट्ट ने ''ज़ैनप्रकाश'' शीर्षक के अन्तर्गत कश्मीरी में एक उत्कृष्ट नाटक रचा। भट्टावतार ने फिरदौसी के शाहनामा के अनुकरण पर एक नीतिग्रंथ ''ज़ैनविलास'' लिखा। दुर्भाग्य से ये रचनायें अप्राप्य हैं। शाहमीरी शासनकाल के बाद चक शासनकाल (1554-1586) में हब्बाखातून तथा अफगान शासनकाल में अरणिमाल तथा सिक्ख शासनकाल (1815-1846) में हमें परमानन्द आदि साहित्यकारों की रचनायें मिलती हैं। कश्मीरी साहित्य में विरहगीत अथवा विप्रलंभ श्रङ्गार रस में लिखने का श्रेय सर्वप्रथम हब्बाखातून तथा अरणिमाल को मिलता है। हब्बाखातून गीतिकाल की श्रेष्ठ कवियत्री मानी जाती है। फारसी भाषा के इतिहासकार हसन खुयहामी के मतानुसार हबाखातून युसुफशाह चक की प्रेमिका/सहवासिनी थी। 'क्रैमिब्रज हिस्ट्री आफ इंडिया' में बैनिस्ड जैसे इतिहासकारों ने युसुफशाह के बारे में यों लिखा है :- ''जब मुगल सेनाएं कश्मीर पर आक्रमणकारी हुई तो यूसुफशाह ने सामना किया। अंत में अकबर बादशाह उसे बंदी बनाकर बिहार ले गया। कालान्तर में उसकी मृत्यु बिसवाक में हुई। अंत में उसके विरह में हब्बाखातून कालयापन करने लगी। उसके कविहृदय पर क्या-क्या बीती थी, यह उसकी इन धड़कनों से प्रकट होता है :-

''चु कम्यू स्वनि म्यानि ब्रम दिथ न्यूनखो
चुय क्योहज़ि गॅयी म्यॉन्य दुय।
चख त्राव यि मलाल व्वन्दु छुय नु यिवान
चु क्यहोज़ि गॅयी म्यॉन्य दुय।''

अर्थ :- तुझे मेरी किस सौत ने भरमाया/फंसाया। जो तू मुझसे घृणा करने लगा। रे मेरे प्रियतम। क्या तेरा दिल यह गुस्सा व नफरत छोड़ नहीं सकता,

मुझ से नफरत क्यों। रे मेरे प्रियतम ?

अरणिमाल - करुण रस की मूर्ति थी, उसका निष्ठुर पति मुंशी भवानी दास काचरू पठान शासन में एक अच्छे पद पर नियुक्त था। वह फारसी 'बहरेतवील' का प्रसिद्ध कवि था। उस परित्यक्ता तपस्विनी ने अपने पाषाण-हृदय प्रियतम के विरह में तड़प-तड़प कर अपनी दर्दभरी धड़कन को ही करुण मधुर गीतों में शब्दबद्ध कर दिया। उसका प्रेम पावन है और तीव्र (कटु) होते हुए भी कोमल। प्रतीक्षा के जो भावपूर्ण चित्रण अरणिमाल ने किये हैं, वे कश्मीरी साहित्य में अनुपन हैं। उसकी विरह-व्यथा उत्कंठा के आतुर स्वरों में कूक उठती है :-

''अरिणि रंग गोम श्रावुण हिये, कर यिये दर्शुन दिये,
श्यामु स्वंदर पामन लॉजिस, आमु तावे कोताह गॅजिस।
नामु पैगाम तस कुस निये, कर यिये दर्शुन दिये।
कंद नाबद आरूद मोतुय फंद, कॅरिथ च़ोलुम कोतुय।
खिंदु कॅर्यनम लूकन थिये, कर यिये दर्शुन दिये।।''

अरे प्रियतम। मैं सावन की चम्पा थी, अब आह, अरण्य में उत्पन्न फूल के समान पीली हो गई। आप कब मुझे दर्शन देंगे। मैं प्रतीक्षा में हूँ। आपके विरह के कारण यहां लोग मुझे उलाहना देते हैं। आपके बिछोह ने मुझे कामाग्नि की भट्ठी में जला दिया। मेरा पैगाम उस तक कौन पहुंचाये ? मुझे वह कब दर्शन देगा। मेरा करुण क्रन्दन सुन लो। मिश्री की डलिया खिला-खिला कर जिसे मैंने मनवा लिया था, वह बहाना करके कहां चला गया ? समाज में उसने मेरा अपमान कराया। संस्कृत के सुप्रसिद्ध आचार्य विश्वनाथ ने ''रसात्मकं वाक्यं काव्यम्'' अर्थात् रसात्मक वाक्य को काव्य कहा है। विश्वनाथ की कसौटी पर अरिणिमाल की कविता खरा सोना सिद्ध होती है। इस कविता में कोमल पदावली तथा अनुप्रास की छटा दिखाई देती है। माधुर्यगुण से भी यह समालङ्कृत है। हब्बाखातून तथा अरिणिमाल ने मृतप्राय कश्मीरी कविता को संगीत में एक नई दिशा दी। संत साहित्य लिखने की परिपाटी कश्मीर में

चिरकाल से चलती आ रही है। मध्ययुगीन तथा आधुनिक संत परम्परा में लल्लद्यद, नुन्दऋषि, परमानन्द, कृष्ण जु राज़दान, रूपभवानी, शमस फकीर तथा शाहगफूर आदि उल्लेखनीय है। ये संत प्रत्येक युग में राजनीति से तटस्थ रहकर जनसाधारण को भारतीय संस्कृति के मूलभूत सिद्धांतों से अवगत कराते रहे। अहिंसा, विश्वबन्धुत्व, प्रेम, सहनशीलता तथा शान्ति का संदेश देने वाले इन्हीं संतों में से आध्यात्मिक चेतना की प्रतीक, कवियत्री रूपभावानी का स्थान कश्मीरी साहित्य में प्रमुख रहा है। यहां पर यह कहना असंगत न होगा कि कश्मीर की उर्वरा भूमि में प्रकृति ने जो मानवीय तत्व के बीज बोये हैं, वे अक्षुण्ण हैं। रूप-भवानी के पिता का नाम माधव जू दर था जो श्रीनगर में द्यद मर (सं दीदामठ) नवाकदल में रहते थे। माधव जू दर शैवदर्शन के प्रकांड पंड़ित थे। अत: उन्होंने अपनी पुत्री को अपने घर में ही शैवदर्शन की दीक्षा दी। इसका उल्लेख रूपभवानी ने इस पद में इस प्रकार किया है :-

''युस ग्वर सुय छुम, सुय मोल प्रबल दीप।
प्रकाश सुर्य सर्व कुलस, उद्धार करवुन।।''

अर्थ :- जो मेरा गुरु है वह मेरा पिता है, जो ज्ञान का प्रकाश है और सारे वंश का उद्धार करने वाला है। रूपभवानी के पदों के अंध्ययन से पता चलता है कि उन्हें विविध शास्त्रों का ज्ञान था। शैवदर्शन, वेदान्त, तथा योगदर्शन आदि से परिचित थीं। इसका यह पद घ्यातव्य है :-

''ओम ग्वर अन्तर तत् न्यर्मलम्, शुद्ध अन्तर तत् न्यर्मलम्।
लल्ल नाम लल्ल पद्मा स्वरम्, शिव माधव नाहम् परब्रह्म सोऽहम्।।''

अर्थ:- ओंकार रूपी निर्मल गुरु (ब्रह्म) मेरे मन में विद्यमान है। वह शुद्ध तथा ज्ञान रूप है। पद्मानपुर की लल्लदेवी का मैं स्मरण करती हूँ। न मैं शिव हूँ, न विष्णु। मैं वही निराकार परम ब्रह्म हूँ। वेदान्त के अनुसार - अहं ब्रह्मास्मि, मैं ब्रह्म (Ultimate Truth) हूँ, इसका प्रभाव स्पष्टरूप से दृष्टिगोचर होता है।

परमानन्द - इनका जन्म मट्टन (सं मार्तण्ड) के निकट अनन्तनाग ज़िला में 'सीर' नामक गांव में सन् 1791 ई० में पठान शासन काल में हुआ

था। इनके पिता का नाम कृष्ण पंड़ित तथा माता का नाम सरस्वती था। पटवारी परमानन्द मार्तण्डतीर्थ में साधुओं तथा संतों के संपर्क में रहे। परिणामस्वरूप इनके व्यक्तित्व पर इसका विशेष प्रभाव पड़ा। फलत: उन्हेंने सारा जीवन कृष्णभक्ति में ही बिताया। इनकी तीन रचनायें हैं :- राधा स्वयं वर, सुदामा चरित तथा शिवलग्न। इनके काव्य में अनुप्रास एवं यमकालङ्कार की अनुपम छटा दिखाई देता है।

रामकथा को अपना विषय बनाकर अनेक कवियों ने कश्मीरी रामायण लिखी। इन रामायणों के नाम क्रमश: इस प्रकार हैं। प्रकाशराम कुर्यगामी कृत 'प्रकाश रामायण', शंकर रचित 'शंकर रामायण' आनन्दराम राज़दान रचित 'आनन्द रामायण', विष्णुकौल रचित 'विष्णुप्रताप रामायण', नीलकंठ शर्मा रचित 'शर्मारामायण', ताराचन्द कृत 'तारा चन्द रामायण' तथा अमरनाथ का 'अमर रामायण'। इन रामायणों में से प्रकाश रामायण बहुत ही महत्त्वपूर्ण रचना है। प्रकाश रामायण के रचनाकार पं प्रकाशराम हैं। इनका जन्म कुर्यगाम नामक गांव में 1819 ई० में हुआ था। इनका निधन 1885 ई० में हुआ। सबसे पहले यह रामायण सरजार्ज ग्रियर्सन ने 'एशियाटिक सोसाईटी आफ बंगाल' से रोमन लिपि में प्रकाशित कराई थी। बाद में नागरी तथा नस्तालीक (उर्दू) में प्रकाशित हुई। इस कृति का दूसरा नाम 'रामावतार चरित' है। इसकी मूलकथा का आधार यद्यपि व्राल्मीकि कृत रामायण है तथापि कथासूत्र को कवि ने अपनी प्रतिभा और दृष्टि के अनुरूप ढालने का सुन्दर प्रयास किया है। परमानन्द के शिष्य कृष्ण जु राज़दान का जन्म 1850 ई० में 'वनपुह' गांव में हुआ था। शंकर पार्वती की कथा ने कृष्ण जू राज़दान को विशेष रूप से आकृष्ट किया था। अनेक पौराणिक संदर्भ, मिथकीय पात्र जन-श्रुति और लोक-विश्वास पर आधारित घटनायें आदि भक्त-कवि को लिखने के लिए बाध्य करती हैं। दक्ष प्रजापति का यज्ञ, पार्वती का अग्नि-समर्पण, हिमालय की कथा और पार्वती का जन्म, सती द्वारा शिव की तलाश, पार्वती के प्रेम की परीक्षा लेना, शिव जी का प्रसन्न होकर पार्वती को वरण करना, विदाई से पूर्व स्वर्णहिमपात आदि

घटनाओं के आधार पर शिवपरिणय। शिव लग्न की रचना कवि की मौलिक प्रतिभा को प्रकट करती है। शैवमतानुयायी पंड़ितों के लोक-विश्वासों की अत्यन्त आकर्षक अभिव्यक्ति इस वर्णनात्मक, कथा काव्य के माध्यम से हुई है। शिव परिणाय नामक कथा-काव्य का आरंभ मंगलाचरण से होता है।

इस काव्य का संपादन ग्रियर्सन ने किया तथा 'एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल' से 1923 ई० में प्रकाशित कराया। इसका पद्यानुवाद महामहोपाध्याय पं० मुकुन्दराम शास्त्री ने मूलपाठ के साथ किया।

जिन मुसलमान कवियों की रचनाओं पर विभिन्न दर्शनों अथवा शैवदर्शन की छाप है उनकी नामावली इस प्रकार है :-

शमसफक़ीर - इनका जन्म 1883 ई० में श्रीनगर के चिंक्राल मुहल्ला में एक मध्यम घराने में हुआ था। इनकी कविता वेदान्त-दर्शन से प्रभावित है। एक उदाहरण यहां प्रस्तुत किया जाता है :-

''ज़ोय मंज़ु बॅसिथ छु आगर वॉणी,
अथ अंदर कुनिस स्वदख लॉनी,
आगुर अमि निशि द्राव।।''

भावार्थ :- परमशिव ही इस ब्रह्मांड का स्त्रोत है और विश्व का प्रतीक है, वह अन्तर्मुख भी है और बहिर्मुख भी, ''हरि रेव जगत् जगदेव हरि:'' हरि ही जगत् है, जगत् ही हरि है।

स्वच्छ क्राल - इनके जन्म-मरण की तिथि अभी तक अज्ञात है। ये पुलवामा तहसील में 'इन्द्र' नामक गांव के रहने वाले थे। जाति के कुलाल (क क्राल) थे। इनकी कविता अध्यात्मिक चिन्तन के साथ विरह की वेदना से समाहित है। जैसे :-

''हता पानु बु कुस्य गोस पानस ओस बु बहानय,
माजि येलि ज़ास थनय प्योस, वुछम ज़ून तु अफताब।
युथुय आस त्युथुय गोस पानय ओस बु बहानय।।''

अर्थ :- रे मन मैं कौन हूँ। इस नश्वर संसार में मेरा जन्म एक बहाना मात्र है।

जब मैं मां के गर्भ से निकला तो चांद और सूरज देखे। जैसा मैं इस संसार में आया वैसा ही यहां से चला जाऊँगा मेरा शरीर (जन्म) केवल निमित मात्र था।

शाहगफूर - ये सुफी संप्रदाय के प्रथम कवि माने जाते हैं। इनकी जन्म तिथि अनिश्चित है। इनका जन्म स्थान बड़गाम तहसील में 'छोन' नामक गांव बताया जाता है। इनके काव्य में सूफी दर्शन के अतिरिक्त वेदान्त दर्शन के सिद्धान्त भी पाये जाते हैं -

''योर यिथ ज़न्मस कॅंह छुनु लारन, दारनायि दारुन सू हम सू।
ब्रह्मा विष्णु महीश्वर गछि गारुन, शिव शक्ति आसी तिहुंज़ि वते।
पान हय खरनय जान गछ़ि गारुन, दारनायि दारुन सू हम सू।।''

अर्थ:- इस संसार में आकर मनुष्य को कुछ नहीं मिलता है। रे जीव। तू उसकी धारणा लगा जिसका तू रूप है। वेदान्त दर्शन के अनुसार 'तत् त्वममि' यानी तू (जीव) उसी का (ब्रह्मा) का रूप है। रे मनुष्य। ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर को ढूंढ। शिव तथा शक्ति उसी के (ब्रह्म) रूप है। तू अपने समान दूसरों से भी प्रेम कर। तू उसी का ध्यान कर जिसका तू स्वरूप है। इसी तरह अन्य मुसलमान संत कवियों - समदमीर, वहाबखार महमूदगामी, अहदज़रगर तथा फाज़िल कश्मीर आदि कवियों पर शैवदर्शन, वेदान्त तथा कृष्ण भक्ति की छाप सुस्पष्ट दिखाई देती है। फाज़िल कश्मीरी ने कृष्ण जी की लीलायें लिखकर लीला साहित्य को एक नई दिशा दी।

''म्वरली नादा बोज़ मो म्योनुय म्वरली नादा बोज़'' आदि।

रे श्रीकृष्ण जी - मेरा मुरली नाद सुनो। भट्टावतार के बाद हमें गणक प्रशस्त की रचना ''स्वखु द्वख चरित'' (सुख-दुख) मिलती है। यह कवि ज़ैन-उल्लब्दीन बड़शाह (1433-1475) के बाद सुल्तान हसनशाह के शासन काल में था। सबसे पहले यह पांडुलिपि जर्मनी के प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान जार्ज बुहलर ने - 'बाणासुर कथा' की पांडुलिपि के साथ राजस्थान में बीकानेर में प्राप्त की थी। गणक प्रशस्त की पांडुलिपि इस समय 'जम्मू व कश्मीर के रिसर्च विभाग' में सुरक्षित है। इसमें संसार की अजरता, गारुड़िकम्- अर्थात् सर्पशास्त्र, विपद् जरा-

योग वर्णन आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है। जैसे:-

''उपवन वर कामिन्यू पर मोह मधुपाना,
ओ ये सुप्ते ग्मे कामिन्यू नतु भुज्ज्येत पाना।।''

सुन्दर स्त्रियों के साथ बगीचों में सुरापान तथा भोग करना स्वप्न के तुल्य है यानी क्षणिक है, यह वास्तविक सुख नहीं है। यह केवल संसार के माया जाल में फंसना है। बाणासुर कथा की तरह इसमें वसन्त तिलकम्, मालिनी, शार्दूल विक्रीडितं आदि छन्दों का प्रयोग कवि ने किया है।

ईश्वर कौल का जन्म 1880 विक्रमी में श्रीनगर के ब्रेडमर (सं बृहत्मठ:) में हुआ था। इनके पिता का नाम पं० गणेश कौल था। ड़ोगरा शासक-महाराजा रणवीर सिंह ने 1881 ई० में 'अनुवाद विभाग' स्थापित किया था। ईश्वर कौल को इसका निदेशक बनाया गया था। इस विभाग में उन्होंने पाणिनीय सूत्रों के आधार पर कश्मीरी में सबसे पहले 'कश्मीरी शब्दामृतम्' नामक व्याकरण लिखा जो कालान्तर ग्रियर्सन ने 1898 ई० में संपादन करके 'एशियाटिक सोसाइटी' से छपवा दिया।

इसके अतिरिक्त ईश्वर कौल ने 'दशभाषोदय नामक' कोश संस्कृत के अनुष्टुप छन्द में लिखा है।

कश्मीर में हिन्दू धर्म उतना प्राचीन है जितना वैदिक धर्म। यहां की बहुत सी धार्मिक रीतियां वैदिक काल से चलती आ रही हैं। कश्मीरी पंड़ित घरानों में विवाह, यज्ञोपवीत, तथा हवन आदि के शुभ अवसरों पर आज भी मंगल गीत वैदिक ऋचाओं के छन्दों पर गाये जाते हैं। जैसे :-

''शुक्लं कॅरिथ राम वरदाये, हरि गंगाये नमस्कार।
वखनिथ कुस ह्योकिं चानि बड़ाये, गंगसर सुत्य बॅयि जमनाये।।''

अर्थात् हम शुक्लंबरधरं देव० गणेश जी का यह श्लोक पढ़कर तथा वरदायक राम का नाम लेकर हरिद्वार वाली गंगा को नमस्कार करते हैं। 'गंगसर' तीर्थ जमुना सहित आप की महिमा का वर्णन कौन कर सकता है? इसी छंद में यह वैदिक मंत्र तुलना के लिए प्रस्तुत है - ''अग्निं ईढ़े पुरोहितं

यज्ञस्य देवं ऋत्विजम् होतारं रत्नधातमम्।।'' इन 'मंगल गीतों' पर 'सामवेद' का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

कश्मीर में प्राचीनकाल से विभिन्न लीलाओं - राम लीला आदि का प्रदर्शन नृत्य और नाटक द्वारा किया जाता था। कल्हण कृत राजतरङ्गिणी में कश्मीरी नृत्य और नाटक का बार-बार उल्लेख मिलता है। मध्ययुग में यद्यपि ललित कलाओं का ह्रास हुआ तथापि ज़ैन उल्लाब्दीन ने इन कलाओं को प्रोत्साहित किया। बड़शाह स्वयं भी नृत्य देखने तथा नाटक खेलने में रुचि लेते थे। रंगमंच को उस समय लोग चहुंमुखी देवता - (Four faced God) कहते थे। इन ललित-कलाओं का प्रभाव कश्मीरी नाटकों पर भी पड़ा। कश्मीरी का पहला उपलब्ध मंच नाटक नन्द लाल कौल का 'सतुच कॅहवट' सत्य की कसौटी। राजा हरिश्चन्द्र की सत्य परीक्षा के पौराणिक आख्यान को लेकर 1929 ई० में लिखा तथा मंचित किया गया। बाद में शंकर-पार्वती, श्रीकृष्ण जन्म, भक्त प्रहलाद आदि नाटक समय-समय पर खेले गये। अर्वाचीन लेखकों में मोतीलाल क्यमू ने भरतमुनि कृत नाट्य शास्त्र के आधार पर 'बांड नाट्यम्' कश्मीरी में लिखा।

1947 ई० में स्वतंत्रता के बाद जम्मू व कश्मीर ललित कला व संस्कृति अकादमी की स्थापना 1958 ई० में श्रीनगर में हुई। इसका उद्देश्य जम्मू व कश्मीर तथा लद्दाख की प्रादेशिक भाषाओं - डोगरी, बोधी, गोजरी, बलती आदि भाषाओं का साहित्य आदि प्रकाशित करना है। इसके अतिरिक्त विभिन्न भाषाओं के साहित्यकारों की रचनाओं को पुरस्कृत करना भी शामिल है। सबसे पहले अकादमी ने 'कश्मीरी शब्दकोश' की पहली परियोजना के अन्तर्गत 'कश्मीरी शब्दकोश' के सात खंड प्रकाशित किये। इन सात खंडों में प्राय: ४६ हज़ार कश्मीरी शब्दों तथा मुहावरों का समावेश किया गया है। इन शब्दों में से चालीस (40) हज़ार कश्मीरी शब्दों की व्युत्पति (Etymology) इस लेख के लेखक ने द्री। इन सात खंडों में प्राय: पचीस हज़ार (25000) शब्द संस्कृत मूलक है। पंद्रह हज़ार अरबी तथा फारसी मूलक है। छ: हज़ार

शब्दों का स्त्रोत अनिश्चित है। दूसरी परियोजना के अन्तर्गत 'कश्मीरी विश्वकोश' के चार खंड प्राकशित हुए। इन चार खंडों में संस्कृत साहित्य से सम्बन्धित बहुत सी प्रविष्टियां प्रकाशित हुई हैं।

कश्मीर विश्वविद्यालय में 'स्नातकोत्तर कश्मीरी विभाग' भी खोला गया है। इस विभाग ने भी अनेकों पुस्तकों तथा 'अनहार' के शोधात्मक विशेषांक आज तक प्रकाशित किये हैं। उन पुस्तकों में - 'कश्मीरि तवारीख दान' (कश्मीरी के हतिहासकार) लेखक प्रो० श्रीकंठ कौल, 'कश्मीरी हिन्दुओं के तीज त्यौहार' लेखक सोमनाथ पंड़ित, 'कोशुर शैवमत' लेखक बदरीनाथ कल्ला आदि हैं। इन दोनों विभागों में समय-समय पर संगोष्ठियों का आयोजन होता है। जिनमें कश्मीरी साहित्यकार विभिन्न विषयों पर लेख पढ़ते हैं। संस्कृत साहित्य सम्बन्धी लेख भी इसमें पढ़े जाते हैं।

इन पुष्ट प्रमाणों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि कश्मीर में कश्मीरी भाषा के प्रयोग के साथ-साथ संस्कृत साहित्य का प्रभाव भी किसी न किसी रूप में दृष्टिगोचर होता है।



संदर्भ :-

1. The Doctrine of Recogniton : Dr. R. K. Kaw.
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास - वाचस्पति गैरोला।
3. बिल्हण कृत विक्रमांङ्क देव चरितम् - संपादित जार्ज बुहलर।
4. प्रकाशराम कृत रामायण अथवा रामावतार चरित, हिन्दी अनुवादक : डॉ० शिवन कृष्ण रैणा।
5. कोशुर शैवमत : डॉ० बदरीनाथ कल्ला।
6. Ascent of Self : Prof. B. N. Parinmoo
7. नूरनामा - संपादित अमीन कामिल।
8. कश्मीरी साहित्यकार तथा यूरोप के शोधकर्ता - डॉ० बदरी नाथ कल्ला।
9. हमारा साहित्य प्रकाशक जम्मू व कश्मीर कल्चरल अकाड़मी, जम्मू।
10. जोनराज कृत राजतरङ्गिणी - संपादित डॉ० रघुनाथ सिहं।

कश्मीरियों की संस्कृत साहित्य को देन

कश्मीर ने प्राचीन काल के बड़े-बड़े दार्शनिकों, साहित्यकारों की लेखकों तथा विद्वानों को जन्म दिया है। उन्होंने विभिन्न विषयों में पाण्डित्य पाकर अपना अद्वितीय चमत्कार साहित्यिक क्षेत्र में दिखाया है। इनके पाण्डित्य से प्रभावित होकर पाश्चात्य विद्वानों ने भी इनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। दो तीन विषयों को छोड़कर कश्मीर ही संसार में ऐसा देश है जिसकी विभिन्न रचनायें लोगों को आश्चर्य चकित कर देती है। विभिन्न विषयों का वैदुष्य जो यहां के आचार्यों, दार्शनिकों तथा इतिहासकारों में पाया जाता है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

साहित्य में - भामह का अलंकारवाद, वामन का रीतिवाद, आनन्दवर्धन का ध्वनिवाद, कुन्तक का वक्रोतिवाद, महिम भट्ट का अनुमानवाद, अभिनवगुप्त तथा मम्मट का अंभिव्यक्तिवाद, क्षेमेन्द्र का औचित्यवाद यह सब मत कश्मीर भूमि में ही विकसित हुए है।

पुराणों में - सातवी शताब्दी में नीलमुनि ने नीलमत पुराण लिखा जो कश्मीर का एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ माना जाता है। महाकवि रत्नाकर ने भी कश्मीर के इतिहास के विषय में 'रत्नाकर पुराण' लिखा था जो इस समय उपलब्ध नहीं है।

इतिहास में - यहां के इतिहासकारों में इतिहास लिखने में जो स्वाभाविक रूचि पाई जाती है, वह भारत के अन्य अन्य क्षेत्रों में कहीं भी नहीं पाई जाती है। इन इतिहासकारों में कल्हण, जोनराज, प्राज्यभट्ट, श्रीवर तथा शुक की क्रमिक राजतरङ्गिणियां किस सहृदय के मन में विस्मय पैदा नहीं करती है ? महाकवि बिल्हण के 'विक्रमाङ्कदेवचरित' के महत्व को कौन नहीं स्वीकार करता है ?

काव्य शास्त्र में - काव्य निर्माण कला में भी कवियों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इनकी रचना आज भी बड़े गौरव से पढ़ी जा रही है। मंख का

'श्रीकण्ठचरित', बिल्हण का 'विक्रमाङ्कदेवचरित', रत्नाकर का 'हर विजय' अपनी सानी नहीं रखता है।

व्याकरण में - इस शास्त्र के प्रकांड पण्ड़ित जयादित्य कश्मीर में पैदा हुए थे, जयादित्य ने महर्षि पाणिनी के 'अष्टाध्यायी' सूत्रों की 'काशिका' नामक वृत्ति लिखी। चान्द्रव्याकरण का बनाने वाला चन्द्रगोमी यहां ही का था, कई आचार्यों के अनुसार भगवान पंतजलि को भी कश्मीर का ही माना जाता है। अब इस लेख में अकारादिक्रम से संस्कृत साहित्य के विभिन्न विषयों में योगदान देनेवाले प्रकाण्ड पण्ड़ितों का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है :-

अभिनन्द : यह दसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में था। इसका पिता जयंत नामक विद्वान बहुत प्रसिद्ध था। 'कादम्बरी कथा सार' नामक इसकी पुस्तक प्रसिद्ध है।

अभिनुवगुप्त : संस्कृत साहित्य में अद्वैत शैवमत को परिपूर्ण विकास देने वाले आचार्य अभिनवगुप्त का नाम बडे गौरव से लिया जाता है। इनके पिता का नाम नरसिंह गुप्त था, परन्तु लोग उन्हें 'चुखलुक' कहते थे। वह दर्शन शास्त्रों का ज्ञाता तथा शिवभक्त था। अभिनव की माता का नाम विमलकला था। इनका जन्मकाल प्राय: दसवीं शती ईस्वी के मध्य काल का माना जाता है। 'मालिनी विजय तंत्र' के अनुसार इनका निवास प्रवरपुर था। बहुत सम्भव है कि इनका शैवमठ गुप्तगंङ्गा (निशात बाग' के समीप) रहा हो। इन्होंने कई नवीन काव्य तथा पुस्तकें लिखीं जो शैवशास्त्र में बहुत उपयोग तथा अनुपम हैं। इनकी रचनाओं में से निम्नपुस्तके बहुत प्रसिद्ध है! पुस्तके: तन्त्रालोक, तन्त्रसार, मालिनी विजय, परमार्थसार, ईश्वरत्यभिज्ञाविमर्शनी, अभिनव भारती, ध्वन्यालोकलोचन।

अरुणादित्य : यह वर्षादित्य का पुत्र शैवदर्शन का उपदेशक माना जाता है। 'शिवदृष्टि' में इसका उल्लेख पाया जाता है। शैवागमों के ऋृषियों में इसे गिना जा रहा है। उन ऋृषियों को शैवपरिभाषा में 'मठिका गुरू' कहा गया है।

अल्लट : यह राजानक जयानक का पुत्र था। इसने रत्नाकार कवि द्वारा बनाये गये 'हर विजय नामक' महाकाव्य पर विषम प्रदोद्योत नामक टिप्पणी लिखी थी। इसके अतिरिक्तकाव्य प्रकाश नामक अलंकार शास्त्र के अवशिष्ट अंशों को अल्लट ने ही पूर्ण किया था। इस विषय में इसका उल्लेख इस तरह से पाया जाता है - प्रबन्धः पूरितः शेषो विधायालटसूरिणा' यह भी कईयों का मत है। इसकी तीसरी कृति 'परापूजा' है।

आनन्द : यह अरुणादित्य का पुत्र था। आचार्य अत्पलदेव के गुरू सोमानन्द का पिता था। अद्वैत शैवदर्शन का एक मठिका गुरू था।

आनन्दकवि : इस प्रसिद्ध कवि ने 'काव्यप्रकाश' की निदर्शना नामक व्याख्या लिखी थी।

आनन्दवर्धन : यह आचार्य नवमी शताब्दी में हुआ था। इस आचार्य का आश्रयदाता राजा अवन्तिवर्मा था। जैसे 'राजतरङ्गिणी' के निम्नपद्य से इसका स्पष्टीकरण होता है :

मुक्ताकणः शिवस्वामी कविरानन्दवर्धनः।
प्रथां रत्नाकरश्चागात् साम्रज्ये अवन्तिवर्मणः।।

इसका पिता नोण उपाध्याय था। इसके लिखे हुए ग्रन्थ ध्वन्यालोक, विषमबाणलीला तथा देवीशतक इत्यादि है।

उत्पलदेव : कश्मीर की सुप्रसिद्ध शैवदर्शन मठिका में आचार्य उत्पलदेव सब से श्रेष्ठ दार्शनिक माने जाते हैं। इसके प्रसिद्ध शिष्य रामकण्ठ के कथनानुसार उत्पलदेव कश्मीरी ब्राह्मणों के राजानक वंश से सम्बन्ध रक्ते थे। उत्पलदेव की कृतियों में उनका नाम 'उत्पल' मिलता है। वह अपने व्यक्तिगत इतिहास के विषय में हमें अधिक कुछ नहीं कहते है। उसके टीकाकार भी अधिक उसका परिचय नहीं देते है। आचार्य अभिनगुप्त 'इश्वर प्रत्यभिज्ञा' विवृजविमर्शिनीं' में इसका इस तरह से उल्लेख करते हैं कि उत्पलदेव 'वागीश्वरी' से पैदा हुआ था और उसका पिता मूलरूप से 'लाट' था। 'लाट' वर्तमान गुजरात के प्राचीन लोग थे। अतः यह सम्भव है कि उत्पल के पूर्वज

गुजरात से यहां कश्मीर में आये होंगे, उत्पल की विवृति अनुपलब्ध होने के कारण यह विषय थोड़ा सा सन्देहास्पद भी रह चुका है।

सोमानन्द : उत्पलदेव का गुरू था। लक्ष्मणगुप्त तथा अभिनवगुप्त उत्पल के शिष्य थे। राजानक रामकण्ठ (जो स्पन्दकारिका की विवृति के टीकाकार तथा भगवद्गीता के शैवटीकाकार माने जाते हैं) उसके शिष्यों में से एक शिष्य थे। उन्होंने अत्पलदेव के स्तोत्रों का संग्रह किया।

उत्पलदेव ने भट्ट कल्लट की स्पन्दकारिका से कई अंश अद्धृत किये है जो राजा अवन्तिवर्मा (850 ई०) का समकालीन था। अत: उत्पलदेव नवमी तथा दसवीं शताब्दी के मध्य में रहा होगा।

कश्मीर के पण्ड़ितों में यह धारणा प्रसिद्ध है कि उत्पलदेव विच़ारनाग के पास रहता था। अस्तु।

उत्पल एक श्रेष्ठ दार्शनिक थे। वे अपने समकालीन विद्वानों में से श्रेष्ठ थे। मीमांसा, व्याकरण तथा विज्ञानवाद में अद्वितीय थे। अन्होंने अन्य बौद्ध दर्शनों का गम्भीर अध्ययन किया था। अपनी रचनाओं में वे अपनी दृढ़ता से बार बार उनका खण्डन करते है। इनकी रचनाएं :

इर्श्वर प्रत्यभिज्ञा, शिवदृष्टि वृत्रि तथा शिवस्त्रोत्रावली। इसके अतिरिक्त सिद्धित्रयी भी इनकी एक महत्वपूर्ण कृति है।

उद्भट्ट : इनका जन्मकाल नवमी शताब्दी के आरंभ में माना जाता है। यह कश्मीर के प्रसिद्ध राजा जयापीड़ के सभा पण्ड़ित थे। इनके लिखे हुए ग्रंथ उद्भटालङ्कार, भामह विवराणम्, कुमार संभव:, (अनुपलब्ध)।

उव्वट : उवट्, औवट तथा उवट नाम से यह पुकारे जाते हैं। इनके पिता का नाम वज्रट था। आचार्य मम्मट का यह भाई था। 'सुधासागर' के रचयिता भीमसेन का यह मत है। किन्तु यह मत सर्व सम्मत नहीं है, क्योंकि मम्मट को जैयट का पुत्र स्वीकार किया जाता है। अव्वट ने 'युजर्वेद संहिता' पर भाष्य लिखा। वह गुजरात में रहने वाले या उज्जैन में रहने वाले उव्वट ने लिखा था या नहीं इसमें अभी संदह ही है। इन कारणें से मम्मट का इसके साथ

सम्बन्ध अभी संदेहास्पद ही है।

कल्लट : यह वसुगुप्त के शिष्य थे और नवमी शताब्दी में थे। शैवदर्शन के एक प्रसिद्ध आचार्य्द माने जाते हैं। उनकी स्पन्दकारिका स्पंद का सिद्धान्त जानने के लिए प्रमाणिक ग्रंथों में से है।

कल्हण : भारत के सभी इतिहासकारों में से कल्हण को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। सौभाग्य से कल्हण ने ऐतिहासिक महा काव्य में अपना परिचय दिया है। इसके पिता का नाम चम्पक था जो तत्कालीन राजा हर्षदेव का मंत्री था। सुप्रतिष्ठित व्यक्तियों के सम्पर्क से उसका जीवन बदल गया। कालानार में इसने कश्मीर के राजा जय सिंह 1126-1245 ई० के राज्यकाल में राजतरङ्गिणी की रचना की। इस इतिहास के लिखने में उसे दो वर्ष लग गये। इतिहास लिखने से पहले इसने ग्यारह ऐतिहासिक ग्रंथों का गंभीर अध्ययन किया। उनमें से 'नीलमत्पुराण' नृपावली तथा पार्थिवावली के अंश उल्लेखनीय है। राजतरङ्गिणी में आठ तरंग है। जिनमें क्रमश: गोनन्दवंश, कार्कोटवंश उत्पलवंश तथा लोहरवंश के राजाओं का इतिहास लिखा गया है। भिन्न भिन्न वंशों से सम्बन्ध रखने वाले राजाओं के गुणदोष वर्णन में इतिहासकार ने कोई त्रुटि नहीं की। निष्पक्षरूप से प्रत्येक घटना प्रस्तुत की है।

कुन्तल : यह ग्यारहंवी शती में हुआ था। इसने 'वक्रोक्तिजीवित' नामक अलंकार ग्रंथ लिखा है। इसमें चार उन्मेष हैं जिस में वक्तोक्ति के भेदों का साङ्गोपाङ्ग वर्णन किया है।

केशव कश्मीरी भट्टाचार्य : ये महानुभाव अल्लाब्दुद्दीन खिलजी के शासनकाल में 1320 ई० में थे। यह पहले निम्बकाचार्य की विशिष्ट अद्वैत वेदान्तकी वैष्णवी दीक्षा को ग्रहण करके भारत भ्रमण के लिए तैयार हुए थे। उन्होंने ब्रह्मसूत्र ग्रन्थ की वेदान्त कौस्तुभ प्रभा नामक व्याख्या भी की।

कैय्यट : इनका समय विक्रमी ग्यारहंवी शती है। यह जय्यट के पुत्र है। इन्होंने स्वयं अपने महाभाष्य प्रदीप में कैयटो जयटात्मज: यह स्पष्टरूप से लिखा है।

क्षीरस्वामी : यह ग्यारहंवी शती के प्रथम चरण में थे। इनके ग्रंथ अभिनवराघव नाटक, ममर कोशव्याख्या आदि अनेक ग्रंथ है।

क्षेमराज : यह महा महेश्वराचार्य श्री अभिनवगुप्त पाद के शिष्य थे। आचार्य अभिनव गुप्त का समय ग्यारहंवी शती का प्रारम्भ ही माना जाता है। इसलिए वह भी उसी समय के माने जाते हैं। इनकी टीकायें शैवदर्शन में महत्वपूर्ण तथा प्रसिद्ध भी है। यह अभिनवगुप्त के आध्यात्मिक पक्ष के प्रधान शिष्यों में गिने जाते हैं। शैवमत के प्रचार व प्रसार में उनका योगदान उल्लेखनीय है।

क्षेमेन्द्र : संस्कृत साहित्य में क्षेमेन्द्र के समान हमें लेखक बहुत ही कम मिलते हैं। जिन्होंने अध्ययात्म-पक्ष पर अधिक बल न देकर समाज का पूर्णरूप से निरीक्षण करके उसका विवेचन व्यङ्ग्यात्मक रूप से किया है। सामाजिक दोषों व त्रुटियों के वर्णन में कोई हिचकिचाहट नहीं की।

ग्याहरवीं शताब्दी के मध्यभाग में ये महानुभाव पैदा हुए थे। इनके पिता का नाम प्रकाशेन्द्र था और पितामह का नाम सिन्धु। अनन्त नामक राजा के दरबार में यह सभा पण्डित थे। आचार्य अभिनवगुप्त इनके साहित्य गुरू थे।

इनकी प्रसिद्ध रचनायें : कविकण्ठाभरण बहत्कथामंजरी देशोपदेश तथा नर्ममाला रामायण मंजरी पद्यकादम्बरी औचत्य विचार चर्चा मुक्तावली वातस्यायन सूत्र सारा:, दशावतार चरित, चतुर्वगसंग्रह, अवदानलता भारतमंजरी आदि।

गुणाट्य : इसके स्थितिकाल के विषय में विद्वानों में मतभेद है। यह गोदावरी के किनारे पर प्रतिष्टानगर में पैदा हुआ था (काश्मीरी संस्करणों से ऐसा मालूम होता है) राजा सातवाहन ने पहले इसकी पुस्तक को अस्वीकृत किया है। बाद में राजा ने उसके सातवें भाग को बचा लिया, यहीं आज 'बृहत्कथा' है। यह पैशाची भाषा में लिखी थी जो अनुपलब्ध है। पैशाची भाषा में एक विशिष्ट लेखक के नाते इसे कश्मीर देशवासी माना जा सकता है।

गोरखनाथ : नाथ पंथ के प्रवर्तक श्री मच्छिन्दर नाथ योगी के शिष्य थे। इन्होंने 'अमरौघ शासन' नामक पुस्तक का निर्माण किया।

जयन्त भट्ट : तेरहसौ पच्चास ईस्वीं में कश्मीर के असिद्ध गांव पद्मपुर (वर्तमान पांपोर) में इनका जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम रत्नोधर था। जगधर ने बालबौधिनी नामक कातंत्रन्त्रवृति लिखी। इनका स्तुतिकुसुमांजलि नामक स्तोत्र काव्य बहुत प्रसिद्ध है।

जयद्रथ : यह महानुभाव तेरहवीं शतक के आरम्भ में पैदा हुए थे। इनका भाई जयरथ नामक था।

जयन्तभट्ट : यह विद्वान कश्मीर के सुप्रसिद्ध राजा मुक्तापीड़ के श्री शक्तिस्वामी के पौते थे और श्रीचन्द्र पण्ड़ित के पुत्र थे। मुक्तापीड़ का समय सात सौ दस ईस्वीं से लेकर सात सौ सठ ईस्वीं तक माना जाता है। इसलिए वंशक्रम की गणना से आठ सौ पच्चास ईस्वीं के लगभग ही जयन्तभट्ट का आर्विभाव काल निर्धारित किया जा सकता है।

जयरथ : श्रंगार कवि के पुत्र जयरथ ने 'अलंकार सर्वस्वग्रंथ' की विमशर्नी नाम की व्याख्या लिखी। इन्होंने हरचरितचिन्तामणि नामक महाकाव्य की रचना की। इनके पिता राज्यमंत्री के पद पर आसीन थे। इन्होंने तंत्रालोक की विवेक नामक सुविस्तृत टीका की है।

जयादित्य : यह महापण्डित सातवी शताब्दी में पैदा हुए थे। इन्हें व्याकरण पर असाधारण अधिकार था। इन्होंने पाणिनी पर सब से उत्कृष्ट भाष्य 'काशिकावृति' लिखी है।

दृढ़बल : यह कपिलबल के पुत्र थे, यह प्रथम शताब्दी में पैदा हुए थ। इनके द्वारा 'चरकसंहिता' सशोधित और परिवधित रूप में हमारे सामने आई।

नागार्जन : इसके विषय में विद्वानों में मत-मतान्तर है। नागार्जुन को कई लोग दक्षिणात्य मानते है। परन्तु इतिहासकार कल्हण ने उसे श्रीनगर के समीप झीलडल के किनारे पर षडहर्दवन वर्तमान हारवन का निवासी माना है।

कल्हण का निम्नपद्य इसका प्रमाण है :

बोधिसत्त्वच देशेस्मिन्नेको भूमीश्वरोऽभवत्।
स च नागार्जुन: श्रीमान् षडर्हद्वन संश्रयी।।

महाराजा कनिष्क के समय में कश्मीर देश में बाधिसत्व थे। एकतो महाराजा स्वयं और दूसरे षडर्हद्वन (हॉरवन) में रहने वाले श्रीमान् नागार्जुन।

ऐसा प्रतीत होता है कि प्रसिद्ध बौद्धाचार्य के अतिरिक्त कोई कश्मीर शैवदर्शनाचार्य नागार्जुन नामक हुए होंगे।

इसकी दो लघु कृतियां हमें मिलती है :

(1) चित्तसंतोष त्रिंमिशिका

(2) परमार्चन त्रिंशिका

दोनों में तीस-तीस पद्य है।

एक तंत्रगंथ भी लिखा था जिसके अंश 'जम्मू व कश्मीर रिसर्च पुस्तकालय' में विद्यमान है।

भट्टनायक : यह आनन्दवर्धनाचार्य से अर्वाचीन तथा अभिनवगुप्तचार्य से प्राचीन थे। आनन्दवर्धनाचार्य का समय नवम शतक का मध्य माना जाता है। अभिनवगुप्त का लेखन समय 993 ई० माना जाता है। इन दोनों के बीच में भट्टनायक का आर्विभाव माना जाता है। इसने हृदयदर्पण नामक ग्रन्थ की रचना की।

नरहरि : नरहरि कश्मीर के प्रसिद्ध सिंहपुर वर्तमान स्यम्पुर नामक गांव में जन्महुआ था। सुना जाता है कि इस गांव में सिंहगुहा नामक एक प्रसिद्ध मठ था जो साहित्यिक गतिविधियों के लिए बहुत प्रसिद्ध था। इसी गांव में ईश्वर नामक विद्वान पैदा हुआ। इसी का पुत्र रत्न नरहरि था और नरहरि ने इसी प्रसिद्ध मठ में विद्याध्ययन किया। यह विद्वान कहा पैदा हुए थे निश्चयरूप से यह नहीं कहा जा सकता है। इसने राजनिघण्टों में धन्वन्तरी आचार्यों का उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट होता है कि नरहरि दसवीं शताब्दी के बाद का होगा।

यद्यपि नरहरि तंत्रशास्त्रों का ज्ञाता था और उसे वैद्यक विद्या पर पूर्ण अधिकार था, तत्कालीन वैद्य समाज में उसकी कीर्ति चारों ओर फैली हुई थी, निम्न श्लोक से इसका परिचय पाठको को मिलता है :

न तथान्योन्य सहाय वैद्यककला शङ्काकलङ्कापनुद।
दस्रैक्यावत्थ त्पोपमित्यवरतं सन्तः प्रशंसयन्ति यमू।।

इसकी कृति : इसने राजनिघन्टु नामक ग्रन्थ का निर्माण किया है। इसके अतिरिक्त इसका कोई ग्रन्थ नहीं पाया जाता है। राजनिघटु ग्रन्थ आयुर्वेद शास्त्र का है इसमें इसने कश्मीर के प्रसिद्ध औषधीय का वर्णन किया है। इस ग्रन्थ के अध्ययन से पाठकों को नरहरि की औषधिपरीक्षण शक्ति का ज्ञान होता है।

नारायण भट्ट : यह आठवीं शताब्दी में थे। इन्होंने स्तव चिन्तामणि नामक ग्रन्थ की रचना की जिसमें शिव का महात्म्य वर्णन किया है।

पतंजलि : यह महामुनि गोनर्द देश के रहने वाले थे। कहा जाता है कि विक्रमी संवत से सौ साल पहले ही पाणिनी के सूत्रों पर महाभाष्य लिखा है। कश्मीर के सुप्रसिद्ध वैयाकरणी कैयट के महाभाष्य पर एक व्याख्या लिखी।

पुण्यानंदाचार्य : यह काम कला विलास नामक ग्रन्थ के रचयिता थे। प्रतीहारेन्दुराजः इसने भट्टमुकुल नामक गुरू से पढ़ा था। उदभटालंकारसार संग्रह नामक ग्रन्थ की रचना की। यह ईस्वीं से दशमशतक के पूवधि में पैदा हुए थे। ऐसा ऐतिहासिक मानते है।

भट्टभीम : इसने रावणार्जुनीय काव्य ग्रन्थ का निर्माण किया था।

भरतमुनि नाट्यशास्त्र : इस महर्षि ने ईस्वीं दूसरी शताब्दी में नाट्यशास्त्र की रचना की थी। आचार्य भरत भारतीय नाट्यशास्त्र के आदि निर्माता माने जाते है।

भर्तृमेंठ : कश्मीर के साहित्य प्रेमी नरेशों में से मातृगुप्त का नाम बडे आदर से लिया जाता है। उज्जैन के राजा हर्षविक्रमादित्य इसकी विद्वता से बहुत प्रभावित हुए। उसके अनुराग के कारण मातृगुप्त को कश्मीर के

नि:संतान राजा हिरण्य के सिंहासन का उत्तराधिकार प्राप्त हुआ। महाकवि मेंठ इन्हीं का राजकवि था। हयग्रीववध नामक काव्य की रचना की इसकी अत्यंत प्रशंसा कल्हण ने की है। दुर्भाग्य से इसकी यह रचना अनुपलब्ध है।

भल्लट : इस कवि ने भल्लटशनकम् नामक काव्य की रचना की।

भामह : इनका समय सातवीं शतक का प्रथम चरण माना जाता है। इनके पिता का नाम राकिलगोमी था। इनके दो ग्रन्थ काव्यालंकार तथा वररूचि रचित प्राकृत प्रकाश की वृति प्रसिद्ध है।

मंख : कश्मीर के प्रसिद्ध प्रवरपुर नामक नगर में पूर्वदिशा में श्रीरणादित्य देव का रणास्वामी नाम से प्रसिद्ध मन्दिर था, जो इस समय श्रीनगर में जामामस्जिद के रूप में प्रसिद्ध हैं इस मन्दिर के प्रधान द्वार के निकट ही 'मन्मथ' नामक एक सारस्वत ब्राह्मण रहता था। कालान्तर इसे विश्वावर्त नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। यह विश्वावर्त्त भगवान शंकर का अनन्य उपासक था। इसके श्रंगार, अलंकार, भ्रंग तथा मंख चार पुत्र थे।

राजा जयसिहं के राज्यकाल में महाकवि मंख ने अपने जन्म से कश्मीर मंडल को विभूषित किया। जयसिहं का राज्यकाल ग्यारह सौ सताईस ईस्वीं से ग्यारह सौ उन्नाचास ईस्वीं तक माना जाता है। अत: मंख का भी जन्म काल उक्त शतक में ही स्वाभाविक रूप से सिद्ध होता है। राजतरङ्गिनी ग्रन्थ के प्रणेता कल्हण पण्ड़ित भी इसी समय हुआ था।

अपने भाईयों में से मंख़ छोटा था। छोटी आयु में ही इसने सब शास्त्रों का अध्यन किया था। राजानक रुय्यक इसका गुरू था। योगराज पण्डित से भी कई शास्त्रों का परिशीलन किया था। इसके अनुपम वैदुब्य से प्रभावित होकर राजा जयसिंह ने इसे धर्माथि कार्य का अध्यक्ष बनाया था। कालान्तर में राजा ने श्रीकण्ठ नामक विद्यालय के प्रधानअध्यापक पदवी पर इसे विभूषित किया ऐसा राजतरङ्गिनी से प्रतीत होता है। इसकी बीस साल की आयु में ही इसके पिता का देहान्त हुआ था। कुछ समय के बाद इसने स्वपन में भगवान शिव का रूप धारण करने वाले पिता को अपने कमरे में देखा। पिता ने उसे

कहा हे पुत्र! निस्सन्देह तुमने सब शास्त्रों का गम्भीर अध्यन किया है इसे तुमको क्या लाभ होगा? यदि तुम इस विद्याा से भगवान शंकर की आराधना नहीं करोगे तुम्हारी विद्या का क्या लाभ? यह कहकर वह अर्न्तध्यान हुआ। बाद में मंख ने पिता के आदेशानुसार श्री कण्ठ के निर्माण काव्य की रचना की। इस काव्य के निर्माण में उसे पूरा एक वर्ष लगा।

कुछ समय के बाद वह अपने काव्य की परीक्षा करने के लिए अपने छोटे भाई अलंकार पंडित के द्वारा आयोजित साहित्यक गोष्ठी में प्रविष्ट हुआ वहां उसने विभिन्न विषयों में निष्णात विद्वानों के सामने अपनी रचना गुणदोष परीक्षण के लिए रखी। इसकी रचना पढ़कर विद्वानों ने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। कहा जाता है वहां कल्याण (कल्हण) भी था। वहां से लौटकर उसने वह काव्य भगवान पशुपतिनाथ को समर्पित किया। इस प्रकार पिता के आदेश का पालन करता हुआ वह कवि आनन्द विभोर होकर कृतकृत्य हुआ।

श्री कण्ठचरित काव्य के अतिरिक्त उसने मंख काव्य का भी निर्माण किया। राजानक रुथ्यक के ग्रंथों की व्याख्या भी इसने की है। उसने साहित्य मीमांसा नामक एक अलंकार ग्रन्थ का भी निर्माण किया।

मम्मट : अलंकारिकों में मम्मट का स्थान सर्वोत्कृष्ट है। इनका जन्म ग्यारहवीं शतक के अत्तरार्ध में हुआ। इनके पिता का नाम जयपट था उव्वट और कैयट इनके दो भाई थे। मम्माचार्य प्रतिभा सम्पन्न थे। इनकी प्रतिभा का परिचय इनकी रचना 'काव्यप्रकाश' नामक ग्रन्थ से स्पष्ट प्रतीत होती है। इसके पूर्ववर्ती आलङ्कारिकों ने काव्य लक्षण के विषय में जो अस्पष्ट परिभाषा दी थी उसको अपनी सूक्ष्म बुद्धि से परिष्कृत करके उसका शुद्ध रूप पाठकों के सामने रख दिया। इस प्रकार उन्होंने चिन्तन जगत् में काव्य शास्त्र विषयक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करके अपनी प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया और नई क्रांति पैदा कर दी। इनकी इस अमूल्य रचना पर कश्मीर शैवदर्शन की छाप स्पष्टत: प्रतीत होती है। इस की व्याख्या करते करते इन्होंने जो पूर्ववर्ती आलङ्कारिकों का सूक्ष्म रूप से खण्डन किया है और आचार्य अभिनवगुप्त के

रसवाद के महत्त्व को प्रकट किया है। उससे 'काशमीरिक प्रत्यभिज्ञादर्शन' में महान आचार्य अभिनवगुप्त का प्रभाव स्पष्ट रूप से उसपर दृष्टिगोचर होता है। ध्वनि सिद्धान्त के प्रवर्त्तक आचार्य आनन्दवर्धन के ध्वनि विषयों को संतोषपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने का श्रेय आचार्य मम्मट को ही प्राप्त है।

रुदयक : बारहवी शताब्दी के पूर्वाद्ध में पैदा हुए थे। इनके पिता का नाम तिलक था। इनके ग्रन्थ अलंकार सर्वस्व आदि हैं।

वर्षादित्य : यह संगमादित्य के पुत्र थे। शैवदर्शन के एक मठिका गुरू थे।

वामन : विद्वानों का मत है कि इनका समय आठवीं शतक तथा नवमशतक का आरम्भ था। कश्मीर के विख्यात राजा उनके आश्रयदाता था। इन्होंने अलंकार सूत्र नामक पुस्तक की रचना की।

बिल्हण : संस्कृत साहित्य के अनेक लेखकों का इतिहास चिरकाल से कालघटा में आवृत रहा है। यहीं कारण है कि कई लेखकों का जन्मस्थान आदि आज भी विद्वानों के समक्ष विवादास्पद रह चुका है। किन्तु बिल्हण के जन्मकाल के विषय में ऐसी जटिल समस्या नहीं है। उन्होंने स्वयं अपने ऐतिहासिक महाकाव्य में अपना वंश परिचय विस्तार रूप से दिया है।

अपनी रचना विक्रमाङ्कदेवचरितम् के अठारहवें सर्ग में कवि ने 60 से 104 श्लोक तक अपना जीवन चरित लिखा है। श्रीनगर से प्राय: पांचमील की दूरी पर खोनमुष वर्तमान खोनमुहं नामक ग्राम में इनका जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम ज्येष्ठकलश तथा माता का नाम नागदेवी था। इनके पिता व्याकरणशास्त्र के धुरंधर विद्वान थे। इसके बडे भाई का नाम इष्टराजा और छोटे भाई का नाम आनन्द था। कश्मीर में इन्हें अनेक शास्त्रों , वेदों, पुराणें तथा स्मृति ग्रन्थों का गम्भीर अध्ययन करके दिगन्त व्यापिनी कीर्ति प्राप्त की और ईस्वीं सन् 1062 से 1065 के मध्य में यातायात साधनों के अभाव में जन्मभूमि छोड़कर बांहिर अपनी योग्यता प्रदर्शित करने के लिए चल पड़े।

मथुरा, कन्नौज, प्रयाग आदि प्रदेशों में कुछ समय बिताकर उन्होंने

अन्त में अपना अवशिष्ट समय दक्षिण भारत में स्थित कल्याणदेश के चालुक्यराजा राजा विक्रमादित्य के दरबार में बिताया। उनकी अनुपम योग्यता से प्रभावित होकर राजा ने इसे विद्यापति की पदवी से समलकृत किया। पाश्चात्य विद्वान डॉ बूल्हर के अनुसार इन्होंने विक्रमांकदेवचरितम् की रचना वृद्धावस्था में की होगी। इसके अतिरिक्त उन्हेंने 'कर्णसुन्दरी' नाटिका और 'चौरपंचाशिका' नामक खण्डकाव्य की रचना की है। विक्रमांकदेव के आश्रम में रहकर इसने महाकाव्य की रचना की। विक्रमांकदेव चरित के अठारह सर्ग है। चालुक्यराजा विक्रम का विस्तृत वर्णन इसमें इन्होंने किया है। इसके अतिरिक्त इन्होंने अपनी मातृभूमि को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए भावना के कुसुम उस पर बिखेर दिये :

सहोदरा कुङ्कुमकेसराणां भयन्मि नूनं कविताविलास:।
न शारदा देशमपास्य दृष्टस्मेघां पदन्यत्रमया प्ररोह।।

शिल्हण : संभवत: यह बारहवीं शती में विद्यमान थे। इन्होंने शान्ति शतकम् काव्य लिखा। पुस्तक के आधार पर कहा जा सकता है कि कवि वुद्धमत से प्रभावित थे। इसकी कविता वैराग्यशतकम् से मिलती जुलती है।

शम्भू : 1089 ईस्वीं से 1101 ईस्वीं के समय में विद्यमान थे। उन्होंने 108 पद्यों वाली कविता 'अन्योक्तिमुक्तालता शतकम्' लिखी।

पृथ्वीराज विजय : किसी कश्मीरी लेखक की लिखी पुस्तक है। हीराचन्द ओझा और बेल्वेलकर के अनुसार इसका लेखक जयानक है। यह 1178 ईस्वीं 1193 के बीच लिखी गई है।

कालिदास : दिल्ली विश्वविद्यालय प्रकाशन नं० 1 में प्रो० लक्ष्मीधर कल्ला ने Birth place of Kalidasa में प्रमाणों से यह सिद्ध किया है कि महाकवि कालिदास कश्मीर का ही निवासी था। उनका जीवन दर्शन कश्मीर शैवदर्शन से सम्बन्धित है। उनके नाटक, 'अभिज्ञान शकुन्तलम्' का 'अभिज्ञानशब्द' कश्मीर के प्रत्यभिज्ञा शास्त्र की ओर ही संकेत करता है। केसर जो कश्मीर में ही पैदा होता है उसका भी वर्णन किया है।

ज़ैन साहित्य : युद्ध भट्ट : ज़ैनचरित, ज़ैन विलास, ज़ैन प्रकाश इन दो नाटकों और ज़ैन प्रकाश का लेखक कश्मीर निवासी युद्धभट्ट था। श्रीवर की राजतरङ्गिणी में इसका उल्लेख पाया जाता है। ये दानों नाटक शारदा लिपि में लिखे गये होंगे। क्योंकि उस समय राजभाषा के लिए शारदा लिपि ही व्यवहृत होती थी। यह तीनों ग्रन्थ इस समय अनुपलब्ध है।

बौद्ध साहित्य : कश्मीर के इतिहास में 273 ईस्वीं पूर्व से 600 ईस्वीं तक बुद्धमत का समय रहा। यहां के बडे बडे पण्ड़ित बुद्धमत का प्रचार व प्रसार के लिए तिब्बत, चीन और मध्य एशिया गये। वहां पर संस्कृत और प्राकृत भाषा में लिखी गई पुस्तकों का विदेशी भाषों में अनुवाद किया।

कश्मीर के लोलाब में चंडीगाम के रहने वाले कुमारजीव को चीन के सम्राट ने न्यौता दिया। इसने वहां कश्मीरी विद्वान हरिवर्मण की 'तत्वसिद्धिः' समेत कई पुस्तकों को चीनी भाषा में अनुवाद किया। सुभटि श्रीशान्ति अब भी तिब्बत में स्मरण किया जाता है। विक्रमशिला विश्वविद्यालय के आठ महान् पण्ड़ितों में 'स्मृत्यकारसिद्ध' जो कश्मीर निवासी था, का नाम बड़े आदर से लिया जाता है।

मुसलमानों के शासनकाल में भी ज़ैनउल्लाब्दीन नामक राजा विधा, कला तथा कविता में प्रेम रखता था। संस्कृत भाषा के साथ उसे अनन्यराग था। अपने शासनकाल में उसने संस्कृत भाषा का पुनरुद्धार ही नहीं किया, अपितु उसने हिन्दुओं के अनेक तीर्थों की यात्रा भी की। श्रीवर और जोनराज उसके राजदरबार में दो रत्न थे, जिन्होंने राजतरिङ्गणी में ज़ैनउल्लाब्दीन की तीर्थ यात्रा का वर्णन किया है। यह महान राजा 'योगवसिष्ठ' श्रीवर के मुख से सुना करता था। ज़ैनउल्लाब्दीन नामक कश्मीर के प्रसिद्ध शासक श्रीभट्ट नामक वैद्य की कृपा से स्वास्थ पाकर हिन्दू संस्कृति की ओर झुक गये। फलत: उसने संस्कृत के कुछ शिक्षण केन्द्रों का पुनरुद्धार किया और पाठशालायें खोली।

कश्मीर मण्डल चौदह विद्याओं का पीठ माना जाता है। श्री हर्ष ने

इसका उल्लेख इस प्रकार किया है :

'कश्मीरैर्महिते चतुर्दश तयीं विद्यां विद्वभिः महान।।'

शैवदर्शन का स्त्रोत :

शैवदर्शन का उद्‌गमस्थान कश्मीर देश ही माना जाता है। यहां नवमी शताब्दी में आचार्य वसुगुप्त ने 'स्पन्दकारिका' लिखकर इसी शाखा में 'स्पन्द शास्त्रं की नींव रखी। शैवमत की दूसरी शाखा 'प्रत्यभिज्ञादर्शन' है। उसका भी जन्म इसी पुण्यभूमि पर हुआ है। कश्मीर का शैवदर्शन त्रिकदर्शन के नाम से भी पुकारा जाता है। यह त्रिकदर्शन इस देश की विशिष्ट दार्शनिक थाती है। इस दर्शन के विषय में आजतक अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई है। शिव-शक्ति तथा नर इन तीन तत्त्वों का समूह ही त्रिक के नाम से पुकारा जाता है।

एक ही शिवतत्व अपनी स्वातन्त्र्य शक्ति से तीन प्रकार का होता है। इस दर्शन में परम सत्तारूप शिवज्ञान किया लक्ष्णों से युक्त होने के कारण जगत का निमित तथा उपदान होने के कारण इस का निर्माता विश्वमय तथा विश्वोत्तीर्ण मान लिया गया है। ''चित्तिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धि हेतुः सा स्वभितौ विश्वमुन्मीलयति'' इत्यादि सूत्रों से उसका स्वातंत्र्य तथा जगत् का कारणत्व मान लिया गया है। वेदान्त के अनुसार चिदूप ब्रह्म में जगत का कर्त्तृत्व पाया नहीं जाता है उस दर्शन के अनुसार माया ही संसार की जननी है। वह माया न ब्रह्म से भिन्न है न अभिन्न है न सत् है न असत् है। अपितु उसका स्वभाव अर्निवचनीय है।

यहीं उस दर्शन से त्रिक दर्शन की विशिष्टता मानी जाती है। त्रिक रहस्य पर प्रकाश डालने वाला साहित्य तीन विभागों में विभक्त है। उनमें :

(1) आगम नामक पहला भाग वेद की तरह अपौरुषेय है। इसलिए कई विद्वान् उस आगम शास्त्र को शिव कर्तृत्य बताते है।

(2) दूसरा भाग 'स्पन्द' कहा जाता है। स्पन्द नाम से प्रसिद्ध शिव की परमशक्ति ही क्रियात्मक परमशक्ति है। उसी शक्ति से संसार का उन्मीलन तथा निमीलन होता है। जैसे यस्योत्मेषनिमेषाभ्यां जगतः प्रलयोदष्टै।

(3) तीसरा भाग 'प्रत्यभिज्ञा' नामक का है। यह भाग त्रिक दर्शन के ज्ञान पक्ष पर प्रकाश डालता है। 'प्रत्यभिज्ञान' भूले हुए पदार्थ का फिर ज्ञान होना या खोई हुई वस्तु की प्राप्ति को 'प्रत्यभिज्ञान' कहते है। त्रिकदर्शन में माया के मल से मुक्त शिव को ही जीव का नाम दिया गया है। मल के दूर होने पर विशुद्ध स्वभाव वाले शिव का अपने भाव: का ज्ञान होना ही 'प्रत्यभिज्ञान' Recognition कहलाया जाता है।

औषधि विषयक साहित्य :

यद्यपि कई विशेषज्ञों के नाम सुनने में आते हैं किन्तु भारतीय औषधिविषयक साहित्य चरक के चरक संहिता से आरम्भ होता है। बौद्धसाहित्य की खोज चीन में करते करते प्रों सिल्वन वेली ने यह मत स्थिर किया है कि चरक महाराजा कनिष्क प्रथम शती ईस्वीं का राजवैद्य और कश्मीर का निवासी था। कपिल बल के पुत्र दृढबल 'नवीं शती ईस्वीं' जो सिन्धु और वितस्ता के सागम पर स्थिति गांव 'पन्तसिनोर' का निवासी था। उन्हीं के द्वारा चरकसंहिता संशोधित और परिवर्तित रूप में हमारे सामने आई।

वात्स्यायन द्वारा रचित कामसूत्र के बाद इस विषय पर लिखने वाले रतिरहस्यं के लेखक तेजोक के पुत्र और परिभद्र के पौत्र कोकपण्ड़ित ही है जो कश्मीर निवासी थे।

दो तीन विषयों को छोड़कर कश्मीर ही संसार में ऐसा देश है जिसकी विभिन्न रचनायें लोगों को आश्चर्य चकित कर देती है। विभिन्न विषयों का वैदुष्य जो यहां के आचार्यों, दार्शनिकों तथा इतिहासकारों आदि में पाया जाता है वह अन्यत्र दुर्लभ है।



पंचम खण्ड

प्रद्युम्नपीठ पर विराजती श्री चक्र रूपा शारिका देवी

''नौम्यहं शारिका देवीं शारिका रूप धारिणीम्।

प्रद्युम्नपीठमध्यस्थां बकासुरविनाशिनीम्।।''

प्रद्युम्नपीठ के मध्य में स्थित, बकासुर को मारने वाली तथा शारिका (मैना) का रूप धारण करने वाली शारिका देवी को मैं प्रणाम करता हूँ।

कश्मीर हज़ारों वर्षों से शिवधामों के अतिरिक्त प्रतिष्ठित शाक्तपीठों का प्रमुख केन्द्र रहा है। यहां के प्रागैतिहासिक शाक्तपीठ इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। इन शाक्त पीठों में से तीन पीठ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं - श्रीनगर का शारिका पीठ या सिद्धिपीठ, तुलमुल्ला का राज्ञादेवी (वर्तमान खीरभवानी) का पीठ तथा खिव का ज्वालादेवी पीठ। इनका उत्सव विशेष तिथियों पर कश्मीर में मनाया जाता है। शारिका जी का पर्व आषाढ़ शुक्लपक्ष नवमी को, राज्ञादेवी का ज्येष्ठ शुक्ल अष्टमी को तथा ज्वालादेवी का आषाढ़ शुक्ल चतुर्दशी को।

अपने कुलाचार तथा रीति के अनुसार कश्मीर में प्रत्येक घर की एक कुलदेवी होती है। उसकी विशेष उपासना उस घर में की जाती है। इन कुलदेवियों में से अधिक लोकप्रिय श्री शारिका, श्री महाराज्ञी तथा श्री ज्वालामुखी हैं। श्री त्रिपुरा, श्री शैलपुत्री, श्री काली, श्री बाला, श्री त्रिपुर सुन्दरी, श्री भद्रकाली तथा श्री शारदा आदि भी काफी प्रसिद्ध हैं। कश्मीर में कहीं कहीं जलरूप में वितस्ता, प्रयागराज, संगमों तथा नागों (चश्मों) की, शिलारूप में देवियों और वृक्षों के रूप में भैरवों की पूजा होती है। विभिन्न माहात्म्यों के अनुसार इन देवियों की पूजा से साधक को प्रत्येक प्रकार की सिद्धि मिल सकती है। इतिहास के अध्ययन से यह मालूम होता है कि कश्मीर के लोग प्राचीन काल से शक्ति के उपासक रहे हैं। शैव शिव को विशिष्टता देते हैं तथा शाक्त

शक्ति को। दोनों का लक्ष्य एक है। शैव दर्शन के प्रसिद्ध आचार्यों सोमानन्द, उत्पलदेव तथा अभिनवगुप्त के अनुसार यह सारा विश्व शिव तथा शक्ति के संयोग से बना हुआ है। शिव तथा शक्ति एक दूसरे से अलग थलग उसी प्रकार नहीं हैं जिस प्रकार चांद से चान्दनी। शिव ज्ञान रूप है शक्ति क्रिया रूप है। ज्ञान तथा क्रिया का सम्बन्ध अटूट है।

'प्रत्यभिज्ञा दर्शन' के अनुसार शिव-शक्ति से उत्पन्न यह विश्व परमशिव का बाह्य-रूप है जो शिव की तरह ही सत्य, अनादि तथा अनन्त है। दर्पण में जैसे मुख प्रतिबिम्बित होता है उसी प्रकार इस शिव-रूप दर्पण में संसार का रूप प्रतिबिम्बित है जो शिव की सत्यता के साथ स्वयं भी सत्य है।

हमारी देवियां - लक्ष्मी, दुर्गा, शारिका तथा सरस्वती आदि शक्ति की प्रतीक हैं। इनकी साधना से साधक भौतिक सिद्धि के साथ साथ आध्यात्मिक क्षेत्र में भी अलौकिक सिद्धि पा सक्ते हैं। वस्तुत: कश्मीर के साधकों को यहां ही परमशिव का अर्थात् सत्य (ultimate truth) का साक्षात्कार हुआ था। इसी साक्षात्कार तथा अनुभव के कारण उन्होंने ऐसा दर्शन संसार को दिया जो शैव-दर्शन, प्रत्यभिज्ञा-दर्शन अथवा त्रिक-दर्शन के नाम से विख्यात है।

जनश्रुति के अनुसार आदि गुरू शंकराचार्य को शाक्त-पीठ में आकर शक्ति के सामने झुकना पड़ा। फलत: उन्होंने तन्त्र शास्त्र पर आधारित 'सौन्दर्य लहरी' की रचना कश्मीर में की तथा उसके प्रथमश्लोक (यथा शिव: शन्तया युक्तो) में शक्ति की आराधना की, बाद में उन्हें देवी का भी साक्षात्कार हुआ। इस तरह 'शाक्त-पीठ' अथवा 'सिद्धि-पीठ' की प्रसिद्धि सारे भारतवर्ष में फैल गई। इसी सिद्धि ने समय समय पर मध्ययुग में विधर्मियों यानी सुल्तानों को भी आश्चर्य चकित कर दिया था। कश्मीर के परम शाक्त श्रीभट्ट की सिद्धि से ही ज़ैनुल्लाब्दीन बड़शाह असाध्य रोग से बच गया।

कश्मीर के तीर्थों तथा पीठों के बारे में शुककृत 'राजतरंगिणी' में इस तरह उल्लेख है:-

चत्वारिंशदथापि पंच गिरिशा: षष्टिश्च चक्रायुधा:

ब्रह्माणस्त्रय इत्यनादिनिधना: द्वाविंशति: शक्तय:।
नीलादीनि शतानि सप्तफणिनां तीर्थौकसां कोटयो
विख्याताश्च चतुर्दशोत्तमतरा: काश्मीर भूमण्डले।।

कश्मीर मंडल में 45 विश्वधाम, 60 विष्णुधाम, 3 ब्रह्मा के स्थान तथा 22 शाक्तपीठ, नील आदि 700 नाग तथा करोड़ों ही तीर्थ विद्यमान है। परन्तु इनमें 14 ही तीर्थ श्रेष्ठ हैं। मध्ययुगीन इतिहासकारों - जोनराज तथा श्रीवर आदि के मतानुसार सुल्तानों की धर्मान्धिता, संकीर्णता तथा असहिष्णुता के कारण कश्मीरी ब्राह्मणों को अमानवीय यातनायें सहन करनी पड़ीं। उनकी निर्मम हत्याएँ की गईं। ज़र्बदस्ती से उन्हें धर्म-परिवर्तन के लिए विवश किया गया। उनके अमानवीय व्यवहार को देखकर कश्मीर के तीर्थवासी ब्राह्मणों ने अपनी प्राचीन संस्कृति की रक्षा के लिए तथा तीर्थों की पवित्रता को स्थिर रखने के लिए माहात्म्यों की रचना की। ये माहात्म्य संख्या में 51 हैं। इन माहात्म्यों में 'शारिका माहात्म्य' भी है जिसके छ: पटल हैं। इसकी पाण्डुलिपि मेरे पास सुरक्षित है।

सारा माहात्म्य साहित्य भैरवी तथा भैरव के संवाद से प्रारम्भ होता है। इस माहात्म्य में भी भैरव भैरवी की शंकाओं का समाधान करता है। इसमें वर्णित कथा इस प्रकार है - एक बार दुर्गा देवी ने शारिका का रूप (मैना का रूप) धारण कर लिया था। सुमेरू पहाड़ से देवी शैल का टुकड़ा अपनी चोंच में दबाकर उठा लायी। वर्तमान पर्वत के नीचे बक नामक दानव ने एक रन्ध्र (सुरंग) बनाया था जिसमें वह दैत्य गणों के साथ रहता था। देवी दानवों के द्वार को बन्द करना चाहती थी। दानव गण नरक निवासी थे। इस स्थान पर नरक के द्वार का मार्ग था। उसी द्वार पर देवी ने शैल रख दिया। दानवों का उस द्वार से निकलना बन्द हो गया। परिणामस्वरूप वे दैत्य तलातल में नष्ट हो गए। बाद में देवी स्वयं इस पहाड़ पर अपनी विभूतियों के समेत निवास करने लगी। कालान्तर में देवी के रहने के कारण यह पर्वत 'शारिका पर्वत' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। शारिका को कश्मीरी भाषा में 'हाऽर' कहते हैं। भारतीय भाषाओं

- हिन्दी, उर्दू, पांजाबी, तथा डोगरी आदि भाषाओं - में यह 'हारीपर्वत' के नाम से जाना जाता है। सोमदेव की कृति 'कथासरितसागर' में भी इसका समुल्लेख है।

देवी का स्थान उत्तर-पश्चिम शैल पर है। यहां उनकी पूजा प्राचीनकाल से चली आ रही है। 'शारिका माहात्म्य' के अनुसार इस पर्वत का दूसरा नाम 'प्रद्युम्नपीठ' भी है। माहात्म्यकार ने 'प्रद्युम्नपीठ' की व्युत्पत्ति (Etymology) इस प्रकार की है :-

''प्रकर्षेण द्युतिं यति नरोऽत्र विधिवद्रतः।
तस्मात्प्रोक्तं तंत्रज्ञैः पीठं प्रद्युम्नसंज्ञकम्।।''

यहां विधिपूर्वक पूजा में लगा हुआ मनुष्य दिव्य ज्ञान प्राप्त करता है। इसलिए तंत्रशास्त्र के विद्वानों ने इसे 'प्रद्युम्नपीठ' की संज्ञा दी है। माहात्म्य के अनुसार श्रीविद्या के जप से युक्त जो मनुष्य यहां यंत्र की पूजा करता है वह अवश्य सिद्धि प्राप्त कर सकता है। इससे स्पष्ट होता है कि कश्मीर में मुसल्मानों की जाति 'तांत्रे' इस समय भी है। तांत्रिक विधान का भी प्रचलन था। आगम ग्रन्थ - अर्थात् स्वच्छंद तंत्र, गंधर्व तंत्र, नेत्रतंत्र, मालिनी विजयतंत्र आदि इसके प्रत्यक्ष प्रमाण है जो इस समय भी उपलब्ध हैं।

प्रद्युम्नपीठ का वर्णन इतिहासकार कल्हण ने 'राजतरङ्गिणी' में किया है। 'कथा सरित्सागर' की कथा प्रद्युम्प पुत्र अनिरुद्ध एवं बाणासुर की पुत्री उषा के प्रेम से सम्बन्धित है। यह आख्यान सोमदेव ने 'हरिवंश' के पुराण के आधार पर लिखा है। कल्हण ने यहां पर एक प्रसिद्ध पाशुपतव्रती लोगों के मठ का भी वर्णन किया है। उसका निर्माण महाराजा रणादित्य के द्वारा हुआ था। रैणावारी का नाम रणादित्य पर हुआ है।

इसके अतिरिक्त कल्हण के समकालीन बिल्हण ने अपने महाकाव्य 'विक्रमाङ्कदेवचरितम्' में जोनराज तथा श्रीवर ने अपनी रचनाओं में प्रद्युम्नगिरिः, प्रद्युम्न शिखर आदि नामों से इसका वर्णन किया है। इस पहाड़ पर गणेश, चक्रेश्वरी तथा शारिकादेवी का मन्दिर है। पर्वत के दक्षिण कोण पर एक

चट्टान है वह भीमस्वामी गणेश की मूर्ति कही जाती है। सारी चट्टान सिन्दूर से रंगी हुई है। भीमस्वामी गणेश का वर्णन 'कश्मीर तीर्थ संग्रह' में भी मिलता है। पहाड़ के ढाल पर शारिका देवी का तीर्थस्थल है। शारिकादेवी की यहां कोई गढी मूर्ति नहीं है। सिन्दूर से रंगा हुआ एक शिला खण्ड़ है उस पर श्रीचक्र अंकित है। यह शिला खंड़ सिन्दूर से इतना ढक गया है कि रेखाएं साफ दिखाई नहीं देती है। इस विषय में वहां के पुरोहितों का कथन है कि कभी कभी श्रीचक्र की रेखायें स्वत: उभड़ आती हैं। इस शिला-खण्ड का रूप ध्यान से देखने पर शारिका पंखी के आकार के समान लगता है। इससे इसका नामकरण सार्थक होता है।

इस चक्रेश्वर पर्वत के ऊपर अफगान गवर्नर अतामोहमद खां (1808-10) ई० ने किल्ला बनवाया था। किल्ले में छोटा मन्दिर है जिसमें शारिका की काली शिला मूर्त्ति है। इस मूर्त्ति की प्रतिष्ठा ड़ोगरा शासनकाल में हुई थी। इस मन्दिर के साथ ही एक छोटे गुरुद्वारे में सिक्खों का गुरु ग्रन्थ साहिब है।

इस पहाड़ की अधित्यका में राजा प्रवरसेन ने उत्तर तथा पूर्व की ओर अपनी राजधानी 'प्रवरपुर' के नाम से बसाई थी जिसका प्रमाण प्रवरेश्वर मन्दिर के द्वार की खड़ी दीवार है। इस पर्वत के चारों ओर नागर नगर का प्राचीर मुगल सम्राट् अकबर ने 1597 ई० में बनवाया था। शारिका पर्वत के मूल में पुराने ज़माने में एक नगर बसाया गया था जिसे आजकल 'देवी आंगण' कहते हैं।

मध्ययुग में अथात् मुसलमानों के शासनकाल में इस पर्वत की पूर्वीय ढाल पर मुकद्दम साहिब तथा आखून मुल्लाशाह की ज़ियारतें बनाई गई थीं जो इस समय भी विद्यमान हैं। उन स्थानों पर हिन्दुओं के शासनकाल में मन्दिर था जिसकी सामग्री यवनों ने ज़ियारतों के निर्माण में लगायी थी।

हारी पर्वत की लोकप्रियता के कारण चीनी यात्री हेनसांग ने सातवीं शती में इस पर्वत का उल्लेख 'अपने यात्रा विवरण' में किया है। जहांगीर की 'तुज़के जहांगीरी' में भी इसका वर्णन मिलता है। इस प्रकार स्वदेशी तथा

विदेशी विद्वानों ने इसकी गरिमा पर प्रकाश डाल दिया है।

शाक्तमत का मुख्य-पीठ होने के कारण यहां के माहात्म्यकारों का योगदान शक्ति की प्रतीकभूता देवियों के माहात्म्य लिखने में महत्वपूर्ण रहा है। माहात्म्यों की श्रृंखला में वितस्ता माहात्म्य, शारदा माहात्म्य, शश्वेतगंगा माहात्म्य, राज्ञीमाहात्म्य, हरमुकुट गंगामाहात्म्य एवं शारिकामाहात्म्य बहुत ही प्रसिद्ध हैं। यहां के लोगों पर शाक्तमत का प्रभाव इतना गहरा पड़ा था कि लोग ठाकुर-द्वारों में यंत्रों की पूजा करते थे। इस समय भी लोग शाक्तमत के प्रभाव के कारण 'भावनीसहस्रनाम' तथा 'पन्चस्तवी' आदि का पाठ करते हैं और पूजा के समय 'नैवेद्यमन्त्र' में शारिका देवी के समेत अन्य देवियों - शारदा, यमुना, गंगा, सरस्वती आदि का नाम लेते हैं। इस तरह यहां के शाक्तों ने समन्वयवाद की संस्कृति को विकसित किया।

कश्मीर में लोग विभिन्न पर्वो पर - गंगाष्टमी (गंगा अऽठम), शारदा अष्टमी, वितस्ता त्रयोदशी (व्यथ् त्रुवाह), गौरी तृतीया, नवदुर्गा पूजा तथा त्रिपूरा चतुर्थी आदि देवियों के व्रत रख कर पूजा पाठ भी करते हैं। यहां के आचार्यों ने समय समय पर शारिका देवी के विषय में स्तव तथा स्तोत्र आदि लिखे। यहां पर यह कहना असंगत न होगा कि आदि गुरु शंकराचार्य ने 'शारिकाष्टक' की रचना कश्मीर में ही की। इसकी शारदा पाण्डुलिपि मेरे पास है। बाद में पंड़ित साहिब राम ने 'शारिका स्तव' लिखा।

प्रत्येक देवी की शास्त्रों के अनुसार अलग अलग पहचान है। शारिका देवी की भी अलग पहचान है। इनकी अठारह भुजाएं हैं। ये भुजायें पांच कर्मेन्दियों, पांच ज्ञानेन्द्रियों, मन, बुद्धि, अहंकार, पुरुष, प्रकृति, शक्ति, शिव तथा परमशिव की प्रतीक रूप हैं। इन प्रतीकात्मक भुजाओं की उपासना से साधक पराशक्ति एवं परमशिव के अनुग्रह का पात्र बन सकता है।

उक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि कश्मीर में शक्ति की उपासना के रूप में माहात्म्य, स्तोत्र तथा स्तव आदि लिखने की परम्परा प्राचीनकाल से चलती आ रही है। वस्तुत: आध्यात्मिक चेतना को स्पन्दित

करने में कश्मीर के शैवाचार्यों की भूमिका महत्वपूर्ण रही है।

श्रीचक्र का संक्षिप्त वर्णन

शिव शक्ति का नवचक्रात्मक, रेखात्मक, शरीर ही श्रीचक्र है। तांत्रिक शक्तिपूजा एवं उपासना का आधार श्रीचक्र है। इसी स्वयंभू श्रीचक्र के कारण काश्मीर शाक्तपीठों में 'प्रधानपीठ' माना जाता है। यह स्वयंभू श्रीचक्र श्रीनगर के मध्य प्रद्युम्नपर्वत के शिखर पर है जिसे भक्तजन श्रीराजराजेश्वरी, चक्रेश्वरी एवं श्री शारिका के नाम से पुकारते हैं। आश्चर्यजनक सिद्धियों के कारण इस स्थान को 'सिद्धिपीठ' प्रद्युम्नपीठ अथवा श्रीपीठ भी कहते हैं।

चक्रनाम	आकार
1. सर्वानन्दमय चक्र	केन्द्रस्थ तालु बिन्द।
2. सर्वार्थ सिद्धिप्रद चक्र	पीले रंग का त्रिकोण।
3. सर्वरोगहर चक्र	काले रंग का अष्टकोण।
4. सर्वरक्षाकर चक्र	हरे रंग के दस त्रिकोण।
5. सर्वार्थ साधक चक्र	लाल रंग के दस त्रिकोण।
6. सर्वसौभाग्यदायक चक्र	नीले रंग के 14 त्रिकोण।
7. सर्वसंक्षोभन चक्र	गुलाबी रंग के अष्टदल कमल
8. सर्वाधापरिपूरक चक्र	नीले रंग का 16 दल पद्म।
9. त्रैलोक्य मोहन चक्र	वृत्तत्रय त्रिरेखात्मक।

नौ चक्रों की अधिष्ठात्री देवियां :-

1. सर्वानन्दमय बिन्दुचक्र की अधिष्ठात्री देवी स्वयं महात्रिपुर सुन्दरी है जो श्वेत रक्त बिन्दु स्वरूपा है।
2. सर्वार्थ सिद्धिप्रदचक्र की त्रिपुराम्बा।
3. सर्वरोगहर चक्र की त्रिपुरा सिद्धा।
4. सर्वरक्षाकर चक्र की त्रिपुरा मालिनी।
5. सर्वार्थसाधक - चक्र की त्रिपुरा श्री।

6. सर्वसौभाग्यदायक चक्र की त्रिपुरावासिनी।
7. सर्वसंक्षोभण चक्र की त्रिपुरासुन्दरी।
8. सर्वशापरिपूरक चक्र की त्रिपुरेशी।
9. त्रैलोक्यमोहन चक्र की त्रिपुरा है।

शैवाचार्यों के अनुसार नौ अधिष्ठात्रियों के नाम:-

1. महामहेश्वरी	2. महामहाराज्ञी	3. महामहाशक्ति
4. महामहागुप्ता	5. महामहाज्ञप्ता	6. महामहानन्दा
7. महामहास्पन्दा	8. महामहाशाया	

9. महामहा श्रीचक्र निवासिनी महात्रिपुरसुन्दरी है।

इस प्रकार प्रत्येक त्रिकोण या दल की देवी है।

शक्तिचक्र और शिवचक्रों का स्वरूप :-

ये नौ चक्र दो भागों में विभाजित किए गए हैं :-

1. शक्त चक्र 2. शिव चक्र

- शक्ति से सम्बन्धित चक्र 'शर्क्त-चक्र' कहलाते है। इनका स्वरूप अधोमुख त्रिकोण होता है।
- शिव से सम्बन्धित चक्र शिवचक्र कहलाते हैं इनका स्वरूप ऊर्ध्व मुख त्रिकोण होता है जैसे -

शक्तिचक्र पांच हैं :-

1. त्रिकोण, 2. अष्टकोण, 3-4. दशारद्वय, 5. चतुर्दशार।

शिवचक्र चार हैं :-

1. बिन्दु, 2. अष्टदल, 3. षोडषदल, 4. चतुरस्रा

श्रीचक्र का स्वरूप :-

बिन्दुत्रिकोणवसुकोणदशारयुग्ममन्वस्त्रनागदल संयुत-षोडशारम्।
वृत्तत्रयं च धरणी-सदन-त्रयं च श्रीचक्रराजमुदितं परदेवतायाः।।



संदर्भ

1. शारिका माहात्म्य - इसकी पाण्डुलिपि मेरे पास है।
2. उत्पलदेवकृत ईश्वर प्रत्यभिज्ञा: संपादक, म. मुकुन्दराम शास्त्री।
3. ललितास्तवरत्नम्।
4. कल्हण कृत - राजतरङ्गिणी:, एम.ए.स्टीन, (अंग्रेज़ी अनुवाद)
5. शारिकाष्टकं: आदि गुरु शंकराचार्य कृत (इसकी शारदा पाण्डुलिपि मेरे पास है।)
6. तंत्रराजतंत्र तथा सरजान वोड़राश्का कामकलाविलास (अंग्रेज़ी में)
7. काऽशिर ड़िक्शनरी, खंड-7, संपादक बदरी नाथ कल्ला शास्त्री।
8. कोशुर शैवमत:, डॉ बदरीनाथ कल्ला।
9. कश्मीरी एन साइकलोपीड़िया, प्रकाशक जम्मू व कश्मीर कल्चरल अकाड़ेमी, श्रीनगर कश्मीर।

मध्ययुगीन तथा आधुनिक संत परम्परा

प्राचीनकाल में एक दृष्टिकोण-विशेष था कि विविध-विद्या-प्रप्ति हेतु लोग कश्मीरी संस्कृति की ओर सहज आकर्षित होते थे। धार्मिक-भावनानुसार भी यहां पवित्र तीर्थभूमि समझ कर लोगों का निरन्तर आवागमन होता था। यह सदा प्रवाहित थी, यहां पवित्र तीर्थ भूमि यह समझ कर लोगों का निरन्तर आवागमन होता था। सदा प्रवाहित थी एकमात्र शिक्षा की अमृतधारा, जिससे भाईचारे की अजस्र धारा सारे भारत में बहती रहती थी।

इन सदुक्तियों से कौन नही समझ सकता है कि इसी से कश्मीर को सरस्वती का देश या 'शारदापीठ' की संज्ञा मिली है? धार्मिक परम्परा में भी सती का उतमांग गिरने से यहां शारदापीठ का नामनिर्वाचन हुआ। आज भी यहां के आचार्यों रुद्रट्, मम्मट, अभिनवगुप्त प्रभृति अलौकिक विद्वानों एवं उनकी गम्भीर रचनाएं विश्वविदित है। यहां का शैव दर्शन तो अनुपम तथा अभूतपूर्व दर्शन है। इसमें कोई सन्देह नहीं है।

सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री विनायक भट्ट ने शांखायना भाष्य में और अधिक स्पष्ट लिखा है: कश्मीर में सरस्वती संकीर्तिन हुआ करती है। सरस्वती ही वाणी है, जो प्रज्ञातमयी है। बदरिकाश्रम में वेदपाठ सुनाई देता है। सभी लोग सरस्वती के प्रसाद लाभ की वर प्राप्ति के लिए सुचिक्षा हेतु, उत्तर दिशा में जाते है...। एक अन्य मत के अनुसार बहुत से विद्वान महाकवि कालिदास को कश्मीर का सिद्ध करते है। कश्मीर में लल्लद्यद, नुन्दऋषि,परमानन्द, कृष्णराज़दान, रुपभवानी तथा शमस फकीर आदि के नाम उल्लेखनीय है। ये संत प्रत्येक युग में राजनीति से तटस्थ रहकर जनसाधारण को भारतीय संस्कृति के मूलभूत सिद्धान्तों से अवगत करते रहते हैं। अहिंसा, भाईचारा, प्रेम, सहिष्णुता, समता, शिवता तथा शांति का संदेश देने वाले इन्ही संतों में से आध्यात्मिक चेतना की प्रतीक कवियत्री 'वर्पभवानी' का स्थान कश्मीरी साहित्य में प्रमुख रहा है।

माधव जू दर उनके पिता का नाम था जो श्रीनगर में दयद्मर (संदीदामठ) नवाकदल में रहते थे। अत: उन्होने अपनी पुत्री को अपने घर में ही शैवदर्शन की दीक्षा दी थी। कन्या जब बड़ी हुई तो उसका विवाह हब्बाकदल के सपरू कुल में हीरानन्द सपरू के साथ हुआ। वह पत्नी की हर बात पर बिगड़ता था। उसकी सात्विक वृत्ति उसे पंसद नही थी। भला तामसिक वृत्ति वाले का सात्विक वृत्ति वाले के साथ कैसे निर्वाह हो सकता? उसकी सास कर्कश स्वभाव की भी। वह हमेशा बहू से दुर्व्यवहार करती थी। आदर्श गृहिणी की तरह वह सभी के साथ अच्छा व्यवहार करती थी। उसके मन में किसी के प्रति द्वेषभाव नहीं था। सुख तथा दु:ख में, मान तथा अपमान में वह कभी भी मानसिक संतुलन नहीं खोती थी। यह सिद्धों तथा योगियों की चरमावस्था मानी जाती है। वस्तुत: वह धैर्यवान मल्लाह की तरह भवसागर से पार होना चाहती थी। वह जितेन्द्रिय थी। उसके जीवन के सम्बंध में अनेक घटनाएं प्रसिद्ध है। अंत में ससुराल के विषैले वातावरण तथा सास की उलाहनों से तंग आकर वह गृहस्थ जीवन छोड़कर अध्यात्मिक शांति की खोज में वन में चली गई। उसने चश्माशाही में, एकांत स्थान पर बारह वर्षों की साधना की तथा उसके उपरान्त वह 'वतुरान' चली गई। वहां भी उसने वारह वर्षों तक साधना की। किंवदन्ती है कि यहां पर सदा एक गाय आती थी जो अपना दूध उसे पिलाती थी। इसके बाद वह मणिग्राम चली गई। वहां वह ऋषियों की तरह कन्दमूलों तथा हन्द का आहार करती थी। वहां उसने दिव्य चमत्कार दिखाए जिनसे उसका यश सारे क्षेत्र में उत्तरोतर बढ़ने लगा। वहां एक दिन उसका साक्षात्कार एक संत शाह सादिक कलन्दर से हुआ। संयोगवश इन दो महान विभूतियों का आपस में वहां आध्यात्मिक संवाद हुआ। बाद में 'लार' छोड़ कर वह योगिनी गांव चली गई। अनके वर्षो तक साधना करके वह उस अवस्था में पहुंची जहां द्वैत नहीं रहता अर्थात् जहा अहिमदम् अर्थात् मैं और यह समाप्त हो जाता है तथा सारा विश्व अद्वैतमय नज़र आता है। एक घटना के अनुसार र्वपवानी के अनुग्रह से वासुकर में एक मुसलमान औरत के

जन्मांध पुत्र के नेत्रों में ज्योति आ गई वहां उसने मुसलमान औरत से कुंआ खुदवाया। वह कुंआ 'अमृतकुण्ड' के नाम इस समय भी प्रसिद्ध है। प्रतिवर्ष मलिक वंश के लोग 'र्वपभवानी' की पुण्य जयन्ती पर इस कुण्ड से अमृत समान पानी निकालकर यात्रियों को पिलाते हैं। हिन्दू और मुसलमान वहां यह पर्व बड़े हर्ष व उल्लास से मनाते हैं। वासकुर में रहने के बाद वह अपने मैके 'द्यदमर' वापिस चली गई तथा 1721 ई. में अपना पंचभौतिक शरीर छोड़कर ब्रह्मलीन हो गयी।

इसके नाम पर 1990 विक्रमी संवत् में श्रीनगर के सफ़ा कदल मुहल्ले में 'अलखेश्वरी साहिब ट्रस्ट' के तत्वाधान में प्रतिवर्ष वास्कुरि नामक गांव में भाद्रपद में और नवाकदल में माघ के कृष्णपक्ष में 'साहिब सत्तम' साहिबों की सप्तमी बड़ी धूमधाम से मनाई जाती थी। इन दिनों बड़ा यज्ञ भी होता था और हज़ारों लोग विभिन्न क्षेत्रों से आकर वहां श्रद्धासुमन अर्पित करते हैं।

र्वपभवानी के पदों के अध्ययन से पता चलता है कि उन्हें विविध शास्त्रों का ज्ञान था। शैवदर्शन, वेदान्त तथा योग आदि दर्शनों से वह परिचित थी। उत्तराधिकारी में प्राप्त शास्त्रों का अध्ययन करके वह अपने गुरु यानी अपने पिता से भी कहीं आगे बढ़ी थी। उसकी शैली समकालीन साहित्यकारों से भिन्न है। पदविन्यास में वैदुष्य तथा परिपक्कता है। कुछ पदों में दुरुहता भी नज़र आती है। अपने पदों में उसने ऐसे रहस्य उद्घाटित किए हैं जिन्हें सामान्यरूप से ही समझना बहुत ही कठिन है। संभवत: दुरूह शैली के कारण कहीं-कहीं नीरसता आ गई है। इसके सारगर्भित पदों में संस्कृत के तत्सम तथा तद्भव आदि रूप मिलते है। इसके अतिरिक्त फारसी तथा अरबी शब्दावती भी पाई जाती है। उदाहरण के रूप में निम्न पद प्रस्तुत किया जाता है।

''बागि चायस भागि आयस परमासरस नारस नरस।
शरण आयस लल्लीश्वरस गवरस माघवा शिवस।
सीवा दीवस साकारस निराकारस अन्तरकिस सतस प्रणाम।।''



दिग्विजयी सम्राट ललितादित्य - मुक्तापीड़

कश्मीर के प्राचीन सम्राटों के तारामंडल में ललितादित्य सबसे चमकता हुआ नक्षत्र नजर आता है। उनकी दिव्य सबसे चमकता हुआ नक्षत्र नज़र आता है। उनकी प्रसिद्धि एक सुयोग्य शासक और अनुपम सेनापति के रूप में केवल भारत तक ही सीमित न रही अपितु प्राकृतिक सीमाओं का अतिक्रमण करके हर जगह फैल गई। उन्होंने कश्मीर के पुराने इतिहास पर एक अमिट छाप छोड़ दी जिससे वे कश्मीर के विख्यात राजाओं-अशोक, प्रवरसेन और अवन्तिवर्मा आदि की श्रेणी में गिने जा सकते हैं। सौभाग्य से कल्हण ने कश्मीर के राजवंश में इनका स्थान दिखलाने के लिए और इनका महान व्यक्तित्व जतलाने के लिए काफी समाग्री प्रदान की है।

वंश :-

कल्हण ललिलादित्य के शासन का वर्णन करते हुए इनकी प्रशंसा में लिखते है:- ''तारापीड़ के बाद उसका छोटा भाई ललितादित्य राजसिंहासन पर बैठा। यद्यपि विधाता ने उसे प्रादेशिक राजा ही बनाया था, किन्तु वह अपनी बुद्धि से अगोचर होकर सार्वभौम राजा बन गया।''

ललितादित्यं कार्कोट वंश के सपूत थे। वह द्वितीय प्रतापादित्य का सबसे छोटा लड़का था जो 'दुर्लभक' नाम से भी प्रसिद्ध था। इनकी मां का नाम नरेन्द प्रभा ललितादित्य अपने दो बडे भाइयों चंद्रापीड तथा तारापीड़ के बाद कश्मीर के राजसिंहासन पर बैठा। अपनी प्रजा के साथ अत्याचार के कारण इसके दोनों भाई जादू के द्वारा मारे गये थे। इनकी दो रानियां थी। एक का नाम कमलावती तथा दूसरी का नाम ईशाना देवी था। उन्होंने दो-पुत्रों कुवलयापीड़ और जायापीड को जन्म दिया। कश्मीर में ललितादित्य के शासनकाल की घटनाओं का उल्लेख विदेशी इतिहासकारों ने भी किया है। चीनी दस्तावेज़ों में

वह 'मुत्तोपी' के नाम से मशहूर है। उन्होने चीन के दरवार में 718 ई० में और दूसरी बार 736 ई० में अपना राजदूत भेज दिया। मुत्तोपी वस्तुत: उनके असली नाम मुक्तापीड़ का बिगड़ा हुआ रूप है। इसके अतितिक्त तुर्की इतिहास में 'ओको तक मुक्तपीड़' का हवाला मिलता है जिससे इस बात की ओर संकेत मिलता है कि वह काबुल की घाटी तक साहसी योद्धा के रूप में आया। अरब के दस्तावेज़ों में अल्वेरूनी मुत्तय या मुत्तपीर के नाम से इनका हवाला देता है। इन विदेशी दस्तावेजों से यह स्पष्ट होता है कि मुक्तापीड़ ने अपने दौर में इतनी कीर्ति तथा ख्याति प्राप्त की थी जिससे विदेशी इतिहासकार भी इनके अद्वितीय व्यक्तित्व से प्रभावित हुए।

दिग्विजय का अभियान:-

कल्हण के अनुसार ललितादित्य ने अड़तीस वर्ष 699-736 ई० तक शासन किया। इसका प्रमाण हमें विदेशी इतिहासकारों से भी मिलता है। इनका प्रथम तथा प्रसिद्ध अभियान कन्नौज के शासक यशोवर्मा के विरुद्ध था। राजा यशोवर्मा को चीनीं दस्तावेज़ों के अनुसार मध्यभारत का शासक माना गया है। इन दस्तावेज़ो का नाम 'ए-द्वा-फोन-मो' दर्ज है। कश्मीर के राजा ललितादित्यने इस यशोवर्मा को परास्त किया और उसको सिंहासन से उतार दिया। इस विजय से सेनापति के रूप में उन्होंने संसार में अपनी प्रतिष्ठास्थापित की। उन्होंने केवल मध्यभारत तक ही अपनी विजय सीमित न रखी अपितु वे प्राकृतिक विपदाओं की ओर ध्यान न देते हुए कश्मीर के पश्चिम और उत्तर की तरफ आगे बढ़ते गए। उस समय उन्हें सैनिक सामग्री पहुंचाने के साधन सुलभ न थे। विषम परिरिथतियों में भी वह आगे बड़ते गए। उन्होंने जालन्धर और पुंछ को अपने साम्राज्य के साथ मिला दिया। बाद में वह सिन्धु नदी को पार करके काबुल घाटी के नीचे गांधार (कंदहार) की ओर चल पड़े। परिणाम स्वरूप वह वहां के राजकुमारों को अपना दास (गुलाम) बनाने से सफल हुए। उन्होंने कई राज कुमारों को अपने साथ कश्मीर लाया और उन्हें अच्छे पदों

पर नियुक्त किया। कल्हण इस बारे में आगे लिखते है कि 'ललितादित्य' ने सारे भारत में विजय की यात्रा आरंभ की जिसे 'दिग्विजय' के नाम से पुकारा जाता है। कहा जाता है कि उन्होंने पूर्व में बंगाल से उड़ीसा तक सारे प्रान्त, दक्षिण में कठियावाड़ तक तथा पश्चिम में अफगानिस्थान तक अपना साम्रज्य बढ़ाया। उत्तर में इस कश्मीरी सम्राट ने ओक्स नदी के निकट तुखारों (तुर्किस्तान सम्राट ने ओक्स नदी के निकट तुखारों तुर्किस्तान व बदखशान के राजाओं को परास्त कर दिया। वे अपने साथ 'चिङ्कुन' नाम के एक प्रतिभासम्पन्न तथा योग्य तुर्की नवयुक को लाये और उसे मंत्री के पद पर नियुक्त किया। जब उन्होंने 'तिब्बत' पर दावा बोल दिया तो इन पहाडी शासकों को कर (खराज) देने के लिए विवश किया। इस तरह इनका साम्राज पूर्व में बंगाल तक, दक्षिण में काठियावाड़ उत्तर में तुर्किस्तान तक और पश्चिम में अफगानिस्तान तक फैल गया।

ज्ञान व विधान का अनुरागी:-

यद्यपि ललितादित्यने अपना सारा जीवन दिग्विजय में ही बिताया तथापि वे ज्ञान-विज्ञान के शौक़ीन थे। कन्नौज के राजा यशोवर्मा को परास्त करने के बाद ही वह अपने साथ अत्रिगुप्त नामक एक ब्राह्मण-विद्वान् को कश्मीर लाये और वितस्ता (वर्तमान - झेलम) के किनारे पर आवास के लिए एक भव्य भवन बना दिया तथा उन्हें अग्रहार (जागीर) प्रदान किया। शैवदर्शन के प्रसिद्ध आचार्य अभिनवगुप्त के पूर्वज यही अत्रिगुप्त माने जाते है। इस घटना से यह बात सिद्ध होता है कि ललितादित्य के मन में विद्वानों के लिए काफी सम्मान था। उन्होंने बौद्ध आचार्यो का भी संरक्षण किया और उन्हें प्रत्येक प्रकार की सुविधा प्रदान की, सम्राट् ललितादित्य के मरणोपराना ओ-यो-कोतक नाम का एक चीनी यात्री प्राय: 759-763 ई० के दौरान कश्मीर आया है और वह सम्राट् के ज्ञान-विज्ञान के प्रति उनका अनुराग देखकर उन्हें श्रद्धाजली देता है।

कल्हण इनके ज्ञान-विज्ञान से प्रभावित होकर राजतर ङ्गिणी में इस तरह वर्णन करता है:- इसने कई देशों से विभिन्न प्रकार के बुद्धिजीवियों को इस तरह रांग्रहीत किया जिस तरह आंधी विभिन्न वृक्षों के खिले हुए फूलों का संग्रह करती है।

वास्तु-कला में उन्नति:-

ललितादित्य परम-वीर तथा विजयेच्छुक होते हुए भी वास्तु कला का शौकीन था। उन्होंने इस कला को कश्मीर के विभिन्न क्षेत्रों में साकार रूप देने के लिए योजनाबद्ध कार्यक्रम बनाया था। जिसका प्रमाण लोक पुण्य (कश्मीरी में लूकभवन) ललितपुर (कश्मीरी में ल्यतपुर) और परिहासपुर) (कश्मीरी में परसपुर) जैसे जगहों की नींव डालने से मिलता है। ये स्थान इस समय भी खण्डरात के रूप में राजा की गरिमा के गीत गारहे है। 'लोक पुण्य' नाम का कस्बा ब्रंग पुरगणा (परगना) में स्थित है। यहां एक बहुत सुन्दर चश्मा है। नजदीक ही प्राचीन पत्थरों की मूर्तियां यादगार के रूप में दिखाई देती हैं। अब यह यात्रा का प्रमुख स्थान है। ललितपुर के विषय में कल्हण का कथन है कि यह वास्तुकला के माहिरों ने राजा के आदेश के बिना बनवाया था। इसलिए उन्होंने इसका संरक्षण नहीं किया। इस समय यहां केसर की लम्बी क्यारियां दिखाई देती हैं और ज़मीन पर पुराने स्मृतिचिह्न देखने में नहीं आते हैं शायद ये केसर की क्यारियों के नीचे दबी हुई हों। ललितपुर (ल्यतुपोर) इस समय श्रीनगर से प्राय:बारह किलोमीटर की दूरी पर राष्ट्रीयमार्ग पर स्थित है। परिहासपुर इस सम्राट् का ग्रीष्मकालीन स्वास्थ्य स्थान था। उन्होंने इसे बहुत ही आकर्षक बनाया था। अत: उन्हें इसे बहुत ही आकर्षक बनाया था। अत: उन्हें इस स्थान के साथ मानसिक दिली-लगाव था। इसका वर्णन करते हुए कल्हण लिखता है:- इस क़स्बे की सुन्दरता ने इन्द्रपुरी की सुॅन्दरता को भी मात कर दिया था। इस कस्बे के नाम से ही यह मालूम होता है कि यह कस्बा आमोद प्रमोद का स्थान था। यहां एक देवालय भी था जहां राजा निरन्तरयुद्ध

से वापिस आकर मानसिक शान्ति प्राप्त करता था। परिहासपुर श्रीनगर के उत्तर में प्राय:बारह मील की दूरी पर सड़क के बायें तरह स्थित है।

यादगारें :-

ललितादित्य ने हिन्दुओं और बौद्धों के लिए मन्दिर, विहार (विहार का अपभ्रंश रूप कश्मीरी में यार बन गया है।) तथा चैत्य आदि का निर्माण करने के लिए बड़ी उदारता से काम लिया। अपनी विजयों से प्राप्त किये गए खज़ाने को पाकर वह अपने देश की ओर उसी तरह चला गया जैसे सिंह मारे हुए हाथी के मोतियों को अपने पंजो में लेकर पहाड़ की तरह ले जाता है। ये खज़ाने उसने यादगारों और मन्दिरों के निमार्ण पर समर्पित किये। हुष्कपुर में (बारामुला में उष्कुर) विष्णु का एक भव्य मन्दिर बनाया जिस का नाम 'मुक्तास्वामी' रख दिया। उन्होंने पत्थरों से एक आलीशान शिव मंन्दिर का निर्माण कराया जो ज्येष्ठरुद्र के नाम से विख्यात है। इस उदारशील तथा दानशील राजा ने मार्तण्ड़ का एक आकर्षक मन्दिर निर्मित कराया जो इस समय भी वास्तु कला की दृष्टि से सारे भारत में प्रसिद्ध है। इस मार्त्तण्ड़-मन्दिर के विषय में रामचन्द्र काक लिखते है :-

यह वह सुन्दर जगह है जो अनेक रूपों में गरिमा का (एहसास) देती है जिससे इन खंडरात का दृश्य हमेशा पर्यटकों के दिलों को प्रेरित करता है। वितस्ता (कश्मीरी में - व्यथ) के दायें किनारे पर चक्रधर पुर में (कश्मीरी में 'च़कड़ार') बिजबिहाड़ा के पास उन्होंने वितस्ता के पानी को बहाव देने के लिए व्यवस्था की थी और इसे रहट के द्वारा अनेक गांवों में बांट दिया। परिहासपुर में उन्होंने परिहास केशव नामकी भगवान् विष्णु की एक शानदार मूर्ति प्रतिष्ठित कर दी और दूसरी विष्णु की मूर्ति को वह 'मुक्ता केशव' के नाम से पुकारते थे जिस पर मोती लटकाते थे। महावराह की दूसरी सोने की मूर्ति को वह मुक्ताकेश्व के नाम से पुकारते थे जिस पर मोती लटकते थे। महावराह की दूसरी सोने की मूर्ति भी उन्होंने बनवाई थी। भगवान गोवर्धन धर

(कृष्ण) की मूर्ति चांदी से बनवाई गई थि जो गायों की स्तनों से बहती हुई दूध की धारा के समान सफेद थी। उन्होंने उस पर चौपन (54) हाथ ऊंचा गरुड़ के समेत एक बड़ा पत्थर का स्तम्भ (लाट) खड़ा किया था। परिहासपुर या वर्तमान 'परसपुर' के बारे में भी आर०सी०काक का कहना है:- ''ललितादित्य तथा उसके मंत्रियों में नये शहरों, आलीशान महलों को बनाने और सजाने के प्रयत्न में आपस में मुकाबला लगा हुआ था। प्रत्येक अपनी गरिमा और कारीगरी से अपने बनाने वाले की गौरव-गाथा को प्रकट करता था।'' इससे यह स्पष्ट है कि यह कर्मवीर तथा युद्धवीर प्रासादों के निर्माण के विरूद्ध न था। बल्कि इनके बनाने में उन्होंने प्रत्येक प्रकार की उदारशीलता दिखाई। कश्मीर से वाहिर जो कुच्छ माल व सामग्री इकठ्ठा करते थे वह अपने लिए खर्च नही करते थे बल्कि इस माल को जनता की भलाई के लिए प्रयोग करते थे। यही कारण है कि कल्हण ने इन्हें दूसरा कुबेर (धन का देवता) मान लिया जिन्होनें हज़ारों की संख्या में मूर्तियां चांदी और सोने से बनवाई। इनकी उदारता और प्रजावत्सलता को दृष्टि में रखकर उनकी रानी कमलावती और उनके मंत्रियों मित्रशर्मा और तुर्की के चिङ्कुण ने भी कस्बे आबाद किए ओर इमारतों को बनवाने और मरम्मत करवाने की व्यवस्था भी की जो जीर्ण शीर्ण अवस्था (खस्ता हालत) में पड़े हुए थे।

धर्मनिरपेक्षता का दृष्टिकोण:-

उस प्राचीनकाल में जब साधारण मनुष्य के दिमाग में स्वातंत्र्यरूप से तथा सौहार्द् भाव से जीवन व्यतीत करने की कल्पना भी नहीं आसकती थी, ऐसी कल्पना सामूहिक रूप से कश्मीरीयों के दिमाग में आ गई। कल्हण ने वैष्णवों और बौद्धों में किसी तनाव अथवा कलह का उल्लेख नहीं किया है। ये लोग कंधे से कंधा मिलाकर एक ही मां के सूचे सपूतों के समान आपस में घुलमिल कर शीरव शक्कर होकर रहते थे। वैष्णव राजाओं ने बौद्धों की सहायता और बौद्ध राजाओं ने विष्णुमत के अनुयायियों की प्रत्येक प्रकार की

सुविधा प्रधान की। इस भाई-चारे के वातावरण को स्थाई रखते हुए ललितादित्य जो स्वयं विष्णुमत के अनुयायी थे, ने अपने शासन में बौद्धों को यह महसूस करने का अवसर न दिया कि वे असुरक्षित है। उन्होंने बौद्धों के सैकड़ों स्तूप, मठ, विहार निर्मित कराये। इतना ही नही, बल्कि उन्होने बुद्ध की गगनचुम्बी विशाल मूर्ति को चौरासी हज़ार प्रस्थ (सेर) कांसे से बनवाया था। इसके अतिरिक्त जीवन के विषय में इनके विशाल दृष्टिकोण ने तुर्की के चिंकुण को मंत्री बनाया। चिंकुण किस धर्म से सम्बन्ध रखता था। इसका ख्याल राजा ने कभी नही किया, बल्कि उसकी योगयता को प्राथमिकता दी भोटे और दरद जो शराब पीने के व्यसनी थे, उसने उन्हें अधीन रखकर अपने साम्राज्य के साथ उनकी सीमा को नही मिला दिया बल्कि उन्हे माफी दी और उनकी सुधारने का भी प्रयत्न किया। अफगानशाहों और दूसरे शाहज़ादों को भी ऊंचे पदों पर नियुक्त किया। इस तरह ललितादित्य ने अपने जीवन काल में निरपेक्षता के भाव को अपना कर उसे साकार रूप दिया था तथा संकीर्ण दृष्टिकोण को तिलांजली दी थी। उनमें दूसरों के गुणों को परखने की तेज़नज़र थी। इन घटनाओं से पता चलता है कि उनमें ये गुण जातिधर्म भेदभाव के बिना कूट कूट कर भरे हुए थे। यही कारण है कि आजतक उस प्रकार का भाईचारा कश्मीर की संस्कृति का एक अभिन्न अंग बन गया है। दिल व दिमाग की इन खूबियों को मिटाने की तमाम कोशिशों और साजिशों को कश्मीरियों ने इतिहास के प्रत्येक युग में निष्फल बना दिया है।

कश्मीरी राजाओं में इस महान ताजदार को संसार के कोंने कोने में पर्यटन की उत्कट इच्छा थी। इन विजयों को अर्थात दिग्विजय को कार्यान्वियन देने के कौतक ने इनको अपनी जान हथेली पर रखने के लिए विवश किया। कल्हण के अनुसार जब वह 'बालुकार्णव' पर आक्रामक हुए वहाँ वह बाल बाल बच गये; लेकिन भयानक स्थिति में भी वह पीछे न मुड़े। बालुकार्णव से अभिप्राय यानी गोबीमरुस्थल है जो मध्यएशिया में स्थित है। आर्याणक की तरफ अन्तिम अभियान के दौरान (यूनानी भूगोल शास्त्रों के अनुसार - Ariana

उार्येण का सम्बन्ध पूवीर्य ईरान से है) ललितादित्य एक भारी बर्फानी तूफान में अपनी सेना समेत दबकर मर गया उस समय उस ऋतु में हिमपात की संभावना नही थी (Gobi Desert)।

इतिहासकार कल्हण ललितदित्य के मृत्यु के बारे में स्वयं किसी निष्कर्ष पर नही पहुंचा है। वह लिखता है कि राजा ने अपने आपको किसी भयानक स्थिति में जिन्दा जला दिया। अस्तु, उनकी मौत के विषय में प्रामाणिक रूप से कुछ नही कहा जा सकता है। वास्तव में उनका जीवन वीरता और निर्भयता का प्रतीक है। प्रत्येक कश्मीरी को उनके श्रेष्ठ कारनामों पर गौरवान्वित होना चाहिए और उनके असाधारण गुणों से प्रेरित होना चाहिए। उनका श्रेष्ठ चरित्र इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि कश्मीर के लोग कायर न थे और अस्त्र शस्त्र उठाने में कभी भी पीछे नहीं हटते थे। वे दुश्मनों से लौहा लेने में संक्षम थे। ललितादित्य (sooding sun) से तात्पर्य आराम देने वाला सूर्य है। ऐसा सूर्य जो अपनी गर्मी से जाति वर्ण भेद के बिना सबों को जीवन प्रदान करता है। उनके साहसी पराक्रम अतुल शक्ति तथा दृढ मनोबल की प्रशंसा आजतक देशी तथा विदेशी इतिहासकार करते रहे हैं। नि:सन्देह, उनका जीवन एक सुयोग्य शासक तथा अनुपम विजयी की एक जीती जागती प्रतिमा थी।



संदर्भ

1. एम.ए. स्टीन कल्हण राजतरङ्गिणी का अंग्रेज़ी अनुवाद
2. A Remusats Translation, Nouveaix Melanges Asiat, IPP 196
3. Litereratured Ou-kong, Journalasiat 1895, pp.354
4. Indian 2nd, p.78
5. Charavanne Levi Journal Asiat 1895, p.353
6. Litineraisedou-Kong Journal Asiat 1895, pp.350
7. RC Kak Ancient Monoments of Kashmir 1971, pp.131
8. बदरीनाथ कल्ला ललितादित्य मुक्तापीड़, (हमारा अदब, 1976-77 उर्दू में), प्रकाशक: जम्मू व कश्मीर कल्चर अकादेमी श्रीनगर, पृष्ठ नं० 180-181

आचार्य अभिनवगुप्त

संस्कृत अदबस मंज़ छि असि कॆंह तिथ्य लेखक मेलान, यिमव पननि ज़िंदगी मुतलिक कॆंह ति छुनु ल्यूखमुत तु यिहुंद ज़्योन-मरुन वुनि ति अनिगॅटिस मंज़ छु। कालिदास, भास हिव्य तखलीककार छि अथवर्गस मंज़ यिवान, मगर आचार्य अभिनव गुप्त छु अम्युक अपवाद (Exception)। ऑम्य छु पनुन ज़ाच़र्यथ पनुन्यन यिमन द्वन तखलीकन मंज़ वॊनमुत: 'तंत्रालोक' तु 'परात्रिंशिका विवरणस' मंज़।

आचार्य अभिनवगुप्त छि ज़ु माननु यिवान, अख ओस कामरूप यानि आसामुक रोज़नवोल। सु ओस शाक्त याने शक्ति हुंद माननवोल। तिमव छु बादरायण सुंदिस वेदानन्तसूत्रस प्यठ शाक्त भाष्य ल्यूखमुत। मगर कॅशीरि हुंदिस अभिनवगुप्तस तु ऑम्य सुंदिस ज़ाकालस मंज़ छु लगभग द्वन सदियन हुंद फेरु।

अभिनवगुप्त सुंद्य बुज़र्ग : अत्रिगुप्त ओस यिहुंद बुज़र्ग तु सु ओस मध्य भारतस मंज़ कन्नौज किस राज़ु यशोवर्मा हस निश। अमि किन्य ऑस तॅम्य सुंज़ मशहूरी सॉर्यसुय हिंदुस्तानस मंज़ फॉलेमुच़। कॅशीरि हुंद्य मशहूर राज़ु ललितादित्यन, यसुंद राज्य कल्हण सुंज़ि राजतरंगिणी मुतॉबिक 72-761 ई. माननु छु यिवान छु।

अत्रिगुप्त सुंदि ऑलिम सुत्य मुतॉसिर सपदिथ कॊर कॆंह काल गॅछ़िथ ललितादित्यन तस कॅशीरि यिनु खॉतरु ज़ारु पारु। ऑखुर कार आव सु तसुंदि वननु मूजूब कॅशीरि। तॅम्य सुंदि लसनु बसनु खॉतरु द्युत राज़न तस व्यथु बॅठिस नखु शिव मंदिरस निश जॉगीर। अति आयि तसुंदि खॉतरु अख शॉही मंदोर बनावनु। यि मंदोर ऑस ललितपोर वुन्यक्यन किस ल्यतुपोरस मंज़ ऑकिस गामस मंज़। अभिनवगुप्त सुंद बुड्य बब ओस वराह गुप्त। ऑम्य सुंद समय छु दॅहमि सदी हुंद ग्वडुकाल माननु यिवान। वराहगुप्त ओस ऑलिम तु शिव भक्त। ऑम्य सुंदिस नॆचिविस ओस नरसिंह गुप्त नाव। नरसिंह गुप्तुन

दोयुम नाव ओस चखुलकति। चखलकुन नेचुव ओस अभिनवगुप्त। चखलुख ओस दर्शन शास्त्रन हुंद अख थोद ऑलिम तु बेयि ओस शिवु सुंद भक्त। अभिनवगुप्तनि माजि ओस विमलकला नाव। तॅम्य सुंद स्वभाव ओस रुत तु ऑस स्व स्यठाह धर्मात्मा। खांदानुक माहोल ओस स्यठाह साज़गार। अवुकिन्य आव अभिनवगुप्त जान पॉठ्य रछ्नु तु ॲमिस आयि वख्तु मूजूब सॅही तॉलीम दिनु। अभिनवगुप्त सुंज़न द्वन तखलीकन मंज़ छु असि स्यठाह केंह ननान। भैरवस्तोत्रकिस यथ श्लोकस मंज़ छु असि ॲम्य सुंदि वक्तुक पूरु पताह मेलान मसलन - वसुरस पौषे कृष्ण दशम्यामभिनवगुप्तस्तवमिदमकरोत्। अमि श्लोकु मूजूब छु सप्तर्षि संवत् 4090 तु ईस्वी सन् 1014 हस मंज़ ॲम्य पनुन्य रचना लीछमुच़। अभिनवगुप्त ओस अमि ब्रोंठ यानि ल्वकलचारु प्यठुय स्यठाह गाटुल, त्रुक तु ज़हीन।

अवुकिन्य ऑस्य नु च़ाटुहालस मंज़ ॲमिस ब्रोंठ कनि च़ाटुशुर्य् दरान। ऑखर द्युत ॲमिस पनुन्यव ग्वरव आचार्य पद। बाल बोधनी हुंद मुसनिफ तु 'काव्यप्रकशिच' तशरीह करन वॉल्य (टीकाकार) वामन सुंदि मुतॉबिक 'काव्य प्रकाशस' मंज़ छु मम्मटाचार्यन अमिकिन्य अभिनवगुप्त आचार्युन इशारु कोरमुत। सारिनुय शास्त्रन मंज़ महारथ आसनु किन्य छि ॲमिस जनूबी हिंदुस्तानस मंज़ शीषनागुन अवतार ति मानान।

प्रॉनिस वक्तस मंज़ योदवय ॲज़िक्य पॉठ्य अतुगतुक्य ज़रियि ऑस्य नु अकि जायि प्यठु बेयिस जायि गछुन ओस स्यठाह क्रूठ। मगर यिथ्यन हालातन मंज़ ति गव अभिनवगुप्त पनुन दीश त्रॉविथ न्यबर। तति कोर तॅम्य पनुनिस ग्यानस तु ॲलिमस गेन्य कॅडिथ शास्त्रन हुंद ग्यान बड़ोवुन। अमि किन्य ओस नु ॲम्यसुंद नज़रिया महदूद। हरगाह ॲमिस ऑस दर्शन शास्त्रन प्यठ येति स्यठाह महारथ सपुज़मुच़, मगर ॲमिस ओस नु अथ प्यठ संतोष केंह। यि ओस पननि ज़िंदगी मंज़ वार्याहन मोज़ूहन प्यठ सोन मुतालु करुन यछान। दरअसल ओस ॲमिस तहकीक करनुच रुची बालु अवस्थायि प्यठु पॉदु सपुज़मुच़। ब्योन ब्योन विषयन प्यठ महारथ हॉसिल कॅरिथ ओस यि नवि

रचनायि लेखुनि यछ़ान। अमीकिन्य पॅर्य ॲम्य वार्याहन ग्वरन निशि अनीख शास्त्र। ॲम्य कोर जालंधरस मंज़ रोज़न वॉलिस श्री शंभुनाथस निशि कौलु संप्रदायुक ग्यान हॉसिल। ॲम्य सुंदि अनुग्रह (grace) सुत्य सपुद अभिवगुप्तस आत्मज्ञान ति हॉसिल।

यिमन आचार्यन निशि ॲम्य मुखतलिफ मज़मून पॅर्य, तिहुंद्य नाव छि यिथु पॉठ्य:-

1. नरसिंहगुप्तस (मॉलिस निश) - व्याकरण (ग्रामर)
2. वामन गुप्तस निशि - द्वैताद्वैत तंत्र
3. भूतिराजतनयस निशि - द्वैतदर्शैन
4. भूतिराजसनिशि - ब्रह्मविद्या
5. लक्ष्मणगुप्तस निशि - क्रमु तु त्रिकु दर्शन
6. इंदुराजस निशि - ध्वनि
7. भटतोतस निशि - नाटयशास्त्र

अमि अलाव यिमन आचार्यन निशि ॲम्य ग्यानस मुतलक व्यच़ार-विमर्श कोर यानि वादविवाद बेतरि कोर तिम छि यिथु पॉठ्य :-

(8) श्रीचंद्र (9) योगानंद (10) चंदरोर (11) अभिनंद (12) शिवभक्ति (13) विचित्रालय (14) शिव (15) वामनाचार्य (16) उद्भट (17) भूतेश (18) भास्कर धर्म बेतरि।

यिमन ग्वरन निश पॅरिथ कोर अभिनवगुप्तन अलिमी मॉदानस मंज़ स्यठाह कमाल। अमिस ब्रोंह यिमव फनि शॉयरी तु अलंकार शास्त्रस मंज़ रस स्यदांत चलोवमुत ओस, तिहुंद्य सॉरी नज़रियि फुटरॉव्य ॲम्य पननि तनकीदु सुत्य। मसलन वामन सुंद रीतिमत कुन्तलुम-वक्रोक्ति मत बेतरि। यिथु पॉठ्य कोर ॲम्य रसुक ज़ॉव्यजार नोन तु नज़रिया पकनोवुन स्यठाह ब्रोंह। फनि शॉयरी अलावु छु फिलासफी मंज़ ति ॲम्य सुंद मुकाम स्यठाह थोद। फलसफस मंज़ युस ॲम्य सुंद नाव दुनियाहस मंज़ मशहूर छु सु छु ज़्यादुतर ईश्वरप्रत्यभिाज्ञा यानी तशरीह - लघुविमर्शिनी तु ज़ीठ टीका छय - बृहती विमर्शिनी। आचार्य उत्पलदेवन ग्वसु विवृति तु विमर्शिनी। यानि अथ

करुन पननि अंदाज़ तशरही। ॲम्य संज़य बृहत् विमर्शिनी छे वार्याहन नुकतन व्यछुनावान तु अम्युक माने ठीक पॉठ्य फिकिरि तारान।

अभिनवगुप्तनि रचनायि :-

(1) बोधपञ्चादशिका (2) मालिनी विजय वृत्तिका (3) परत्रिंशिका विवृत्ति (4) तंत्रालोक (5) तंत्रसार (6) परमार्थसार (7) क्रमस्तोत्र (8) अनुत्तराष्टिका (9) अनुभव निवेदन (10) तंत्रोच्चय (11) घटकर्पकाव्य विवर्ति (12) क्रमकेलि (13) शिवदृष्टि आलोचन (14) भगवद्गीतार्थ संग्रह (15) परार्थ प्रवेश निर्णय टीका (16) स्त्रीकीर्णक विवरण (17) काव्य कौतुक विवरण (18) कथा मुख तिलक (19) लघ्वी प्रक्रिया (20) देवी स्तोत्र विवरण (21) शिवशक्ति (22) बिम्ब प्रति-बिम्बवाद (23) परमार्थ संग्रह अभिनव भारती (24) ध्वन्यालोक लोचन:-

अभिनवगुप्तन्य–फलसफयानु द्वयिम:-

(1) परमार्थ द्वादशिका (2) परमार्थचर्चा (3) क्रमस्तोत्रम् (4) भैरवस्तव बेतरि।

अमि अलावु छे अभिनवगुप्तन वारयाह किताबु लेछमचु, यिहुंद हवालु ॲम्य पनुन्यन रचनायन मंज़ द्युतमुत छु। संस्कृत ज़बॉन्य हुंदुय बोड बारु ऑलिम डॉ.के.सी.पांडेयन छुय अभिनवगुप्त नि अकतॉजी किताबु मानिमचु।

ॲम्य सुंद ब्रहालीन सपदुन वननु छु यिवान ज़ि मागामु प्यठु तकरीबन पांछ़ मील दूर भैरव (यथ वुन्यक्यनस भीरू गाम वनान छि) ग्वफि मंज़ छु अभिनवगुप्त बाहशथ चाठ ह्यथ शिव सुंद स्तोत्र परान चामुत तु तति छुनु वापस द्रामुत कॅंह। यिथु पॉठ्य छे कॅशीरि मंज़ यि कथ जॉरी। दपान पतु गव अम्युक गोल पानय बंद।

यि कथ छय मशहूर विद्वान कांतिचंद्र पांडेयन पननि रचनायि मंज़ वॅन्यमुच़। ॲम्य सुंज़ि रचनायि हुंद नाव छु 'असथिटिकस आफ अभिनवगुप्त' (Aesthetics of Abhinava Gupta)। पॅज़्य पॉठ्य अभिनवगुपतन नाव रोज़ि प्रथ दोरस मंज़ ज़िंदु। ॲमिस प्यठ छे भर्तृहरी संज़ यि सुक्ती पूरु पॉठ्य गटान :-

''नास्ति तेषां यश: काये जरामरणजं भयम्।।''

यानी तसुंद यश रूपी शरीर रोज़ि हमेशि अमर, सु छ्वकि नु कुनि दोरस मंज़।

विश्वबंधुत्व की प्रतीक संत कवियत्री 'ललद्यद'

श्रीमद् भगवद्गीता में लिखा गया है कि जब संसार में अत्याचार, अनाचार तथा दुराचार बढ़ता है, लोग अपने धर्म को भूल कर कुमार्ग पर चलते हैं पुण्य तथा पाप में कोई अंतर नहीं रहता, तब भगवान मानवता की रक्षा हेतु तथा दुष्टों का संहार करने के लिए किसी न किसी रूप में इस पृथ्वी पर समय समय पर अवतरित होते हैं। विश्व इतिहास के अध्ययन से यह बात अक्षरश: सत्य प्रमाणित होती है। कश्मीर में कुछ विदेशी शासकों के संकुचित दृष्टिकोण तथा धार्मिक असहिष्णुता के कारण अराजकता तथा अन्धकार का वातावरण छा गया था। परिणामस्वरूप जनता को अमानवीय यातानाएं सहन करनी पड़ीं। जिस से मानवता के स्थान पर दानवता अट्टहास करने लगी। इसी दौर में अर्थात् मध्ययुग में सन्तों, महात्माओं तथा ऋषियों ने इस पावन भूमि पर जन्म लेकर अपने दिव्य संदेशामृत से लोगों के दग्ध-हृदयों को सिंचित करके समय-समय पर उनका पथ-प्रदर्शन किया और धार्मिक सहिष्णुता तथा मानवता के प्रकाश को किसी भी रूप में बुझने न दिया। नि:सन्देह धर्मनिरपेक्षता का यह प्रकाश दिशाहीन तथा लक्ष्यहीन जन-मानस को हमेशा आलोकित करता आया है।

चौदहवीं शती कश्मीर में सांस्कृतिक तथा राजनैतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण शती मानी जाती है। इसी शती में यहां एक नया जीवनदर्शन विकसित हुआ जो इस्लाम से अनुप्राणित 'सूफी धर्म' के नाम से प्रसिद्ध है। मध्य-एशिया में तैमूर लंग के अत्याचारों से त्रस्त होकर सैंकड़ों सादात ईरान छोड़कर कश्मीर में पनाह लेने के लिए आ गये। इनमें सईद हसन सिमनानी, अमीर कबीर तथा मीर सईद अली हमदानी आदि उल्लेखनीय हैं। इन्हों ने ही कश्मीर के नये जीवन-दर्शन की नींव डाली जिसे इस सूफीधर्म अथवा सूफीमत कहते हैं। यहां यह बात ध्यान देने योग्य हैं कि इस्लाम कश्मीर में अरब देश से नहीं,

बल्कि मध्य-एशिया से ही आया।

यह अपरिचित संस्कृति पहले पहल यहां की जनता को अजीबोव गरीब दिखाई देने लगी, जो पहले सदियों से शासक रहे थे अब शासित बन गये। अत: नये शासकों के प्रति उनका ऐसा होना स्वाभाविक ही था। यहां के लोग इन नये धर्म-प्रचारकों को देखकर सोचने लगे कि नई संस्कृति के आने से हमारी संस्कृति सुरक्षित नहीं रहेगी। ऐसी स्थिति में हिन्दुओं ने पहले नवीन विचार-धारा के साथ किसी प्रकार का समझौता न किया। तटस्थ नीति का पालन करके वे कुछ समय तक काल-यापन करते रहे। ऐसी विकट समस्या में दोनों धर्मों के अनुयायियों में रक्तपात तथा हिंसा आदि की बहुत संभावना थी। ऐसी स्थिति में धार्मिक क्रान्ति में ऐसे महापुरुष की अथवा महान् विभूति की आवश्यकता थी जो लोगों को विश्व-बंन्धुत्व की भावना, अहिंसा, शान्ति तथा प्रेम का संदेश देकर मानवता की रक्षा के साथ-साथ सद्भावना का वातावरण पैदा करे। और दो संस्कृतियों के बीच उत्पन्न कटुता के स्थान पर सर्वग्राह्य मधुरता ला सके।

इसी काल में कश्मीर में एक नये सूरज का उदय हुआ। यह सूर्य धर्मनिरपेक्षता तथा राष्ट्रीय एकता की प्रतीक संत कवियत्री परमयोगिनी लल्लद्यद थी, जिनकी प्रेरणाप्रद किरणें सैंकड़ों सालों बाद आज भी अज्ञान के अंधरे से आवृत्त लोगों को प्रकाश देकर उन्हें सन्मार्ग की ओर प्रेरित करती चली आ रही हैं।

कश्मीरी साहित्य में यह पहली सर्वोत्कृष्ट कवियत्री मानी जाती हैं जिन्होंने अपनी मातृभाषा में 'वाख' Allocution (संस्कृत-वाक्) लिख कर जनता का समुचित पथ प्रदर्शन किया तथा जन-साधारण को मातृभाषा के माध्यम से वह सूक्ष्म दर्शन समझाया जो लल्लद्यद से पहले शैवदर्शन के मर्मज्ञों - वसुगुप्त आचार्य सोमानन्द, उत्पलदेव तथा अभिनवगुप्त, आदि आचार्यों ने संस्कृत भाषा द्वारा समझाया था। वस्तुत: लल्लद्यद के 'वाख' दो संस्कृतियों के धारा प्रवाह के संगम पर अक्षुण्ण सेतु बनकर जाति तथा वर्ण भेद के विना

सबों के लिए मानसिक संचार के साधन बन गये।

इनके 'वाख' सारगर्भित गम्भीर तथा भावपूर्ण हैं। वाक् वस्तुतः एक संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ है - जिह्वा से निकली हुई बात। अंग्रेज़ी में इसका अनुवाद speech है। ये वाख चार-चार पदों में लिखे गये हैं जिसका पहला, तीसरा और दूसरा व चौथे पर समान होता है। सबसे पहले लल्लद्यद ने छन्द के रूप में 'वाखों' का प्रयोग किया है। छन्दशास्त्र में 'वाख' कोई छन्द नहीं है।

इन वाखों के गम्भीर अध्ययन के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि उनके वाख शैवदर्शन के गहरे प्रभाव से अछूते नहीं रहे। चौदहवीं शती पहले जो कश्मीरी कवि पैदा हुए उनकी अमर रचनाओं में कश्मीर शैवदर्शन का गहरा प्रभाव स्पष्टरूप से मिलता है जैसे महेश्वरानन्द (बारहवीं शती) की 'महार्थमंजरी' तथा शितिकंठ का (तेरहवीं शती) 'महानय प्रकाश'। इस दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में यदि लल्लद्यद के 'वाखों' में इस दर्शन के सिद्धान्त नज़र आते हैं तो इस में आश्चर्य क्या ?

इसमें कोई संदेह नहीं कि कश्मीर की साहित्यिक गरिमा आठवीं सदी से बारहवीं सदी तक बहुत ऊंची रही है। कश्मीर के इस स्वर्ण-युग में शैवदर्शन के आचायों - वसुगुप्त, सोमानन्द, उत्पलदेव तथा अभिनवगुप्त जैसे दार्शनिकों ने इसको पराकाष्टा तक पहुंचा दिया, तब इसका प्रचार एवं प्रसार चौदहवीं शती तक जारों पर था। यह दर्शन प्रायः जनता के उच्चवर्ग ने अपनाया था और लल्लद्यद ने एक जागरुक कवियत्री की तरह इसे जन साधाण तक पहुंचाने का प्रयत्न किया जिससे यह दर्शन बहुत ही लोकप्रिय बन गया था। यहां यह कहना अंसगत न होगा कि लल्लद्यद की विचारधारा के कारण ही नुन्दऋषि के श्रुकों (सं०-श्लोकों) पर भी इस दर्शन का प्रभाव स्पष्टरूप से मालूम होता है। मध्य युग से लेकर आधुनिकयुग तक कवियों अर्थात् नुन्दऋषि से लेकर शमस फकीर तथा अहदज़रगर तक के कवियों पर इस दर्शन की छाप किसी न किसी रूप में नज़र आती है।

इय दर्शन की विशेषताओं में मुख्य विशेषता यह है कि इस में रुढ़िवाद तथा छुआछूत की कोई गुंजाइश नहीं है। प्रत्येक मनुष्य जाति, वर्ण भेद के बिना इसकी दीक्षा लेने का अधिकारी है। इसके मुख्य सिद्धान्तों में मनुष्य के बहुमुखी विकास के साथ-साथ उसका नैतिक आचरण अन्नत करना भी है। उपनिषदों के समान इस दर्शन का उद्देश्य सर्वसमता (Equality of all) तथा विश्वशान्ति है। यही एक ऐसा दर्शन है जो मनुष्य की रचनात्मक शक्तियों को उभारता है तथा पलायनवाद (Escapism) का विरोध करता है। वस्तुतः यह मानवतावादी दर्शन (Philosophy of Humanism) है क्योंकि यह अद्वैतवाद पर आधारित है जिस के कारण मनुष्य-मनुष्य में कोई फर्क नहीं दिखाई देता।

कश्मीरी साहित्य की पहली कवियत्री, लल्लद्यद शैवदर्शन की मर्मज्ञ थी। क्योंकि उसने अपने गुरु सिद्धमोल से शैवदर्शन की दीक्षा ली थी, और वह इस दार्शनिक ज्ञान-राशि को सामान्यजनतक पहुंचाना चाहती थी, इसलिए वह अपने 'वाखों' में शैवदर्शन के माध्यम से विभिन्न संस्कृतियों के कारण उत्पन्न मिलीजुली प्रतिक्रिया को शैवदर्शन के नज़दीक लाने में भी सफल हुईं। निश्चय ही, लल्लद्यद शैवदर्शन के असूलों को लेकर आगे बढ़ी थी। इसका ज्वलन्त प्रभाव नीचे दिये गये 'वाख' में पूर्णरूप से मिलता है :-

''शिव छुय थलि थलि रोज़ान,
मो ज़ान ह्योंद तु मुस्लमान।
त्रुकुय छुख तु पान प्रज़ुनाव,
स्वय छय साहिबस ज़ॉनी ज़ान।।''

इस 'वाख' में लल्लद्यद इस बात पर ज़ोर देती है कि शिव सर्वव्यापक है। यह ब्रह्मांड उसी का रूप है। जिस तरह उसके प्रकाश में कोई भेद दिखाई नहीं देता है उसी तरह हिन्दु तथा मुसलमान में कोई भेद नज़र नहीं आता है। हिन्दु तथा मुसमान दोनों प्रकाश (नूर) के कण हैं क्योंकि दोनों ही उसी के स्वरूप हैं। अपने आपको पहचान कर ही मनुष्य शिव (Ultimate Truth) का यानी सत्य का असली रूप जान सकता है आत्मप्रत्यभिज्ञा ही इस दर्शन

का सार है। यह दर्शन शैवशास्त्र में 'प्रत्यभिज्ञा' के नाम से प्रसिद्ध है :-

''लल्ल बु द्रायस लोलरे
छ़ांड़ान लूसुम द्यन क्यहो राथ।
वुछुम पंडिथ पनुनि गरे
सुय मे वुछमस न्यछतुर तु साथ।।''

इस 'वाख' में वे बताती है कि मैं लल्ला प्रीत की मतवाली सत्य को ढूंढने निकल पड़ी। ढूंढते ढूंढते दिन ढल गये रातें बीतीं। अन्तत: देखा तो पंडित (परम शिव) मेरे अपने घर में ही था। वही शुभ मुहूर्त मैंने ग्रहण किया। अर्थात् अपने आप उसे पाना ही मेरे लिए एक शुभ घड़ी थी।

''पर तु पान येम्य सोम मोन
येम्य ह्यू मोन द्यन क्यहो राथ।
येम्य सुय अद्वय मन सोंपुन
तमी ड़्यूठुन सुरगुरुनाथ।।

अर्थ:- पराया और अपना आप जिसने एक जैसा समझा। जिसने रात और दिन एक ही मान लिया। जिसका मन एक जैसा हुआ यानी द्वैतरहित हुआ। उसीने देवताओं के गुरु (ईश्वर/खुदा) को देखा।

लल्लद्यद के वाख सामान्यत: दुनिया भर के लोगों को और विशेषत: कश्मीरियों को यह पाठ पढ़ाते हैं कि ज्ञान के उस प्रकाशस्तम्भ से नज़र घुमाकर मनुष्य मनुष्य में हिन्द, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई पर जाति तथा वर्ण का अन्तर पूर्णरूप से मिट जाता है। स्वार्थ, ईर्ष्या द्वेष, संकीर्णता, संप्रदायिकता, अज्ञान तथा पक्षपात की दीवारें अपने आप गिर जाती हैं और इन्सानी बिरादरी और भाई चारे के रोशनी नज़रों के सामने जगमगा उठती है।

यही एक अमृतकुण्ड है, जिसने कश्मीरीयों को 'मिन हनेसु अलकोम मुहब्बत' समानता और मनुष्यता के वे गुण प्रदान किए कि दुर्घटनाओं तथा भावावेशों की घनघोर घटाओं में भी कश्मीरियों की सहनशीलता और प्रेम का सूरज बादलों को चीरकर चमकता रहा। बाद में आने वाले सूफी कवियों ने

प्रेम और इश्क की इन्हीं राहों पर अग्रसर होकर यहां की धर्मनिरपेक्षता की परम्परा को बनाये रखा।

मौलाना रोमी कहते हैं :-

"What can I do Muslims? I donot know my self. I am, no Christian, no Jew, no Magician, no Mussalman. Not of the East, not of the West, not of the land, not of the sea. Neither body nor soul, all is the life of my beloved.

निश्चय ही लल्लद्यद का अनन्य योगदान कश्मीरी साहित्य में सदा-सदा प्रेरणादायक तथा अमर रहेगा। कहना न होगा कि राष्ट्रीय तथा विश्वबन्धुत्व की भावना से ओत प्रोत राष्ट्रवादी कवियत्री के 'वाखों' के प्रचार व प्रसार से राष्ट्रीय एकता सुदृढ़तर हो सकती है। ऐसा मेरा मत है।



संदर्भ

1. लल्लद्यद : प्रो० जया लाल कौल
2. कश्मीर का इतिहास : पी० एन० कौल बामज़ई
3. Doctrine of Recognition : Dr. R. K. Kaw
4. लल्लद्यद तु बेयन फलसफन सऊत्य हिशर : डा० बी०एन०कल्ला, शीराज़ा (लल्लद्यद विशेषांक), प्रकाशक, जम्मू व कश्मीर कल्चरल अकादेमी, श्रीनगर

कश्मीर शौवमत और नुन्द ऋषि

भारतीय संस्कृत के विकास में कश्मीर नें जों महत्वपूर्ण योगदान दिया हैं वह उल्लेखनीय हैं। यहां समय समय पर लेखक, दार्शनिक इतिहासकार, भक्त, ऋषि आदि पैदा हुए हैं जिन्होंने यहां के साहित्य को चारचांद लगायें। चौदहवों शताब्दी में कश्मीर राजनीति तथा साहित्य की दृष्टि सें महत्वपूर्ण मानी जाती हैं। इस शताब्दी में कश्मीर में एक महान् विभूति पैदा हुई जो शेख नूरुद्दीन-वल्ली या नुन्द ऋषि के नाम से प्रसिद्ध हैं। ऋषियों की परम्परा में इस महात्मा का स्थान बहुत ऊंचा हैं वास्तव में यह अपनें समय कें महर्षि मानें जातें थे। संस्कृत भाषा में ऋषि की व्युत्पत्ति देते हुए कहा गया हैं कि ऋषि त्रिकालदर्शी होता हैं उसकी दृष्टि भूत, भविष्य तथा वर्तमान पर होती हैं। इस के अतिरिक्त मंत्रों का साक्षात्कार जिसे होता है,वह भी ऋषि कहलाता हैं। नुन्द ऋषि आध्यत्मिक दृष्टि से महात्मा और ऋषि भी थे। महात्मा उसको कहतें हैं जिसे प्राणियों में भगवान का अथवा परमशिव का रूप नज़र आये और जो सबो को समान रूप से देखें। महात्मा और ऋषि होने के नातें यह अहिंसा धर्म के प्रचारक थे। महात्मा बुद्ध ने जिस तरह सच्चाई की खोज में अपना सारा जीवन व्यतीत किया और अंत में उसे आत्मज्ञान प्राप्त हुआ उसी तरह यह महात्मा भी आत्मज्ञान से समलंकृत हुए। महात्मा और ऋषियों में जो जो लक्षण होने चाहिएं वह इनके
व्यक्तित्व में स्पष्टतः दृष्टिगोचर होतें हैं।

कई इतिहासकार इन्हें सहजानन्द के नाम से पुकारते हैं । सहजानन्द का अर्थ बहुत व्यापक हैं, इसका अर्थ स्वाभाविक आनन्द हैं। वेदान्त में ब्रह्म की परिभाषा सत्, चित् तथा आनन्द बताई गई हैं जैसे ''सच्चिदानन्दं ब्रह्म।'' सत् से अभिप्राय चैतन्य तथा आनन्द से अभिप्राय परम सुख अथवा पारमार्थिक सुख अथवा पारमार्थिक सुख से है। इस दृष्टि से यदि नुन्द ऋषि को सहजानन्द

भी कहा जाये तो काई अत्युक्ति नहीं क्योंकि वह खुद ब्रह्म के रूप थें। ऋषियों की परम्पर कश्मीर में हज़ारों सालों से चली आई हैं, जो यहां की राजनीति से तटस्थ रह कर लोगों को आध्यत्मिकता, प्रेम, भाईचारा तथा शान्ति का संदेशदेते रहे। इन्ही ऋषियों में से नुन्द ऋषि का नाम कश्मीर साहित्य में सम्मान से लिया जाता है।

यह वह ज़माना था जिस समय शैवमत का विकास, घाटी में पूर्णरूप से हुआ था। जातिभेद की भावना खत्म हुई थी। इस्लाम ने कश्मीर में अपने कदम यथा तथा जमाये थे। शैवमत ने नये धर्म के लिए ज़मीन समतल करदी थी त्रिकदर्शन के अनुयायियों ने इस्लाम की शिक्षा में कोई विरोधीतत्त्व नहीं पाया। सूफियों के अनल्लहक अर्थात् मैं हकीकत हूं में वही गुण पाये जाते हैं जो वेदन्त के इस वाक्य - अहं ब्रह्मास्मि यानी मैं ब्रह्म हूं या शैवों के शिवोहं यानी मैं शिव हूं, में पाये जाते हैं। वस्तुत: एक ही सच्चाई भिन्न-भिन्न नामों से पुकारी जाती हैं। इसकी पुष्टि हमें ऋग्वेद के इस मंत्र से मिलती हैं – ‘एक सद्विप्रा: वहुधा वदन्ति‘।

कश्मीर का गौरव साहित्यिक दृष्ट से आठवी शताब्दी तक बहुत ऊंचा रहा है। कश्मीर के इस स्वर्ण युग में शैवदर्शन के आचार्यो - वसुगुप्त, सोमानन्द, उत्पलदेव तथा अभिनव गुप्त जैसे दार्शनिकों ने इस दर्शन को पराकाप्ठा तक पहुंचा दिया तव से इसका प्रचार तेरहवीं शताब्दी तक ज़ोरों पर था।

प्राचीनकाल से कश्मीर में यातायात के साधन विद्यमान थे। यह स्वाभाविक बात हैं कि घाटी में हिन्दुस्तान से विभिन्न मत तथा दर्शन समय - समय पर पहुंचे। इनमें वैदिक मत शैवमत आदि शामिल हैं। इन मतों से कश्मीर के लोग बहुत प्रभावित हुए। वुद्धमत कश्मीर में मसीह के दौर से पहले फैला हुअ था। इसकी उन्नति कश्मीर की उपत्यका में अशोक के काल से सातवीं शताब्दी तक काफी हुई थी। आठवीं और नवीं सदी में कश्मीर में एक धार्मिक क्रान्ति हुई। परिणाम स्वरुप बुद्धमत को काफी धक्का लगा।

इससे शैवमत पुनर्जीवित हुआ। नवीं शताब्दी में कश्मीर विभिन्न दार्शनिक धाराओं का संगम बन गया। ये धाराये हिन्दुस्तान से वैदिकों, बौद्धों, वैयाकरणों, सांख्यमतवालों, नैयायिकों, वेदान्तियों और योगदर्शन के स्कूलों से आई। इन मतों के संगम से कश्मीर में एक नये दर्शन का आविर्भाव हुआ, जिसको साधारण लोग 'कश्मीर शैवमत' कहते हैं। किन्तु यह एक विशेष दर्शन है जिसका नाम 'प्रत्यभिज्ञादर्शन' हैं। इस दर्शन के अध्ययन से मालूम होता हैं कि इस दर्शन को समृद्ध बनाने के लिए आचार्यों ने विभिन्न दार्शनिक विचारधारायें इन मतों से लीं। किन्तु कश्मीर दार्शनिकों ने यह नया दर्शन अपने ढ़ंग से प्रस्तुत किया जो कश्मीर शैवागमों पर आश्रित हैं। प्रत्यभिज्ञा का अर्थ अपने आप को पहचानना अर्थात उतराधिकार में मिली हुई शक्तियों-इच्छा, ज्ञान और क्रिया को जानना है। इस दर्शन के अनुसर यह दुनिया सत्य हैं वेदान्त की तरह-मिथ्या नहीं है। जैसे ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या अर्थात् ब्रह्म सच्चा है और जगत झूठा है। यह जगत शाश्वत सत्य का है। आत्मा चैतन्यमात्मा स्वरूप तीन शक्तियों - इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति यथा क्रियाशक्ति का सम्मिश्रण है इस दर्शन के अनुसार इस विश्व का स्रोत परमशिव माना गया हैं जिसके दो रूप हैं – प्रकाश तथा विमर्श। ये दो रूप आपस में ऐसे जुड़े हैं कि एक दूसरे से अलग नहीं हो सकते। इन्हीं दो शक्तियों से ईश्वर ने छतीस बाह्य तत्त्वों को प्रकट में लाकर इस विश्व को अण्डज, स्वेदज, उद्भिज तथा सृजनात्मक पैदा किया। इस विश्व को पैदा करने वाला और इसका स्वामी एक महेश्वर हैं और इस विश्व में पैदा होने वाले सब लोग इस परम पिता महेश्वर की सन्तान हैं। महेश्वर प्रकाश रूप हैं और प्राणी प्रकाश के किरण हैं। इस दृष्टि से सब लोग इक दूसरे के बराबर हैं और सब भाई भाई हैं। इस दर्शन के अनुसार महेश्वर एक परमतत्त्व है जो सब शक्तियों से भरपूर हैं। यह सर्वज्ञ (सब कुछ जानने वाला) सर्वकर्ता (सब कुछ बनाने वाला) र्सवस्वतंत्र शक्तिमान (अपनी सारी शक्तियों का स्वतंत्ररूप से स्वामी) है। इसके विपरित एक जीव अल्पज्ञ (सीमित सोचने की शक्ति वाला) अल्पकर्ता (काम करने की सीमित शक्ति

रखने वाला) अल्पशक्तिमान (सीमित शक्तियों को रखन वाला) है। जिस तरह महेश्वर अपनी अनन्त शक्तियों तथा स्वातंत्र्यशक्ति से इस विश्व को बनाने का काम करता हैं उसी तरह एक जीव भी अपनी दुनिया और भाग्य को खुद बनाता हैं अल्प स्वातंत्र्य शक्तिमान होने के कारग जीव को अपने दायरे के अन्दर यह सब कुछ बनाने के लिए सीमित स्वातंत्र्यशक्ति प्राप्त हैं और वह अपने सत विचारों तथा सत्कर्मो से न केवल अपने जीवन कों सफल और समृद्ध बना सकता है बल्कि शुभ विचारों तथा सत्कर्मों को अपनाने से समस्त विश्व की समृद्धि के लिए एक महत्वपूर्ण भूमिका भी निभा सकता है।

इस उच्च दर्शन के कुछ सिद्धान्त यह है :- जीव में वहीं विशोषतायें है जो परमशिव में है किन्तु कुछ मलों (आणव, कार्म तथा मायीय) के कारण जीव अपने आपको उस परमशिव से अलग-थलग समझता और अपने में इसके मुकाबले में न्यूनताओं को अनुभव करता है। जिस तरह सिंह गीदड़ के रेवड़ में पड़ कर ईश्वरप्रदत्त वीरतादि गुणों को इस संसार में भूल जाता हैं अपने आपको पहचानना इस दर्शन का उद्देश्य है।

इस अवस्था में जब जीव अपने आप को पहचानता हैं उसमें वही विशेषतायें आती है जो परमेश्वर में पाई जाती हैं। जिस तरह आग से उठी हुई एक चिंगारी आग से अलग नज़र आने के बावजूद आग की ही याद दिलाती हैं उसी तरह जीव भी मलों के कारण अपने आप को उस परम तत्व से अलग समझता हैं जबकि वस्तुत: वह उसी प्रकाश का एक भाग हैं। इस दर्शन के अनुसार सारा विश्व चैतन्यमय समझा जाता हैं क्योंकि विश्व को सबसे पहले एक चैतन्यमय ही प्रकट कर सकता है और इसको छोड़कर दूसरा कोई इसे जान नहीं सकता। एक चैतन्यमय पुरुष की दृष्टि से यह विश्व भी चैतन्यमय है। इस में भौतिकता की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया है इसके अनुसार सब चैतन्यमय है।

'प्रत्यभिज्ञादर्शन' के अनुसार एक मनुष्य को घर तथा दुनिया त्याग कर गिरि-कन्दराओं में उपसाना करने की आवश्यकता नहीं। वह गृहस्थाश्रम

में रहकर भी अपने को परमशिव के दर्जे तक पहुंचा सकता है। इसके सिद्धान्तग्रन्थों में मूर्तिपूजा आदि पर बल नहीं दिया गया है। इसमें जातपात का कोई बन्धन नहीं हैं। इसमें अद्वैतवाद का विस्तृतरुप से वणर्न किया गया हैं क्योंकि उस समय (चौदवही शताब्दी में) शैव दर्शन का प्रभाव काफी गहरा था। इसलिए जब इस्लाम ने यहां पहले कदम जमाये तो लोगों को इस्लाम के मुख्य सिद्धान्तों को समझने में कठिनाई अनुभव न हुई।

कश्मीरी साहित्य को प्रथम कवियत्री, ललद्यद शैवदर्शन की पूजक थी। उसने अपने वाखों (वाक्यों) में शैवदर्शन को समोलिया है। उसने अपने 'वाखों' विभिन्न परिस्थितियों के कारण उत्पन्न मिली जुली प्रतिक्रिया को सुधारने की भरसक कोशिश की। इस तरह वह इस्लाम को शैवदर्शन के नज़दीक लाने में सफल हुई। वस्तत: ललद्यद शैवदर्शन के सिद्धान्तों को लेकर ही आगे बढ़ी थी। एक वाक्य में वह कहती है।

''शिव छुय थलि थलि रोज़ान,
मो ज़ान ह्योंद तु मुसलमान।
त्रुकुय छुख तु पान प्रज़ुनाव,
स्वय छय साहिबस ज़ॉनी ज़ान।।''

उपरोक्त 'वाख' से स्पष्टत: इस बात की ओर संकेत मिलता है कि कश्मीर में शैवदर्शन के अद्वैतवाद से लोग पूर्णरूप से परिचित थे। वस्तुत: अपने आप को पहचानने से मनुष्य परमशिव को पहचान सकता है।

इस दर्शन के अनुसार शिव प्रत्येक पदार्थ में रहता है। अणु अणु में उसकी सत्ता विद्यमान है। ललद्यद उपदेशों के कारण जनता के अज्ञान- दीपक को प्रज्बलित करने में सफल हुई। इसमें सांप्रदायिक भावना भेदभाव तथा धार्मिक तनाव की कोई गुंजाइश नहीं है। यहीं कारण हैं कि नुन्दऋषि आदि सन्त शैवदर्शन के मूल सिद्धान्तों से प्रभावित नज़र आते हैं जिनकी झलक इनके 'श्लोकों' और 'वाखों' में प्राय: पाई जाती हैं और लोगों में भी इन सिद्धान्तों को प्रवृत्ति नजर आती हैं लोगों नें इनके 'श्लोकों' और 'वाखों' को

बहुत पसन्द किया है।

यद्यपि नुन्दऋषि के श्लोकों में विभिन्न मतों का प्रभाव दिखाई देता हैं फिर भी इनमें शैवदर्शन के तत्व विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उस समय का वातावरण कश्मीर में शैवदर्शन का ही था। इसके प्रभाव से जनता में सद्भावना का वातावरण पैद हुआ था। मंत्रमहेश्वर आदि सिद्ध संप्रदाय शैवमत में पाये जाते हैं इनका विशेष प्रभाव उस समय के मुसल्मान व संतों में भी पाया जाता था जिसकी परम्परा अब भी कश्मीर में प्रचिलत हैं।

इनके कुछ श्लोक उदाहरण कें रुप में प्रस्तुत किये जाते हैं :-

''युस तु तति सुय छुय यते, सुय छुय प्रथ शायि रॅटिथ मुकाम।
सुय छुय प्याद सुय छुय रथे, सुय छुय सोरुय पान।।''

अर्थात्:- जो वहां हैं वहीयहां भी मौजूद हैं। वहीं हर जगह व्याप्त है। वहीं प्यादा और रथ की सवारी भी वहीं। सारे विश्व में वहीं गुप्तरूप से व्याप्त है। इस श्लोक में परमशिव के प्रत्येक पदार्थ में विद्यमान होने की ओर संकेत किया गया है। रथ हांकने वाले और खींचने वाले दोनों में उसी का प्रकाश बराबर है। प्रकाश के रूप में वह विश्वोतीर्ण हैं और विमर्श के रूप में विश्वमय है। मनुष्य के मन में जब तक कोई विचार क्रिया में परिणत रूप धारण नहीं करता है तब तक वह प्रकाश है। जब उसका विचार क्रिया में परिणत होता है तो वह विमर्श कहलता हैं प्रकाश और विमर्श का उदाहरण इसमें स्पष्ट रुप से प्रकट होता है:-

''सु मे निशे बु तस निशे, मे तस निशे करार आव।
नाहक छ़ोंडुम मे परदीशे, पनुने दीशे मे यार आव।।''

अर्थात्:- वह मेरे पास है मैं उसके पास हूं। मैंने उसकी संगति से सुख पाया। मैंने व्यर्थ ही उसे दूसरे देश ढूंढा। अपने ही देश अर्थात् अपने आप में ही मेरा प्रियतम मेरे हाथ आया। इस श्लोक में उन्होनें परमशिव को अपने आप में ही पाने का संकेत किया। यहां परमशिव से तात्पर्य कैलाश पर्वत पर रहने वाले भगवान शिव से नही या स्वर्ग में रहने वाले महेश्वर या शिव से नहीं, अपितु

परम तत्व से हैं क्योकि शैवों के मतानुसार शिव भगवान है किन्तु शैवदर्शन के अनुसार वह परम तत्व हैं शैवमत और शैवदर्शन में यही अन्तर है। इस तरह वह प्रत्येक प्राणी में है किन्तु मनुष्य जो सब प्रणियों में श्रेष्ठ है उसको चाहिये कि वह अपने अज्ञान को दूर करके अपनें आप को जानने की कोशिश करे। अपनी शक्तियों को जानने से ही वह यथार्थता को जान सकता है।

''सोरुय त्रॉविथ रॊटुख मे चुय, मे चु छ़ांडान लूसुम दॊह।

जानस मंज़ यॆलि रॊटुख मे चुय, मे चु तु पानस दितुम छ़ॊह।।''

अर्थात्:- सब को छोडकर मैंने तेरे ही दामन को पकड़ा। तेरी तलाश में मेरे जीवन के दिन ढल गये। जब मैने तुझे अपनी जान के संग पाया, मैं फूला न सामाया। दोनों का तादात्म्य हुआ। इस श्लोक में अपने आप में ही प्रकाश को पाने का संकेत मिलता हे जो शैवदर्शन के सिद्धान्तों के अनुरूप है। इस दर्शन के अनुसार अपने आप में ही यर्थाथिता जानने की शिक्षा है।

''सुय ओस तु सुय हो आसी, सुय सुय कॅर्यज़ि चुय।

सुय सोरी अंदेश कासी, हयो ज़ुव वापस प्यतो।।''

अर्थात्:- वहीं था और वही होगा। उसका नाम लेता रह। वहीं मनुष्य के भ्रम को मिटायेगा। रे जीवन! कोई उपाय ढूंढ, और अपने आपको पहचान। इसमें नुन्दऋषि ने प्रकाश को सनतान मान लिया हैं। हिन्दूधर्म तथा अन्य मतों के अनुसार इस विश्व को संहार करने वाला शिव माना गया है किन्तु शैवदर्शन के अनुसार शिव या महेश्वर प्रकाश के रूप में हमेशा विद्यमान हैं नित्य है। इस दृष्टि से वह पहले भी था आगे भी होगा। विमर्श के रूप में, वह नदी नालों, पर्वतों तथा वृक्षों आदि में, उसका साकार रूप प्रति क्षण नज़र आता हैं इसी तरह उसका प्रकाश चेतन और अचेतन में पाया जाता है। इस प्रकार इनके इन श्लोकों में 'प्रत्यभिज्ञादर्शन' के सुस्पष्ट दृष्टान्त मिलते है :-

''अथ कंदि पानस मो दिम रंदो, अमि सुत्य बंद मल वुथी नो।

अमि तस्बीह आस तु जंदो, अमि कंद सु अथि यिय नो।।''

(नूरनामा)

अर्थात्:- अपने शरीर को सिंगार आदि से अलंकृत मत कर। इससे अन्त: कारग का मैल धुल न सकेगा। माला, डंडा और जीर्ण वस्त्र, वे सब मिथ्या तथा छल कपट है। इस तरह वह हाथ नहीं आ सकता। इस श्लोक में सन्त कबीर की तरह बाहरी दिखावे और माला जपने को एक प्रकार का ढोंग माना गया हैं। सन्त कबीर इस दोहे में बताते है :-

''माला फेरत जुग भया मिटा न मन का फेर।
कर का मनका डारि दे मनका मनका फेर।।''

शैवदर्शन इस प्रकार की उपसाना में विश्वास नहीं रखता।

''क्या करि तसुंज़ क्रय तु कारण यस बेयिस अथु दारुन प्ययो।।''

(नूरनामा)

अर्थात्:- जिसने दूसरों के सामने अपने हाथ फैलाये, उसकी क्रिया निष्फल है। मनुष्य अपना सुधार आप कर सकता है। वह स्वयं भाग्य-विधाता है। इच्छा, ज्ञान और क्रिया इन शक्तियों से वह अपने आप में विद्यमान स्थायी निधियों का स्वामी बन सकता है। इस तरह शैवदर्शन के अनुसार वह अपने आप को सुधारने में खुद ज़िम्मेदार है।

''श्राना कॅर्यज़ि युथ नु कांह डेंशो, ध्याना कॅर्यज़ि गुपिथ पान।
क्रिया कॅर्यज़ि युथ नु ज़ाथ मशी, मशी निशि अदु पनुन पान।।''

अर्थात्:- ऐसे नहाया जाये कि कोई न देखे, अपने आप कोलोगों की नज़रों से ओझल रखकर ज्ञान में डूब जा। अमल करना भी न भूल। उसके बाद तुम अपने अस्तित्व को भूल जाओगे।

इस श्लोक में शैवदर्शन का प्रभाव स्पष्टत: दिखाई देता है। इसमें ध्यान तथा ज्ञान का संकेत हमें मिलता है जो वस्तुत: बाह्य प्रदर्शन है। इसमें कर्म पर अधिक बल दिया गया है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी कर्म को प्राथमिकता दी गई है। उसमें बताया गया है :-

''कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन''

अर्थात्:- मनुष्य को कर्म करते रहना चाहिए उसके फल की इच्छा मत कर।

किन्तु कर्म करना न भूल। इकबाल के कथनानुसार ''अमल से ज़िन्दगी बनती है जन्नत भी जहनुम भी, क्योंकि जिन्दगी का नाम निरन्तर क्रिया है। अत: शैवदर्शन में क्रिया की सविस्तार व्याख्या मिलती है जैसे - 'ज्ञानं क्रिया च भूतानां जीवतां जीवनं मतम्' ज्ञान और क्रिया - ये दोनों मनुष्य के लिए आवश्यक हैं। क्रिया मनुष्य का जीवन है जिसमें ये दोनों चीज़ न हो, वह ज़िन्दा होकर भी मुर्दा है।



नुन्द ऋषि

कश्मीर पुराने ज़माने से संतों, सूफियों, महात्माओं, ऋषियों और अदीबों का मरक़ज रह चुका है। इसमें समय-समय पर ऐसे महात्मा, सूफी आदि पैदा हुए जिन्होंने लोगों को अंहिसा, भाईचारा और अमन का पैगाम देकर उनकी सही दिशा में रहबरी की तथा मानव धर्म पर अधिक बल दिया। ये सूफी-संत सियासत से तटस्थ होकर रूहानी क़दरों को ज्यादा तरजीह देते थे। तभी तो उनकी रचनाओं में ये तत्व अधिक रूप से दिखाई देते है।

इन्ही सूफी-संतों में शेख नूरउददीन वल्ली या नुन्द ऋषि का नाम, कश्मीरी साहित्य में उल्लेखनीय रहा है। इसमें कोई संदेह नहीं है, कि क़श्मीर के संतो-सूफियों तथा ऋषियों में, सबसे अधिक लोकप्रिय नुन्द-ऋषि हुए है। इनकी लोक-प्रियता का अनुमान इससे लगाया जाता है, कि अफगान गर्वनर 'अता मुहम्मद खान' ने उनके नाम पर सिक्के ढलवाए। उनके कुछ सिक्के श्रीनगर के संग्रहालय के अतिरिक्त लाहौर के अजायबघर में भी मौजूद हैं। दुनिया में ये पहले संत थे, जिनका नाम सिक्कों पर खुदवाया गया है। ऋषि शब्द का प्रयोग यद्यपि कश्मीर में वैदिक ऋषियों से माना जाता है, तो भी ऋषि-संप्रदाय के प्रवर्तक नूरदीन वल्ली माने जाते हैं। वैसे तो इनका दूसरा नाम शेख-उल-आलम, सहजानंद और अलमदारि कश्मीर भी है। कश्मीर में उन मुस्लमान संतों को, जिनके कुछ सिद्धान्त थे, ऋषि माना जाता था। इनमें नुन्द ऋषि का नाम अग्रणी है। इन्होंने अपने श्रुकों (श्लोकों) में विनय तथा भक्तिभावना प्रकट की है। तथा 'श्रुकों' में कई ऋषियों का नाम भी लिया है जो इनसे पहले वादी में थे। ऋषि उन लोगों को कहा जाता था जो घोर तपस्या करके सहानियत की मंजिलों पर पहुंचते थे। उनका जीवन सरल होता था तथा वे सात्विक वृत्ति के होते थे। वे प्राय: कन्दमूल और 'उपलहाक' खाते थे। जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा है कि उपलहाख का आहार करना चाहिए। वे

एकान्त में रहना पसंद खाते थे। वे कभी मांस नही खाते थे। किसी जीव की हत्या करना वे गुनाह समझते थे। वे संयमी जीवन व्यतीत कर ईश्वर के ध्यान में लगे रहते थे। एक और सूफी शायर, शमस फकीर के अनुसार, नुन्दऋषि की आध्यात्मिक गुरु फ़कीर परमयोगिनी लल्लद्यद थी। शमसफ़कीर कहते है। लल्लद्यद ने ऋषि को दीक्षा दी। आविदों ने उसे आध्यात्मिक ज्ञान की संझा दी। नुन्दऋषि ने लल्लेश्वरी का बड़े सम्मान के साथ उल्लेख किया है। जैसे :-

पदमपुर (वर्तमान-पांपार) की लल्ला, जिसने (आपकी कृपा से) अमृत के घूंट पी लिए, जो हमारी अवतार थी, हे भगवान! (भगवान) मुझे भी वैसे ही वर. दे दो। इनके पद्य इन्द्रधनुष की तरह विविध रंगों से समलंकृत हैं। संसार की नश्वरता को जाहिर करते हुए नृन्दऋषि में सच्चे मुसलमानों के लक्षण निम्न 'श्रुकों' में दर्शाते है।

''बनीनव इंसान फानी है। मरकर उसे दाने-दाने का हिसाब देना है। इसलिए मुसलमान को गुस्सा नहीं करना चाहिए।''

हमारी कदीम रिवायत मेहमानवाजी है। हमें अल्लाह के नाम पर दूसरों को अतिया (दान) देना चाहिए।दूसरों को दान आदि देने से ही मनुष्य को आत्मसुख मिलता है। किसी रूप में भी मुसलमान को गुस्सा नही करना चाहिये। इसी ख्याल का इज़हार इस 'श्रुक' में पाया जाता है :-

''अरे मनुष्य! अपने मुरशिद (गुरू) से अक्ल मांगों; नही तो अपना जीवन निष्फल होगा और आपके ज़िहन में शैतानी कुवत (राक्षसी प्रवृति) पैदा होगी जिससे संसार तबाह होगा। आपको अपना असली घर क्यों भूल गया? यह दर्शनिक विचार इस 'श्रकु' में दर्शनीय है।''

वही सच्चा मुसलमान है, जो रोजा रखकर गुस्सा लालच, अंहकार, जहालत छोड़ दे और दूसरों को खिलादे, उसीसे वह जन्नत (स्वर्ग) को प्राप्त कर सकता है।

वस्तुतः नुन्दऋषि हिन्दू-मुस्लिम थे। वे आलमी बिरादरी तथा शान्ति के पुजारी थे। तभी तो उनके 'श्रुकों' में सैकड़ों वर्षों के बाद ये स्वर आज भी हमारे कानों में गूंजते रहते हैं :-

''एक ही माता-पिता की संतान होने से मुसलमान और हिन्दू वैर को त्यागने से एक-दूसरे के अधिक नज़दीक आ सकते है। अन्यथा खुदा इन बन्दों पर प्रसन्न नही होगा।''

निःसन्देह, विश्बंधुत्व की भावना तथा मानव-धर्म को पुष्ट करने में नुन्दऋषि के 'श्रुक्य' इस आणविक युग में अत्यन्त सहायक सिद्ध हो सकते है। इन 'श्रुक्यों' के प्रचार व प्रसार से, दिग्भ्रान्त तथा सम्भ्रांत जन-मानस को, एक नई दिशा मिलेगी तथा उनका पथ-प्रदर्शन सही रूप में होगा। वस्तुतः नुन्दऋषि की अमर वाणी किसी युग में खत्म नहीं होगीं।

''अहुर कॅर्यज़े उपलहाकस तु हन्दे।''



विकास का शहंशाह : ज़ैन-उल्लाब्दीन बड़शाह

मध्य युग के सुलतानो में से ज़ैन-उल्लाब्दीन बड़शाह का नाम बड़े गर्व तथा आदर से लिया जाता है। ज़ैन-उल्लाब्दीन का दूसरा नाम बड़शाह था। बड़शाह का अर्थ - भट्टों का अर्थात कश्मीरी ब्राह्मणों का पादशाह। कश्मीरी ब्राह्मण उनकी उदारनीति के कारण उन्हे भट्टशाह कहते थे। बाद में यही नाम कश्मीर-मंडल में ज़्यादा लोकप्रिय बना।

बड़शाह का पिता सुलतान सिकन्दर बुतशिकन (मूर्तिभंजक) जितना क्रूर, असहिष्णु, हिंसक तथा अत्याचारी था, उसका पुत्र बड़शाह उतना सहिष्णु, अहिंसक तथा शान्तिप्रिय राजा था। पिता तथा पुत्र के स्वभाव में आकाश-पाताल का अन्तर था। इतिहासकारों के अनुसार, सिकन्दर का युग अन्धकारमय माना जाता है तथा बड़शाह का युग प्रकाशमय।

सिकन्दर की मृत्यु के बाद उसके बड़े पुत्र उर्फ अलाशाह ने हकूमत की बागडोर संभाली, उसके बाद का दौर आता है, जिसने सुल्तान ज़ैनउल्लाब्दीन बड़शाह की उपाधि धारण कर, कश्मीर पर शासन किया। बड़शाह से पहले शाहमीरी वंश से सात राजाओं सुल्तान शमसुद्दीन शाहमीरी, सुल्तान जमशीद, सुल्तान अला-उद्दीन, सुल्तान शहाबुद्दीन, सुल्तान कुतुबुद्दीन, सुल्तान सिकन्दर और सुल्तान अलीशाह ने क्रम से 1339 ई० से 1420 ई० तक यानी लगभग 81 वर्ष यहां शासन किया।

बड़शाह शाहमीरी वंश का आठवां राजा है, जिसने कश्मीर के सर्वोच्च पद पर बैठकर 1420 ई० से 1470 ई० तक राज्य किया। मुगल शासक सम्राट् अकबर तथा औरंगजेब के समान उसने 50 से अधिक वर्ष शासन किया। कश्मीर में प्रथम विदेशी राजा रिंचन सन् 1320 ई० में हुआ। उसके ठीक एक सदी के बाद ज़ैन-उल्लाबदीन राजा हुआ था। हिन्दू इस दौर में यवन शासन के दृढ़ राजनीतिक शिकंजे को असंगठित होने के कारण शिथिल नहीं

कर सके. सिकन्दर के समय उसके मंत्री सुहभट्ट के कारण हिंन्दुओं का जो ज़बर्दस्ती इस्लामीकरण तथा उनपर जो अत्याचार हुआ उसने हिन्दुओं की विरोधक शक्ति को मिटा दिया। हिन्दूओं का मनोबल टूट गया। इस भयानक स्थिति के बाद अमन आना स्वभाविक था। ज़ैन-उल्लउब्दौन ने इस शान्ति से लाभ उठाकर अपना शासन मज़बूत किया।

उसने ब्राह्मणों के साथ उदार एवं हिन्दुओं के साथ सहनशील नीति का अनुसरण किया। उसके शासनकाल में सदाचार का तथा सन्मार्ग का पुनः कश्मीर में उदय होने लगा। उसने उग्रसम्प्रदायवादियों तथा कट्टरपन्थियों की विचारधारा में परिवर्तन लाने का यानी साम्यभाव लाने का भरसक प्रयत्न किया। उस अभियान में वह सफल हुआ। बहुत समय के बाद इन्साफ व न्याय का दर्शन-पुनःकश्मीरियों को नसीब हुआ। इन्साफ के दरवाज़े सबों के लिए खुल गये। ज़ालिमाना हकूमत का दबदबा खतम हुआ। उसने ताकतवर बागियों को दबाया। उसने पुत्र, मंत्री अथवा मित्रों को भी गल्ती करने पर बख्शा नहीं। हमेशा नेकरास्ता अपनाया। उसने मुसलमानों को भी अपराध करने पर बख्शा नहीं। हमेशा नेकरास्ता अपनाया। उसने मुसलमानों को भी अपराध करने पर मौत की सज़ा दी। रिश्वतखोर न्यायकर्मियों के भ्रष्टाचार को रोका और उन्हें भी दंड दिया। इस तरह वह सबों के साथ न्याय का व्यवहार करता था। उसके मन में किसी कौम के प्रति द्वेष-भावना नहीं थी। वह न्याय का हमेशा पक्षधर था। इससे उसकी प्रतिष्ठा राज्य में बढ़ गई। उसका सम्मान सब करने लगे। वह योगियों का भी सम्मान करता था। इतिहासकार जोनराज ने सुल्तान की न्याय-प्रियता के उनेक उदाहरण दिये हैं। वह सुल्तान की प्रंशसा मुक्तकंठ से करता है। जोनराज के अनुसार, एक घटना का वर्णन करना यहां आवश्यक है। एक बार ज़ैनउल्लाब्दीन के कांख में कष्टकर ज़हरीला फोड़ा हो गया। सिकन्दर बुतशिकन तथा अलीशाह की हिन्दू-विरोधी तथा दमननीति के कारण वैद्यों का अभाव कश्मीर में हो गया था जो विधि-शास्त्रों में दक्ष थे, वे भी प्राणभय से अपनी विद्या तथा कला को गुप्त रखते थे।

बहुत ही प्रयास के बाद ढूंढने पर गरुड़शास्त्र का मर्मज्ञ शिर्यभट्ट उसे मिला। शिर्यभट्ट सिद्ध भी था। उसने इलाज के पूर्व राजा से अभयदान मांगा। अभयदान प्राप्त कर शिर्यभट्ट ने सुल्तान (ज़ैन-उल्लब्दीन) का इलाज किया। फलत: वह स्वस्थ हुआ। सुलतान शिर्यभट्ट की विद्या से तथा उसके चरित्र से बहुत प्रभावित हुआ। इससे उसका यश बढ़ा। राजा सुखी हुआ। प्रजा प्रसन्न हुई। शिर्यभट्ट संतोषी तथा त्यागी ब्राह्मण था। उसने अपने जीवनकाल में हिन्दुओं पर ज़ुल्म देखा था। अत: उसने सुल्तान से हिन्दुओं पर लगें जज़ियाकर को माफ करवाया और नाममात्र के लिए 'कर' रख दिया। तबसे ब्राह्मण केवल एक माशा चांदी जज़िया प्रतिवर्ष देने लगे। सुलतान अलीशाह के दौर में 12 तोला रजत जज़िया के रूप में प्रत्येक व्यक्ति को देना पड़ता था। इस तरह राजा के उदार दृष्टिकोण को सबों ने सराहा। वस्तुत: शिर्यभट्ट ने सुलतान की विचार धारा को बदल डाला।

सुल्तान का धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण :- सुल्तान के शासनकाल में किसी के साथ पक्षपातपूर्ण रवैया नहीं हुआ। उसके दौर में हिन्दुओं को जीवनदान मिला। जीवनदान के साथ वे बड़े बड़े पदों पर नियुक्त हुए। उनकी आर्थिक दशा सुधर गई। राज्यसेवा में उन्हें लिया जाने लगा। सुल्तान ने बौद्ध तिलकाचार्य को महत्त्वपूर्ण पद दिया। उसके राज्यकाल में शिर्यभट्ट, तिलकाचार्य और सिंह गणकपति थे। कर्पूर भट्ट ने सुलतान की प्राणरक्षा की थी। सुरत्राण (सुलतान) ने उदारदृष्टिकोण के कारण देश-विदेशों से विद्वानों, शिल्पियों तथा गुणियों को बुलाया। श्रीभट्ट अपने समय का श्रेष्ठ ज्योतिर्विद था। उस को भी राजा का आश्रय मिला था। श्री रामानन्दपाद ने इसी समय भाष्य लिखा था। उसी समय एक जितेन्द्रिय कश्मीर में आया था। उस को भी राजा का आश्रय मिला था। उसके आशीर्वाद से मलिका को (सुलतान की पत्नी को) पुत्ररत्न प्राप्त हुआ। इससे स्पष्ट होता है कि सुलतान के परिवार को हिन्दूधर्म पर पूरा विश्वास था।

धार्मिक दृष्टिकोण : ज़ैन-उल्लाब्दीन कट्टरपंथी नहीं था। विभिन्न

धर्मों पर उसको दृढ़ विश्वास था। उसके दरबार को विभिन्न आस्थाओं के लोग समलड़्कृत करते थे। वह संस्कृत का अनुरागी था। उसका दरबारी कवि श्रीवर सुलतान को मोक्षोपरकसंहिता तथा योगवासिष्ठ पढ़कर सुनाता था। उसका भाष्य करता था। भाष्य से सुलतान इतना प्रभावित हुआ था कि उसने स्वंय 'योगवासिष्ठ' के आधार पर शिकायत नामक पुस्तक की रचना की थी। बुढ़ापे में वह 'नीलमत्पुरण' पण्डितों से सुनता था। इस प्रकार शास्त्रों में उसकी काफी रुचि थी। उसने संस्कृत को पुनर्जीवित कर दिया। संस्कृत के प्रचार के लिये उसने पाठशालाओं को अनुदान दिया। इसके अतिरिक्त मन्दिरों की भी मरम्मत करवायी। उसने मार्तण्ड (मट्टन) तथा अमरनाथ के प्रासाद शिखरों का निर्माण करवाया।

श्रीवर के अनुसार : सुलतान ने अमरनाथ जी की यात्रा की थी। सुलतान के पिता-सिकन्दर बुतशिकन ने अपने क्रूर शासन में जिन मन्दिरों तथा मठों को मिसमार (ध्वंस) किया था, उनकी दशा देखकर उसका मन द्रवित होता था। अत: हिन्दुओं में खोये हुए इतिमाद (विश्वास) को दोबारा प्राप्त करने से वह सफल हुआ। सुलतान हिन्दुओं के त्यौहारों से इतना प्रभावित हुआ था कि वह वितस्तात्रयोदशी (कश्मीरी में व्यथत्रुवाह) के दिन नाव में चढ़कर उसकी इबादत-दीपोंसे करता था। उसके मन में मानवता की भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी। वह पक्का मुसलमान था, लेकिन प्रत्येक धर्म के साथ उसका एक जैसा वर्ताव था। वस्तुत: वह हिन्दुओं का मसीहा था। उसके शासनकाल में हिन्दुओं ने विशेष रूप से राहत की सांस ली। हिन्दूदेवमाला के अनुसार विष्णु रक्षक (रज़ाक) माना जाता है। वह भी हिन्दुओं का रक्षक था। इसलिए इतिहासकर जोनराज ने उसकी उपमा विष्णु के साथ दी है। अर्थात् विष्णु का दर्जा गैर हिन्दू को दे दिया। वस्तुत: वह मानव-धर्म का पुजारी था।

सुलतान का निर्माण कार्य : सुल्ताननिर्माणकार्य में अधिक रुचि रखता था। अत: उसने कश्मीर के विभिन्न क्षेत्रों में योजना बद्ध रूप से काम करवाना शुरू किया। जैन-उल्लाब्दीन ने मार्तण्ड (मट्टन) में 'लेदर' नदी से

एक नहर निकाली थी, जो आजकल 'शाहक्वल' के नाम से मशहूर है। उसने उत्पलपुर में नहर निकलवाई। इसी प्रकार नन्दशैल (नन्दिहल) चक्रधर, अवन्तिपुर, (वर्तमान-वूंत्यपोर) में नहर निकाल कर सिंचाई से कृषि की उन्नति और पैदावर की वृद्धि की। कृषक उसके इस कार्य से बहुत खुश हुए तथा उनकी माली हालत सुधर गई। इसके अतिरिक्त सुलतान ने महापद्मसर (वर्तमान झीलवुलर) में ज़ैनलंका का निर्माण कराया। इस संदर्भ में इतिहासकार जोनराज ने एक प्राचीन कथा का वर्णन किया है, जिसमें पूर्वकाल में महापद्मसर के स्थान पर नगर होने का उल्लेख किया गया है। वह नगर (सिन्धुमत् नगर) पानी के कम होने पर दिखाई देता है। निर्माणकाल सन् 1443-1444 ई० वहां प्राप्त शिलालेख से मिलता है।

सुलतान ने सुरत्राणपुर (सुलतानपुर) ज़ैनकोट, जैनगीर, ज़ैनबाजार, (जैनपत्तन), ज़ैनकॅदल आदि का निर्माण कराया। साथ ही मशहूर हुनरमंद (शिल्पी) सुय्यापति द्वारा उसने तामीरी और मरम्मत का काम कराया था। इसके अतिरिक्त उसकी याद दिलाता है। सैकड़ों वर्षों के बाद झील डल में स्थित रुपलांक (संस्कृत-रौप्यलंका) तथा स्वनलङ्क (संस्कृत-स्वर्णलंका) सुलतान की गरिमा को प्रकट करते हैं।

अहिंसक प्रवत्ति : सुलतान करुणा का साक्षात् प्रतीक था। उसने जीवहत्या पर पूर्णरूप से प्रतिबन्ध लगाया था। उसने अनेक पवित्र सरोवरों पर पक्षियों और मछलियों के मारने पर प्रतिबन्ध लगाकर जीवहत्या निषेध करार दी थी। इससे सुलतान का दयालु स्वभाव स्वत: मालूम होता है। महाराजा अवन्तिवर्मा ने भी अपने शासनकाल में जीवहत्या पर प्रतिबन्ध लगाया था।

लंगरों की व्यवस्था : सुलतान ने अन्नसत्र (लंगर) योगियों फकीरों, संतों तथा गरीबों की भूख मिटाने के लिए खुलवाये। श्रीनगर में 'जोगीलंकर' इसका ज्वलन्त प्रमाण है। योगियों का लंगर होने के कारण इसका नाम 'जोगीलंकर' पड़ा है। यह रैणावारी में है।

संगीत-विद्या से प्रेम : सुलतान संगीत का बहुत ही शौक़ीन था।

अत: उसने अपने शासनकाल में इसकी उन्नति की ओर ध्यान दिया। वह विशेष पर्वो पर 'गीतगोविन्द' संगीतज्ञ श्रीवर के मधुरकंठ से सुनता था। सुलतान मुल्लाजादक से कूर्मवीणा श्रीवर से तुम्बीवीणा सुनता था और तुरुष्क रागों से राजा मनोविनोद करता था। संगीत में उसकी रुचि के कारण बाहर से उच्चकोटि के अनेक कलाकार व मदारी धन-प्राप्ति की आशा से कश्मीर आने लगे।

विद्यानुराग : ज़ैन उल्लाब्दीन स्वंय शिक्षित था। वह अनेक भाषाओं का ज्ञाता था। अरबी, फारसी के अतिरिक्त वह संस्कृत तथा तिब्बती भी जानता था। यही कारण है कि उस के समय विद्याओं की उन्नति हुई। सभी प्रकार की कलायें तथा विद्याएं प्रत्येक रूप में उस समय विकसित हुई। बजाने के लिए तुरी (वाद्यविशेष) और वीणा का प्रयोग किया गया। अनेक पुस्तकों का अनुवाद किया गया। उसके पिता के समय जो हिन्दू लोग अपनी चल-अचल सम्पति छोड़कर अन्य प्रदेशों में चले गए थे, पुन:देश में सम्मान से रहने लगे। पुराण, तर्क, मीमांसा एवं अन्य ग्रन्थ बाहर से मंगाकर उनका अध्ययन आरम्भ किया गया। जो जिस भाषा में निपुण था, उसे उसी भाषा में पढ़ाया जाता था। धातुवाद एवं कल्पशास्त्रों का अनुवाद किया गया। मुसलमान भी उनका अध्ययन करने लगे। 'वृहत्कथासार' एवं 'हाटकेश्वर' संहिता का भी अनुवाद हुआ।

इस के अतिरिक्त उसके दौर में मौलिक ग्रन्थों का भी प्रणयन हुआ। नोत्थसोम ने ज़ैनचरित लिखा था। कश्मीरी भाषा के प्रकाण्ड पण्डित योधभटट ने 'ज़ैनप्रकाश' नाटक की रचना की थी। शाहनामा के मर्मज्ञ भट्टावता: ने 'ज़ैनविलास' ग्रन्थ लिखा था। दुर्भग्य से यह ग्रन्थ अप्राप्य हैं। केवल भट्टावतार की 'बाणासुरकथा' कश्मीरि खंडकाव्य उपलब्ध है। श्रीवर ने महमुदगामी की कृति 'यूसुफ ज़ुलेखा' का संस्कृतानुवाद 'कथाकौतक' में किया। उसके दौर में कश्मीरी भाषा व साहित्य की काफी प्रगति हुई। इस तरह शान्तवातावरण में लोगों ने अपना समय साहित्य के निर्माण में भी लगा दिया।

उद्योगों में रुचि: ज़ैन-उल्लउब्दीन ने मध्यएशिया के विभिन्न क्षेत्रों से कुशल कारीगरों-नमदासाजों, गबसाजों, शालबाफों, कालीन बाफों आदि को बुलाया। उनके प्रयत्न से यहां ये उद्योग विकसित हुए। इसके अतिरिक्त पेपरमाशी, बोतल निर्माण, लकड़ी पर खुदाई का काम, शालों पर कढ़ाई तथा ज़री का काम, टोकरियों की बुनाई का काम भी ये सब व्यवसाय उसके दौर में कश्मीर में शुरु हुए। इस समय कालीनों आदि का निर्माण बड़े पैमाने पर होता है। इसका श्रेय बड़शाह को मिलता है।

राजदबार: बड़शाह के राज़दरबार में कवि, विद्वान, चिंतक, कलाकार आदि थे, जिनमें मल्लाअहमद, सैयद बदरउद्दीन, हैदर भट्ट, मुल्ला नादरी, मुल्ला पारसा, भट्टावतार, योद्ध भटट, मुल्लाबाकर रूमी, मुल्ला सैयद हुसैन रूमी, मुल्ला महमूद, काजी हमीदुद्दीन, मुल्ला मदेही, शेख शमसुद्दीन ज़ैनपुरी, सोम पंडित, बाबा यतीफुद्दीन, सैयद अहमद मदनी, हजरत मन्ती बेहफी उल्लेखनीय थे। मुल्ला अहमद को बड़शाह के दरबार में राजकवि की पदवी प्राप्त थी। उसने फारसी भाषा में एक वृहद् कश्मीर का इतिहास-'वाकए-कश्मीर' लिखा जो इस समय उपलब्ध नहीं है। ज़ोनराज़, मुल्लानादी और श्रीवर उस ज़माने के प्रसिद्ध इतिहासकार थे। मौलवी कबीर को सुल्तान का उस्ताद होने का आदर प्राप्त था।

शासन: बड़शाह एक निर्भीक तथा सुयोग्य शासक था। उसने प्राय: 50 वर्षों तक राज्य किया। बचपन में उसे मध्य एशिया के कुछ प्रदेशों समरकन्द, बुखारा आदि में कुछ साल बिताने का सुअवसर मिला। उन दिनों समरकंद में तैमूरलंग का शासन था। इतिहासकारों के अनुसार वह बहुत ही अत्याचारी था।



रूप भवानी की रहस्य साधना

कश्मीर की पुण्यधरा संस्कृत-साहित्य में शारदामठ तथा शारदा देश आदि नामों से जानी जाती है। इस धरती ने विविधशास्त्रों मे निष्णात, सोमानन्द, उत्पलदेव तथा अभिनव गुप्त जैसे दार्शनिक, कल्हण, जोनराज तथा श्रीवर जैसे इतिहासकार, मम्मट, कैयट रुद्रठ तथा आनन्दवर्धन जैसे आलङ्कारिक सोमदेव जैसे कथाकार, बिल्हण, क्षेमेन्द्र तथा जगद्धर भट्ट् जैसे कवियों को जन्म दिया जिन्होंने अपनी अनुपम रचनाओं से भारतीय वाङ्मय को समृद्ध किया है। संतसाहित्य लिखने की परिपाटी कश्मीर में चिरकाल से चलती आ रही है। यह लेखन प्रवाह वितस्ता के समान आज तक गतिशाील है।

मध्ययुगीन तथा आधुनिक संत परंपरा में ललद्यद, नुन्दऋषि, परमानन्द, कृष्ण जू राज़दान, रूपभवानी तथा शमसफ़कीर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। ये संत प्रत्येक युग में राजनीति से तटस्थ रहकर जन-साधराण को भारतीय संस्कृति के मूलभूत सिद्धान्तों से अवगत कराते रहे हैं। अहिंसा, भाईचारा, प्रेम, सहनशीलता तथा शान्ति का संदेश देने वाले इन्ही सन्तों में सें आध्यात्मिक चेतना की प्रतीक कवियत्री रुपभवानी का स्थान कश्मीरी साहित्य में प्रमुख रहा हैं। यहाँ पर यह कहना असंगत न होगा कि कश्मीर की उर्परा भूमि में प्रकृति ने जो मानवीय तत्त्व के बीज बोये है वे अक्षुण्ण हैं। रुपभवानी के जन्म के विषय में विद्वानों तथा इतिहासकारों में मतभेद पाया जाता है। उनमें से कुछ एक विद्वान इस विषय में मौन है जैसे आनन्दकौल बामज़ई ने 'सेंटस ऑफ कश्मीर' तथा मुशी मोहम्मद दीन फोक ने 'ख्वातीन कश्मीर' में आपके जन्म के बारे में कुछ नहीं लिखा। पं० प्रेमनाथ बज़ाज़ अपनी कृति - ('वितस्ता की कन्यायें') में लिखते हैं - उसके वश में एक अलौकिक कन्या 1624 ई० में पैदा हुई थी। शहीद सर्वानन्द कौल के मतानुसार आलिकदल निवासी प०

संसारचंद दर ने प्राय: आज से दो सौ वर्ष पहले रूपभवानी के जन्म के विषय फ़ारसी पाण्डुलिपि में इस प्रकार पद्य लिखा हैं :-

''चुनुह माह शुद गर्दिशे अखफरी
अयां कर्द अवतार ओ ईश्वरी
दुता मन ब सद हफ़्ता हफ्नाद् दर
कि अवतार ओ शुद जहां वहर वर।।''

इस फ़ारसी पद्य का अर्थ इस प्रकार है :-

''नो महीनों के बीतने पर देवी अवतरित होती है। उस समय सोलह सौ सततर (1677) विक्रमी सम्वत् होता है।'' यह पद्यात्मक पांडुलिपि श्री सर्वानन्द कौल के पास थी। श्री अवतार कृष्ण रहबर अपनी रचना – 'कॉशरि अदबुच तवॉरीख' तथा श्री अब्दुल अहद आज़ाद 'कश्मीरी ज़बान और शायरी' में रूपभवानी का आविर्भाव काल 1625-1721 ई० मानते है।

आपके पिता का नाम माघव जू दर था जो श्रीनगर में द्यदमर (सं०दीदमठ) नवाकदल में रहतें थे। माघव जू दर शैवदर्शन के प्रकाण्ड पण्डित्त थे। अत: उन्होंनें अपनी पुत्री को अपनेघर में ही शैव-दर्शन की दीक्षा दी। इसका उल्लेख रूपभवानी ने इस पद में इस प्रकार किया हैं :-

''युस ग्वर सुय छुम, सुय मोल प्रबल दीप।
प्रकाश सुय सर्वु कुलस उद्धार करुवुन।।''

जो मेरा गुरू है वह मेरा पिता है जो ज्ञान का प्रकाश है और सारे वंश का उद्धार करने वाला है ।

रूपभवनी के जन्म के विषय में एक घटना बहुत ही प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि आज से प्राय: साढ़े तीन सौ साल पहले नवाकदल में माघव जू दर सात्त्विक स्वभाव के मनुष्य थे। उसकी इष्टदेवी शारिका भगवती थी। वे प्रतिदिन ब्राह्म मुहूर्त में उठकर संध्या वन्दना के बाद शारिका पर्वत की परिक्रमा करते थे। वहां पूजापाठ में अधिक समय लगाकर घर वापिस आते थे। उनका यह नित्यनियम चिरकाल तक रहा। एकदिन उनकी अनन्य भक्ति से प्रसन्न

होकर शारिका भगवती नें उसे स्वप्न में दर्शन दिए। और उनसे कहा – ''तुम्हारी भक्ति से मैं अत्यन्त प्रभावित हुई हूं। तुम मुझ से वरदान मांगो। मैं आपकी इच्छा पूरी करूंगी।'' देवी की कृपा से प्रसन्न होकर माधवजू ने हाथ जोड़ कर कहा – देवी! यदि आप मुझ पापी पर अनुग्रह करना चाहती हैं तो आप मेरे घर में जन्म लेकर मेरी हार्दिक इच्छा पूर्ण करें। मैं कन्या के रूप में आप का पालन - पोषन करूंगा।'' तब एक दिन देवी ने हारी पर्वत की अधित्यका में अपने प्रिय भक्त माधव जू को अपना साङ्गोपाङ्ग दर्शन दिया और कहा - तथास्तु।

कालान्तर नौ मास के बाद ज्येष्ठ पूर्णिमा को प्राय: आज से तीन सौ सत्तर वर्ष पहले शारिका देवी ने माधवजू के घर में जन्म लिया। उसका नाम वर्प (सं० रौप्यं) रखा गया। इस संस्कृत रौप्य का रूप बिगड़ता- बिगड़ता कश्मीरी, भाषा में 'बर्प' बन गया। बाद में यह नाम अनेक नामों – अलखेश्वरी, वर्पभवानी, र्वपुद्यद आदि नामों से प्रसिद्ध हुआ। रूपभवानी जब बड़ी हुई ती उसका विवाह हब्बाकदल के सपरू कुल में हीरानन्द सपरू के साथ हो गया। हीरानन्द मूर्ख था। वह पत्नी की हर बात पर बिगड़ता था। उसकी सात्विक वृत्ति उसे पसंद नहीं थी। भला तामसिक वृत्ति वाले का सात्विक वृत्ति वाले के साथ कैसे निर्वाह हो सकता ? रूपभवानी की सास कर्कश स्वभाव की थी वह हमेशा बहू से दुव्यवहार करती थी। लेकिन साध्वी रूपभवानी सब कुछ सहन करती थी। आदर्श गृहिणी की तरह वह सभी के साथ अच्छा व्यवहार करती थी। उसके मन में किसी के प्रति द्वेषभाव नहीं था। सुख तथा दु:ख में तथा मान अपमान में वह कभी भी मानसिक संतुलन नहीं खोती थी। यह सिद्धों तथा योगियों की चरम दशा मानी जाती हैं। वस्तुत: वह धैर्यवान मल्लाह की तरह भवसागर से पार होना चाहती थी। वह जितेन्द्रिय थी। उसके जीवन के संबन्ध में अनेक घटनायें प्रसिद्ध हैं। एक बार उसके ससुराल में एक उत्सव था। इस सुअवसर पर सामाजिक रीति के अनुसार रूपभवानी के मैके वालो ने खीर की एक बड़ी देगची उसकी ससुराल में भेजी। केवल मात्र एक ही देगची को

देखकर रूपभवानी की सास क्रोधित हुई और सोचने लगी कि यह एक देगची तो बहुत कम है, मैं सगे सम्बन्धयों को क्या बांटू और खुद क्या खाऊं। इस विचार से उसने अपनी बहू को बुला कर बुरा भला कहा। तब वह बोली, आप इस खीर को बांटिए। यदि इससे सब बन्धुजन आदि प्रसन्न नहीं होंगे तो मुझे यथोचित दंड दीजिए। यह सुनकर देगची कंधे पर उठाकर सास सारे मुहल्ले वालों में खीर बांटने लगी। भगवती की कृपा से वह देगची खाली न हुई। देगची मानो अन्नपूर्णा का प्रसाद थी। शारिका देवी ने उसकी आन रखी। बाद में सास ने देगची में खीर की मात्रा देखी। उसमें खीर न थी। देगची को मांज कर सास ने कहा – यह देगची जल्दी मैके वालों को भेज देनी चाहिए। हब्बाकदल से नवाकदल काफी दूर है। कहा जाता है कि रूपभवानी देगची लेकर वितस्ता के घाट पर गई। वहा उसने मीन पद्मासन पर आरूढ़ वितस्ता का अंजली बांध कर ध्यान किय और उससे प्रार्थना की - हे वितस्ता मां! इस खाली देगची को मेरे मैके पहुंचा देना। उसके भक्तिभाव से संतुष्ठ होकर मीनासन पर बैठी वितस्ता भगवती ने उसे दर्शन दिया और कहा – भवानी! तुम इस विषय में निश्चिन्त रहो। यह कह कर वह अन्तर्ध्यान हुई। अन्त में भगवती की कृपा से देगची दरिया में बहती हुई रूपभवानी के मायके घाट तक पहुँच गई। कहते हैं कि उस समय माधव जू सायंकाल के समय संध्यावन्दना के लिए वितस्ता पर गये थे। अकस्मात् उनकी दृष्टि पात्र पर पड़ी। वितस्ता के जल में से देगची को उठाकर वे घर ले आये। इस तरह उसकी आध्यात्मिक शक्ति को मूर्ख ससुराल वाले जान न सके। उसके मन में दीप्त अलौकिक आलोक से रूपभवानी के घर का वातावरण आलोकित न हुआ।

दूसरी चमत्कारिक घटना उसके विषय में यह कही जाती है कि एक दिन उसके ससुराल में एक उत्सव था। उनके कुलगुरू जो संस्कृत तथा कर्मकाण्ड के धुरंधर विद्वान थे, पूजा-पाठ के लिए आये। पूजा समाप्त करके वह भोजन किये बिना ही घर जाने लगे। उसी समय रूपभवानी की नज़र उन पर पड़ी। उसने कुलगुरू को अनुनय किया – गुरु देव! आप थके हुए लगते

है। आप वितस्ता में स्नान करके आइये इससे आपकी थकावट दूर हो जायेगी। कुलगुरू उसके कहने के अनुसार वितस्ता में नहाने चले गए। नहाकर वह वहीं लौटे! रूपभवानी ने उन्हें भोजन के लिए पुन: प्रार्थना की। भोजन करने के उपरान्त रूपभवानी की शक्ति से उनकी भूख खुल गई। फलत: वह रूपभवानी की स्तुति करने लगे। इस चमत्कार को देख कर सारे ससुराल वाले दंग हो गए।

अंत में ससुराल के विषैले वातावरण तथ सास की कटूक्तियों से तंग आकर वह गृहस्थ छोड़ कर आध्यात्मिक शान्ति की खोज में वन में चली गयी। कहते हैं सब से पहले वह चश्माशाही के समीप चश्मासाहिबा में साधना करने लगी। इस स्थान पर बारह वर्षों की साधना के उपरान्त वह 'वुतरान' चली गई। वहां भी उसने प्राय: बारह वर्षों तक साधना की। किंवदन्ती है कि यहां पर सदा एक गाय आती थी जो अपना दूध उसे पिलाती थी। ऋषियों की तरह रूपभवानी इसी पर समय बिताती थी। इसके बाद वह मणिग्राम (क.मनिगांव) चली गई। वहां वह कन्दमूलों तथा हन्द का आहार करती थी। 'अहोर कॅर्यज़्यव उपल हाकस तु हन्दे' अर्थात् उपल साग तथा हन्द (सं० ष्यन्दा - एक प्रकार की जंगली सब्ज़ी) का आहार करे। नुन्द ऋषि की सूक्ति उसपर चरितार्थ होती है। जनश्रुति के आधार पर वह मणिगाव में बहुत लोकप्रिय हुई। वहां उसने दिव्य चमत्कार दिखाए जिनसे उसका यश सारे क्षेत्र में उत्तरोत्तर बढ़ने लगा। बारह वर्षों केबाद वह वहां से 'लार' नामक गांव चली गई। जहां एक दिन उसका एक विख्यात संत शाह सादिक कलन्दर से साक्षात्कार हुआ। संयोगवश इन दो महान् विभूतियों का आपस में इस प्रकार आध्यात्मिक संवाद हूआ :-

शाहसादिक कलन्दर	-	तुम्हारा नाम क्या है?
रूपाभवानी	-	र्वपं (चांदी)।
शाह कल०	–	आओ तुझे सोना बनाऊं।
रूपाभवानी	–	तुम आ जाओ। तुझे म्वख्त

(सं० मुक्ता) बनाऊं अर्थात् मुक्ति दूँ।

यह सुनकर शाह सादिक नें पुनः पूछा - यह कैसा रंग?

रूपाभवानी - जाग सुरटुन, मु ज़ेठ (जागो, उसका दामन पकड़ो, ज़्यादा बाते मत करो)

कहते है कि रूपाभवानी की आध्यात्मिकता से शाहकलन्दर बहुत प्रभावित हुए। यह संलाप एक नाले के आर पार उनमे हुआ था। बाद में लार छोड़ कर वह योगिनी बोकुर (सं वासुकि राजा) नामक गांव चली गई। अनेक वर्षों तक साधना करके वह उस अवस्था में जा पहुंची जहां द्वैत नहीं रहता। जहां अहमिदम् अर्थात् मैं और यह समाप्त हो जाता है।

एक घटना के अनुसार रूपाभवानी के अनुग्रह से 'वास्कुर' में एक मुसिलम औरत के जन्मान्ध पुत्र के नेत्रों में ज्योति आ गई। वहां उसने मस्लिम औरत से कुंआ खुदवाया। वह कुआं अमृत कुण्ड के नाम से अब प्रसिद्ध हैं। प्रतिवर्ष मलिक वंश के लोग रूपभवानी की पुण्य जयन्त्री, पर इस कुण्ड से अमृत समान पानी निकाल कर यात्रियों को पिलाते है। हिन्दू और मुस्लिम अपनी अपनी श्रद्धा से यह पर्व मनाते है।

वाकुर में रहने के बाद वह अपने मैके द्यदमर वापिस चली गयी। अन्त में वह एक शती बाद 1721 ई० में अपना पंच भौतिक शरीर त्याग कर ब्रह्मलीन हो गयी ।

इसके नाम पर 1990 विक्रमी सम्वत् में श्रीनगर में 'अलखेश्वरी साहिबा ट्रस्ट' स्थापित हुआ है। इस ट्रस्ट के संस्थापक सदस्यों में से स्वर्गीय श्री प्रेमनाथ दर का नाम उल्लेखनीय है। इस ट्रस्ट के तत्वावधान में प्रतिवर्ष वास्कुरि नामक गांव में भाद्रपद में और नवाकदल में माघ के महीने में 'साहिब सत्तम' साहिबों की सप्तमी बड़ी धूमधाम से मनाई जाती है। इन दिनों बड़ा यज्ञ भी होता है और हज़ारों लोग उस दिन श्रद्धा सुमन वहां अर्पित करते है ।

सब से पहले रैणावारी निवासी श्री केशव भट्ट ज्योतिषी ने रूपाभवानी के पदों का संशोधन तथा संपादन किया। इसके विषय में लोगों को बहुत कम

ज्ञान है। बाद में डॉ० शिवनाथ शर्मा ने रूपाभवानी के पदो का संपादन देवनागरी लिपि में किया। अब तक इस कवियत्री पर अनेक भाषाओं में पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। यदि इन पर शोध किया जाए तो अनेक भाषावैज्ञानिक तथ्य हमारे सामने प्रकट होंगे।

रूपाभवानी के पदों के अध्ययन से पता चलता है कि उन्हें विविध शास्त्रों का ज्ञान था। शैवदर्शन, वेदांत योग आदि दर्शनों से वह परिचित थी। उत्तराधिकार में प्राप्त शास्त्रों का अध्ययन करके वह अपने गुरू अर्थात् पिता से भी कहीं आगे थी। उसकी शैली समकालीन साहित्यकारों से भिन्न भिन्न है। पद विन्यास में वैदुष्य तथा परिपक्वता है। कुछ पदों में दुरूहता भी नज़र आती है अपने पदों में उसने ऐसे रहस्य उदघाटित किए है जिन्हें सामान्य रूप से संस्कृत के ज्ञान के बिना विशेष रूप से दर्शन ज्ञान के बिना समझना बहुत ही कठिन है। सम्भवत: दुरूह शैली के कारण कहीं कहीं नीरसता आ गई हैं। इसके सारगर्भित पदों में संस्कृत के तत्सम तथा तद्भव आदि रूप मिलते है। इसके अतिरिक्त फ़ारसी तथा अरबी शब्दवली भी पाई जाती है।

''ओम ग्वर अन्तर तत् न्यर्मलम्
शुद्ध अत्यन्त विद्या धरम्।
लल्ल नाम लल्ल पदमा स्वरम्
शिव माधव नाहम् परब्रह्या सोहम्।।''

अर्थ:- ओंकार रूपी निर्मल गुरू (ब्रह्म) मेरे मन में विद्यमान है। वह शुद्ध तथा ज्ञान रूप है। पद्मानपुर की लल्ला देवी का मैं स्मरण करती हू (परम योगिनी के कारण वह लल्लद्यद के स्मरण करती थी) न मैं शिव हू न विष्णु। मैं वही निराकार परम ब्रह्म हूं। वेदान्त के अनुसर - अहं ब्रह्मास्मि मैं ब्रह्म हूं। इसका प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता हैं।

इसका दूसरा पद द्रष्टव्य हैं :-

''सो अन्दर न्यबर प्रथ दीशन
कंद्यो दीशन गारान लोस्तूह द्रह

ज़्यथ थाव मरिस अंदर शु (छु, एशाने)
दिशन वॅलिथ दिवस स्नेह।।''

अर्थ:- वह शिव चारों दिशाओं अर्थात् कण-कण में व्याप्त है। अरे मूर्ख! उसके ढूंढते ढूंढते दिन ढल गया। तुम याद रखो। वह शिव तुम्हारे मन में ही हैं। वह किसी दिशा में छिपा हुआ नहीं हैं और सर्वव्यापक हैं।

वास्तव में जीव (मनुष्य) उसी प्रकार ईश्वर को बाहर ढूंढता हैं जिस प्रकार हिरण। मगर उसे यह मालूम नही कि जो सुगन्ध उसे आती हैं वह तो उसकी नाभि में ही विद्यमान हैं। परम शिव को बाहर ढूंढता हैं। शैवदर्शन कें अनुसार प्रमाता (Subject) परम शिव का ही अनुरूप हैं। अपने आप को पहचान कर जीव शिव का वास्तविक तत्व जान सकता हूँ। 'आत्मप्रत्यभिज्ञा' यानि अपनेआपकोपहचानना ही शैवदर्शन का अमूल्य उदाहरण हैं।

''बाग़ु च़ायस भागि आयस, परमु सारस नारस नरस,
शरण आयस लल्लीश्वरस, ग्वरस माधवा शिवस,
सीवदीवस साकारस निराकारस, अन्तर किस सतम् प्रतस्।।''

अर्थ:- परमसर से अर्थात् अमृतकुण्ड से या स्त्रोत से निकल कर मैंने जिस समय संसार रुपी उद्यान में पदार्पण किया यानी जन्म लिया, बाद में अङ्गार समान अर्थात् क्रोधी मनुष्य के साथ मेरा विवाह हुआ। कलान्तर मैं शिव रुपी माधव जू यानि अपने पिता की शरण में आ गई। मैंने निराकार तथा साकार ब्रह्म की उपासना की। वेदान्त कें अनुसार ब्रह्म का लक्षण - सत् चित् आनन्दं ब्रह्म है। अर्थात् ब्रह्म सत् रूप तथा आनन्द रूप है। सत् चित् आनन्द उनके पदों में से झलकता है। योग दर्शन का यह उदहारण ध्यातव्य है :-

''शुद्ध युक्त मूलाधारी कुण्डिलनी मण्डली गौरी
सिद्धी सूक्ष्मी सुषुप्ति चक्र विरक्त शानमधारी।
ईश्वरी तुर्यातीत परमानन्दी अर्न्तमुखो,
दृष्टि निर्वाण रहस्य तती परमागती।।''

जीव योगाभ्यास से कुण्डलिनी को जागृत करके तीन अवस्थाओं को

पार कर के अर्थात् जागृतावस्था सुषुप्ति एंव तुर्या दशा को पार करके तुर्यातीत अवस्था को प्राप्त करता है। तुर्या दशा वास्तविक आत्मसाक्षात्कार की आनंदमयी दशा हैं विज्ञानाकल से आरम्भ होकर अकलप्राणीतक इसका उत्तरोत्तर विकास होता है। तुर्यातीत वह परम स्थिति है जिसके भीतर तुर्या से चारों अचस्थाओं का उदय और लय होता है।

ऊपरोक्त उदहारणों से स्पष्ट है कि रूपभवानी का दर्शन मनन बहुत गम्भीर था। उनकी रचना का उद्देश्य भौतिकवाद से लोगो का ध्यान हटाकर सत् अर्थात् आध्यात्मिक की ओर आकृष्ट करना था। वस्तुत: टिमक के बिना विश्व में शांति नहीं हो सकती। आजकल के इस आणिवक युग में आध्यात्मिक ज्ञान की अत्यन्त आवश्यकता है। इसी से विश्व का कल्याण हो सकता है। नि:सन्देह, रूपभवानी के रचनात्मक योगदान से कश्मीर चिर काल तक/चिर ऋणी रहेगा।



भारतीय संस्कृति के पोषक तथा संरक्षक

(भाग 1)


स्व० केशव भट्ट

(इस लंबे लेख के प्रथम भाग में आपने पढ़ा कि ज्योतिषाचार्य स्व० केशव भट्ट का जन्म रैनावारी श्रीनगर में संवत् 1930 (1873 ई.) मे पं संतराम ज्योतिषी के घर में हुआ जो महाराजा प्रतापसिंह के दरबार में राजपंडित थे। घर में ही शिक्षा पाने के कारण कर्मकांड, ग्रह लाघव तथा लीलावती में वे बचपन में ही निष्णात हो गए। 'नुनर' की सरकारी पाठशाला में उनकी नियुक्ति हुई। वे गणित तथा पूजा पाठ में हमेशा व्यस्त दिखाई देते थे।)

यजमानवृत्ति पर चलने वाले कर्मकाण्डी ब्राह्मणें की दशा उस समय बहुत ही नाजुक थी। उनके पास कर्मकाण्ड सम्बन्धी ग्रन्थों का अभाव था। यदि किसी के पास कोई आदर्श (पुस्तक) होता था, ज़रूरत के समय वह दूसरे ब्राह्मण को नहीं देता था। उसका मुख्य कारण यह था कि यदि पुस्तक लेने वाला ब्राह्मण पुस्तक देने वाले ब्राह्मण को समय पर पुस्तक न देता, उसको काफी परेशानी होती, क्योकि उसकी रोज़ी रोटी का प्रश्न था। यजमानवृत्ति के बिना उसको उससमय कोई आर्थिक साधन नहीं था। अत: वह पुस्तक देने से इन्कार करता थ। यह सब पं केशव भट्ट ने पैनी नज़र से आंका तथा इसका उपाय सोचने लगा। बाद में उन्होने 'कृष्णा प्रिंटिग प्रेस' श्रीनगर में लगाया। वहाँ पुस्तकों का मुद्रण शुरू हुआ। उस समय कर्मकाण्डी पुस्तकों का देवनागरी लिपि में अभाव था, क्योंकि हस्तलिखित संस्कृत पुस्तकें शारदा लिपि में थी। अत: उन्होने पहले इन पुस्तकों का नागरी में लिप्यन्तरण किया। बाद में संशोधन करके इन्हे छपा दिया। इसी समय उन्होने पंडितों के घर जाकर

पांडुलिपियां संगृहीत कीं। कुछ पांडुलिपियां उन्होने दान के रूप में प्राप्त की, कुछ पांडुलिपियां खरीदी। इस प्रकार योजना बद्धरूप से अमुद्रित पुस्तकें समय समय पर छपाकर ब्राह्मण समाज का उद्धार किया। वह स्वयं इन पुस्तकों का प्रूफ-संशोधन (Proof reading) करते थे। दिन रात इस राष्ट्रीय कार्य में जुट कर ही खाना खाते थे। मुझे एक बार चाचा जी (पं० नाथराम कल्ला शास्त्री, प्राध्यापक, हिन्दू कालेज, वर्तमान एस पी कालेज) ने कहा कि एक बार मैं माघ के महीने में पं केशव भट्ट के सख्त बीमार होने पर उनकी स्वास्थ्य दशा जानने के लिए उनके घर गया था। बर्फ काफी पड़ रही थी। पं केशवभट्ट ने कमरे की खिड़कियां बंद की थी और कमरे में दिया जलाया था। दीपाधार (कश्मीरी-दुप्ज़ूर) के नीचे वह शिवरात्रि पूजा का संशोधन कर रहा था। यह देखकर मै हैरान हो गया, मैं ने सोचा यह एक अलौकिक व्यक्ति है तथा दिव्य पुरुष है दायें बायें मैने वहाँ केवल पुस्तकों का भंडार देखा। ताक पर वेद, उपनिषद, धर्मशास्त्र तथा ज्योतिष ग्रंथ थे। मेरे विचार से यही उनकी वास्तविक पूंजी थी। यही किताबें उनकी अक्षय निधि थी। इन्होने ही आज तक उनको अमर बना दिया।

उनकी संशोधित तथा संपादित पुस्तकें :-

1. शिवरात्रि पूजा विधिः, 2. भवानी सहस्त्रनाम, 3. शिव पूजाविधिः
4. नित्यकर्मविधिः, 5. वटुकपूजाविधिः,
6. पार्थिवेश्वर पूजाविधिः, 7. वेदकल्पद्रुमः
8. श्राद्धविधिः (श्लोक तर्पण, गोप्रदान तथा छत्रदान सहित)
9. उपनयन संस्कार आदि।

इनके अतिरिक्त उन्होने सरस्वती वंदना तथा रुपभवानी की स्तुतियाँ भी संस्कृत में लिखीं। 'बृहतरत्नाकर' नामक पुस्तक में उन्होंने अनेक स्तोत्रों को संग्रहरूप में प्रकाशित किया। मुकुन्दजुव पड़रु की माता (ज़ूनद्यदी) की श्रद्धाजंलि संस्कृत पद्यों में लिखी। उन्होंने अपना नश्वर शरीर 2006 विक्रम संवत् में छोड़ दिया। उनके निधन से कश्मीरी समाज को जो क्षति हुई, उसको

इस युग में कौन पूरा करसकता है? इस पर प्रश्न चिन्ह लग गया है। मेरे मत से ऐसी महान विभूति कभी पैदा नहीं होगी।

सात्त्विक प्रकृति के साथ साथ वे धार्मिक प्रकृति के महर्षि थे। उन्होने महागायत्री के तीन पुरुषचरण किये तथा उसके साथ चौबीस लाख महागायत्री का जाप भी किया। कश्मीर मंडल में उन्होने सबसे पहले चार वेदों का हवन तथा प्राजापत्ययज्ञ पंद्रह दिनों तक अपने घर में किया। इस अनुष्ठान में लब्ध प्रतिष्ठित तंत्र तारकों को आंमत्रित किया गया। आपने आपने जीवन में तीन बार हारी पर्वत की परिक्रमा के रूप में तीन चन्द्रकलाओं की साधना की जिससे उनकी वाक् सिद्धि हुई। इसकी जानकारी मुझे कर्णनगर निवासी श्री कृष्णजी हण्डू ने दी।

कालान्तर उनका यश भौगोलिक सीमाओं का अतिक्रमण करके बनारस तक पहुंचा। उसका मूलकारण उनका 'पञ्चाङ्ग' था। वे प्रतिवर्ष 'पञ्चाङ्ग' भारत के विभिन्न प्रदेशो में बेचे जाते थे। कहा जाता है कि एक बार उन्होने अपने 'पञ्चाङ्ग' में सूर्य ग्रहण लगने का जो समय दिया था, बनारस के ज्योतिषियों ने उस समय को चुनौती दी। ताकि उनकी गणना को अशुद्ध सिद्ध करने का प्रयत्न किया बाद में इस विषय पर परस्पर वाद विवाद हुआ। पं० केशव भट्ट ने ग्रहण के काल निर्धारण में अपना सिद्धान्त तथा अपनी गणना प्रमाणों द्वारा सिद्ध कर दी। इस प्रकार उन्होने बनारस के विद्वन्मण्डल को परास्त कर दिया। बाद में वे उसकी प्रशंसा करने लगे, उससे ज्योतिर्विज्ञान में उनकी प्रतिभा का अलौकिक परिचय मिलता है। धन्य हो, ऐसे कश्यप ऋषि के पुत्र रत्न को जो इस समय भी दिशाहीन लोगों को अपने ज्ञान के आलोक से आलोकित करता है। भर्तृहरि की यह सूक्ति उनके जीवन पर पूर्णरूप से चरितार्थ होती है।

''नास्ति तेषा यश: काये जरामरणजं भयम्।'' उनके यशरूपी - शरीर को बुढ़ापे तथा मरने का कोई भय नहीं है वे अजर अमर है।

ज्योतिषी जी केशवभट्ट मेरी दृष्टि में महर्षि थे। त्रिकालदर्शी, मेधावी,

तेजस्वी, परोपकारी, समाज सुधारक तथा कर्मयोगी थे। श्रीमद्भगवत् गीता में योग का लक्षण 'योग: कर्मसु कौशलम्' दिया गया है। यानी अपने कर्म में जो प्रवीण हो, वह योगी कहलाता है। यह सूक्ति उनपर पूर्णरूप से चरितार्थ होती है। ज्योतिषी जी सदा अपने काम में लगे हुए होते थे। जीवन के अन्तिम क्षण तक उन्होने निष्काम कर्म योग को नही छोड़ा था। गीता जी के सिद्धान्तों पर वे चलते थें। वे कर्म फल की इच्छा के बिना कर्म करते थे। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।' कर्म करना उनका जन्म सिद्ध अधिकार था फल की प्रप्ति उनके सामने तुच्छ थी। उन्होंने पुस्तक का मुद्रण, संपादन तथा प्रकाशन व्यवसाय की दृष्टि से नहीं किया था, अपितु 'बहुजनहिताय तथा बहुजन सुखाय' किया। परोपकार की भावना उनमें कूट कूट कर भरी हुई थी। वे युग दृष्टा थे, युग पुरुष तथा युगचालक थे। उनकी वाणी में चुम्बक की तरह आकर्षण था। उनका मुख मंडल ओज तथा तेज से भरा हुआ था उससे दिव्य प्रकाश टपकता था। ऋषिकल्प उनका जीवन था। वे मनसा वाचा कर्मणा समाज तथा राष्ट्र की सेवा में लगे हुए थे। यद्यपि उनके बहुआयामी व्यक्तित्व पर लिखना मेरे लिए इस लघु लेख में संभव नही है, तथापि मै उनके व्यक्तित्व से प्रभावित हुआ हूँ। पं० गोविन्द भट्ट शास्त्री ने ज्योतिषी केशव भट्ट के जीवनचरित्र के विषय में संस्कृत में अनेक पद्य लिखे थे, उनका हिन्दी अनुवाद भी उन्होंने किया था।

मुझे आशा है कि पाठकगण ज्योतिषी जी के कृत्तित्व से परिचित होंगे तथा उनके कर्मठ व्यक्तित्व से प्रेरणा पाकर अपनी संस्कृति की रक्षा करेंगे।

अंत में मेरा सुझाव ज्योतिषी जी के बारे में इस प्रकार है।

1. ज्योतिषी जी की स्मृति में स्मारक के रूप में एक भव्य भवन का निर्माण किया जाये जहाँ धार्मिक पुस्तकों के अध्ययन अध्यापन की व्यवस्था हो।
2. उनकी जयन्ती के अवसर पर सेमिनारों का आयोजन हो, जहाँ उनके व्यक्तित्व तथा कृतित्व पर प्रकाश डाला जाये।
3. उनके धार्मिक साहित्य को प्रदर्शन समय समय पर होना चाहिए।

4. उनकी अमुद्रित पुस्तको का पुन: मुद्रण समय की मांग है। इसमें यदि मेरे सहयोग की आवश्यकता हो, उसके लिए मैं तैयार हूँ। हमारा कश्मीरी समाज उनका बहुत ही ऋणी है। अत: उनका यह ऋण चुकाने के लिए उक्त सुझावों पर अमल उनके प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि है। ऐसी मेरी धारणा है। पं० केशव भट्ट को पद्य पुष्पाञ्जलि :-

1. वन्दे सन्तं कश्यपपुंत्र, केशवभट्टं वन्दे।।
2. अजरममरं, विबुधवरेण्यम् (श्रेष्ठम्) भारतमातु: वरंद पुत्रं, वन्दे।
3. युग सृष्टारं युगदृष्टारं, युगचालकं वन्दे।।
4. कविजनपूज्यं बुधजनपूज्यं योगिजनवन्द्यं वन्दे।।
5. सत् स्वरूपं, चित् स्वरूपं आनन्दरूपं वन्दे।।
   वन्दे।।

ऐसे युग प्रवर्तक ज्योतिषाचार्य के चरण कमलो को मेरा कोटिश: नमन।।



पुस्तक संदर्भ :-

1. बिल्हणकृत विक्रमाङ्कदेवचरितम् सम्पादित डॉ० बुह्लर।
2. विश्व संस्कृत शताब्दी ग्रन्थ: जम्मू व कश्मीर राज्य भाग: (आस्य शतकस्य संस्कृत विद्वांस:) इस शती के 1866-1966 ई० तक के संस्कृत विद्वान) इस भाग का लेखक - डॉ० बदरीनाथ कल्ला शास्त्री। देखिए पृष्ठ नं० - 380-381
3. मध्य एशिया का इतिहास: डॉ० बैजनाथ।
4. हिन्दी शीराज़ा (मध्य एशिया को कश्मीरा के बौद्ध विद्वानों की देन-लेखक-डॉ०बदरीनाथ कल्ला, प्रकाशक-जम्मू व कश्मीर कलचरल अकाडमी, जम्मू।
5. संस्कृत साहित्य का इतिहास: वाचस्पति गैरोला।
6. जोनराजकृत राजरङ्गिणीसम्पादित प्रो० श्रीकंठ कौल।।

भारतीय संस्कृति के पोषक तथा संरक्षक

(भाग 2)

''नौम्यहं कश्यपपुत्रं केशवभट्ट नामकम्।
दैवज्ञज्ञाननिपुणं वेदविद्याविशारदम।।''

अर्थः- मैं ज्योतिष ज्ञान में माहिर, वेद-विद्या में विशारद, महर्षिकश्यम के पुत्र केशव भट्ट को प्रणाम करता हूं।

कश्मीर प्राचीन काल से सारे विश्व में प्राकृतिक संपदा के लिए ही नहीं, अपितु साहित्यिक संपदा के लिए भी प्रसिद्ध रहा। प्राकृतिक संपदा तथा साहित्यिक संपदा के समन्वय के कारण इसकी यशरुपी पताका हज़ारों वर्षो के बाद इस समय भी सारी दुनिया में फहरती है। कश्मीर प्राचीनकाल में संस्कृत का प्रधान केन्द्र माना जाता था, तभी तो यह शारदा-पीठ (Seat of learning) के नाम से विश्व में विख्यात था। संस्कृत वाङ्मय में इसका नाम शारदा मठ तथा शारदा देश भी पाया जाता है। राजतङ्णीकार कल्हणके समकालीन, कवि बिल्हण ने अपने महाकाव्य विक्रमाङ्कदेव चरित में अपनी 'मातूभूमि-कश्मीर' के विषय में इस प्रकार अपने उद्गार प्रकट किये हैः-

''सहोदर; कुङ्कमके सराणां भविन्त नूनं कविता विलासः।
न शारदादेशमपास्य दृष्टस्तेषां यदन्यत्रमया प्ररोहः।।''

अर्थात् कविता का तथा केसर का समन्वय मैंने काश्मीर के बिना कहीं नहीं देशा है। जहां कविता का विलास है वहां केसर नही है, जहां केसर है वहां कविता का विलास नही है, लेकिन कश्मीर में प्राकृतिक सम्पदा के साथ साहित्यिक संपदा का अद्भुत समन्वय है।

कश्मीर संस्कृत का मुख्य पीठ होने के कारण विश्व का आकर्षण-केन्द्र रहा था। इसी कारण विदेशों से भी लोग यहां आकर धुरंधर आचार्यो से विविध विषयों की शिक्षा प्राप्त करते थे। मध्य एशिया के इतिहास से ज्ञात

होता है कि तिब्बत (सं० त्रिविष्टुप) से आकर कुमार जीव ने यहां गुणवर्मन नामक आचार्य से शास्त्रों का अध्ययन किया था। इसी प्रकार सातवी शती में चीनी यात्री ह्यून सांग ने जयन्द्र विहार (यह विहार श्रीनगर में जामा मस्जिद के पास था) में दो वर्षो तक रह कर बौद्धग्रन्थों का गंभीर अध्ययन किया। आठवी शती में आदि गुरु शंकराचार्य ने 'सौन्दर्य लहरी' की रचना की जिसमें उन्होने शैवमत से प्रभावित होकर शिव तथा शवित की आराधना की। मंगलाचरण के रुप में सौन्दर्य लहरी का प्रथम श्लोक :-

''शिव: शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्त:
प्रभवितुं न चेदेवं देवी न खलु-कुशल: स्पन्दितुमपि० ।।''

शिव शक्ति ही इस ब्रह्ममान्ड को पैदा करने में समर्थ हैं। अन्यथा वह (शिव) शक्ति के बिना एक क्षण में भी टिक नहीं सकता। इसका ज्वलन्त प्रमाण ही शंकराचार्य को शारदा विश्वविद्यालय की ओर से सर्वलक्षण की उपाधि प्रदान की गई ऐसी जन श्रुति इस समय भी इस मत की पुष्टि करती है। **वस्तुत:** - भारतीय संस्कृति तथा संस्कृत का प्रधान केन्द्र होने के कारण कश्मीर साहित्यिक गतिविधियों का केन्द्र रहा था। यहां समय समय पर साहित्यिक सम्मेलनों का आयोजन भी होता था। कुषाण वंश के सुप्रसिद्ध सम्राट कनिष्क के समय में यहां बौद्धो का विराट् सम्मेलन (चौथा सम्मेलन) नागर्जुन की अध्यक्षता में कनिष्कपुर में (वर्तमान-कॉनिसपोर) हुआ था जिसमें भारत के प्रदेशों से विविध शास्त्रों में निष्णात विद्वान सम्मिलित हुए। यहां उन्होनें बौद्ध ग्रन्थों को जटिल व्याख्या का सरलीकरम किया तथा उन्हें ताम्रपट्टों पर उत्कीर्ण करके भूगर्भ में रख दिया। यहां से वे आचार्यगुणवर्मन विमलाक्ष, पुण्यत्राता, धर्मयश, कुमार जीव आदि मध्य एशिया के विभिन्न प्रदेशों में जाकर महायान बौद्धधर्म का प्रचार करने लगे। बारहवी शती में कवि कल्हण के समय महाकवि मंख ने विद्वत परिषद का आयोजन किया, जिसमें कल्हण के अतिरिवत अन्य विद्वानों ने भी अपनी अपनी रचनायें पढ़कर सुनाई। इसका वर्ण मङ्ख रचित श्री कंठचरितम में विस्तृतरूप से मिलता है। इसके अतिरिकत

भारत के विभिन्न प्रदेशों से यहां पढ़ने के लिए विद्यार्थी आते थे। इसका उल्लेख क्षेमेन्द्र रचित देशोपदेश तथा नर्ममाला में है।

शारदा देवी की कृपा से यहां ऐसे साहित्यकार लेखक, कवि, दर्शनिक कथाकार, इतिहासकार, अलङ्कारिक आदि पैदा हुए जिसकी कालजयी रचनायें इस समय भी समूचे विश्र्को आश्चर्य चकित करती है। साहित्य की विभिन्न विधाओं में लिखने का श्रेय कश्मीर के साहित्यकारों को ही मिलता है। मेरे मत से आठवी शती से बारहवी शती का युग कश्मीर का स्वर्णयुग माना जाना चाहिए। इस स्वर्ण युग में - वाग्देवी के अनुग्रह - से आचार्य वसुगुप्त, सोमानन्द, उत्पलदेव आचार्य अभिनवगुप्तस तथा क्षेमराज जैसे शैवदर्शन के मर्मज्ञ पैदा हुए जिन्होनें वेदान्त, सांख्य तथा बौद्ध दर्शनों का खंडन करके एसे दर्शन विश्व को दिया जो त्रिकदर्शन, शैव दर्शन तथा प्रत्यभिज्ञा दर्शनों के नामों से प्रसिद्ध है।

संस्कृत विद्वानों की नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के कारण कश्मीर विद्वानों का पारखी था। कवि श्री हर्ष ने अपना महाकाव्य-नैषध चरित कश्मीर के विद्वानों के पास गुण-दोष परक्षिण के लिए भेज दिया था। उनमें अलङ्कारशास्त्र के मर्मज्ञ मम्मटाचार्य भी थे। चौदह विद्याओं में पारंगत कश्मीरी विद्वानों ने इस रचना की भूरि-भूरि प्रशंसा की जिसका उल्लेख श्रीहर्ष ने नैषधचरित मे इस प्रकार किया है :-

कश्मीरैर्महिते चतुर्दशतयीं विद्यां विद्वदभि: ।।

मध्य युग में अर्थत चौदहवी शती में मुस्लिम संस्कृति के प्रभाव से संस्कृत को काफी धक्का लगा। यवनों के प्राय: पांच सौ वर्षो तक शासनकाल के दौरान कश्मीर में फारसी भाषा राज्यभाषा के पद पर प्रतिष्ठित हुई। फलत: संस्कृत के स्थान पर फारसी भाषा का प्रचार उत्तरोत्तर बढ़ने लगा। इन युगों में शाहमीरी युग,चकयुग, पठानयुग तथा मुगलयुग में कट्टरपंथी यवन-शासकों ने संस्कृत के स्त्रोत को नष्ट करने की भरसक कोशिश की, लेकिन वे इस अपवित्र उददेश्य में सफल न हुए। वैदिक-काल से बहता हुआ यह अक्षय स्त्रोत (Source) वितस्ता के प्रवाह के समान निर्बाधरुप से घाटी में चलता

रहा। आधुनिक युग में यानी डोगरा शासन काल में संस्कृत का प्रत्येक रुप में विकास हुआ। इस भाषा के बहुमुखी विकास के लिए महाराजा रणवीर सिंह तथा प्रतापसिंह ने अनेक उल्लेखनीय कदम उठाये। जम्मू में रघुनाथ संस्कृत महाविद्यालय को तथा श्रीनगर में राजकीय संस्कृत पाठशाला को स्थापना की। इसके अतिरिवत प्रत्नविद्या विभाग (रिसर्च विभाग) की महाराज प्रताप सिंह के शासन कालमें स्थापना हुई। विस्तार भय के कारण अन्य कार्यो पर प्रकाश डालना यहां संभव नही है। 1947 ई० में स्वतंत्रता के बाद कश्मीर में संस्कृत के विकास के लिए जम्मू व सरकार ने विशेषरुप से ध्यान नही दिया। जम्मू व कश्मीर के मुख्यमंत्री शेख मोहमद अब्दुला ने राजकीय संस्कृत पाठशाला (वर्तमान-गर्वनमेंट) ओरियण्टल कालेज) को बंद कर दिया। इस समय वहां संस्कृत को छोड़ अरबी तथा फारसी आदि भाषाओं का अध्ययन-अध्यापन चलता है। उक्त सरकार ने जम्मू व कश्मीर रिसर्च विभाग को भी बंद किया था। उसका मूल कारण यह था वहां संस्कृत ग्रंथों का संपादन, प्रकाशन होता था। कालान्तर कश्मीरी नंडितों के अनथक प्रेयत्न से फिर इस विभाग को खोला गया। इन विषम परिस्थितियों को देखकर स्वय सेवी संस्थाओं ने संस्कृत प्रचार व प्रसार के लिए महत्त्वपूर्ण काम किये। इन संस्थाओं में फतेह कदल में स्थित श्रीरामत्रिक आश्रम इश्वर, निशात में ईश्वर स्वरूप लक्ष्मण जी का आश्रम गणपतियार में ब्राह्मण महामंडल क्रालख्वड़ में कश्मीर संस्कृत, साहित्य, सम्मेलन, रामबाग में श्रद्धेय डाँ० कर्णसिंह द्वारा स्थापित भारतीय विद्याभवन, कर्णनगर में डाँ० राधाकृष्ण काव द्वारा स्थापित शारदा पीठ रिसर्च सेंटर आदि प्रमुख हैं (इस लेख का लेखक भी भारतीय विद्याभवन का अन्तंरग सदस्य था) इस भारतीय संस्कृति की परम्परा को पुनर्जीवित करने में ज्योतिषाचार्य पं. केशव भटट का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। जीवन स्वयं एक साधना है और सिद्धि की प्रतीति भी। जीना जीने की कामना और जीने को जीवन का लक्ष्य बनाए रखना-तीनों ही चेष्टाएं साधारण मानव जीवन में सदा अमीष्ट होती है किन्तु मनीपियी के जीवन की कलायें इनसे सर्वथा

भिन्न होती है। वस्तुत: अन्तर लक्ष्य में है। जीने के लिए जीना एक अलग चीज़ है जीने को शाश्वत बनाए रखने की साधना अलग है। इसी प्रवृत्तिगत भेद में मानव जीवन की साधना विधाओं में अन्तर ही जाता है। भौतिक सुख की खोज में व्यस्त जीवन के क्रियाकलाप और आध्यात्मिक सुख समृद्धि की कामना को प्रतिफलित करने की रस साधनाओं में प्रयाप्त अन्तराल होता है। परन्तु कुछ एक कर्मयोगी ऐसे भी होता है जो भौतिक, अध्यात्मिक तथा सामाजिक सभी सुखों के प्रयास में सामंजस्य बनाए रखने में सफल होते है। जो प्राय: विरले ही होते है। प्रारब्ध इनके लिए हस्तामलकवत् होता है। ये संचित कर्म के, प्रतिभावान धनी होते है और इसीलिए इनके क्रियमाण कर्म इन्हें सशक्त बनाए रखने में समर्थ होते है। ऐसे कर्मठ व्यवितयों की आस्था आसक्ति में नहीं होती इसके लिए कर्म ही अर्थ और इति दोनों है। सम्मान, यश, प्रतिष्ठा, अभिनन्दन आदि इनके लिए भोग्य नही है। श्रद्धा और आदर इसका देय है। ग्राह्य नहीं। इसलिए श्रेय और प्रेत दोनों ही इन्हें अपनी कृति का सुयश प्राप्त करने का अवसर स्वयं प्राप्त हो जाता हऐ। ऐसे ही कृति साधन के धनी पं० केशव भटट ज्योतिषी थे जिनका जन्म विक्रम संवत 1930 ई० में श्री नगर स्थित रैणावारी के जोगी लंकर मुहल्ले में हुआ था। उनके पिता श्री का नाम पं० संतराम ज्योतिषी था जो उस समय ज्योतिर्विज्ञान में धंरुधर विद्वान थे तथा महाराजा प्रताप सिंह के राज दरबार में सभापंडित थे। प्रताप सिंह के सान्निध्य में रहनें से इन्हें लोग सिख कहते है। सिंह का बिग़ड़ हुआ रुप सिंध बन जाता है। यहींसिंध सिख का रूप भी धारण करता है। अत: इस समय भी यह सिख के नाम से अधिक जाने जाते हैं। कहा जाता है कि पं० संतराम पिरन्दे (एक विशेष प्रकार की बड़ी नाव) में बैठकर राजदरबार जाते थे सतराम के सात पुत्ररत्न थे प्रकाश राम, प्रसादराम लक्षमण राम, जनार्दन, मुकुन्द राम तथा केशव भटट आदि। उनमें केशव भटट बड़ा ही मेघावी (जहीन) था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा घर में ही हुई। फलत: उसने अपने पितृपाद से कर्मकाण्ड विषयक पुस्तकें तथा ज्योतिष ग्रंथ-गृहलाघव तथा लीलावती

आदि पढ़े। कालान्तर बागिदिलावर खां में स्थित राजकीय संस्कृत पाठशाला में विधिवत प्रवेश पाकर उन्होनें पंजाब विश्व विद्यालय से प्राज्ञ तथा विशारद की परीक्षायें प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। गार्हस्थिक परिस्थितियों के कारण वे शास्त्रो की परीक्षा न दे सके। विविधशास्त्रों में निष्णात होने के कारण उन्हें तत्कलीन विद्वन्मण्डली काफी आदर करती थी। मैंने अपने पूज्यपाद पिता पं० विदलाल कल्ला से सुना था कि केशव भट्ट के वैदुष्य के सामने कोई नही टिक सकता था उनके सामने सारे विद्वान हतप्रभ होते थे। कुछ समय के बाद पं० केश्वभटट की नियुक्ति सरकारी सायंकालिक पाठशाला में संस्कृत अध्यापक के रूप में नूनर नामक गांव में हुई। वहां वह रैणावारी से प्रतिदिन पैदल जाते थे। उस समय उनका पादत्रावाण - 'पुलहोर' था। पाठशाला में वे कर्मकाण्ड विषयक पुस्तकों के अतिरिवत बी० ए० परीक्षा तक हिन्दी तथा संस्कृत नि:शुल्क रूप से पढ़ाते थे। मैंने रैणावारी के सुप्रसिद्ध संस्कृत विद्वान पं० गोविन्द भट्ट शास्त्री से सुना था कि पं० केशव भटट परिधान, परिहन, करन के जेब में पैंसिल का टुकड़ा तथा गणित पत्री रखे थे। रैणावरी से नूनर जाते जाते वे वर्षफल आदि की गणना करते थे। वह समय का प्रत्येक रूप में सदुपयोग करते थे। रात को केवल चार घंटे सोते थे। वे ब्राह्मी मुहूर्त्त में उठकर शौच से निवृत होकर विधिवत संध्या प्राय: दो घंटे तक करते थे चाहे गर्मी हो या सदी हो या झंझावात हो, वे कभी अपने नित्य नियम से पीछे नही हटते थे। संध्या के बाद वे ठाकुर द्वारे में पूजा करते थे। पूजा के बाद वे कषाय-पान करके स्वाध्याय में लगे रहते थे। पदमासन में बैठकर तकिये के बिना यानी सहारे के बिना वे पढ़ने लिखने में व्यस्त रहते थे। नागरी कलम से वे टेवा (जातक) जन्म कुण्डली आदि लिखते थे। शीतकाल में जिस समय महीने भर बिजली नहीं होती थी, वे दिया जलाकर अपना काम करते थे। अपनी समय सारणी (Time Table) के अनुसार जब तक उनका काम समापत नहीं होता था, तब तक वे चैन से नहीं बैठ तेथे 'आराम हराम' है लाल बहादुर शास्त्री का यह नाद (Slogan) उन पर सार्थक सिद्ध होता है।

प्रकाश राम कुर्यगाम का रामायण (काव्य)

भारतीय संस्कृति के आदर्शस्वरूप रामायण का प्रभाव भारत के विभिन्न लेखकों तथा कवियों पर समय समय पर पड़ा है। महर्षि वाल्मीकी के बाद रामायण लिखने की परम्परा भारत के विभिन्न क्षेत्रों में चलती आई है। यह परम्परा केवल भारत तक ही सीमित नहीं रही, अपितु भारतीय सीमाओं को लांघ कर विश्व के कोने-कोने में प्रवाहित हुई। कश्मीरी साहित्य भी इससे अछूती न रही। इधर काश्मीर में पठानों के शासनकाल में कश्मीरी जनता बहुत व्याकुल हुई थी। उनके क्रूर तथा पाशविक कुत्सित कर्मों से तंग आकर जनता भय-त्रस्त थी। ऐसे संकट काल में उनके लिए लिए भगवान् का नाम स्मरण ही शान्ति का साधन था। सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों में अत्याचार का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता था। अशान्ति का वातावरण चारों ओर था। इन्ही विषम परिस्थितयों में प्रकाशराम का जन्म कुरिगांव में (श्रीनगर के दक्षिण से 38 मील दूर) हुआ जिन्होने रामभक्ति के प्रचार से कश्मीर में जनता को आश्वासन दिया। इनके पिता का नाम मिर्ज़ पण्डित था। प्रकाशराम के पुत्र का नाम सहज़राम था। पाश्चात्य विद्वान् सरजार्ज ग्रिर्यसन के अनुसार प्रकाशराम का नाम दिवाकर प्रकाश भट्ट था और यह कश्मीर में उन दिनों रहते थे जिस समय पठानों ने सुख जीवनमल (सुखजुव) (1754-1762 ई०) को कश्मीर का गवर्नर नियुक्त किया था। प्रकाश राम की तीसरी पीढी अब भी कुरिगांव में रहती है। कवि ने स्वंय कुरिगांव का संकेत सीता के भूगर्म में समाजाने के समय इस प्रकार किया है :-

''क्रुहा अख ओस तु ऑततााम अज़ कुरिगाम, तु मे दॉपमस सुती
सीता न्यबर नेर, छु प्रारान रामजुव कॉरथस स्यठाह च़ेर।''

अर्थात् कुरिगांव तक कोस था। मैंने कहा अरे सती सीता ! बाहिर निकला। श्रीरामचन्द्र जी प्रतीक्षा करता है। तूने उसको बहुत विलम्ब किया। इस पद्य से इस

मत की पुष्टि होती है। प्रकाशराम 'कुरिगांव' का रहने वाला था।

प्रकाशराम अधिक पढ़े लिखे नही थे। उनकी शिक्षा घर पर ही हुई थी। वे साधुओं की संगति में बैठते थे। सत्संग से ही उन्होंने अपना जीवन सार्थक बनाया था। कहा जाता है कि उन्होंने एक महन्तसे धार्मिक पुस्तकें, वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण, तुलसी रामायण, पुराण आदि शास्त्र पढ़े थे। इसके अतिरिक्त फारसी और अरबी भाषा से भी उन्हें अधिक रुचि थी। कालान्तर रामायणों के अध्ययन से प्रभावित होकर उन्होंने अपनी मातृ - भाषा कश्मीरी में रामायण फारसी लिपि में लिखी। सर्व प्रथम यह कश्मीरी रामायण 1910 ई० में विश्वनाथ प्रेस से प्रकाशित हुई। बाद में सरजार्ज ग्रिर्यसन ने 1930 ई० में इसे रोमन लिपि में छपाया। इन दोनों संस्करणों में बहुत अन्तर है। फारसी की रामायण में कुल 2450 पद्य है किन्तु ग्रियेर्सन की रामायण में केवल 1137 पद्य है। ऐसी स्थिति लवकुश चरित की भी है। तीसरा संस्करण अली मुहम्मद ने फारसी लिपि में छपवाया। बाद में 'कलचरल अकाडमी' ने इसका चौथा संस्करण प्रकाशित किया।

प्रकाशराम यद्यपि अधिक शिक्षित न थे तब भी सरस्वती की अनुकम्पा उनपर आवश्य दिखाई देती है। वे प्रतिभा संपन्न थे। अट्ठाईस वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने निम्न पुस्तके लिखी:-

1. रामावतार चरित
2. लवकुश चरित
3. कृष्णावतार।
4. अकनुन्दन।
5. शिवलगन।

इन पुस्तकों में से 'कश्मीरी रामायण' अधिक लोकप्रिय है। प्रकाशराम ने जो रामायण बनाई वह संत तुलसीदास की तरह 'अध्यात्म रामायण' के आधार पर बनाई है। उसने भी श्रीराम को नारायण का अवतार मान लिया है और सारा रामचरित्र एक नाटक लगता है। कश्मीरी रामायण के निम्न पद्य से

इस कथन की पुष्टि होती है :-

''दया सागर चॖय दयावानो, श्यामु स्वरूप रामु चॖन्द्र नाराणो।''

अर्थात् हे दयासागर, दयावान तथा श्याम स्वरूप रामचन्द्र जी ! आप ही नारायण के रूप है।

वाल्मीकी रामायण को हम केवल कविता का श्रेष्ठ नमूना मान सकते है किन्तु प्रकाशराम का रामायण अध्यात्म रामायण तथा तुलसी रामायण की तरह भक्ति काव्य है। वाल्मीकि रामायण का मुख्य उद्देश्य लोगों को सुन्दर, उच्चतम तथा आकर्षक कविता प्रस्तुत करना था तथा उन्हें इस लौकिक जगत् से ऊपर उठाकर अलौकिक आनन्द-सागर में डुबोकर सन्मार्ग का दर्शन कराना था। किन्तु आध्यात्मरामायण के रचयिता के समान तुलसीदास तथा प्रकाशराम का मुख्य प्रयोजन यह था कि लोगों में रामभक्ति का प्रचार व प्रसार हो। इसलिए इनकी कविता भक्तिकाव्य का मुख्य उदहारण हे। प्रकाशराम ने आध्यात्मरामायण के अतिरिक्त अन्य पुराणों की कई प्रसिद्ध कथाएँ एकत्र करके रामायण में सम्मिलित कर दीं जैसे-रावण को सीता का पिता कहना, मन्दोदरी उसकी माता, हनुमान से पुत्र की उत्पत्ति होना, महिरावण का वर्णन आदि। रामायण के साथ जो 'लवुकुश चरित' उसने लिखा है वह भी ऐसा ही है क्योंकि वाल्मीकि-रामायण और अध्यात्मरामायण में कुछ उसका वर्णन नहीं है। सीता के ननद की कथा भी ऐसी ही है। ऐसी घटनायें अथवा कथायें तिब्बत से जावा तक अनेक स्थानों मे प्रसिद्ध है। वास्तव में प्रकाशराम ने उन सब घटनाओं का उल्लेख किया है जो उसने उस समय इध्र-उधर से संगृहीत की थी। वह सब उन्होंने रामायण में लिखी। कही कहीं उसने स्वंय भी कल्पना से काम लिया है जैसे - जटायु को श्रीराम चन्द्र जी अपनी कलाइयों पर दाह देते है। वाल्मीकि कुश (दाभ) से कुश को पैदा करता है आदि। वाल्मीकि रामायण में केवल सात काण्ड़ हैं। सातवें काण्ड़ में रामचन्द्र जी के अश्वमेध यज्ञ का, कुश और लव के द्वारा रामायण सुनाने का, सीता के भूगर्भ में समाजाने का तथा श्रीराम के स्वर्ग पर चढ़ने का वर्णन मिलता है। अध्यात्मरामायण

में भी केवल इसी तरह सात काण्ड़ है किन्तु जो रामायण सौलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में भारतीय भाषाओं में लिखी गई हैं उनमे लव कुश काण्ड़ आठवां काण्ड़ कहा गया है। उस काण्ड़ में अश्वमेध घोडे के लिए लव कुश समस्त अयोध्यावासियों, वीरों, हनुमानादि के साथ लड़ाई करते हैं। इसमें लव कुश उन सबों को मार देते हैं। बादमें महर्षि वाल्मीकि अमृत बरसा कर उन्हें पुर्नजीवित करते हैं। इस युद्ध का वर्णन किसी न किसी रूप में पुराणों में आया होगा या लोक कथाओं में प्रसिद्ध होगा क्योकि ईसा की आठंवी शताब्दी में संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध नाटककार भवभूति ने 'उत्तरराम चरित' में इसका वर्णन किया है। कवि प्रकाशराम ने भी यह वर्णन किसी से सुना होगा या कहीं से पढ़ा होगा किन्तु अध्यात्मरामायण में इस युद्ध का नाम कहीं नहीं है न उससे आठवां काण्ड़ लवकुश का है। प्रकाशराम ने भी आंठवा काण्ड़ रामायण में नही रखा है। इसलिए उन्होंने लवकुश युद्ध की कथा भिन्न पुस्तक में कही है और पुस्तक का नाम 'लवकुश चरित' रखा है। श्रीरामचन्द्र के आदर्श शासन की चर्चा करते हुए उसने 'लवकुश चरित' आरम्भ कर दिया है। इसका आरम्भ इस प्रकार से किया गया है कि यह रामायण का एक भाग दिखाई देता है।

सीता की ननद की दुष्टता (ज़लालत) का वर्णन जो प्रकाशराम ने किया है वह न तो वाल्मिकि रामायण में न अध्यात्म रामायण में पाया जाता है। संभवत: उसने यह कथा कहीं से पढी या सुनी होगी। वाल्मीकि रामायण में लव कुश द्वारा रामायण पढने का और राम के अश्वमेध यज्ञ में उसके गाने का उल्लेख पाया जाता हे। प्रकाशराम ने उसकी चर्चा 'लवकुश चरित' में नहीं की है। उसने यही लिखा है कि कुश को अश्वमेध का घोड़ा बहुत पसन्द आया। फलत:उसने उसे पकड़कर घर लाना चाहा। इस पर राम की सेना के साथ उसे युद्ध हुआ। उसी समय लव भी युद्ध में सम्मिलित हुआ। युद्ध में उन दोनों भाईयों ने सब बलवीरों, हनुमान के समेत श्रीराम और उसके 'भाई को मार दिया। यह देखकर सीता ने विलाप किया। मालूम होने पर लव तथा कुश ने बहुत शोर मचाया। उसी समय वहां वाल्मीकि आ पहुंचे। उसने ईश्वर से

प्रार्थना की। प्रार्थना के स्वीकार होने पर आकाश अमृत की वर्षा हुई। उससे सारे मृत जीवित हुए। उसी समय श्रीराम लव कुश को घर ले आए।

उक्त तथ्यों को दृष्टि में रखकर हम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि प्रकाशराम का शास्त्र ज्ञान सीमित न था। उन्होंने विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित रामायण सम्बन्धी साहित्य का गम्भीर अध्ययन करके कई विलक्षण घटनाओं का वर्णन 'कश्मीरी रामायण' में किया है। मुख्य घटनाओं का वर्णन क्रमशः यहां दिया जाता हैं जैसे : मकेश्वर की घटना, सीता का रावण से जन्म, ननद का दाह।

रावण का शिव से मकेशर प्राप्त करना

''मकेश्वर तस द्यितुन गछ़ लङ्कि प्यठ वात,
थावुन तति रामजुव वाती न तौत ज़ांह।
अमा येति थावहन तति थोद उथीन,
मूलु तमि जायि अदु हरकत कॅरीन।''

अर्थ :- शिव ने रावण को मकेश्वर दिया और उसे कहा इसे लेजाकर तुम लङ्का पहुंच जाओं। जिस स्थान पर मकेश्वर रखोगे, राम जी कभी भी वहां नहीं पहुंचेगे। जहां इसे (मकेश्वर) को रखोगे, उस स्थान से यह कदापि न हिलेगा।

''मकेश्वर-सुन्द्य पानस येलि सु ह्यथ आव,
वुछिव किथु पॉठ्य नारुद तस प्रकरच़ चाव।
यि गव छ़ल आव जल तस लोग वुछनि दूर,
दोपुन कांछ़ांह गोछुम रटिहेम यि ठोकुर।।''

अर्थ :- मकेश्वर अपने साथ लेकर जिस समय वह आगया। सहसा रावण के शरीर में नारद मुनि प्रविष्ट हुआ। माया के कारण रावण को पेशाब आगया और कहने लगा कि यदि यहां कोई हो तो मेरा ठाकुर पकड़ता।

रावण एक बार दु:खी होकर कैलाश पर्वत पर जाता है। वहां वह भगवान् शिव की स्तुति कर उनके सामने राम चन्द्र जी के अद्‌भुत् पराक्रम

का वर्णन करता है और उससे बचने के लिए शिव से प्रार्थना करता है। शिव प्रसन्न होकर अपना स्वरूप प्रकट करके उसे मकेश्वर देता है और कहता है कि इस 'मकेश्वर' को अपने साथ लङ्का लेजाओं। इससे श्री राम का भय अवश्य आप को दूर होगा। शिव से मकेश्वर प्राप्त करके रावण के शरीर में नारद मुनि प्रवेश करता है रास्ते में उसे पेशाब करने की आवश्यकता पड़ती है। यहां एक वृद्ध ब्राह्मण को देखकर मकेश्वर पकड़ने के लिए उसे प्रार्थना करता है। मकेश्वर उसे सौप के रावण पेशाब करने लगता है। ईश्वर की अद्भुत लीला के कारण नदीं के वेग की तरह घण्टों भर वह पेशाब करता रहता है। बुलाने पर भी जब रावण नही उठता हे तो वृद्ध ब्राह्यमण ज़मीन पर (मकेश्वर) ठाकुर को रखता है। शिव जी ने उसे मकेश्वर देने के समय यह शर्त बताई थी कि उसे जिस स्थान पर तुम रखोगे। उस स्थान से यह कदापि नही हिलेगा। जिस स्थान पर वृद्ध ब्रह्मण उसको रखता है, उस स्थान से वह विचलित नही होता है। बाद में निराश होकर रावण मकेश्वर के बिना ही लङ्का जाता है (कहा जाता है मक्काह में इसी मकेश्वर की स्थापना है जिसका दर्शन मुसलमान हज के समय करते हैं।

सीता का रावण से जन्म

1. ''ज़नख राज़स दपान कूरा छि ज़ामुच़,
स्व मालक्ष्मी छि तमिसुन्द गर् आमुच़।
स्याठाह संतान पुछि आवार ओसुय,
दपन दॅरियाव प्यठ तस कूफ कोसुय।।''

अर्थ:- कहते हैं कि राजा जनक को कन्या पैदा हुई है। शायद लक्ष्मी उसके घर में आ गाई हैं। सन्तान के लिए वह बहुत व्याकुल था। कहते है दरिया पर उसका प्रकोप समाप्त हुआ अर्थात दैव ने उसका प्रकोप नष्ट किया।

2. ''दॊपुन कर जग, नदी प्यठ द्राव पानय,
खॅनिन मॊच़ मॊच़ि तल तमि लॊब खज़ाना।

स्याठाह सन्तान बापथ लोल तस ओस,
सन्दूकस क्यथ लबन म्यच़ि तल खोशगोस।।''

अर्थ :- उसने कहा कि मै यह करू फिर वह स्वंय नदी पर चला गया। उसने मिट्टी खोदी और उसके नीचे खज़ाना पाया। वह सन्तान के लिए बहुत चिंतित था। मिट्टी के नीचे सन्दूक में उसे पाकर प्रसन्न हुआ।।

एक बार राजा जनक दरिया के किनारे पर जाता है। वहां मिट्टी खोदने पर उसे एक सन्दूक मिलता है। उसमें एक नव जात कन्या होती है।सूर्य के समान उसके रूप को देखकेर वह प्रसन्न होता है और नि:सन्तान होने के कारण जनक उसका पालन पोषण तथा विवाह करता है।

राम और सीता के वनवास के समय रावण उसका हरण करता है और लङ्का लेजाकर अपनी पत्नी मन्दोदरी को कुछ काल तक पालने के लिए देता है। मन्दोदरी उसे देखकर आश्चर्य चंकित हो जाती हे और उसे गोद में बिठाकर प्यार करती है। इससे उसे अपनी ही कन्या का आभास होता है अर्थात् उसकी गन्घ आती है। सहसा मन्दोदरी के स्तनों से दूध की धारा बहने लगती है और अपनी अतीत घटना का स्मरण आता है कि किस तरह उसने अपने नवजात शिशु को दरिया में फेंक दिया था। वह जानती है की इसका जन्म रावण को मारने के लिए तथा लङ्का के दाह के लिए है। भावी अनिष्टभय के कारण उसने इस कन्या को नदी में फेंक दिया था। इस प्रकार की घटनायें उसको याद आती है और वह अपने मन में ही इस रहस्य को छिपाती है। अपने किये हुए पर उस समय पछताती है। बाद में मन्दोदरी के कुछ प्रश्न पूछने पर सीता राजा जनक के द्वारा अपने पालन पोषण का वृतांत बताती है। लेकिन मन्दोदरी किसी प्रकार इस रहस्य का उद्घाटन नहीं करती है।

ननद का दाह

''तॅमिस सीतायि मा ऑस लॊकट ज़ाम,
तॅमी क्याह कॊर तस बरमन्द्यन शाम।

स्यठाह ओसुस गॊमुत सीतायि हुन्द वर,
लॊबुन यॆलि दस्तगाह पॆयि तस कॊठ्यन पॉर।।''

अर्थ :- उस सीता को एक छोटी ननद थी जिसने अपनी भावज़ को धोखा दिया। ननद को सीता का बहुत वैर था। जिस समय सीता ने रानी की पदवी प्राप्त की ननद ईर्ष्या के कारण साहस खो बैठी।

''चु मा छख ज़ांह ति कामयॉबी बोज़न,
पनुन्य ऑसिथ व्वंदान हय छख मॆ दुश्मन।
प्रछ़ुय पज़ि किन्य गछ़्यम लीखिथ मॆ हावुन,
ब-सूरत ओस क्युथ ह्युय दशरावुन।।''

अर्थ :- तू कभी भी मेरा नही सुनती। अपनी होकर मुझे दुश्मन समझती हो। मैं न भ्रता से पूछती हूं कि मुझे दशरावण का चित्र लिखकर दिखाओं कि वह कैसा था।

वनवास से लौटने के बाद जिस समय सीता महारानी के पद को अलंङ्क़ृत करती है। उसकी ननद से यह सहा नहीं जाता है। ईर्ष्या की आग उसके मन में धधकती रहती है। वह सीता को श्रीरामसे पिटवाने के लिए एक-चाल सोचती है और सीता को रावण का चित्र बनाने के लिए बताती है। सरल स्वभाव वाली सीता उसका चित्र कागज़ पर बनाती है और ननद को दिखाती है। ननद रावण के चित्र को चोरी से अपने पास रखकर श्रीराम को दिखाती है। फलत: रामजी से सीता को पिटवानी है। इस घटना का वर्णन कवि प्रकाशराम के अतिरक्ति वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण तथा तुलसी रामायण में नहीं मिलता है। संभवत: लोककथा के आधार पर उन्होंने यह घटना कश्मीरी रामायण में लिखी होगी।

काव्य सौष्ठव

प्रकाशराम की भाषा में विविधता पाई जाती है। भाषा पर उन्हे पूर्ण अधिकार है। इनका काव्य प्रसादगुण से भरा हुआ है। पदों में लालित्य यत्र तत्र

नज़र आता है। उनका शब्द चयन बहुत ही सुन्दर है। भाषा स्वच्छन्द नदी की तरह प्रवाहित है। इनकी रचना में सरल तथा मधुर कश्मीरी का प्रयोग हुआ है। संस्कृत के अतिरिक्त अरबी, फारसी, उर्दू जैसे गनीमथ, अफसोस, गुलज़ार, खबरदार, गिरिफतार आदि शब्दवली से भी कवि ने अपनी भाषा को समृद्ध किया है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, अनुप्रास आदि अलङ्कारों का प्रयोग कवि ने समुचितरूप से किया है। कश्मीरी प्रसिद्ध मुहावरों जैसे तथा शब्दों जैसे 'माय माज़स लगुन्य' (प्रेमोद्रेक होना), 'लशनार गॉडनम' (भयानक आग भड़कना अर्थात् अन्दर से जलना), 'वालवाशि लगुन' (फंदे में फंस जाना), 'ड्यकु स्यदथ' (भाग्य की सिद्धि) आदि का प्रयोग अनुकूल स्थिति में उचित प्रसंग में हुआ है। इनकी भाषा मराज़ से सम्बन्धित है। कहीं कंही उन्होंने शहर के शब्दों का भी प्रयोग किया है। प्रकाशराम स्वंय भक्त थे और उन्होंने आदि से अन्त तक भक्तिभाव ही निभाया है। कई पात्रों का चित्रण इसने संक्षिप्तरूप से किया है। इसमें लीलायें बहुत लम्बी चौड़ी हैं। इनकी कविता आध्यात्मरामायण की तरह भक्तिभाव से ओतप्रोत है। इनके वच़न (कश्मीरी तर्ज़ का एक गीत) बहुत ही आकर्षक है। कवि ने Ballad के तरीके पर रामायण की कथा बना दी है। बीच बीच में Lyric के तरीके पर लीलायें कही गई हैं। एक ही घटना को बार बार दुहराया गया है। इस प्रकार पुनरुक्तिदोष भी इसमें दृष्टिगोचर होता है। अहिल्या की घटना दो बार आई है। कहीं कहीं संदिरग्धा भी पाई जाती है जैसे : बलिवानर की स्त्री तारा थी या सुग्रीव की। यह इसमें संदिग्ध है। अश्लील शब्दों का प्रयोग भी कवि ने किया है। जैसे अशोक वन में हनुमान के युद्ध में वह इस प्रकार बताया है : ''ॲनिन सॉरी रॅटिथ थविन्य च़कजि मंज़।'' अर्थात् सबों को घसीट के लाकर उसने चूनड के नीचे रख दिया। इसमें 'च़कजि' शब्द कश्मीरी में अश्लील है।

इन त्रुटियों के होते हुए भी प्रकाशराम में ईश्वर ने कविशक्ति प्रदान की थी। इसका प्रमाण उनके उसकोटि के नमूने से मिलता है जैसे:- वन जाने के समय सीता और राम का संपाद, कौशल्या का विलाप, दशरथ का विलाप

आदि। सीता हरण की घटना बहुत आकर्षक तथा सुन्दर है। अशोकवन में हनुमान सीता का दर्शन करता है। कवित्वदृष्टि से यह भी उत्तम उदहारण है। रावण को मारकर सीता के विषय में रामचन्द्र का विचार, सीता की अग्निपरीक्षा उस शैली के नमूने हैं। इन पद्यों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि प्रकाशराम में उत्कृष्ट कविता लिखने की शक्ति थी। 'लवकुश चरित' में भी अच्छे नमूने पाये जाते हैं। रामायण की भाषा से प्रतीत होता है कि प्रकाशराम ने अवश्य फारसी भाषा का अध्ययन किया होगा। फलित ज्योतिषशास्त्र के भी कवि ने उदहारण दिये हैं। कहीं कहीं इसकी कवित्य प्रतिभा स्पष्ट: दृष्टि गोचर होती है। जैसे - ''हरि हर कौनु छुख मे दर्शुन हावान।'' इस लीला में उच्च शैली का आलाप मिलता है। 'लवकुश चरित' में सीता को अपने सतीत्व पर जो गर्व था। उसका दृष्टान्त हमें उच्चकविता के रूप में उस समय मिलता है जिस समय वह जमीन के बीच में जाने का संकल्प करती है। उस अवसर पर उसकी महानता का परिचय श्रीराम की महानता की अपेक्षा प्रकाशराम ने सिद्ध कर दिया है।

उक्त तथ्यों को दृष्टि में रखकर हम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते है कि प्रकाशराम की रामायण कश्मीरी भक्ति साहित्य का एक अनुपम रत्न है। यद्यपि शंकर आदि कवियों के अन्य रामायण भी आजकल उपलब्ध होते है। परन्तु उनमे प्रकाशराम की रामायण ही सिरताज है। हाल ही में नील कण्ठ शर्मा की रामायण मुद्रित हुई है परन्तु उसमें कोई ऐसी विशेषता नहीं मिलती है। जिससे उक्त रामायण की तुलना उससे की जाये। शंकर की रामायण शब्दाड़म्बर तथा घटना प्रदान ही है और प्रकाशराम के समान भाव प्रधान नहीं है। इसमें घटनाओं के साथ साथ भाव पक्ष पर ही अधिक बल दिया गया है और आजकल उपलब्ध कश्मीरी रामायणों में प्रकाशराम की रामायण अपनी एक विशेषता रखती है।



कश्मीर के सुप्रसिद्ध शैवाचार्य स्वामी विद्याधर जी

कश्मीर प्राचीन काल से सारे विश्व में प्राकृतिक संपदा के लिए ही नहीं बल्कि आध्यात्मिकता के लिए भी प्रसिद्ध रहा है। प्राकृतिक संपदा तथा आध्यात्मिक संपदा के लिए इसकी यश रूपी पताका हज़ारों वर्षो के बाद भी इस समय भी सारी दुनिया में फहरती है। यहाँ समय समय पर ऋषियों, मुनियों, साधुओं, संतों तथा आचार्यों आदि ने भारतीय संस्कृति के मूल सिद्धांतों अहिंसा, भाईचारा, समता, प्रेम तथा सहनशीलता का दिव्य संदेश देकर मानव धर्म का प्रचार किया। जिन युगों में शासकों ने इन सिद्धांतो की ओर ध्यान नहीं दिया अथवा इन मानवीय मूल्यों को नज़र अंदाज़ किया, उस युग में प्रजा अशांत वातावरण में रहकर काल यापन करने लगी। मध्ययुग में भी यवनशासकों के संकुचित दृष्टिकोण तथा असहिष्णुता के कारण प्रजा पर क़हर छा गया था। फलत: लोग अपनी मातृभूमि छोड़करपलायन के लिए विवश हुए। कुछ लोगो ने आत्महत्याएं भी की। फारसी के सुप्रसिद्ध इतिहासकार 'फिरिश्ता' ने मार्मिक रूप से इन अमानवीय घटनाओं का वर्णन अपने इतिहास ग्रंथ में किया। इस प्रकार कतिपय शासकों के अत्याचार के कारण कश्मीर का इतिहास कलंकित हुआ। मध्ययुग में अर्थात् मुगलों के दौर में धर्म की रक्षा के लिए सिक्खों के नवें गुरु तेगबहादुर ने अपना बलिदान दिया। इतिहास इसका साक्षी है। दिल्ली में शीशगंज का गुरुद्वारा शहीद गुरु की याद को इस समय भी ताजा कर देता है। इतिहास समय समय पर बदलता रहता है। उसमें लोगों को संघर्ष तथा उनका बलिदान आदि बदलाव का कारण बनता है। विभिन्न युगों में जिस समय साधुओं तथा संतों ने प्रत्यक्ष रूप से शासकों के अन्याय को देखा, उस समय उन्होने शस्त्र से नहीं बल्कि शास्त्रों के उपदेशों से जन साधारण का मार्ग दर्शन किया। इस सिलसिले में संतो की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है। इन

संतो में से ‘लल्लद्यद‘ तथा ‘नुन्दऋषि‘ के नाम उल्लेखनीय है। लल्लद्यद के ‘वाख‘ तथा नुन्दऋषि के ‘श्रुक्य‘ (सं. श्लोक) शैवदर्शन के प्रभाव से अछूते न रहे। इन दोनो की रचनाओं में वेदों तथा उपनिषदों का प्रभाव भी सहजरूप से दिखाई देता है। यहाँ पर यह कहना असंगत न होगा। कि रूहानियत (आध्यात्मिकता) की बुलन्दियोंको छूने वाली इनकी रचनायें कश्मीरी साहित्य में अमर है। इस आध्यात्मिक परम्परा को पुनर्जीवित करने में स्वामी विद्याधर जी का स्थान कश्मीर में प्रमुख रहा है। स्वामी विद्याधर जी महाराज ब्राह्मण कुल में उत्पन्न श्री गणकाक जी के सुपुत्र थे। उनकी जाति ख्वनमुषी (वर्तमान - ख्वनमुह गाँव) और उनका गोत्र कंठदौम्यायन था। निवासस्थान, सथू शीतलनाथ, श्रीनगर था। उनकी पूज्यमाता जी हारमाली जी मल्लयार (सं. मल्लविहार) के एक महात्मा तथा प्रकांड पंडित श्री जगद्धर खरू की सुपुत्री थी। आपका जन्म सन् 1882 विक्रमी आषाढ शुक्लपक्ष की त्रयोदशी के शुभ दिन हुआ। स्वामी जी छ: वर्ष के थे कि वे ज्येष्ठ भाई पं. गोपीनाथ जी की देखरेख में रहे। उसके पश्चात् स्वामी जी के अठ्ठाईस वर्ष की आयु में माता जी का देहान्त हुआ। स्वामी जी के घर में संस्कृत का वातावरण था। उसका वड़ा भाई संस्कृत का धुरंधर विद्वान् माना जाता था। बाल्यावस्था में बड़े भाई ने उसको ‘अमर कोश‘ तथा पंचतंत्र आदि ग्रंथ पढ़ाये। उसके बाद कश्मीर के विख्यात विद्वानों श्री माधवजुव चंद्र तथा राजकाक गंजू के पास उसने कर्मकांड़ सम्बन्धी धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन किया। कालान्तर में कर्मकांड़, उसने ‘बागिदिलावर खां‘ में स्थित ‘राजकीय संस्कृत पाठशाला‘ में विधिवत् संस्कृत की शिक्षा के साथ प्राप्त की। फलत: पंजाब विश्वविद्यालय लाहौर से प्राज्ञा तथा विशारद की परीक्षायें प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कीं। पन्द्रह वर्ष की आयु में विद्याधर का पणिग्रहण संस्कार शास्त्रानुसार एक उच्चकुल के ब्राह्मण पं० ऋषिकाककालू की सुपुत्री श्रीमती पद्मावती से हुआ। पद्मावती मधुरभाषी तथा आदर्शगृहिणी थी। गहस्थ धर्म के पालन में अतीव निपुण थी। अतिथि पूजा तथा साधु सेवा, उसका नित्य नियम था। पतिव्रता नारी के गुण उसमें कूटकूट

कर भरे हुए थे। पतिदेव ने जिस समय 28 वर्ष की आयु में गृहस्थ का त्याग किया, वह गृहस्थ में रहकर बच्चों का पालन करती रही। उसकी कोख से दो पुत्र तथा दो कन्याएं उत्पन्न हुईं। कालान्तर एक पुत्र और एक कन्या की मृत्यु हुई। उसका दूसरा पुत्र श्री गोविन्द जी भी इस संसार से चल बसा। इस समय स्वामी जी के परिवार में पौत्र तथा पौत्रियाँ जीवित है। स्वामी जी गृहस्थ में रहकर भी 'पद्मपत्रवत्' निर्लेप थे। अर्थात जिस तरह कमल पानी में रहकर पानी से निर्लेप रहता है, उसी प्रकार वह भी गृहस्थाश्रम में रहकर विरक्त रहते थे आसक्त होकर भी अनासक्त रहते थे यह उनके जीवन की एक विशेषता थी। गृहस्थ व्यवहार समाप्त करके स्वामी जी अपना शेष समय शास्त्रचर्चा में लगाते थे। जो मनुष्य उनके पास आता था उसकी शंकाओं का समाधान अच्छी तरह से करते थे। अपने शिष्यों को दर्शन शास्त्र आदि पढ़ाते थे। वह शैव शास्त्र के मर्मज्ञ थे। अत: शैवशास्त्र की गुत्थियों को आसानी से कश्मीरी में समझाते थे। उनके शिष्यगण उनकी विद्वत्ता से बहुत प्रभावित होते थे। यही कारण है उसका सम्मान सरे कश्मीर मण्डल में होता था। शैवदर्शन का गम्भीर अध्ययन स्वामी रामजी के चरण कमलों के पास बैठकर उन्होंने किया था। आचार्य अभिनवगुप्त का 'परमार्थसर' तथा सोमानन्द की 'शिवदृष्टि:' आदि ग्रन्थों का अध्ययन करके उन्होंने पंड़ितमंडली में अमरकीर्ति प्राप्त की थी। जीवन के अन्तिम क्षण तक वह शैवदर्शन का प्रचार करते रहे क्योंकि उनके जीवन का लक्ष्य शैवदर्शन का ज्ञान जनसाधारण तक पहुँचाना था। बाद में गृहस्थ छोड़कर स्वामी जी कश्मीर के सुप्रसिद्ध स्थानों थजवोर सीर, त्राल, कार्कोटनाग, पहलगाँव तथा मामलेश्वर आदि गये। वहाँ के दुर्गम जंगलो में जाकर शिव की उपासना करने लगे। शिवोऽ हम् शिवोऽहम् (मै ही शिव हूँ) इसका जाप काके स्वय शिव रूप बन गये। जहाँ कहीं भी स्वमी जी जाते थे, वहाँ वहाँ लोगो की भीड़ होती थी। उनके मुखारबिन्द से शैवशास्त्र के श्लोकों की व्याख्या सुनकर लोग मंत्रमुग्ध होते थे। एक बार वे तीर्थ यात्रा करने के लिए अपने शिष्यों के साथ श्री अमरनाथ जी गये। आषाढ़ पूर्णमासी को गुफा

पर पहुँचे। केवल सत्तू का थैला, थोडी सी चाय और चीनी, दियासिलाइयों की डिबियाँ, एक चादर और एक लोटा साथ था। शिष्य दूसरे ही दिन वापिस लौटे। श्रीमान एकाग्रचित से वहाँ एकान्त में ठहरे और पूरे एकमास के लिए स्वात्मचिन्तन में मग्न रहे। श्री अमरनाथ गुफा के चारों ओर बर्फ ही बर्फ थी, वृक्षों की तो कोई बात ही नहीं, वहाँ पक्षियों तथा जीव जन्तुओं का अभाव है। चारों ओर शून्य ही शून्य है यानी सुनसान है वहाँ की जलवायु अत्यन्त शीतल है। गुहा के बिना बैठने के लिए कोई स्थान नहीं। गुफा में बर्फ का पानी जगह जगह पर टपककता रहता है ऐसे घोर निर्जन में वास करना ऐसे समाधिनिष्ठ योगियों का काम है जिन्हें एकग्रता निर्भयता तितिक्षा तथा गर्मी सुख तथा दुख, मान तथा अपमान आदि की चिंता न हो, जो सत्य तथा असत्य को जानते हो, प्रकाश तथा विमर्श से परिचित हो।

इसी प्रकार श्री स्वामी जी चारों ओर हिमावृत और जल बिन्दुओं से भरी गुफा में स्वात्म विमर्श रूप तपस्या में लीन रहे, तथा उन्होंने मनमन्दिर में परम शिव का साक्षात्कार किया और सच्चाई को समझा। 'श्री अमरनाथ' से वापस घर लौटकर जब लोगो ने उनके तेजस्वी मुखमंड़ल को देखा तो वे आश्चर्यचकित हुए। गुफा में एक मास तक निराहार रहकर भी उनके शरीर में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। वस्तुत: योगाभ्यास से शरीर उनका स्वस्थ था तथा वे आसव का चषक भक्तों को पिलाने लगे थे। यह कार्य वह जीवन के अंत तक करते रहे। निदान वह मार्गशीर्ष अमावसी को पंच भौतिक शरीर को छोड़कर ब्रह्मलीन हुए। उस समय उनकी आयु 64 वर्ष थी। कहते है प्राण छूटने से पहले उसके शिष्यों ने ब्राह्मी विद्या सुनाई। बाद में उन्होंने 'शिव शिव' करते प्राण त्याग दिए।

शैवदर्शन की परंपरा को जीवित रखने के लिए उनके प्रधान शिष्य डॉ श्रीकंठ रैणा ने उनकी स्मृति में कर्णनगर श्रीनगर में 'विद्याधर शैवाश्रम' की स्थापना की थी। वहाँ प्रतिदिन रात को भजन तथा कीर्तन होता था और रविवार के दिन शैवदर्शन के ग्रंथो को पढाया जाता था। कश्मीरी पण्डितो के

विस्थापन के बाद उनके शिष्यों ने जम्मू के विकास नगर में स्वामी विद्‌धर का एक नया आश्रम बनाया। जहाँ इस समय पं. विश्वनाथ जी प्रति रविवार के दिन शैवशास्त्र के विषयों को पढ़ाते हैं। इस आश्रम ने आचार्य क्षेमराज कृत 'पराप्रवेशिका' का प्रकाशन किया इस पुस्तक का अंग्रेज़ी अनुवाद डॉ० तेजकृष्ण जाडू ने किया है। इसके अतिरिक्त फरीदाबाद हरियाणा के 'अनंगपुर' में गतवर्ष 'श्री शारिकादेवी' के मंदिर के नीचे 'स्वामी विद्याधर सत्संग भवन' का निर्माण अ. भा. कश्मीरी समाज के अध्यक्ष पं० जगन्नाथ कौल ने करवाया। लेखक को वहाँ स्वयं नववर्ष के सुअवसर पर 'श्री शारिकादेवी' का दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वहाँ स्व० विद्याधर जी का संत्सग भवन अति सुन्दर है। उस भवन में स्वामी जी के विशालकाय चित्र को देखकर कश्मीर के अतीत मधुर क्षणों की याद ताज़ा हो आती है। अस्तु शिव की लीला विचित्र है। स्वामी जी के शिष्य प्रतिवर्ष उनकी जयंती 'आषाढ़ शुक्लपक्ष' त्रयोदशी को हर्षोल्लास से मनाते हैं। उस दिन यज्ञ भी रचाया जाता है जिसमें हज़ारों भक्त भिन्न भिन्न स्थानों से आकर उस में सम्मिलित होते है और प्रसाद पाकर वे मानसिक शान्ति पाते हैं।

निःसन्देह, स्वामी जी का अलौकिक व्यक्तित्व तथा उसकी दिव्यवाणी दिग्भ्रान्त तथा संभ्रान्त जनमानस को प्रत्येक युग में पथप्रदर्शन करती रहेगी। भर्तृहरि की यह सूक्ति उन पर पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है।

''नास्ति तेषां यशः काये जरा मरणजं भयम्'' अर्थात् उनके यशरूप शरीर में जरा और मरने का कोई भय नही है। इनकी अनेक संस्कृत रचनायें प्रकाशित हुई है।



शैवाचार्य स्वामी लक्ष्मण जी

कश्यपस्य प्रियं पुत्रं लक्ष्मणं दिव्यलक्षणम्।
शैवदर्शन मर्मज्ञं वन्देऽहममरं सदा।।

कश्मीर प्राचीन काल से साधुओं, संतों, साधकों, सिद्धों तथा आचार्यों का पुण्यस्थल रहा है। यह पुनीत भूमि 'शारदा पीठ' के नाम से सारे विश्व में विख्यात है। इसका उल्लेख संस्कृत वाङ्मय में यत्रतत्र पाया जाता है। शारदा देवी की कृपा से यहां ऐसे साहित्यकार, लेखक, कवि, दार्शनिक, कथाकार, इतिहासकार, आलङ्कारिक आदि पैदा हुए जिनकी अमररचनाएं समूचे विश्व को आश्चर्यचकित करती हैं। यहां पर यह कहना असंगत न होगा कि संस्कृत साहित्य की विभिन्न विधाओं तथा आध्यात्मिक चिंतन को नई दिशा देने वाला यदि कोई क्षेत्र है - वह है कश्मीर, केवल कश्मीर।

कश्मीर की उर्वरा भूमि में प्रकृति के जो सूक्ष्म तत्त्व पाए जाते हैं वह दुनिया के किसी कोने में नही। तभी तो प्राकृतिक संपदा तथा आध्यात्मिक संपदा का समन्वय यहीं पाया जाता है। भुक्ति का सिद्धांत यहाँ के शैवदर्शन में ही पाया जाता है अन्य षट् दर्शनों में नहीं। इसी विशेषता के कारण शैवदर्शन सारे जगत में लोकप्रिय तथा प्रसिद्ध हो रहा है फलत: विदेशी विद्वान् भी इस दर्शन का अध्ययन कर के इस समय इस पर शोध भी करते है।

आठवीं शती से बारहवी शती का युग कश्मीर का स्वर्णयुग माना जाता है। इस स्वर्णयुग में वाग्देवी के अनुग्रह से आचार्य वसुगुप्त, सोमानंद, उत्पलदेव तथा आचार्य अभिनवगुप्त जैसे दार्शनिक पैदा हुए जिन्होनें विभिन्न दर्शनों का मंथन करके ऐसा दर्शन विश्व को दिया जो त्रिक - दर्शन अथवा 'प्रत्यभिज्ञा दर्शन' के नामों से प्रसिद्ध है। इस दर्शन का संप्रदाय आज तक काश्मीर मंडल में वितस्ता के प्रवाह के समान चलता रहा है। इस प्राचीन युग

में संस्कृत लोकभाषा थी। बिल्हण की उक्ति ''यत्रस्त्रीणांकिम् अपि, अपरं जन्मभाषापदेव प्रत्यापासं विलसति पच: संस्कृमं प्राकृतञ्चं।'' यही कारण है कि यहां संस्कृत में ही साहित्यकारों की अमर रचनाएं पाई जाती हैं अन्य भाषाओं में नहीं।

मध्य युग में अर्थात् चौदहवीं शती में मुस्लिम संस्कृति के आगमन से संस्कृत को काफी धक्का लग गया। यवनों को प्राय: पांच सौ वर्षो तक शासन रहा जिसके कारण संस्कृत के स्थान पर फारसी भाषा का प्रचार व प्रसार उत्तरोत्तर बढने लगा। इनके क्रूर शासनकाल में कश्मीरी ब्राह्मणों को अमानवीय यातानाएं सहन करनी पड़ीं। उनकी निर्मम हत्या की गई तथा उन्हे यद्वा तद्वा यवन - धर्म में दीक्षित किया गया। इन अमानवीय घटनाओं का उल्लेख जोनराज तथा श्रीवर ने अपनी अपनी राजतरङ्गिणीयों में किया है। सिकंदर बुतशिकन के समय मंदिरों को भरमसात् किया गया। इन पांच सौ वर्षों के शासनकाल में केवल न्यायप्रिय सहनशील तथा उदारचित सुलतान ज़ैन उल्लाब्दीन अथवा बड़शाह ने कश्मीरी ब्राह्मणों के साथ अच्छा व्यवहार किया तथा संस्कृत को पुनर्जीवित कर दिया। उसके बाद परवर्ती यवन शासकों ने पुन: दमन नीति अपनाई। पठान दौर में ब्राह्मणों को मौत के घाट उतार दिया गया। 'संस्कृत पुस्तकालय' जलाए गए। इन अमानवीय यातनाओं से बचने के लिए कश्मीरी ब्राह्मणों ने चल - अचल संपत्ति छोड़ दी और अन्य राज्यों में काल यापन करने लगे। इस संकटमय स्थिति को देखकर अवशिष्ठ तीर्थवासी ब्राह्मणों ने तीर्थों की पवित्रता स्थिर रखने के लिए तथा भावीपीढी की जानकारी के लिए 'माहात्म्य' लिखें। इनमें 'वितस्ता माहात्म्य' सबसे बड़ा माहात्म्य है। इस युग में यद्यपि धर्मांध यवन शासकों ने संस्कृत के स्त्रोत को नष्ट करने की कोशिश की, तथापि वे इस अपवित्र उद्देश्य में सफल न हुए। वैदिक काल से बहता हुआ यह अक्षय - स्त्रोत वितस्ता के वेग अथवा प्रवाह के समान अक्षुण्णरूप से घाटी में चलता रहा। इसका ज्वलंत उदाहरण हमें कश्मीर के सुप्रसिद्ध लेखक - क्षेमेन्द्र के 'लोक प्रकाश' से मिलता है जैसे:- ''संवत्सरेऽत्र प्रेनापित

कदले रैज़्ज़ अमुकेन रैज्जि अमुक पुत्रस्य हस्ते बंगल चीरिका दत्ता, यथा खुज्जँ अमुक: खुज्जाँ (अरबी) अमुकं प्रति सलाम (फारसी) बन्दगी ददनीयमिति।'' इस उद्धरण में हमें फारसी तथा अरबी के शब्द सहज रूप से मिलते है। सुलतान युग में संस्कृत को जीवित रखने के लिए संस्कृत के लेखकों ने मिश्रित भाषा का प्रयोग किया इनका उदाहरण हमें 'लोकप्रकाश' के अतिरिक्त संस्कृत साहित्य में अन्यत्र नही मिलता है। यद्यपि यवनों के कुशासन में शैवदर्शन की परंपरा का ह्रास हुआ तथापि लल्लद्यद तथा नुन्दऋषि आदि संतों ने संस्कृत से नि:सृत कश्मीरी भाषा के माध्यम से अर्थात् वाखों (सं. वाक्) तथा श्रुक्यों (सं. श्लोक) द्वारा जनसाधारण तक शैवदर्शन के सिद्धांत पहुंचा दिए। इस तरह शैवदर्शन के प्रभाव से मध्ययुगीन संत-साहित्य अछूता न रहा।

आधुनिक युग में ड़ोगरा शासन काल में संस्कृत का प्रत्येक रूप में विकास हुआ। इसके बहुमुखी विकास के लिए महाराजा रणवीर सिंह ने अनेक कदम उठाए। श्रीनगर में 'राजकीय संस्कृत पाठशाला' की स्थापना हुई। 'जम्मू व कश्मीर रिसर्च विभाग' अस्तित्व में आ गया, इस विभाग में कश्मीर के लब्ध प्रतिष्ठित विद्वानों श्री जे.सी. चटर्जी, श्री मधुसूदन कौल शास्त्री, मुकुन्दराम महामहोपाध्याय, श्री हरभट्ट शास्त्री, प्रो. जगद्धर जाडू आदि विद्वानों ने शैवदर्शन के अनेक ग्रंथों का संपादन तथा प्रकाशन किया। भारत की गरिमा को विदेशों तक पहुंचाने में इन विद्वानों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

स्वतंत्रता के बाद कश्मीर में संस्कृत के उत्थान की ओर सर्वकार ने तनिक भी ध्यान नही दिया। जम्मू व कश्मीर के प्रधानमंत्री शेख मुहम्मद अब्दुल्ला ने 'रिसर्च विभाग' को बंद का दिया। बाद में पुन: इसे खोला गया। श्रीनगर में 'राजकीय संस्कृत पाठशाला' बंद की गई। सरकार की संस्कृत विरोधी नीति को देखकर कई स्वयंसेविनी संस्थाएं संस्कृत के प्रचार व प्रसार के लिए अस्तित्त्व में आ गई। इन में 'कश्मीर संस्कृत साहित्य सम्मेलन' तथा

वैदिक सम्मेलन आदि उल्लेखनीय है। कश्मीर शैव दर्शन की प्राचीन पंरपरा को जीवित रखने में जिन संस्थाओं का महत्त्वनूर्ण योगदान रहस है उनमें फतेहकदल में स्थित 'श्रीराम त्रिक आश्रम', कर्णनगर का श्री विद्याधर आश्रम, निशात-ईश्बर में ईश्वरस्वरूप श्री लक्ष्मण जी द्वारा स्थापित शैवदर्शनमठिका, आदि प्रसिद्ध है। हज़ारों वर्षो से चलने वाली इस परंपरा को पूर्ण रूप से विकसित करने में श्री स्वामी लक्ष्मण जी की भूमिका महत्त्वपूर्ण ही नहीं अनितु इतिहास में उल्लेखनीय भी है।

श्री स्वामी लक्ष्मण जी का शुभ जन्म वेशाख कृष्णपक्ष द्वादशी 9 मई 1907 ई० को दिन के चार बजे हुआ। इनके माता पिता श्रीनगर में फतेह कदल के आसपास रहते थे। इनके पिता का नाम श्री नारायण जी रैणा था और माता का नाम अरण्यमाली। नारायण जी को लोग 'नावनाराण' कहते थे क्योंकि कश्मीरी पंड़ितों में सबसे पहले उन्होंने ही नाव का धंधा अपनाया था। 'हवस बोटों' का निर्माण आदि स्वामी जी के गुरु सर्वप्रथम श्री राम जी थे। ये गृहस्थी थे। एक बार अकस्मात् भूंचाल के आने से श्री राम जी का परिवार मकान के मलबे के नीचे दबकर मर गया, केवला श्री राम जी बच गए। कालांतर इन्होने दूसरा विवाह नहीं किया। श्री लक्ष्मण जी के पिता स्वमाी राम जी की विद्वत्ता तथा सरल स्वभाव से बहुत प्रभावित हुए थे। अत: नारायण जी ने अपने कुलगुरु को अपने पूर्वजों के मकान में जो फतेहकदल की सड़क के पास ही था, रहने के लिए आग्रह किया। निदान श्री स्वामी राम जी 1984 ई० में मकान में रहने लगे। अब यह मकान 'श्री राम त्रिकाश्रम' के नाम से कश्मीर में प्रसिद्ध है।

श्री राम सिद्धहस्त योगी थे। जिस समय श्री लक्ष्मण जी का जन्म हुआ, उस समय उसके मां - बाप अपने कुलगुरु के पास गए और उनसे प्रार्थना की कि इस बालक का नाम हम क्या रखेगें? यह सुनकर स्वामी राम जी आनंद विभोर होकर नाचने लगे उनसे कहा कि मैं राम हूँ इसका नाम लक्ष्मण रखे, फिर उन्होने ऐसा ही किया।

पांच वर्ष की आयु में ही लक्ष्मण जी प्रातः तथा सांय पद्मासन में बैठकर किसी की खोज मे बैठते थे। कभी कभी आँखे बंद करके जमीन पर मूर्छित अवस्था में पड़ जाते थे। शिशु की ऐसी स्थिति को देखकर माता पिता चिंतित हुए। एक बार वे स्वामी रामजी के पास शिशु को ले गए। वहां भी शिशु की ऐसी ही स्थिति हुई। यह निरीक्षण करके गुरु ने उन्हें परामर्श दिया कि ऐसे समय इनके 'ब्राह्मांड' में थोड़ी सी नवनीत मलनी चाहिए। इसके इनका प्राण वायु स्वयं संचार करने लगेगा। इसमें चिंता की कोई बात नहीं। ये पूर्व जन्म के योगभ्रष्ट है। इनका यज्ञोपवीत संस्कार शीघ्र करना चाहिए। उससे इनकी ध्याभावस्था स्थिर हो जाएगी।

शिशु जब नौ साल के हुए तो पिता जी ने अपने पुत्र का उपनयन संस्कार 1913 ई० में विधिवत् किया। स्वामी राम जी ने स्वयं यज्ञोपवीत पहनाया तथा गायत्री मंत्र की दीक्षा उन्हें दी। जिस तरह श्री रामकृष्ण परमहंस ने विवेकानंद की आध्यात्मिक चेतना जगा दी उसी प्रकार श्रीराम जी के अनुग्रह से श्री लक्ष्मण जी की आध्यात्मिक चेतना के लक्षण अब धीरे धीरे उनमें प्रस्फुटित होने लगे।

इसी साल श्री नारायण जी ने लक्ष्मण जी को 'राजकीय विद्यालय' में भर्ती कराया। कहते है विद्यालय जाते समय यह बालक अपने साथ आसनपट बैठने के लिए ले जाते थे। जब सभी विद्यार्थी खड़े होकर प्रार्थना करते थे तो ये अपने आसन पर पद्मासन में बैठते थे। प्रार्थना की समाप्ति पर विद्यार्थी अपनी अपनी श्रेणियों में चले जाते थे। एक दिन इनके अध्यापक ने विद्यार्थी श्री लक्ष्मण जी से पूछा कि तुमको आँखे बंद करके क्या दिखाई देता है । विद्यार्थी ने कश्मीरी भाषा में कहा कि 'मे बड़ि बोड़' अर्थात् बड़े से बड़े को देखता हूँ। यह सुनकर अध्यापक ने उन्हे गले लगाया और इनकी प्रशंसा की, साथ ही उन्हें आशीर्वाद भी दे दिया। इस प्रकार एकाग्रता का यह पहला चरण उनमें दिखाई देने लगा।

तेरहवें वर्ष में माँ - बाप ने इनके विवाह के लिए दौड़धूप आरंभ की।

समाज में प्रतिष्ठित घरानों की लड़की वालों ने इनके माँ-बाप के साथ संपर्क किया। श्री लक्ष्मण जी ने जब यह बात सुनी तो उन्होंने झट अपने माता पिता से कहा कि मैं आजन्म भीष्मपितामह की तरह ब्रह्मचारी रहूंगा। अत: विवाह करने की बात छोड़ देनी चाहिए। यदि आप मुझे विवाह के लिए बाध्य करेंगे तो मैं घर छोड़कर जंगल की राह ले लूंगा। पुत्र की रोषमयी वाणी सुनकर उन्होंने अपने पुत्र की शादी करने की बात छोड़ दी।

इसी वर्ष लक्ष्मण जी के पिता श्री नारायण जी का स्वास्थ्य उत्तरोत्तर बिगड़ने लगा। उन्होंने अपने पुत्र को पढ़ाई छोड़ने के लिए विवश किया। लक्ष्मण जी ने उस समय आठवीं श्रेणी यानी मिड़ल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की थी। पिता की रुग्णावस्था को देखकर उसने अंग्रेजी पढ़ाई छोड़ दी। तथा पिता की आज्ञा का पालन किया। उसके कहने के अनुसार अब वे 'हाउस बोट' बनाने के कारखाने में जाकर बढ़ई आदि कर्मचारियों की देखभाल करते थे। साथ ही अपना अभ्यास भी (योगाम्यास आदि) करते थे। वैसे तो उनका मन इस कार्य में लगता नहीं था। पिता के आग्रह से ही वे इस कार्य में फंसे थे। अंतत: उनके मन में किसी योग्य विद्वान् से शास्त्र पढ़ने की उत्कट इच्छा प्रकट हुई। उस समय उनके पिता जी ठीक हुए थे। अपने पिता से उन्होंने अपनी मानसिक इच्छा जाहिर की। पिता जी ने उनकी प्रबल इच्छा स्वीकार कर ली तथा उन्हें 'श्री राम जी के आश्रम' में ले गए। इस अवधि में श्री राम जी ब्रह्म में लीन हुए थे। श्री राम जी के पवित्र आसन को उनके शिष्य महताब काक जी ने समलंकृत किया था। 1920 ई० में श्री लक्ष्मण जी ने श्री महताब काक को जो उनका दूसरा गुरु था, उनसे 'श्रीमद्भगवगीता' का अर्थ सहित अध्ययन प्रारंभ किया। कालांतर वे विरक्त होना चाहते थे तथा सत्य की खोज में प्रयत्नशील थे।

1929 ई० में वे घर छोड़कर सोपोर में साधु गंगा नामक स्थान चले गए। वे वहां साधु गंगा के निर्मल चश्मे के तट पद योगाभ्यास करते थे। एक बार माता पिता ढूंढते ढूंढते उनके पास गए और उनसे घर लौटने के लिए कहा,

परन्तु पुत्र ने उनकी बात नही मानी क्योंकि 'प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति' (आरंभ किए हुए काम को उत्तम लोग छोड़ नही देते है) लक्ष्मण जी स्वतंत्र रूप से अपना शांत जीवन व्यतीत करना चाहते थे। अत: वे मुनियों की तरह एकातं को ही ज्यादा पसंद करते थे। पुत्र के हार्दिक भाव को जानकर पिताजी ने अपने पुत्र के लिए 'मारबल नामक' स्थान में दो मंजिल का मकान बनावाया। 1929 ई० में श्री लक्ष्मण जी ने शुभ मुहूर्त्त के दिन 'मारबल' के मकान में प्रवेश किया। बाद में वे स्वतंत्ररूप से वहां रहने लगे। वहां उन्हें नियमपूर्वक व्याकरण आदि शास्त्र पढ़ने की रुचि बढ़ गई। फलत: रामजी प्रधान पंड़ित थे, अत: उनसे ये शास्त्र पढ़ लिए। तीन वर्ष तक उन्होंने केवल संस्कृत व्याकरण का अध्ययन किया। उसके बाद शैवदर्शन के अनेक ग्रंथों-परमार्थसार, तंत्रालोक, ईश्वरप्रत्यभिज्ञा, शिवदृष्टि आदि का गंभीर अध्ययन किया। इस तरह 'मारबल' में वे सा!त वर्ष लगातार योगाभ्यास के साथ साथ अध्ययन करते रहे।

इसी समय श्री जियालाल जी सोपोरी की सुपुत्री शारिका स्वरूप श्री शारिका जी श्री लक्ष्मण जी के पास योगाभ्यास सीखने के लिए आई। उन्होंने शारिका जी की दशा देखका उन्हे राजयोग का अभ्यास सिखाया। इससे पूर्व वह स्वमाी मुक्तानंद जी से हठ योग की दीक्षा ले चुकी थी। ये मुक्तानंद जी सन्यासी थे और लाहौर के निवासी परमहंस श्री नारायण तीर्थ के शिष्य थे। शारिका जी के घर में ये कई वर्षों से आते जाते थे। श्री लक्ष्मण जी ने शारिका जी से हठयोग के विषय में अनुभव पूछा तो उन्होंने प्राणायाम के द्वारा पूर्ण एकाग्रता का अनुभव कहा। श्री लक्ष्मण जी यह जानकर अत्यंत प्रसन्न हुए और उन्होने शिष्या को जीवनपर्यंत ब्रह्मचर्य पालन करने का आदेश दिया। इन दिनों शारिका जी की आयु प्राय: 15 साल की थी। उन्होंने सहर्ष अपने गुरु की आज्ञा का पालन किया। आजीवन ब्रह्मचारिणी रही। तब से शारिका जी रात के सात बजे से लेकर प्रात: छ: बजे तक ध्यान मग्न रहा करती थी।

रात को वह इन अलौकिक घंटों में दिव्य अनुभवों का रसास्वादन अपने गुरु की कृपा से करती थी। कुछ काल के बाद श्री लक्ष्मण जी ने 'ईश्वर

पर्वत की उपत्यका' में भूमि खरीदी। शारिका जी के पिता ने श्री लक्ष्मण जी के कहने के अनुसार अपनी पुत्री के लिए उनके समीप ही जमीन खरीदी। प्राय: एक वर्ष तक आमने-सामने दो सुंदर मकान बनाए गए। 1934 ई० में गुरु तथा शिष्या ने विधिवत् यज्ञ करने बाद अपने अपने मकानों में रहना प्रारंभ किया। यहां नियमपूर्वक अभ्यास तथा शैवदर्शन के अध्ययन-अध्यापन का काम चलता रहा। वहाँ वे दोनों गुरु तथा शिष्य योगाभ्यास करने के बाद आध्यात्मिक अनुभवों का आनंद लेने लगे। श्री लक्ष्मण जी के दिव्य गुणों की चर्चा समाज में होने लगी। उनकी आध्यात्मिकता तथा विद्वत्ता से प्रभावित होकर भक्त दूर दूर स्थानों से उनके पास आने लग गए। उनका क़दावर शरीर, विशाल ललाट, तेजोमय चेहरा, कमल जैसी आँखें, चौड़ी छाती, लालकपोल, इंद्रधनुष के समान भौहे, कुंदपुष्प के समान दांत, गौरवर्ण, किस को चुम्बक की तरह आकृष्ट नहीं करता था ? योगाभ्यास अब वह रात दिन करते थे। जिस मकान में लक्ष्मण जी रहते थे। उसका नाम 'ईश्वर आश्रम' रखा गया। शारिका जी अपने गुरु को 'ईश्वर स्वरूप' कहा करती थी। इसलिए आश्रम का नाम 'ईश्वर आश्रम' ही रहा। वस्तुत: ईश्वर आश्रम साक्षात् ईश्वर का आश्रम ही है। यानी सत्यं शिवं सुन्दरं का प्रतीक है।

संतों महात्माओं तथा गृहस्थियों का वह केंद्र बना। 1940 ई० में श्री लक्ष्मण जी निशात के ईश्वर आश्रम से फतेहकदल में स्थित 'मारबल' के मकान में आकर चार मास के लिए मौनव्रत में रहे। एक रात को वहां उन्हें योगाभ्यास करते करते षट्चक्र भेदन का प्रत्यक्ष रूप से अनुभव हुआ। श्री लक्ष्मण जी ने बाद में अपनी प्रिय शिष्या शारिका जी को कहा कि यह चक्र बहुत आराओं से युक्त हैं एक चक्र के चलने के साथ ही दूसरा, तीसरा, चौथा, पांचवा तथा छठा क्रमानुसार चलने लगता हैं कई योगियों को तो पहले मस्तक में स्थित चक्र ही चलने लगता है तब नीचे के चक्र चलते है इस षट्चक्र भेदन की शास्त्रों ने पिशाच आवेशं का नाम दिया है। यह दशा योगी के लिए विघ्नों का सूचक है। वास्तव में मूलाधार से ऊपर की ओर षट्चक्र भेदन का होना

अणिमादि अष्टसिद्धियों की प्राप्ति का सूचक होता है। दिव्यानंद में आकर स्वामी लक्ष्मण जी ने स्वयं इस दशा का अनुभव किया था।

1946 ई० में स्वामी जी मौनव्रत में थे। उन्ही दिनों स्वमी जी को अपने दूसरे गुरु श्री महताब काक के स्वर्गगमन का दु:खद समाचार मिला। अलौकिक व्यक्ति होकर भी वे लौकिक व्यक्ति की तरह उस समय रोने लगे। उनके दाहसंस्कार तक वे श्मशान घाट गए। अपने गुरु के प्रति अनन्य श्रद्धा होने के कारण उन्होंने श्री महाताबकाक का और्ध्वदैहिक कर्म किया। तब से वे प्रतिवर्ष उनका अपने आश्रम में श्राद्ध दिवस भक्तिपूर्वक मनाते थे। इसमें हजारों लोग सम्मिलित होते थे।

सौभाग्यवश शारिका देवी के पास उनकी छोटी बहन प्रभा भी आती रहती थी। श्री लक्ष्मण जी के व्यक्तित्व से वह बहुत प्रभावित हुई थी। कालांतर 1942 ई० में प्रभा की शादी बड़ी धूमधाम से हुई। स्वामी जो को भी आशीवार्द देने के लिए विवाह संस्कार के समय आमंत्रित किया गया था। कहते है उस समय स्वमी जी ने भविष्यवाणी की थी कि प्रभा जी के पिता का कन्यादान सफल नही होगा। 'सतां हि सन्देह पदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्त: करण प्रवृत्तय' - कालिदास की यह सूक्ति पूर्णरूप से उनपर चरितार्थ हुई अर्थात् 1944 ई० में प्रभा के पति का अकस्मात् निधन हुआ। बीस वर्ष की कन्या पर यह अनभ्रवज्रपात हुआ। बाद में स्वामी जी ने 1945 ई० में प्रभा को शैवी दीक्षा देकर शैवदर्शन का अध्यापन प्रारंभ किया। तब से दोनों बहिनें नियमित रूप से गुरुमहाराज की छत्रछाया में रहकर अध्ययन के साथ साथ पारमार्थिक सिद्धि के लिए प्रयत्न करने लगी।

1948 ई० में स्वामी जी की माता का निधन आश्रम में ही हुआ। माता के निधन के छ: मास के बाद पौष शुल्क प्रतिपदा को उनके पिता धर्मराज के लोक के पथिक बन गए। माँ बाप के स्वर्गगमन के बाद श्री लक्ष्मण जी अपने आश्रम में योगी के समान रहने लगे।

कुछ समय के बाद स्वमी जी के मन में दूसरी जगह अपना मकान

बनवाने का संकल्प उठा। अत: उन्होने 1961 ई० में आश्रम की सारी जमीन बेच दी। निशात तथा ईश्बर नामक गाँव के बीच नई जमीन खरीदी। वहाँ अपनी आवश्यकता के अनुसार छोठा सा मकान बनवाया, उसके साथ ही वाटिका भी रखी गई। 1962 ई० में इस नए आश्रम में स्वामी जी ने बडे कौतक से प्रवेश किया। यहाँ यह नियम रखा गया कि जिज्ञासुक इतवार के दिन दर्शन के बाद शैवदर्शन का अध्ययन भी कर सकेंगे। देवीशारिका जी तथा प्रभादेवी को वहां रहने की सहर्ष अनुमति स्वामी जी ने दी। तब से प्रति इतवार के दिन लोग शैवदर्शन के ग्रंथो का अध्ययन उनसे करने लगे। 1982 ई० में स्वमी जी को अकस्मात दिल का दौरा पड़ा। डाक्टरों ने 'पेसमेकर' लगाने का सुझाव दिया। अंत में दिल्ली जाकर उन्होंने पेसमेकर लगवाया। दिल्ली से आकर उनके मन में आश्रम में एक मंदिर बनवाने का विचार आया। परिणामस्वरूप मंदिर बनवाया गया। मंदिर में 'अमृतेश्वर भैरव' की प्रतिष्ठा 1981 ई० में की गई। कालान्तर मंदिर का उद्घाटन बडे हर्षोल्लास से हुआ। तब से प्रतिदिन स्वामी जी मंदिर में 'अमृतेश्वर भैरव' की पूजा करते थे। इसके अनन्तर 1984 ई० में अपने आश्रम के प्राङ्गण में ही एक सत्संगशाला बनवाई गई। उनके सभी शिष्य तथा भक्त आदि उनके सत्संग का लाभ वहाँ उठाते थे तथा शैवदर्शन के ज्ञानामृत से आप्लावित होते थे।

1989 ई० में श्रीनगर से जम्मू आकर ब्रह्मवादिनी शारिका जी का स्वास्थ्य बिगड़ गया। फलत: वह 20 फरवरी 1990 ई० को अन्तर्धान हुई। दसवें दिन लोगों ने उन्हें भावभीनी श्रद्धांजलि दे दी। मैने भी संस्कृत में एक कविता दिवंगत विदुषी की स्मृति में पढ़कर स्वामी जी को दे दी। स्वामी जी ने अपने शिष्यों को यह कविता प्रतिदिन प्रार्थना के समय पढ़ने के लिए आग्रह किया। इसकी एक प्रति मैंने अपनी प्रिय बहन श्री नीलकंठ रैणा की धर्मपत्नी श्रीमती कमला जी को भी दी।

अमेरिका से स्वदेश लौटकर अंत में ईश्वर स्वरूप स्वामी लक्ष्मण जी दिल्ली में 25 सितंबर 1991 ई०, तदनुसार अश्विन कृष्ण चतुर्थी को ब्राह्मी

मुहूर्त में ब्रह्म में लीन हुए। इनके देहावसन का समाचार सुनकर सारे लोग शोकसागर में डूब गए। विदेशों से इनके शिष्य श्रद्धांजलि देने के लिए दिल्ली आ गए। जम्मू में भी गांधीनगर में उनकी स्मृति में 'शोक सभाओं' का आयोजन हुआ। इसमें जम्मू व कश्मीर राज्य के प्राय: सभी लोगो ने उनके क्रियाकर्म के दिन विधिवत् मनाए। कुछ लोगो ने उपवास आदि रखा। उनकी स्मृति में कुछ कीर्तन करने लगे। प्रतिष्ठित विद्वानों ने उनके निष्काम कार्य को सराहा। इस लेख के लेखक ने उनके बहुआयामी व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला तथा उनके विषय में एक सरल संस्कृत कविता श्रद्धांजलि के रूप में पढ़कर सुनाई। इस तरह गांधीनगर में उनके बारहवें दिन तक साहित्यिक कार्यक्रम भी चलता रहा।

स्वामी जी मेरी दृष्टि में :-

भारतीय संस्कृति के मूलभूत सिद्धांतो-सर्वशिवता (सबों का कल्याण) सर्वसमता (सब इस विश्व में समान हैं, न कोई ऊंचा है न कोई नीचा है) के नियमों को क्रियात्मक रूप देने वालों में से तथा शैवदशैन की प्राचीन परंपरा को जनसाधारण तक पहुंचाने मे स्वामी लक्ष्मण जी का प्रमुख योगदान रहा है। 'साधारण जीवन तथा उच्च विचार' इनके जीवन का परम लक्ष्य था। उच्च घराने में जन्म लेकर भी आपने ऋषियों की तरह अपना जीवन निभाया। आप सात्विक वृत्ति के थे। कभी भी मादक द्रव्यों का सेवन नही किया था। आप कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी थे, रूढ़िवाद के विरोधी तथा प्रगतिशील थे। आप अंग्रेज़ी, हिंदी, उर्दू, कश्मीरी, संस्कृत आदि के विद्वान थे। आपके जन्मदिन पर प्राय: सभी लोग प्रसाद खाकर अपने आपको कृतकृत्य समझते थे। उस दिन लंगर की व्यवस्था उनके शिष्यों द्वारा होती थी। आप कश्मीरियों को शैवशास्त्र कश्मीरी में पढ़ाते थे तथा उनके पारिभाषिक शब्दों को जैसे 'प्रकाश' तथा 'विमर्श' को सरल कश्मीरी में समझता थे, अंग्रेज़ों को अंग्रेजी भाषा में। आपके व्यक्तित्व से ऐसा लगता था कि आप प्राचीन तथा अर्वाचीन के प्रत्यक्ष

स्वरूप है। यह प्राचीन है अत: यह त्याज्य है यह अर्वाचीन है अत: यह ग्राह्य हैं। आपका दृष्टिकोण उदार मुनियों की तरह विशाल था। तभी तो आपके सब धर्मों के लोगों को आशीर्वाद पाने में अलौकिक सिद्धि पाई जाती थी। सिद्ध होने के कारण। किसी युग में सिद्धों की वाणी असफल नही होती है। कहा भी गया है :-''सतांहि संदेहपदेषु पसुत्रषु प्रमाणमझ:करण प्रवृतय:।।''

इस संसार में अज्ञानियों, दिग्भ्रमितों तथा पथभ्रष्टों का मार्गदर्शन करना आपके जीवन का परम लक्ष्य था। आप आचार्य अभिनवगुप्त के बाद इस आणविक युग में भैरवनाथ शिव के रूप में शैवदर्शन की पताक़ा को विश्व में फहराने के लिए तथा इसका संदेश जन जन तक पहुंचाने के लिए अवतरित हुए थे। आप शांति तथा मानवतवाद के प्रतीक थे तभी तो स्वर्गीय इंदिरा गाधी जी भारत में शाति स्थिर रखने के लिए 1984 ई० में आपके पास आशीर्वाद लेने के लिए गई थी। आपकी नव उन्मेषशालिनी प्रतिभा से प्रभावित होकर देश विदेश के विद्वान् शैव दर्शन की गुत्थी को समझने के लिए आपके पास आते थे। 1950 ई० में फ्रांस से डॉ.सिलबर्न जो संस्कृतभाषा से परिचित थी, आपके पास शैवदर्शन का अध्ययन करने के लिए आई। कई वर्ष उन्होंने स्वामी जी से शैवदर्शन के मुख्य ग्रंथों का अध्ययन किया। बाद में उन ग्रंथों का अनुवाद उन्होंने 'फ्रेंच भाषा' में किया।

अद्वैतवेदांत के प्रचारक महामहिम डॉ. कर्णसिंह भी स्वामी जी के पास आया करते थे, कभी जम्मू व कश्मीर राज्य के मुख्यमंत्री बख्शी गुलाम मोहम्मद भी। वेदांत के धुरंधर विद्वान् स्वामी नीलकंठानंद सरस्वती जो ऋषीकेश में रहते थे, वे भी आपके आश्रम में शास्त्रों का अध्ययन करते थे। श्री ठाकुर जयदेव सिंह जी ने उनकी संरक्षता में कई वर्षों में शैवदर्शन के ग्रंथ पढ़े और उनका अनुवाद अंग्रजी भाषा में किया। उनका पहला ग्रंथ प्रत्यज्ञिाहृदयम् 1978 ई० में छपकर स्वामी जी को उपहार के रूप में प्रदान किया गया। मिथिला निवासी आचार्य श्री रामेश्वर जी झा स्वामी जी के आध्यात्मिक ज्ञान से बहुत प्रभावित हुए। फलत: झा महोदय ने स्वामी जी को अपना गुरु मानकर

स्वामी जी की गुरुस्तुति लिखी जिसे शिष्य प्रात: काल उठकर प्रतिदिन पढ़ते है। एक बार मेरे साथ स्वर्गीय कैलाशनाथ काटजू के सुपुत्र श्री शिवनाथ काटजू शैवदर्शन सम्बन्धी जटिल शंकाओं का समाधान करने के लिए स्वामी जी के पास चले गए। इस तरह आश्रम विद्वानों का मुख्य केन्द्र रहा था।

जर्मनी की प्रसिद्ध विदुषी तथा स्वामी जी की प्रिय शिष्या बेट्टिना गावमर ने स्वामी जी के देहावसान का समाचार सुनकर 19 अक्तूबर 1991 ई० को टाइम्स आफ इंडिया में अपनी श्रद्धांजलि में अपने उद्‌गार इस प्रकार प्रकट किए:-

आचार्य अभिनवगुप्त की परंपरा का अंतिम शैवदर्शनाचार्य तथा योगी ब्रह्म में लीन हुआ।

अमेरिका के 'जोह्वान' ने अनेक वर्षों तक इनके आश्रम में रहकर शैवदर्शन के अनेक ग्रंथों का अध्ययन इनसे किया। जोह्वान ने इनके अनेक शैवदर्शन संबंधी भाषणों को कैसेटों में वाग्बद्ध किया।

1965 ई० में डॉ० संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय में 'अखिल भारतीय तंत्र सम्मेलन' का आयोजन था। इसमे 'कुंड़लिनी विज्ञान रहस्य' पर स्वामी जी ने संस्कृत में अपना शोधपत्र पढ़ा। कालांतर विश्वविद्यालय ने उन्हें 'डी लिट' की मानद उपाधि से सम्मानित किया।

1987 ई० में कश्मीर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में पहली बार कश्मीर शैवदर्शन पर त्रिदिवसीय संगोष्ठी का आयोजन था। इसमें संपूर्ण भारत के मूर्धन्य विद्वानों ने शोधपत्र भी पढ़े। संगोष्ठी के अतिम दिन सारे विद्वान 'ईश्वर में' इनके आश्रम में चले गए। 'शैवदर्शन मठिका' में वहाँ इनकी अध्यक्षता में एक विशाल बैठक हुई। विद्वानों ने वहाँ शैवदर्शन संबंधी कुछ जटिल प्रश्न उनसे पूछे। सौभाग्य से इस सम्मेलन में मैं भी 'कश्मीर विश्वविद्यालय' की ओर से प्राध्यापक के रूप में सम्मिलित हुआ था। उन सब प्रश्नों का उत्तर स्वामी जी ने अच्छी तरह दिया। अंत में उनके पांडित्य से प्रभावित होकर उन्होने यह बैठक सायं आठ बजे विसर्जित की। इससे उनकी

कीर्ति चारों तरफ फैल गई।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि स्वामी जी केवल योगी ही नहीं थे बल्कि वे शैवदर्शन के आचार्य तथा लेखक भी थे।

गत तीन दशकों से मैं उनके आश्रम में जाया करता था। रविवार के दिन वे शैवदर्शन के ग्रंथ शिष्यों को क्रमश: पढ़ाते तथा प्राय: कश्मीरी शैली में वे श्लोको का उच्चारण करते थे। कभी कभी पढ़ाने समय उनके कमल नयनों से आँसुओं की धारा बहती थी। समझाने का उन्हे अपना ढंग था। गुरुओं से जैसे उन्होने पढ़ा था वैसा ही वह पढ़ाते थे। उनके पढ़ाने में कभी कभी हास्यरस की पुट भी पाई जाती थी। प्राय: 'परमार्थसार' आदि पुस्तकों के श्लोक उन्हे कंठस्थ थे। गूढ़ कारिओं का अर्थ तथा उनकी व्याख्या वे सरल रूप से कश्मीरी भाषा में समझाते थे। यह उनमें विशेषता थी। स्वयं आत्मानुभव होने के कारण वे शैवदर्शन की रहस्यात्मक शब्दावली को सरल रूप से समझाने में समर्थ थे। संस्कृतज्ञ को देखकर वे बहुत प्रसन्न हो जाते थे। आश्रम में जब पहली बार मैं गया, मेरा संस्कृत में उच्चारण सुनकर वे अत्यंत प्रसन्न हुए। उन्होंने मुझसे पूछा तुमने किस कक्षा तक संस्कृत पढ़ी है, मैंने हाथ जोड़कर उनसे कहा मैंने शास्त्री की परीक्षा इस वर्ष 1952 ई० में उत्तीर्ण की है। यह जानकर वे फूला न समाए। उस समय संस्कृत के प्रकांड पंडित प्रो. जयलाल कौल भी उनके पास आते थे। शैवदर्शन के गूढ़ विषयों पर चर्चा करते थे। स्वामी जी जिस समय अपना व्याख्यान करते थे। श्रोतागण मंत्रमुग्ध जैसे होते थे। आश्रम का वातावरण उनके ज्ञान के आलोक से आलोकित हो जाता था। विद्या तथा ज्ञान का समन्वय वहाँ दिखाई देता था। वस्तुत: आश्रम 'सत्यं शिवं तथा सुंदरं' का प्रतीक था। तत्कालीन आश्रम की अनेक घटनाएं मुझे प्रवास में इस समय भी याद आती हैं तथा अभ्रावृत आकाश में सूर्य के समान यहाँ अंतर्धान होती हैं। कश्मीर की वर्तमान विषम परिस्थितियों को देखकर मुझे ऐसा लगता है कि आश्रम के वे दिन स्वप्नवत् थे क्योंकि कश्मीर के अक्षय वट को सांपो ने गत पचीस वर्षों से डस लिया है। कितनी विडंबना

है जिस अक्षय वट ने अपनी छाया के नीचे भिन्न भिन्न प्रकार के फूलों को विकसित कर दिया था, उसी वटवृक्ष को विशाल अजगरों ने घेर लिया है। इस लघु लेख मे स्वामी जी के बहुआयामी व्यक्तित्व पर प्रकाश ड़ालना संभव नही, तथापि उनके कुछ आयामों को उभारने की चेष्टा मैने की है।

व्यक्तित्व के बाद उनके कृतित्त्व पर प्रकाश डालना आवश्यक है क्योंकि व्यक्तित्व उसी प्रकार निखरता है जिस प्रकार मणि से कांचन।

अनुवाद तथा रचनाए:

1. आचार्य अभिनवगुप्त की गीता का संपादन (1933)
2. शिवस्तोत्रवली का हिंदी अनुवाद (1964)
3. क्रमनय प्रदीपिका का हिंदी अनुवाद
4. शिवस्तोत्रावली का अंग्रेजी अनुवाद
5. साम्बपञ्चाशिका का हिंदी अनुवाद
6. Lectures on Practice & Discipline in Kashmir Shaivism.
7. Kashmir Shaivism-the Secret Supreme (Lectures given to foreign disciples)
8. तंत्रालोक के प्रथम अहिहक का हिंदी अनुवाद आदि। इस वर्ष स्वामी जी की जयन्ती पर दिल्ली में डॉ० कर्णसिंह जी के करकमलों से 'श्रद्धार्चन' नामक ग्रन्थ का विमोचन हुआ। इसका संशोधक इस लेख का लेखक है।

यद्यपि ईश्वर स्वरूप स्वामी लक्ष्मण जी का पार्थिव शरीर हमारे पास नही है तथापि उन्होंने जो समता तथा शिवता का दिव्य संदेश जातिवर्ण भेद के बिना लोगों को दिया, वह उनको हमेशा सन्मार्ग प्रदर्शन करता रहेगा। उनके ज्ञानामृत से भावी पीढ़ी को अवश्य प्रेरणा मिलेगी। ऐसा मेरा विश्वास है। स्वमाी जी के सपनों को साकार करना हमारा प्रथम कर्त्तव्य है क्योकि आचार्यो द्वारा कहे गए अमृतसम वाक्य प्रत्येक युग में मानव को सही दिशा देते है तथा कुमार्ग से हटाकर उसे सन्मार्ग की ओर ले जाते है। अत: हमें इस संभ्रांतयुग में शैवदर्शन का अवश्य प्रचार करना चाहिए क्योकि यही एक ऐसा दर्शन है

जिसके अनुसार एक चंड़ाल भी इसका अधिकारी हो सकता है। राष्ट्रीय एकता की नीव को सुदृढ़ बनाने के लिए तथा जन कल्याण के लिए दस दर्शन की इस युग में उपादेयता महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है। ऐसी मेरी धारणा है।

नि:संदेह, स्वामी जी का यशरूपी शरीर अजर तथा अमर है। संस्कृत के महाकवि भर्तृहरि की यह सूक्ति उन पर पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है:- ''नस्तितेषां यश: काये जरामरणजं भयम्।'' According to Shakespear: "Death can not boost upon him."



संदर्भ ग्रंथ:-

1. विश्व संस्कृत शताब्दी ग्रंथ: जम्मू ब कश्मीर राज्य भाग: अस्य शातस्य संस्कृत विद्वांस: (इस शती के संस्कृत विद्वान लेखक: डा. बी. एन. कल्ला, शास्त्री। प्रकाशक: अखिल भरतीय संस्कृत सम्मेलनम्, संवत् 2002, (प,ष्ठ नं.416-419)
2. कोशुर समाचार (संत अंङ्क) मार्च - अप्रैल, 1992) प्रकाशक: कश्मीरी समिति, दिल्ली।

संस्कृत के धुरंधर विद्वान आचार्य दीनानाथ यक्ष शास्त्री

डोगरों के शासनकाल में महाराज रणवीर सिंह (1856-87 ई०) का शासनकाल कश्मीर में शातिमय तथ सुख समद्धि से पूर्ण माना जाता है इनके शासन में शिक्षाकी सर्वतोमुखी प्रगति हुई थी। जहां इन्होंने अनके संस्कृत विद्वानों को प्रोत्साहन दिया, वहां उन्होने अरबी तथा फारसी के साहित्याकरों को भी समुचित एंव आदरणीय सम्मान दिया। इन्होनें संस्कृत हिन्दी बंगला, अंग्रेज़ी आदि के ग्रन्थो-रत्नों का अनुवाद तत्कालिक-हिन्दी, पंजाबी, डोगरी आदि भाषाओं में एवं अरबी, फारसी, अंग्रज़ी आदि ग्रन्थ रत्नों का संस्कृत, हिन्दी, डोगरी आदि कराया। विशेष रूप से आयुर्वेद और तिब की ओर विशेष ध्यान दिया गया। इसका समस्त साहित्य इस समय रिसर्च डिपाटमेंट कश्मीर विश्व विद्यालय में विद्यमान है। कलान्तर यह अनुवाद विभाग महाराजा प्रताप सिंह के शासनकाल मेंजम्मू व कश्मीर अनुसंधान विभाग में (J&K Research Deptt.) तबदील हुआ। तत्पश्चात डोगरावंश के अंतिम शासक महाराजा हरि सिंह के ज़माने में संस्कृत भाषा के अनेक पंडितों ने जन्म लिया था जिनमें से कश्मीर के कुछ उल्लेखनीय विद्वान पं मधुसुदन कौल शास्त्री, महामहोपध्याय पं० मुकन्दराम शास्त्री, पं० जगधर ज़ाडू, पं० हर भट्ट, डॉ० शिवनाथ शर्मा शास्त्री, पं श्रीकंठ कौल शास्त्री, पं रघुनाथ जाडू शास्त्री, पं० पृथ्वी नाथ पुष्प शास्त्री, पं दीननाथ यक्ष शास्त्री आदि थे। ये सब संस्कृत के धुरंधर विद्वान इस विभाग में उच्च पदों पर काम करते थे। इनका योगदान कश्मीर शौव दर्शन आदि ग्रंथों के संपादान तथा प्रकाशन में महत्त्वपूर्ण रहा है।

श्री दीननाथ यक्ष श्रीनगर के बदगेर (सं-बौद्धगिरि) इलाके में रहते थे। इनका जन्म 1918 ई में हुआ था। उनके पिता का नाम जर्नादन यक्ष था जो उस समय ज्योतिष शास्त्र के प्रकांड पंडित माने जाते थे। पैतृक सस्कृतमय वातावरण

के कारण उनकी प्रारम्भिक शिक्षा घर में ही हुई। बाद में उन्हें बागिदिलावर खां में स्थित राजकीय संस्कृत पाठशाला (वर्तमान-गवर्नमेंट ओरियंटल काँलेज) में विधिवत् अध्ययन के लिए भेज दिया गया। वहां उन्होंने अपनी कुशाग्र बुद्धि के कारण पंजाब विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में प्राज्ञ की परीक्षा पास की। उस समय वहां पं नाथ राम कल्ला शास्त्री संस्कृत-विभाग के अध्यक्ष थे। कुछ समय के बाद उन्हें जम्मू के रघुनाथ संस्कृत महाविद्यालय में पढ़ने के लिए भेज दिया गया। वहां उन्होनें विशारद तथा शास्त्री की परीक्षाए क्रमश: पंजाब विश्वविद्यालय लाहौर से प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। इसके बाद उन्होनें प्रभाकर की परीक्षा भी पास की। दीननाथ जी के घर में रोज़गार के साधन सीमित थे। अत: उन्होनें सोपोर के एक राजकीय विद्यालय में संस्कृत-अध्यापक के रूप में नौकरी की। एक साल के बाद परिस्थितिवश उन्हें यह नौकरी छोंड़नी पड़ी। बाद में जम्मू व कश्मीर रिसर्च विभाग में उनकी नियुक्ति पहले रिसर्च असिस्टेट के रूप में हुई। वहां उन्होंने कश्मीरी पंड़ितों के घर-घर जाकर अनेक दुर्लभ संस्कृत पांडुलिपियों की खोज की तथा उनसे प्रत्नविभाग के पुस्तकालय को सुशोभित किया। इस विभाग में उन्होनें संस्कृत पांडुलिपियों का सूचीपत्र (Cataloging) तैयार किया तथा शैवाचार्य पं हरभटटशास्त्री द्वारा संस्कृत में अनूदित पंचस्तवी का संपादन भी किया जो इस समय रिसर्च-विभाग में उपलब्ध है। इस विभाग में उन्होनें प्राईवेट रुप से अंग्रज़ी में बीए.की परीक्षा पास करके साहित्याचार्य की उपाधि भी प्राप्त की। इस विभाग से हैड पंडित के रूप में सेवानिवृत होने के बाद इनके वैदुष्य से प्रभावित होकर कश्मीर विश्वविद्यालय के मध्य एशियाई अध्ययन केन्द्र के प्रथम निदेशक डां मकबूल अहमद ने इस केन्द्र में उनकी नियुक्ति रिसर्च स्कालर के रूप में की। वहां उन्होंने अनेक वर्षो तक रिसर्च का काम किया। हाय। इस साल 5 अवतूबर 2004 को उनका निधन हुआ।

शास्त्री जी प्राच्य तथा पाश्चात्य भाषाओके ज्ञाता थे। जैसे-हिन्दी, संस्कृत, उर्दू कश्मीरी, अंग्रेज़ी तथा डोगरी आदि यदि उन्हें भाषाविद् कहा जाए

तो कोई अत्युक्ति न होगी। इसके अतिरिक्त वे विभिन्न लिपियों से परिचित थे जैसे - ब्राह्मी, शारदा, नगरी रोमन, गुरुमुखी तथा नस्तालीक आदि। यहां पर यह कहना असंगत न होगा कि शास्त्री जी शारदा लिपि में माहिर थे। विदेशों से संस्कृत के विद्वान यहां आकर शारदा में लिखित पांडुलिपियों को जानने के लिए रिसर्च विभाग में इनकी शरण में जाते थे। वे विद्वानों की सहायता खुले दिल से करते थे। इस संदर्भ में मुझे यह तथ्य याद है कि एक बार जापान से एक प्रसिद्ध विद्वान वामदेवकृत मुनिम्तमाला का विषय-वस्तु (Subject Matter) जानने के लिए रिसर्च विभाग में आया था। तत्काल शास्त्री जी ने संस्कृत पांडुलिपियों में से भोजपत्र पर लिखित यह मातृका ग्रंथ निकाल कर उसको इसके विषय-वस्तुत से अवगत कर दिया। जो उस विदेशी विद्वान ने नोट कर दिया। यह घटना इसलिए मुझे याद है कि उस समय मै कश्मीर विशविद्यालय के मध्य एशियाई अध्ययन केन्द्र में संस्कृत-प्राध्यापक के रूप में काम करता था तथा उनके सान्निध्य में रहने का मुझे सुअवसर मिला था। वस्तुत: शास्त्री जी संस्कृत के धुंरधर विद्वानों में से गिने जाते थे। वे संस्कृत विद्वानों के साथ निरर्गलरूप से संस्कृत में बोलते थे संस्कृत भाषा पर उन्हें पूर्ण अधिकार था। संस्कृत में बोलने की क्षमता विशेषता इस समय मैनें पीएचडी तथा डी.लिट उपाधि धारी संस्कृत प्राध्यापकों में नहीं देखी है। वस्तुत: शास्त्री जी विभिन्न विषयों में-दर्शन, इतिहास, ज्योतिष, भाषविज्ञान तथा व्याकरण आदि शास्त्रों में पारंगत थे। तभी तो उनकी प्रसिद्धि सारे भारत में फैली हुई थी। जम्मू व कश्मीरी के विद्वानों तथा विदुषियों को शोध-प्रबंध लिखते समय शोध-प्रबंध लिखते समय शास्त्री जी ने अनेक रुपों में सहायता की। उनकी नामावली इस प्रकार है - (1) डॉ० प्राणनाथ त्रछलू (2) डॉ० शशि शेखर तोषखानी (3) डॉ० त्रिलोकी नाथ गंजू (4) डॉ० ललिता मुजू (5) डॉ उषा बागती (6) डॉ० भाल कृष्ण रैण (7) डॉ विद्य शर्मा (8) डॉ० बदरीनाथ कल्ला आदि। उनका कृतित्व: (1) विश्व संस्कृत शताब्दी ग्रंथ: जम्मू व कश्मीर राज्यभाग: नामक पुस्तक में इन्होनें 1866-1966 ई० तक यानी एक सौ साल के संस्कृत-

मातृका ग्रंथों का संस्कृत में सविवरण परिचय लिखा। यह शोध-ग्रंथ 1966 ई० में अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन दिल्ली द्वारा प्रकाशित होकर भारत के प्रधानमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री को समर्पित किया गया। (2) पंचस्तवी का सपादन, (3) अहवालनामा कश्मीर के संस्कृत, विद्वानों का जीवन-परिचय आदि) कश्मीरी विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर कश्मीरि विभाग से प्रकाशित, डॉ० राधा कृष्ण काव द्वारा तथा स्थापित शारदापीठ रिसर्च सिरीज इस शोर्ध पत्रिका में कश्मीरी के सुप्रसिद्ध शैवाचार्य स्वामी लक्ष्मणजी महाराज के जन्मदिवस पर इनकी संस्कृत में पद्य पुष्पाजलि प्रकाशित (4) राष्टीय संस्कृत संस्थान, (मानित विश्वविद्यालय दिल्ली) द्वारा प्रकाशित विमर्श नामक शोध-पत्रिका में 'कश्मीरस्य इतिवृत्तम्' नामक सारगर्मित ऐतिहासिक लेख प्रकाशित हुए है। इनकी शैली कादम्बरी के रचयिता बाणभट्ट के समान समासबहुला है। (5) श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्टीय संस्कृत विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित शोध-प्रभा के विशेषांक में डॉ० मंडन मिश्र के लेख तथा कृतित्व पर इनका संस्कृत राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान में लेख दिल्ली द्वारा प्रकाशित शैव दर्शन कोश में सहसंपादक के रूप में इन्होनें काम किया था। इनके अनेक लेख विभन्न भाषाओं में अनहार शीराज़ा (जम्मू व कश्मीर कल्चरल अर्कडमी द्वारा प्रकाशित) नीलजा (ज.व.क राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा प्रकाशित) Glimpses of Kashmir Culture by Shardha Peetha Research Centre Srinagar हमारा अदब (ज.व.क कल्चरल अकैडमी द्वारा प्रकाशित) आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए है।

शास्त्री जी अनेक साहित्यिक संस्थाओं से जुडे हुए थे आपको अनेक संस्थाओं ने सम्मानित तथा तथा पुरस्कृत भी किया था। नि:संदेह शास्त्री जी शैवदर्शन के मर्मज्ञ थे। कश्मीर तथा मध्य एशिया के इतिहास से भी सुपरिचित थे। उनके निधन से संस्कृत-जगत को काफी क्षति हुई, इस क्षति को कौन पूरा कर सकता है। इस पर प्रशन चिन्ह लग गया है।



कश्मीरी साहित्य के उत्कृष्ट कवि - श्री दीनानाथ नादिम

भारतीय साहित्यकारों से साक्षात्कार डॉ० रणवीर रांग्रा द्वारा लिखित इस पुस्तक में सौलह भाषाओं के पचास सुविख्यात भारतीय सहित्यकारों के साथ समय समय पर हुई उनकी भेंट वातायें संकलित हैं। कश्मीर के इस उत्कृष्ट कवि का नाम मैनें डॉ० रांग्रा को सुझाव के रूप में भेज दिया था जो उन्होंने स्वीकार किया। फलत: पं० नादिम के जीवन परिचय के साथ उनका कृत्तिव कृतिच्छ भी इस कालजयी रचना में इस प्रकार प्रकाशित हुआ है:-

रोटी जैसा चांद उगा, पर्वतों की भूख बढी, देश के विभाजन के बाद कश्मीर पर पाकिस्तान का जो आक्रमण हुआ उसके फलस्वरूप वहां का ज़नजीवन पूरी तरह अस्त-व्यस्त हो गया था। इस बडे आघात को झेलकर कश्मीरी कविता ने धीरे धीरे आधुनिकता की ओर जो मोड लिया पं नादिम उसके मुख्य प्रवर्तक मान जाते है। कश्मीरी कविता को नादिम की सबसे बड़ी यह देन है कि उन्होंने काव्याभिव्यक्ति को मुध्ययुगीन संस्कीर्णता से मुक्ति दिलाकर समसामयिक परिस्थितियों और जीवन मूल्यों से उसकी पहचान कराने के लिए काव्य धरातल पर तैयार किया। इस से उनके समकालीन कवियों के लिए भी कथ्य और शिल्य के अनेक आयाम खुल आए। गज़ल जैसे घिसे पिटे काव्य रूप स्थान पर पहली बार 'मुक्त छन्द' के प्रयोग द्वारा नादिम ने कश्मीरी कविता को जीवन्त बना दिया। उन्होंने कश्मीरी भाषा को नई भंगिमा दी और उसका मुहावरा भी बदल ड़ाला। नादिम की काव्य-यात्रा राष्ट्रीय चेतना से आरम्भ होकर प्रगतिशीलता को समेटती हुई आधुनिकता को अपना दृढ़आधार बना लेती है।

नादिम ने कश्मीरी साहित्य को सशक्त ओपेरा और नाटक भी दिए हैं जो अत्यन्त लोक प्रिय हुए है। भांगड़ा शैली पर रचित उनका ओपेरा,

जिसका शीर्षक खेती हलवाले की हैं, बेहद सफल रहा था। 'बॉम्बुर तु यॅम्बरज़ल' (भ्रमर तथा नरगिस फूल) 'बॉम्बुर' भ्रमर और नरगिस फूल से सम्बन्धित एक कश्मीरी लोकगीत पर आधारित है जिसमें ये दोनों प्रेमी अलग अलग ऋतु में पैदा होने के कारण कभी मिल नहीं पाते। एक अन्य कश्मीरी लोक कथा पर रचागया उनका 'हीमाल नागराय' नामक ओपेरा भी बहुत सफल हुआ। उनकी रचनाएं अनेक भाषाओं में अनूदित हो चुकी हैं। पर खेद का विषय है कि देर तक उनका कोई कविता संकलन नही निकला। उनकी सब कविताएं पत्र पत्रिकाओं में ही बिखरी रही। हाल ही में 'शिहिल कुल' नाम से उनकी कविताओं का एक संकलन निकला है। नादिम साहिब बडे अर्से से बीमार चल रहे है। जब उनको लिखे मेरे पत्र का कोई उत्तर नही आया तो मै समझ गया कि इसका कारण उनकी बीमारी ही है। इसलिए 'कश्मीर विश्वविद्यालय' के अपने मित्र डॉ० बदरीनाथ कल्ला को मैं ने अपनी प्रश्नावली भेज कर अनुरोध किया कि वे स्वंय नादिम साहिब से मिले और उनके उत्तर लिखकर उनसे यही करा ले और मुझे भिजवा दे। इसी आशय का पत्र नादिम साहिब ने भी लिख दिया था। इस प्रकार नादिम साहिब की कृपा और डॉ० कल्ला के प्रयास से यह प्रश्नोत्तरी हुई। मेरा पहला मन था, कहते है कि कविता रची नही जाती, वह भीतर से एक चरों के समान फुटकर कवि को सराबोर कर देती है और वह लिपिक की तरह उसे बस कागज़ पर उतार लेता है। क्या आप इस धारणा से सहमत है ? कृपया अपनी किसी कविता के प्रसंग में अपनी रचना प्रकिया पर प्रकाश डाले। उनका उत्तर था मैं इस धारणा से शतप्रतिशत सहमत हूं कि कविता एक चश्में के समान भीतर से ही फूट पड़ती है। बचपन में मै दीवारों पर कोयलों के टुकड़ों से अपने मानसिक उद्गार लिखता था। जब रात के समय मेरे भीतर से कोई भाव उमड़ता तो मैं उसे उसी समय कलम बन्द कर लेता था। 'बु ग्यवु नु', नहीं गाऊंगा मैं ? इसी प्रक्रिया को अपन्नाता था।

नादिम की कविता 'ज़ून' (चन्द्रमा) पारम्परिक प्रकृति चित्रण के

विपरीत प्रकृति को गरीब की भूख का प्रतीक बनती है। इस कविता का हिन्दी रूपांतर उल्लेखनीय है:-

''पर्वत् की गोद से एक दिन उदय हुआ:
रोटी जैसे चांद का
गरीबी के बन्धन फटे हुए
छाती खुली रूपहले तन पर दाग़ है।
इधर उधर
उधाड़े हुए
या कोई बढ़िया ऊनी पट्टी तार-तार हुई सी
मानो किसी मज़दूर को किसी ठेकेदार ने
छलकर थमाया हो खोटा एक रुपया
भरी रेज़गारी में
रोटी जैसे चांद उदय हुआ।
पर्वतों की भूख बढी
मेघ फिर एक बार चूल्हा बुझाने लगा।
वनपरियों ने आग सुलगाई मानों
गतिशील चूल्ह की
पर्वतों के शिरवरों पर जैसे पेड़ अनेक
भरभर उग आये।
मैं भी समझने लगा
अपने फाकामस्त को आकुल नयनों से मै भी देखने लगा
अम्बरक
ओर छोर।''

इस कविता के प्रसग में मैंने पूछा था ''आपकी कविता चन्द्रमा में आपने प्रकृति-चित्रण के माध्यम से गरीबों की भूख और अमीरों द्वारा उनके शोषण का बड़ा मार्मिक चित्रण किया है। कविताओं में चांद प्राय:सुन्दरता का

प्रतीक बनकर आता है, पर आपकी इस कविता में यह भूख और बेहाली का प्रतीक बना है। इस कविता का उन्मेष कब और कैसे हुआ ?'' उत्तर में उन्होंने बताया ''मेरी भूख चिरस्थायी थी। उसका मूलकारण मेरी अत्यन्त निर्धनता थी, पूर्ण रूप से अभाव था। बचपन से मेरे पिता का साया मेरे सिर से उठ गया था। इस कारण मुझे वर्षो गरीबी और बेहाली के दिन देखने पड़े जिसका प्रभाव मेरे सारे जीवन पर पड़ा। एक बार पुल को पार करते हुए मैने चांद देखा। उसे देखकर मेरे मन में भावों की तरंगे उठने लगी और मैंने प्रकृति को शोषण और दरिद्रता का प्रतीक बनाया। यह रचना सन् 1955 की है।''

मेरा अगला प्रश्न था ''बाग़ को लेकर लिखी गई आपकी कविता 'नया सोच नया मोड़' राष्ट्रीय भावना को बड़े सुन्दर ढंग से उजागर करती है। 'बाग' का मतलब नहीं केवल गुंचे और फूल। पेडों की शीतल छायाका विश्वास है। बाग/पक्षियों की चहक का एक बार है बाग/मेलजोल, भाईचारे पर यकीन का नाम है 'बाग'। इसी प्रकार गाए जा कश्मीर की ओजस्वी कविताए राष्ट्रीय चेतना जगाती है।

''तूफान तुल तूफान बन
छि मीर कारवान बन
कॅशीरि पास्वान बन।''

क्या आप मानते है कि हर कवि को इसी प्रकार अपने देश और समाज के प्रति 'कमिटेड' होना चाहिए ? कवि के नज़दीक आपकी राय में प्रतिबद्धता का क्या मतलब हो सकता हे ?'' उन्होंने बताया ''प्रगति शील होने के कारण मैं अपनी रचनाओं में आम आदमी से प्रतिबद्ध था। कश्मीर का सौंदर्य और यहां की गरीबी दोनों परस्पर विरोधी थे। यहां की राजनीतिक अवस्था जनता के प्रतिकूल थी। इसलिए अपनी क्रांतिकारी रचनाओं में मैंने शख्सी राज्य के विरूद्ध शोषित और दलित जनता का आह्वान किया।''

भारतीय ज्ञान पीठ द्वारा प्रकाशित एक कविता संग्रह भारतीय कविताएं 1983 ई० में नादिम की एक कविता छपी है, प्रेमकथा शीर्षक से। इसकी

अंतिम पंक्तियां यों हैं - और आज जब/समय अस्त होने का आया। क्यों रूठ तुम ? और आज जब/समय अस्त होने का आया/क्यों रूठे तुम ? भूल गये सम्बन्ध पुराना ? डरते हो क्या ? अपनी टूटी देह पुरानी /लिए यह न पीछे पड़ जाए ? यहां न आएं ? आपकी लम्बी बीमारी और अपने आपके अदम्य मनोबल की प्रशंसा सुनकर आपसे पूछने को मन होता है कि तन की पस्ती में यह मन की पस्ती क्यों ?

मुझे लगा था कि यह कविता प्रेमिका को संवेधित है। इस भ्रम को दूर करते हुए नादिम ने बताया यह कविता देवी को संवेधित है। यह कविता मैंने उस समय लिखी थी जब देवीआंगन में मुझे शारिकादेवी का साक्षात्कार हुआ था। यह बात मैंने किसी को नहीं बताई थी। आज पहली बार इस रहस्य को अपने प्रिय मित्र डॉ० बदरीनाथ कल्ला के माध्यम से खोल रहा हूँ। यह कविता प्रतीकात्मक हैं। मैंने यह भी पूछा था अपने कोई सफल नृत्य नाटिका लिखी है। इसकी तरफ आपका रुझान कैसे हुआ ? क्या आपने प्रगतिशील विचारों के प्रचार के लिए ओपेरा के माध्यम को अपनाया था या आपको इस माध्यम की कलात्मक ने आकृष्ट किया ? अपने ओपेरा 'बॉम्बुर तु यॅम्बरज़ल' और 'धरती हलवाहे की' के संदर्भ में यह बात समझाये।'' उनका उत्तर था ''मेरी कविता 'धरती हलवाहे की' सन् 1947 ई० में लिखी गई थी। यह प्रगतिवाद से मेरी प्रतिबद्धता की उपज थी। मैं 'ओपेरा' आदि के माध्यम से जनता को सतर्क करना चाहता था ताकि वह गरीबी के स्तर से उपर उठाकर सुख चैन का जीवन जी सके। अपने ओपेरा 'बुम्बुर तथा यम्बरज़ल' (फूल) होता है। तब बुम्बुर (भ्रमर, भौंरा) नहीं होता है। मैं इन दोनों का मिलन चाहता था वियोग नहीं। यह ओपेरा सन् 1953 ई० में यहा मंचित हुआ है। बाद में रूसी भाषा में भी इसका अनुवाद हुआ। साम्यवाद के प्रभाव से ही मैं इस ओर प्रवृत्त हुआ था।'' उनकी आत्मा की पुकार विषटाक कविता के प्रसंग में मैंने पूछा था ''आपकी राय में इस मौजमस्ती के युग में जब साहित्य् की भूमिका ही संदिग्ध हो गई है। आत्मा की पुकारवाली कविता की क्या भूमिका हो

सकती है ?'' उन्होंने बताया ''मैं आत्मा पर विश्वास रख सकता हूं। पहले मैं गांधीवादी था। मुझे अब भी इस पर विश्वास है। इसी से मेरा दृष्टिकोण मानववाद की ओर गया यह विरोधात्मक भाव नहीं है। वास्तव में मानवता ही आदर्श जीवन की कुंजी है। इसी धारणा से मै प्रगतिशील बना। मै कठमुल्लावादी नहीं हूँ। सन् 1952 के अक्तूबर में मैंने चीन की यात्रा उसके शान्ति प्रिय होने के कारण ही की थी।'' उनकी एक और प्रसिद्ध कविता के बारे में मैंने पूछा था ''आपकी कविता 'नाबद ट्ठव्यन' (मिश्री माहुर) प्रेम के आनन्दमय और पीड़ामय दोनों पक्षों को एक साथ उभारती है। उसका सुखान्तकर आपने प्रेमी की पीड़ा को स्पृहणीय बना दिया है। इस गूढ़ कविता का जन्म कैसे हुआ ?'' उनका उत्तर था ''मेरी यह कविता प्रगतिवाद से अलग-थलग है। इस कविता में मैंने चेतनाप्रवाह की नई विधा को जन्म दिया और उसे अपनाया। यह कविता रोमांटिक है। बिम्बवाद पर आधारित इस कविता की रचना सन 1958 ई० में हुई थी। साहित्यक पुरस्कारों की बात छेड़ते हुए मैंने पूछा था ''आप कई पुरस्कारों से सम्मानित हो चुके हैं। आपकी राय में क्या ये पुरस्कार सच्ची सहित्यसर्जना को बढ़ावा देते हैं या लेखकों में साहित्येतर प्रतिस्पर्धा को जन्म देते हैं ?'' उनकी राय में ''पुरस्कार पाने से विरोध ही पैदा होता है। पुरस्कार की आकांक्षा तो स्वभाविक है, मगर पुरस्कार पाकर कवि कुण्ठित हो जाता है। मेरी धारणा है कि पुरस्कार पाकर लिखने की उत्सुकता कम हो जाती है।''

लेखकीय जीवन में सन्तुष्टि के क्षणों की बात उठाते हुए मैं ने अन्त में पूछा ''आपके नज़दीक लेखकीय सन्तुष्टि का क्या अर्थ है ? आपके लेखकीय जीवन में सुंतुष्टि के कई अवसर आए होंगे। उनमें किसी एक के बारे में सुनाएं।'' उनका उत्तर दो टूक था ''मेरे जीवन में संतुष्टि नहीं है।''



नादिम सन्तोष की नज़र में

23 अगस्त 1983 को 'जम्मू व कश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' के अध्यक्ष प्रो काशीनाथ दर, श्री बदरीनाथ कल्ला तथा श्री मोतीलाल प्रमोद (मुख्य प्रचारक) ने कश्मीर के सुप्रसिद्ध कवि तथा चित्रकार श्री गुलाम रसूल 'संतोष' (नादिम के समकालीन कवि) से श्री दीनानाथ 'नादिम' के व्यक्तित्व तथा कृतित्व के विषय में कुछ प्रश्न पूछे।

सर्वप्रथम प्रो काशीनाथ दर ने उनसे यह प्रश्न किया - संतोष साहिब। नादिम साहिब को आप कब से जानते हैं। उनके साथ आपका कब सम्पर्क हुआ।

संतोष - प्रो० दर साहिब। मैं नादिम साहिब को चिरकाल से जानता हूँ। सौभाग्य से 1853 ई में मेरा उनके साथ अधिक सम्पर्क हुआ। जिस समय उन्होंने 'बोम्बुर यम्बरज़ल' नामक 'ओपेरा' लिखा। तब से उनके साथ मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध हुआ। कश्मीरी अदब का जो तरक्की-पसन्द दौर था, उसमें यह सम्बन्ध उत्तरोत्तर दृढ़तर होने लगा।

प्रश्न - नादिम साहिब की कविता आपके नज़रिये से कैसी है।

उत्तर - नादिम साहिब का स्थान प्रगतिशील कवियों में उत्कृष्ट माना जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि वे आधुनिक युग के उच्च कवि माने जाते है। मुझे सन 53 शीर्षात्मक उनकी कविता इस समय भी याद आती है। इसमें धान बेचने वाले माँझी की गिनती का उल्लेख है जो एक अनोखी कविता है। तुलनात्मक दृष्टि से यह अत्युत्तम कविता है। इनकी शब्दावली बहुत रोचक तथा आकर्षक है। उनकी कविता में यह विशेषता पाई जाती है कि उन्होंने स्थानीय प्रतीकों का प्रयोग किया है जो अन्य कश्मीरी कवियों में दृष्टिगोचर नहीं होता है। राही ने ग्रीक मैथालॉजी का प्रयोग अपनी कविता में किया है किन्तु नादिम की शायरी नैसर्गिक तथा जन्मजात है।

प्रश्न - आप भी कश्मीर के जाने माने कवि हैं। आपको किस कवि से प्रेरणा मिली।

उत्तर - मुझे सबसे पहले नादिम की 'लखचि बु लखचुन' नामक कविता से प्रेरणा मिली। बाद में मैंने 'खबर दार रातस कुस ओस' नामक कविता लिखी। इसमें व्यक्त सौन्दर्य नज़र आता है। कालन्तर में नादिम साहिब ने 'नाबद ट्यठव्यन' नाम कविता लिखी। इसमें कलापक्ष के साथ भावपक्ष भी नज़र आता है। नादिम की यह कविता इतनी लोकप्रिय हुई कि राही ने 'तखलीक' नामक कविता इसी आधार पर लिखी।

प्रश्न - संतोष साहिब। आपको नादिम की कविता में क्या विशेषता नज़र आती हैं।

उत्तर - नादिम की कविता उत्तेजनात्मक है। बाह्य वातावरण से उनकी कविता उद्दीप्त होती है। 1653 ई में जो राजनीतिक घटना कश्मीर में घटी, उस समय नादिम के साथ मैं, सोमनाथ ज़ित्शी तथा अब्दुल अज़ीज़ आदि थे। इस घटना से प्रभावित होकर नादिम ने अपना सिर पीटा। उस समय उन्होंने बहुत-सी क्रांतिकारी कविताएँ लिखीं जो बहुत ही हृदयविदारक हैं।

प्रश्न - नादिम के व्यक्तित्व के विषय में आप क्या जानते हैं? क्योंकि आपका सम्बन्ध उनके साथ चिरकाल से है।

उत्तर - नादिम साहिब अत्यन्त निर्धन थे। इस बात को सभी तो जानते है। उनमें यह विशेषता पाई जाती है कि वे अध्ययनशील तथा अध्यवसायी थे। जो पुस्तक उन्हें मिलती थी चाहे वह चिकित्सा सम्बन्धी हो या अन्य किसी विषय पर लिखी हो, उसे वह अवश्य पढ़ते थे। बाद में वे अपनी योग्यता क कारण हमारे 'राज्य की संविधान सभा' में भी निर्वाचित हुए। कश्मीरी पंडितों में प्राय: ऐसा दिखाई देता है कि जब वे नौकरी करने लगते हैं तो बाद में साहित्यिक कार्य की ओर ध्यान नहीं देते हैं, किन्तु नादिम इसमें अपवाद हैं। वे नौकरी में भी अपना अध्ययन जारी रखते थे। वस्तुत: इन्हीं गुणों ने उन्हें साहित्यिक क्षेत्र में आगे बढ़ाया।

प्रश्न - कश्मीरी साहित्य में सबसे पहले कहानी किसने लिखी है। इस विषय में प्राय: लोगों का विचार है कि सोमनाथ ज़ित्शी कश्मीरी साहित्य के पहले कहानीकार हैं। इस सम्बन्ध में आपकी क्या राय हैं।

उत्तर - सबसे पहले श्री नादिम ने कश्मीरी भाषा में 'जवाबी कार्ड' नामक कहानी लिखी जो 'कोंग पोश' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुई। बाद में इसी पत्रिका के दूसरे अंक में सोमनाथ ज़ित्शी साहिब की कहानी छप गई जिससे लोगों में भ्रान्त धारणा पैदा हो गई कि श्री ज़ित्शी साहिब ही कश्मीरी कहानी के जन्मदाता हैं। वस्तुत: नादिम ने ही कश्मीरी कहानी पहले लिखी।

प्रश्न - नादिम का कौन सा ओपेरा प्रसिद्ध है।

उत्तर - नादिम साहिब का पहला ओपेरा 'बोंबुर यम्बरज़ल' है। यह सबसे पहले नीडोज़ होटल में दिखाया गया। बाद में यह औपेरा जम्मू व कश्मीर राज्य के स्वर्गीय मुख्यमंत्री श्री बख्शी गुलाम मुहम्मद के कथनानुसार प्रदर्शनी में भी दिखाया गया। इसके अतिरिक्त 'वितस्ता' नाम का उनका सुप्रसिद्ध औपेरा 'जम्मू व कश्मीर कल्चरल अकादमी' की 'टाइगोरशाला' में हाल ही में स्टेज हुआ। इस औपेरा की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई। यह ओपेरा इतना लोकप्रिय हुआ कि घाटी के अतिरिक्त यह भारत के विभिन्न राज्यों में भी दिखाया गया। इस प्रकार कश्मीरी साहित्य में नादिम साहिब का योगदान संगमील की हैसियत रखता है।



हिन्दी रूपान्तर
डॉ बद्रीनाथ कल्ला

मूल कश्मीरी
गुलाम रसूल संतोष

नादिम अपनी नज़रों में

कश्मीरी साहित्य के इतिहास में दो ही कवि ऐसे हैं जिन्होंने एक नहीं बल्कि कई पीढ़ियों को प्रभावित किया है। ये दो महाकवि माता लल्लेश्वरी तथा दीनानाथ नादिम है। इन महापुरुषों के द्वारा में कश्मीरी साहित्य ने इतनी प्रगति की जिसका वर्णन करना कोई साधारण बात नहीं।

संसार में कुछ लोग ऐसे हैं जो इतिहास की कोख से जन्म लेकर फिर इतिहास का एक भाग बन जाते हैं मगर कुछ महापुरुष ऐसे होते हैं जो नया इतिहास बनाते हैं। वह इतिहास के दास बनकर नहीं रह जाते हैं अपितु इतिहास उनके क़दम चूमता हैं दीनानाथ नादिम माता लल्लेश्वरी की सन्तान है जिसने अपनी माता की तरह इतिहास को अपने सांचें में ढाला और अपने पीछे-पीछे चलने पर विवश किया। जिस तरह ललद्यद के ज़माने से कश्मीरी साहित्य का इतिहास और एक युग आरम्भ होता है, उसी तरह नादिम साहिब के कारण कश्मीर के एक नये महान युग का सूत्रपात होता है। उनकी आवाज़ से पुरानी आवाज़ें दबकर रह गई। नादिम की आवाज़ नये युग, नये स्वर और क्रांति की आवाज़ थी। यह आवाज़ ज्यों ही प्रकट हुई, इसने सब लोगों को आकृष्ट किया। नादिम ने पुरानी दीवारों को फांदकर नये अन्दाज़ से पुकारा। ग़ज़ल की पारम्परिक सीमाओं को पार करके उसने नई सीमाओं की रूपरेखा खींची। उनकी एक कविता 'यौवन की पुकार' ने उस समय सारे शहर में हलचल पैदा की जब कबाइली शहर तक आ पहुँचे थे और यहाँ के राजनीतिज्ञों को मुकाबले के लिए तैयार कर रहे थे। 'मुज़ाहिद मंज़िल' के एक अवामी जलसे में जब यह कविता नादिम साहिब ने सुनाई तो लोगों में एक नई उमंग पैदा हुई। दूसरे दिन यह कविता बच्चे-बच्चे के जिह्वाग्र पर थी। इस कविता को शैली तथा इसका भावपक्ष इतना आकर्षक है कि आज भी यह कविता पढ़ते समय हमारा रक्त नसों में तेज़ी से दौड़ता है और दिल ज़ोर-ज़ारे से धड़कने लगता है:-

''तू कश्मीर का नवयुवक है
तुझे हल को प्रतीक बनाकर चलना है
सारी दुनिया तुम्हारी ओर आ रही है
अपनी कमर को कस ले,
हमारे भाग्य को ऊँचा उठा ले
तू कश्मीर की शान बन जा,
तू कारवां का नेता बन जा।।''

नादिम साहिब की यह कविता 'गाये जा कश्मीर' में शामिल है। इस किताब में उनकी दूसरी भी कई कविताएँ शामिल हैं। ये वह प्रारम्भिक कविताएँ हैं जिन्होंने हमारे यहाँ एक नया युग प्रारम्भ किया और सम्भवत: ये ही उनकी पहली कविताएँ हैं जिन्होंने एक नये युग का श्रीगणेश किया। 'गाये जा कश्मीर' में कश्मीरी ज़बान के दूसरे कई कवियों की कविताएँ भी शामिल हैं किन्तु नादिम साहिब की शैला व ढंग बिल्कुल नया और अलग है। उनकी कविताओं में जो भाव सौन्दर्य, प्रवाह तथा कल्पना शक्ति दिखाई देती है। उनका मुकाबला आज भी कोई नहीं कर सकता। नादिम साहिब बचपन से ही क्रान्तिकारी थे। वह मार्केस्ट भी रहे। गरीबों और कमज़ोरों से सहानुभूति ने उन्हें उनके दु:ख तथा दर्द का तर्जुमान बना दिया किन्तु वह कभी भी नास्तिक नहीं बने। पिछले दिनों एक बातचीत के दौरान उन्होंने बातों-बातों में हस पर बल दिया कि क्रान्तिकारी और साम्यवादी होने के बावजूद वह हमेशा आस्तिक रहे। किन्तु उनसे दूसरों की यातनाएँ तथा दु:ख सहे नहीं जाते हैं। यही कारण है कि एक कविता में उन्होंने शिकवा किया है:-

''ए भगवान। तुम्हारी यह धरती पूँजीवादियों के लिए है
गरीबों के भाग्य में तो बस भूख ही भूख है।
जब गरीबी इन्कार पर इन्कार की वजह बने
क्या तुम्हारे वचनों पर विश्वास किया भी जा सकता है?''

नादिम साहिब ने गरीबी देखी है। उन्होंने 18 मार्च 1814 शशियार हब्बाकदल में पं शंकर कौल के घर जन्म लिया। बचपन में ही पिता की छत्र-छाया इनके सिर से उठ गई। उस समय नादिम साहिब की आयु नौ वर्ष की थी और यहीं से उन्होंने जीवन का संघर्ष आरम्भ किया। 18 अगस्त 1826 को मैं नादिम साहिब के घर जो श्रीनगर में जवाहिरनागर में स्थित है, श्री मोतीलाल प्रमोद के साथ गया। नादिम साहिब अच्छी स्थिति में थे। बातों-बातों में उन्होंने अपनी ज़िन्दगी के बारे में विभिन्न घटनाओं की चर्चा की। उनकी यह बातचीत इस रूप से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसके कारण हमें ऐसी बातों का ज्ञान हो जाता है जिनका कश्मीरी-साहित्य के इतिहास में विशेष महत्त्व है। मेरे विभिन्न प्रश्नों का उत्तर उन्होंने अत्यन्त उदारता और हँसते-हँसते दिया। यहाँ यही प्रतीत होता है कि मैं भी उनकी कहानी उनकी ज़बानी सुना दूँ।

प्रश्न - नादिम साहिब। आप अपनी प्रारम्भिक शिक्षा के विषय में कुछ बताने का कष्ट कीजिए।

उत्तर - मैंने प्रारम्भिक शिक्षा 'बाबापुर स्कूल' में प्राप्त की। इसके बाद स्टेट स्कूल, बाग दिलावरखां में प्रवेश पाया। वहाँ से मैट्रिक पास करके मैंने 1826 ई में 'एस पी कालेज श्रीनगर' में प्रवेश पाया।

और यहाँ 1831 ई० तक शिक्षा पाता रहा। उसके बाद घरेलू कठिनाइयों के कारण मुझे शिक्ष को अधूरा छोड़ना पड़ा। 1834 ई० 'सिटी एकैडमी' नाम की एक शैक्षणिक संस्था स्थापित की गई। 1837 ई० में 'निवरे स्कूल के स्टाफ' में काम किया मगर कुछ देर बाद यहाँ से अलग हो गया। नौरा स्कूल इसके बाद दो भागों में बँट गया। एक भाग खालिसा हाई स्कूल बन गया और दूसरा डी०ए०वी स्कूल। अपनी शिक्षा को छोड़कर मेरी आय का साधन प्राइवेट रूप से पढ़ाना था। 1840 ई० में हिन्दू हाई स्कूल की नींव रखी और इसी स्कूल के द्वारा मैंने 1940 ई० में पंजाब यूनिवर्सिटी से ड़िग्री की परीक्षा पास की। 1946 ई० में पंजाब यूनिवर्सिटी से बी टी की परीक्षा उत्तीर्ण की।

प्रश्न - नादिम साहिब। कश्मीरी के इलावा आपने क्या किसी और

ज़बान में भी शायरी की है।

उत्तर - मैंने उर्दू और हिन्दी में भी शयरी की है। इन दो ज़बानों में लिखी गई मेरी कई नज़्मे 'प्रताप' मैगजीन में छपी हैं। मगर बहुत सारा कलाम खो गया है।

प्रश्न - नादिम साहिब। आपकी पहली कश्मीरी कविता कौन सी है और वह कहाँ छपी है।

उत्तर - मेरी पहली नज़्म 'मॉज कॅशीर' (माता कश्मीर) है। यह नज़्म मैंने 1940 ई० में लिखी और दो किस्तों में 'प्रताप' मैगज़ीन में छपी है। नज़्म का एक भाग देवनागरी तथा दूसरा भाग इन्टरनेशनल रोमन में छपा है। इसके बाद मैंने 1943 ई० तक कश्मीरी में काई चीज़ नहीं लिखी। आरिफ साहिब के कहने पर मैंने 1946 ई० में अपनी दूसरी कश्मीरी रचना 'मुच़रावी बर तय दारि व्यसिये' (सखी! खिड़कियों और दरवाज़ों को खुला छोड़ दे, वसन्त निमंत्रण पर आया है) लिखी। आरिफ साहिब मेरे सहपाठी भी थे और बहुत अच्छे विद्यार्थी भी।

प्रश्न - नादिम साहिब। किन कश्मीरी कवियों ने आप पर अपना प्रभाव डाला है।

उत्तर - मेरे घर में बचपन ही से लल्लद्यद और कृष्ण जू राज़दान के 'वाख' और गीत गूँजते थे और इन्हीं दो कवियों से मैं प्रभावित हूँ।

प्रश्न - आपको यदि कश्मीरी ज़बान का जादूगर कहा जाये तो कुछ गलत नहीं होगा। आप कृपया बताइये कि यह वाक्शक्ति हिस्से में क्योंकर आई और कैसी आई?

उत्तर - मैं ने यह ज़बान अपनी माता से सीखी है। मेरी माता 'मुरन' (गाँव का नाम) की थी और उसे कश्मीरी भाषा के उद्भव तथा विकास का पूरा ज्ञान था। वह ज़बान जो मेरी शायरी की ज़बान है, मैंने माँ का स्तनपान करते हुए उत्तराधिकार में पाई है।

प्रश्न - नादिम साहिब। आपने कश्मीरी में कई नई चीज़ों को पहली

बार पेश किया। आप कृपया इस विषय में हमें कुछ बताइए।

उत्तर - आप इस बात से पूर्णतया परिचित हैं कि कश्मीरी में पहली बार - आज़ाद नज़्म, ब्लैंकवर्स, साँनेट, और ओपोरा लिखा है। उससे पहले इस प्रकार की चीज़ें कश्मीरी में लिखने की कोई परम्परा विद्यमान नहीं थी। इस तरह मैंने कश्मीरी में एक नई परम्परा का सूत्रपात किया।

मेरी पहली साँनेट 'च़े छुय ना लोलु म्याने याद तिम दोह' (मेरे मित्र। क्या तुम्हें वह दिन याद नहीं) और पहली गजल 'फल वॅट्य वॅट्य अंबारन रोज़्या' (अनाज को इकट्ठा करके क्या ढेरों में ही रखा जायेगा)। मेरी पहली ब्लैंक वर्स 'म्योन अफसान' (मेरा अफसाना) हैं। यह नज़्म मैंने 1934-55 ई० में लिखी और 1956 ई० में छप कर आई। मेरी पहली आज़ाद नज़्म है 'बु ग्यवु नु अज़' (आज में गीत नहीं गाऊँगा)। यह नज़्म मैंने 1950 ई० में लिखी। सादिक़ साहिब (जम्मू व कश्मीर के भूतपूर्व मुख्यमंत्री) ने जब यह नज़्म सुनी वह हैरान हो गये कि क्या कश्मीरी ज़बान में आज़ाद नज़्में लिखने की क्षमता है। मैंने लिखा पहला ओपेरा 'बोम्बुर यम्बरजल' लिखा, यह ओपेरा मैंने 1953 ई० में लिखा और इसे पहली बार 'निडोज़ होटल' में स्टेज किया गया। 1956 ई में जब मार्शल बुल्गानिन और क्रश्चोफ कश्मीर के दौरे पर आये, उस समय यही ओपेरा उनके सामने 'निडोज़ होटल' में पेश हुआ। ओपेरा के बाद प्रतिष्ठित अतिथियों ने मुझे गले लगाया और रूसी भाषा में मुझे धन्यवाद दिया जो मैं समझ न सका क्योंकि उन्होंने रूसी में बातें कीं।

'बोंबुर यम्बरज़ल' के बाद मैंने चार दिन 'औपरे' ''नेकी तु बदी'' (नेकी और बदी), शुहुल कुल (शीतल वृक्ष), मदन त ज़ूल माल (कामदेव और रति) और वितस्ता लिखी। इसके अतिरिक्त मैंने नूर मुहम्मद रोशन के साथ 'हीमाल नागराय' लिखा जो 'साउंड और लाइट' के द्वारा हारी पर्वत की अधित्यका में प्रस्तुत किया गया।

'बोंबुर यम्बरज़ल' का अनुवाद रूसी में भी हुआ। वहाँ शरीफ रशीदोफ ने इस 'औपोरा' के भाव को आधार जानकर एक और ओपेरा लिखा और

इसे अपने खाते में ड़ाला। इस ओपेरा को बाद में डॉ रईस ने हिन्दी का रूप दिया।

प्रश्न - नादिम साहिब। कश्मीरी में लिखा गया पहला अफसाना कौन सा है। इस विषय में कुछ कहते हैं कि आपका लिखा हुआ अफसाना 'जवाबी कार्ड' कश्मीरी का पहला अफसाना है और कुछ लोगों का कहना है कि सोमनाथ ज़ित्शी का 'येलि फोल गाश' कश्मीरी का पहला अफसाना है। इस बारे में हम आपकी सम्मति जानना चाहते हैं।

उत्तर - साकी साहिब। यह मामला बिल्कुल सीधा-सादा है। 'जवाबी कार्ड' मेंने 1942 ई० में लिखा और उसी साल आकाशवाणी से प्रसारित हुआ। 'येलि फोल गाश' ज़ित्शी साहिब ने फरवरी 1945 ई में लिखा। ये दोनों अफसानें बाद में 'कोंग पोश' के एक ही अंक में छपे जिसके कारण लोगों में यह भ्रान्त धारणा पैदा हो गई है।

प्रश्न - प्रगतिवादी युग से (तरक्कीपसन्दी के दौर से) गुज़र कर आपकी शायरी का नया मोड़ कहाँ से आरम्भ होता है।

उत्तर - मेरी शायरी का नया मोड़ 1947 ई से आरम्भ होता है। जब मैंने 'नाबद त ट्ठ व्यन' नज़्म लिखी। इस नज़्म को मेरी शायरी और कश्मीरीशायरी में एक संगमील का दर्जा प्राप्त है। शायरी में एक तबदीली आने के बावजूद भी तरक्कीपसन्दी की किरणें आज भी उन लोगों की शायरी से फूटती हैं जो तरक्कीपसन्दी से सम्बद्ध रहे हैं। इन लोगों के साथ मेरा नाम भी आता है।

प्रश्न - नादिम साहिब। आप किन विशेष संस्थाओं तथा सभाओं के साथ सम्बन्धित रहे हैं।

उत्तर - 1946 ईव में 'अंजुमन तरक्कीपसंद मुसनिफीन' का जनरल सेकरेटरी रहा। अमन कमेटी का भी जनरल सेकरेटरी (महासचिव) रहा। 1946 में मेरी मुलाकात प्रसिद्ध क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट घन्वंतरी से श्रीनगर में हुई। मैं 1965 ई में कम्युनिस्ट पार्टी का सदस्य बना। 'आल जम्मू व कश्मीर

टीचर्स फेडरेशन' के जनरल सेकरेटरी के रूप में भी मैंने कई साल तक काम किया। 1967 ई में रियासत के अध्यापकों ने मुझे विधान सभा का सदस्य निर्वाचित किया। 1963 ई तक मैं नियमानुसार विधान सभा का सदस्य रहा। कल्चरल अकादेमी की जनरल कौंसिल के इलावा मैं इसकी केन्द्रीय समिति (मरकीज़ी कमेटी) का भी सदस्य रहा हूँ। इसके अतिरिक्त मैं साहित्य अकादेमी की परामर्शदात्रीं समिति से भी सम्बन्धित रहा हूँ। वह समिति जो कश्मीरी लिपि के सुधार के लिए दूसरी बार बनाई गई थी, उसका भी मैं सदस्य रहा। इसके अतीिक्त मैं 'कोंग पोश', 'उस्ताद' और 'गाश' का सम्पादक भी रहा।

1963 ई० में मुझे एक सांस्कृतिक शिष्ट मण्ड़ल के साथ रूस के सद्भाव पूर्ण दौरे पर भेजा गया (याद रहे कि नादिम साहिब ने अपनी तीन यत्राओं का ब्योरा लिपिबद्ध भी किया है जो क्रमश: श्रीनगर में प्रकाशित उर्दू मासिक आज़ाद में छपा)। 1971 में मुझे 'सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार' प्रदान किया गया। इसके बाद मैंने एक मास तक रूस की यात्रा की किन्तु इसका विवरण नहीं लिखा।

बातों-बातों में नादिम साहिब ने मुझे बताया कि उन्होंने शायरी में किसी से परामर्श नहीं लिया है। मेरे इस प्रश्न के उत्तर में कि जो कुछ आपने कश्मीरी भाषा तथा साहित्य के लिए किया, उसको मान्यता किस हद तक दी गई। उन्होंने कहा कि कोई मान्यता नहीं दी गई।

23 मई 1974 में 'जम्मू व कश्मीर कल्चरल अकादेमी' की ओर से नादिम साहिब को सम्मानित किया गया। इस अवसर पर आकादेमी के सचिव ने उनकी सेवाओं का उल्लेख करके इन शब्दों में सराहा।

'नादिम साहिब कश्मीरी भाषा व साहित्य के पोषक तथा दीपक है। उनकी शायरी अपनी शैली तथा माधुर्यगुण के कारण एक संगमील की हैसियत रखती है। आपने रियारसत में सांस्कृतिक आन्दोलन की भी अपूर्व सेवा की है और अपने आत्मविश्वास तथा प्रौढ़ता के कारण कश्मीरी बुद्धिजीवियों की वर्तमान पीढ़ी को बहुत हद तक प्रभावित किया है। आपने विश्व साहित्य की

विभिन्न विधाओं को कश्मीरी शायरी में अपनाकर नये परीक्षणों से इसे समलंकृत करके नया रूप दे दिया। नादिम साहिब कश्मीरी भाषा के उच्च एवं मार्मिक कवि माने जाते हैं और उनके साहसपूर्ण परीक्षणों ने इस भाषा की साहित्यिक परम्परा को नई दिशा प्रदान की है।'

नादिम साहिब युगपुरुष है। वह कवि भी है और गद्यकार भी। समीक्षक के रूप में भी उनका योगदान भुलाया नहीं जा सकता। और सबसे बढ़कर आप एक इनसान हैं जिसकी नसों से प्रेम तथा स्नेह की अमृतधारा टपकती है। ऐसे युगपुरुष सदियों के बाद पैदा होते हैं। निस्सन्देह भर्तहरि की यह सूक्ति इन पर पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है :-

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धा: कवीश्वरा:।
नास्ति तेषां यश: काये जरामरणज भयम्।।

हिन्दी रूपान्तर
डॉ बद्रीनाथ कल्ला

मूल कश्मीरी
मोतीलाल साकी





Badrinath Kalla's Lekh Lahri

"Vitasta Ki Thirakti Uurmiya"

(A collection of Hindi writings)



Dr. Badrinath Kalla

Edited and compiled by

Smt. Sarla Kalla Handoo

Year : 2017

Price : ₹350.00